राम-काव्य की परम्परा

में

रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन

हिन्दी अनुसन्धान परिषद् का इकत्तीसवाँ ग्रन्थ

राम-काव्य की परम्परा

में

रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

41470

गार्गी गुप्त

एम० ए०, पी-एच० डी०, एम०एस० (अमेरिका)

१९६४

हिन्दी अनुसन्धान परिषद्
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
की ओर से

भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा - दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

स्वर्गीया
श्रीमती चमेलीदेवी (सास) को—

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से पूर्व ही जिनका
४ दिसम्बर, १९६२ को अकस्मात्
स्वर्गवास हो गया।

आशीर्वचन

यह प्रसन्नता की बात है कि डॉ० गार्गी गुप्त का शोध ग्रन्थ 'रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन' प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में श्रीमती गुप्त ने राम-काव्य की दीर्घकालीन परम्परा और पृष्ठभूमि का अध्ययन करके उसमें 'रामचन्द्रिका' का स्थान निर्धारित किया है। विदुषी लेखिका प्रबन्ध के विशद तथा गम्भीर प्रतिपाद्य के साथ पूर्ण न्याय कर सकी हैं। राम-भावना के विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन बड़े परिश्रम के साथ वैज्ञानिक और तर्क-पूर्ण ढंग से किया गया है। प्रबन्ध की व्यापक पृष्ठभूमि के होते हुए भी उनके विचार अधिकतर भटके नहीं हैं और चिन्तन सूत्र बिखरने नहीं पाया है। राम-कथा और राम-काव्य-परम्परा का अध्ययन विश्वस्त और प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर किया गया है, जिसके प्रतिपादन और स्थापनाओं में लेखिका की मौलिक विचार शक्ति और अभिव्यंजना शैली का परिचय मिलता है।

केशवदास के व्यक्तित्व और काव्य के विषय में अनेक विरोधी धारणाएँ व्यक्त होती आ रही हैं। कभी उनको कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है तथा उनके प्रति अनुदारता प्रकट की गई है, जैसे 'कवि को देन न चहै विदाई, पूछै केशव की कविताई' और कभी उन्हें तुलसी और सूर के समकक्ष स्थान दिया गया है, जैसे 'कविता कर्ता तीन हैं तुलसी केशव सूर'। केशवदास पर हिन्दी में अबतक जितनी आलोचनाएँ लिखी गई हैं, प्रस्तुत प्रबन्ध का क्षेत्र तथा दृष्टिकोण उन सबसे भिन्न और पृथक् है। प्रबन्ध की भाषा और प्रतिपादन शैली विषय के अनुरूप और तर्कसम्मत है। मुझे पूरी आशा है कि हिन्दी जगत् इस कृति का स्वागत करके श्रीमती गुप्त को प्रोत्साहित करेगा। डॉ० गार्गी गुप्त हिन्दी के क्षेत्र में और भी महत्त्वपूर्ण कार्य करें, यह मेरी मंगल-कामना है।

मैथिलीशरण

चिरगाँव
बंसत पंचमी, १९६४

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध का मुख्य प्रयोजन है हिन्दी में राम-काव्य के विकास का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उसमें केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' का विशिष्ट स्थान तथा महत्त्व निर्धारित करना । प्रबन्ध के दोनों ही पक्षों से सम्बद्ध अब तक जो विचाराधीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनका उल्लेख इस प्रकार है—

१. रामकथा (उत्पत्ति और विकास)	डॉ० कामिल बुल्के
२. महाकवि केशवदास	श्री चन्द्रबली पाण्डेय
३. केशव की काव्य कला	श्री कृष्णशंकर शुक्ल
४. आचार्य केशवदास	डॉ० हीरालाल दीक्षित
५. रामचन्द्रिका	श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव
६. केशवदास (एक अध्ययन)	डॉ० रामरतन भटनागर
७. आचार्य-कवि केशव	प्रो० कृष्णचंद्र वर्मा

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य मनीषियों द्वारा लिखित भारतीय साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रंथों में यत्र-तत्र विकीर्ण राम भावना सम्बन्धी सामग्री, लाला भगवानदीन कृत 'रामचन्द्रिका' की टीका, जानकी प्रसाद कृत टीका, डॉ० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'रामचन्द्रिका', जगन्नाथ तिवारी द्वारा संकलित संक्षिप्त 'रामचन्द्रिका' आदि ग्रंथों में स्फुट टीकाएँ तथा समय-समय पर प्रकाशित होने वाले विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के फुटकर निबंधों में भी हमें राम काव्य तथा 'रामचन्द्रिका' से सम्बन्धित किंचित् सामग्री उपलब्ध हो जाती है ।

राम भावना तथा राम-काव्य सम्बन्धित जो कतिपय उपकरण हमें अब तक उपलब्ध हैं वे विभिन्न इतिहास ग्रंथों में खण्ड रूप में ही प्राप्त होते हैं । इस क्षेत्र में स्वतंत्र ग्रंथों का पूर्णतया अभाव है । प्रस्तुत प्रबन्ध इस अभाव को पूरा करने का एक प्रयास भी है । वैदिक काल से लेकर केशवदास तक राम-काव्य के सतत विकास का विस्तृत विश्लेषण प्रथम अध्याय में तथा केशव के परवर्ती रामकाव्य का संक्षिप्त उल्लेख पंचम अध्याय में किया गया है

केशवदास तथा 'रामचन्द्रिका' से सम्बन्धित जो ग्रन्थ प्राप्त हैं उनमें प्रायः आलोचकों का दृष्टिकोण एकांगी है, विशेष रूप से 'रामचन्द्रिका' के मूल्यांकन की दृष्टि से तो ये सभी अपूर्ण हैं । इन आलोचनात्मक कृतियों में प्रमुख अभाव यह है कि उनके प्रणेताओं ने 'रामचन्द्रिका' का विवेचन अधिकांश 'रामचरितमानस' की तुलना में

किया है । 'रामचरितमानस' तुलसी की एकमात्र कृति नहीं है । दूसरे, तुलसी रामकाव्य परम्परा के एकमात्र कवि नहीं हैं । दोनों कवियों के आदर्शों तथा परिस्थितियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है । स्वयं तुलसी की ही मान्यताओं में मानस से इतर कृतियों में पर्याप्त अन्तर लक्षित होता है अतएव 'रामचन्द्रिका' को मानस के निकष पर रखकर परखना असंगत ही नहीं, उसके स्रष्टा के साथ महान् अन्याय भी है । इन आलोचना-ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन हमने आगामी पंक्तियों में किया है और तदनन्तर यह बताने का प्रयत्न किया है कि प्रस्तुत प्रबन्ध में 'रामचन्द्रिका' के किस पक्ष पर मौलिक रूप से प्रकाश डाला गया है ।

राम-कथा—यह ग्रन्थ डॉ० कामिल बुल्के के शोध प्रबन्ध का परिमार्जित रूप है । विद्वान् लेखक ने इसमें राम-कथा की उत्पत्ति तथा विकास का विस्तृत विवेचन किया है परन्तु जैसा पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है, लेखक की दृष्टि राम काव्य के कथा पक्ष पर ही सीमित रही है, उसकी भावाभिव्यंजना प्रणाली तथा काव्य-तत्त्व की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया है । राम भावना के क्रमिक तथा शृंखलाबद्ध विकास की ओर भी लेखक की दृष्टि नहीं गई है अतएव राम काव्य में एक विशेष महत्त्व होने पर भी इस ग्रन्थ का दृष्टिकोण एकपक्षीय तथा अपूर्ण है ।

महाकवि केशवदास—चन्द्रबली पांडेय के इस आलोचना ग्रन्थ में केशव के सभी उपलब्ध ग्रन्थों की आलोचना की गई है । पांडेय जी के विचारानुसार केशव की दृष्टि 'रामचन्द्रिका' में काव्य के मर्म पर नहीं, कर्म पर है, उसमें न पात्रों के व्यक्तित्व का उचित विकास है और न उच्च कोटि का चरित्र-चित्रण है । उन्होंने इस आलोचना में केशव के कवि कर्म के लिए 'रसिक प्रिया' तथा 'कविप्रिया' को एवं प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से 'वीरसिंहदेव चरित' को प्राधान्य दिया अतः इसमें 'रामचन्द्रिका' की समालोचना अल्प तथा एकांगी है तथापि आलोचक कवि के हृदय पक्ष की ओर से सर्वदा उदासीन नहीं है ।

केशव की काव्य कला—उपर्युक्त आलोचनात्मक ग्रन्थ के सदृश इस ग्रन्थ में भी 'रामचन्द्रिका' के स्वतंत्र विवेचन को प्रधान स्थान नहीं मिला है । शुक्ल जी ने 'रामचन्द्रिका' को पिंगल ग्रन्थ मानकर उसकी रचना का उद्देश्य शुष्क पांडित्य प्रदर्शन मात्र माना है एवं केशव साहित्य के सामाजिक तथा साहित्यिक उद्देश्यों की उपेक्षा कर दी है। शुक्लजी ने 'रामचन्द्रिका' के मुख्य पात्रों, राम, सीता, भरत आदि की तुलना मानस के पात्रों से कर तुलसी के प्रति पक्षपात तो किया ही है, केशव के सम्बन्ध में अनेक भ्रांत धारणाओं की स्थापना भी की है ।

आचार्य केशवदास—यह ग्रन्थ डॉ० हीरालाल दीक्षित के शोध-प्रबन्ध का संवर्द्धित रूप है । विद्वान् आलोचक ने इसमें केशव के आचार्य पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत किया है परन्तु केशव की कला सम्बन्धी मान्यताओं की निर्णायक पुस्तकें हैं 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' । अतः डॉ० दीक्षित ने इन्हीं दोनों ग्रन्थों का विवेचन विशेष

रूप से किया है । द्वितीय, उनकी दृष्टि केशव के सम्पूर्ण साहित्य पर केन्द्रित रही है अतएव उसमें 'रामचन्द्रिका' के विवेचन को विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं है । डॉ० दीक्षित ने 'रामचन्द्रिका' को अलंकार तथा छंद-बहुल रचना होने के कारण लक्षणप्रधान ग्रन्थों के अंतर्गत मान लिया है अतः उनकी दृष्टि 'रामचन्द्रिका' के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक पक्ष पर नहीं गई है ।

रामचन्द्रिका—श्री पुरुषोत्तम दास भार्गव ने इस ग्रन्थ में 'रामचन्द्रिका' की विस्तृत आलोचना की है परन्तु बी० ए० तथा साहित्यरत्न आदि परीक्षाओं के छात्रों की उपयोगिता की दृष्टि से लिखी होने के कारण इसमें सूक्ष्म विवेचन तथा मौलिक दृष्टिकोण का नितांत अभाव है । चन्द्रबली पांडेय तथा कृष्णशंकर शुक्ल की आलोचनाओं का इसमें एक प्रकार से समाहार कर दिया गया है । भार्गव जी ने भी 'रामचन्द्रिका' को पिंगल तथा अलंकार ग्रन्थ माना तथा प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से मानस एवं पद्मावत से इसकी तुलना करके इसे असफल काव्य सिद्ध किया है ।

केशवदास—यह ग्रन्थ डॉ० रामरतन भटनागर के 'एक अध्ययन' माला का एक पुष्प है । इसकी भूमिका में विश्वम्भर मानव ने कहा है—'रामचन्द्रिका' चाहे कितनी ही दोषपूर्ण क्यों न हो पर महाकाव्यों की शृंखला में वह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है और रहेगी । 'कठिन काव्य के प्रेत' वे हो सकते हैं पर उनका काव्य हमारी विद्या-बुद्धि की कसौटी या सिद्ध हुआ है (१९५० के संस्करण की भूमिका)

वस्तुत: भटनागरजी का भी यही दृष्टिकोण है । उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के एक सम्पूर्ण अध्याय में प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' का आलोचनात्मक विवेचन किया है परन्तु इसमें मौलिकता तथा शोध का अभाव है एवं पुस्तक केवल कालेज स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है । डॉ० भटनागर ने भी प्रस्तुत समालोचना में अपने पूर्व आलोचकों के सदृश केशव का अध्ययन करते समय तुलसी के मानस को ही विशेष रूप से दृष्टि में रखा है ।

आचार्य-कवि-केशव—प्रो० वर्मा ने केशव साहित्य के आचार्यत्व तथा कवित्व दोनों पक्षों की संक्षिप्त आलोचना की है । यद्यपि यह अधिकांश पूर्ववर्ती आलोचनात्मक ग्रन्थों का पिष्टपेषणमात्र है तथापि वर्माजी ने इसमें केशव सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं का खण्डन कर उनके साहित्य को पूर्व आलोचकों की अपेक्षा उदारतापूर्वक परखने का प्रयास किया है । सूर तथा मानसकार से केशव की तुलना न कर वे कहते हैं—"हमें सूर और तुलसी की भक्ति का उन्मेष तथा भगवद्विषयक तल्लीनता की आशा केशव से न करनी चाहिए । सूर और तुलसी भक्ति का सम्बल लेकर काव्य-पथ पर चले थे जबकि केशव का आधार साहित्य शास्त्र का ज्ञान था ।" (पृ० ४०) । इस कृति में केशव की सम्पूर्ण कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है इसलिए 'रामचन्द्रिका' का स्थान गौण ही रहा है । इसकी रचना भी छात्रों के उपयोगार्थ हुई है इसलिए इसमें भी सूक्ष्म विवेचन का अभाव है ।

केशव सम्बन्धी उपर्युक्त आलोचना-ग्रन्थों के संक्षिप्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 'रामचन्द्रिका' का स्वतन्त्र विवेचन अभी तक प्राय: नहीं हुआ है। केशव साहित्य पर जो कुछ कार्य हुआ है उसमें आलोचकों की दृष्टि अधिकांश केशव के आचार्यपक्ष पर रही है, कवि पक्ष पर नहीं। अधिकतर आलोचकों ने 'रामचन्द्रिका' का विश्लेषण करते हुए उसमें संस्कृत साहित्य से गृहीत परम्पराओं तथा उसकी रचना के साहित्यिक उद्देश्यों की ओर ध्यान नहीं दिया है प्रत्युत् उन्होंने केशव में तुलसी तथा रामचन्द्रिका में मानस को आंकने की चेष्टा की है, इसी से 'रामचन्द्रिका' का यथार्थ, स्वतन्त्र तथा मौलिक विवेचन अभी तक नहीं हो सका है। इधर गत कुछ वर्षों से केशव साहित्य का अध्ययन करने की ओर आलोचकों की प्रवृत्ति जाग्रत हो रही है तथा 'रामचन्द्रिका' का प्रचार उत्तरोत्तर देश की सीमा को पार कर विदेशों तक पहुँच रहा है। मुझे संयुक्त-राज्य अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में 'रामचन्द्रिका' की एक हस्तलिखित प्रति देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में राम भावना के सतत विकास का क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसमें भारतीय मान्यता के अनुसार विष्णु के रूप विकास और उनके रामरूप ग्रहण के इतिहास का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में 'रामचन्द्रिका' के पूर्ववर्ती राम-साहित्य का एक संक्षिप्त अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत संस्कृत, अपभ्रंश, बौद्ध, हिन्दी तथा लोकसाहित्य में राम कथा का विश्लेषण तथा उसकी साहित्यिक विशेषताओं का मूल्यांकन किया गया है।

तृतीय अध्याय में केशव कालीन परिस्थितियों, केशव साहित्य पर इन परिस्थितियों के योग तथा उत्तरदायित्व आदि का संक्षिप्त विवेचन कर चतुर्थ अध्याय में शास्त्रीय महाकाव्य की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन किया गया है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि साधारण विश्वास के प्रतिकूल महाकाव्य के तत्त्वों की कसौटी पर 'रामचन्द्रिका' पूर्ण रूप से सफल उतरती है। इसी प्रसंग में महाकाव्य के विभिन्न प्रकारों की विवेचना करते हुए 'रामचन्द्रिका' को अलंकृत महाकाव्य निर्धारित किया गया है। 'रामचन्द्रिका' के काव्य पक्ष का मूल्यांकन मानस की तुलना में न कर पूर्ववर्ती सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य की पार्श्वभूमि में करने का प्रयत्न किया गया है।

पंचम अध्याय में यह स्थापित किया गया है कि परवर्ती राम-काव्य पर भी 'रामचन्द्रिका' का यथेष्ट प्रभाव रहा है। यह प्रभाव इतना महत्त्वपूर्ण और गहरा है कि इसी के द्वारा राम-काव्य परम्परा में 'रामचन्द्रिका' का स्थान एक मुख्य और युगान्तकारी कड़ी के रूप में स्वत:सिद्ध हो जाता है। प्रबन्ध के पंचम अध्याय में इसी का संक्षिप्त निरूपण किया गया है।

संक्षेप में इस निबन्ध में हमारा उद्देश्य यह दिखाने का रहा है कि 'रामचन्द्रिका' अपने पूर्ववर्ती साहित्य (मुख्य रूप से संस्कृत) की समस्त समृद्धि तथा विशिष्टताओं

का सार है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' के पाठक को अपनी अनुपम प्रतिभा तथा कुशल काव्य-शैली द्वारा पूर्व साहित्य से परिचित कराकर एक ओर भारत की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा की है एवं दूसरी ओर इस क्षेत्र में भाषा कवियों का दिशा-निर्देश किया है।

प्रबन्ध लेखन में डॉक्टर श्रीमती सावित्री सिन्हा द्वारा पग-पग पर मिलने वाले अमूल्य सुझावों तथा पथ-निर्देशन के कारण ही यह कार्य पूर्ण हो सका है। उनके स्नेहपूर्ण सद्भाव तथा विद्वत्ता से मुझे सदैव नवप्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त होती रही है। उनके वात्सल्य, प्रेम तथा सहृदयता से मेरा रोम-रोम प्रभावित है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए मेरे शब्दों में सामर्थ्य नहीं है, इतना ही कह सकती हूँ कि प्रबन्ध जिस रूप में भी बन पड़ा है, उन्हीं की कृपा का प्रसाद है।

पूज्य दद्दाजी के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदित करती हूँ जिन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन के बावजूद समय निकाल कर मेरी इस पुस्तक को पढ़ने का कष्ट किया और अपना आशीर्वाद भेजकर पुस्तक का मूल्य तथा मेरा उत्साह बढ़ाया है।

प्रूफ संशोधन में मुझे अपने सुयोग्य छात्र श्री सूरज नारायण मंगला से बड़ी सहायता मिली है। श्री शम्भू दयाल यादव ने भी समय-समय पर मेरी सहायता की है। मैं इन दोनों छात्रों की अत्यन्त ऋणी हूँ।

निबन्ध की सामग्री-संचयन में मुझे साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, प्रयाग; पब्लिक पुस्तकालय, प्रयाग तथा मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली के अध्यक्षों से विशेष सहायता मिली है जिन्होंने अपने पुस्तकालयों में यथाशक्ति उपलब्ध-अनुपलब्ध पुस्तकों का प्रबन्ध करके मुझे चिरकाल के लिए अपना ऋणी बना लिया है। इन सबके तथा अपने अन्य मित्रों और सहयोगियों के प्रति जिन्होंने विभिन्न प्रकार से प्रबन्ध लेखन में मेरी सहायता की है, मैं साभार कृतज्ञता-ज्ञापन करती हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
गणतन्त्र दिवस, १९६४

—गार्गी गुप्त

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

प्रथम अध्याय

राम भावना का विकास

नैसर्गिक सत्ता में उदात्त भावनाओं तथा मानवीय आदर्शों के आरोपण में ही हमें राम भावना के विकास का आरम्भ दिखाई देता है। स्थूल जगत् की परिसीमाओं तथा सूक्ष्म अर्थात् अन्तर की उदात्त सौन्दर्य कल्पना के असामंजस्य के कारण मनुष्य अपने अमूर्त आदर्शों का आरोपण किसी नैसर्गिक सत्ता पर कर अपनी दुर्बलताओं का निराकरण करके मानो स्थूल पर सूक्ष्म की विजय घोषित करता है। भारतीय दर्शन में इन उदात्त आदर्शों के प्रतीक रूप में जिन अलौकिक व्यक्तियों का निर्माण हुआ उनमें विष्णु मुख्य हैं। राम का मर्यादा पुरुषोतम रूप विष्णु के रूप का विकास है अतः राम काव्य की परम्परा का इतिहास उसी समय से आरम्भ होता है जब से विष्णु के अस्तित्व को मान्यता प्राप्त हुई। यह कहना कठिन है कि यह अलौकिक आलम्बन चिन्तन की सीमा पार कर रागात्मक अभिव्यक्ति का उपकरण कब बना परन्तु विष्णु का अस्तित्व भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के समान ही प्राचीन है।

विष्णु के व्यक्तित्व में पार्थिव तथा अपार्थिव गुणों का अद्भुत सामंजस्य है। पार्थिव की परिसीमाओं से रहित तथा अपार्थिव के अतिप्राकृत तत्त्व के विद्यमान रहते हुए भी विष्णु की कल्पना महामानव के रूप में की गई है। बहुमुखी दिव्य शक्तियों से युक्त विष्णु वैष्णवों के आदि देव हैं। दैवी शक्तियों के साथ-साथ वह मानवी विशेषताओं से भी विभूषित हैं परन्तु यथार्थ में वह एक देवता ही हैं जो मानव के पार्थिव व्यक्तित्व से कहीं श्रेष्ठ हैं, एवं राम एक मानव हैं जो प्राकृतिक नियमानुसार शरीर धारण कर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। वैष्णवों ने विष्णु के विष्णुत्व की साकार कल्पना इन्हीं राम के पार्थिव व्यक्तित्व में की है। अदृश्य रहने वाले विष्णु अनायास ही राम हो उठे हैं। राम के ऐहिक व्यक्तित्व का सामंजस्य विष्णु के समस्त नैसर्गिक गुणों के साथ हुआ है।

भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम विचारधाराएँ वेदों में सुरक्षित हैं, अतः आर्य संस्कृति से परिचित होने के लिए हमारे सर्वप्रथम विश्वस्त आधार वही हैं। वेदों में राम से सम्बन्धित कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु विष्णु का नाम कई स्थलों पर मिलता है।

वैदिक साहित्य में विष्णु के विविध रूप

ऋग्वेद में विष्णु—ऋग्वेद में विष्णु सम्बन्धी स्वतन्त्र ऋचाएँ कतिपय ही हैं। इन्हीं को सूत्र रूप में ग्रहण कर विद्वत् वर्ग के विचारानुसार ऋग्वेद में विष्णु

के स्थान के सम्बन्ध में अनेक विरोधी मत हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में विष्णु एक साधारण देवता ही माने जाते थे परन्तु अनेक मत इस पक्ष में हैं कि वैदिक काल से ही विष्णु का रूप असाधारण था।

एम० विंटरनित्ज महोदय ने अपने भारतीय साहित्य के इतिहास में ऋग्वेद में उल्लिखित अनेक देवताओं का वर्णन किया है[1] तथा आर्येतर प्राचीन साहित्य से उनका सम्बन्ध भी स्थापित किया है परन्तु विष्णु के सम्बन्ध में वे प्रायः मौन हैं। उन्होंने सूर्य के सवितृ, पूषन् आदि अनेक पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या की है परन्तु विष्णु के सम्बन्ध में केवल इतना कहा है कि विष्णु का सूर्य देवता के रूप में ऋग्वेद में उल्लेख है।

आर० सी० मजूमदार ने विष्णु को एक साधारण देवता मानते हुए कहा है कि विष्णु की विशेषता केवल उनके तीन पगों में है। विष्णु ने अपने तीन पगों में समस्त ब्रह्मांड को नाप लिया था अतः अपनी इसी नाप-क्रिया के कारण वह 'उरुगाय' एवं 'उरुक्रम' भी कहलाते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि उस समय सम्भवतः विष्णु सूर्य की गति के प्रतीक थे।[2]

आर० सी० मजूमदार के 'सम्भवतः' शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद में विष्णु की महत्ता को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया गया था तथा यह केवल उनका अनुमान है कि विष्णु उस समय सूर्य के प्रतीक रहे होंगे।

मनुभाई सी० पंड्या ने सूर्य के अनेक पर्यायवाची देवताओं की गणना की है जिसमें विष्णु भी एक देवता हैं। उनके मतानुसार विष्णु वेदों में साधारण देवता हैं परन्तु परवर्ती साहित्य में उनका स्थान क्रमशः ऊँचा हो गया था।[3]

श्रीयुत फरकुहर साहब के अनुसार ऋग्वेद के प्रारम्भिक नवमण्डलों में विष्णु का स्थान महत्त्वपूर्ण नहीं है परन्तु दशम मण्डल में किंचित् परिवर्तन हुआ है। विष्णु एवं रुद्र आदि नवीन देवताओं का समुन्नित विकास दशम मण्डल में ही हुआ है।[4]

ऋग्वेद के दशम मण्डल में फरकुहर साहब ने विष्णु का आविर्भाव मात्र मानकर उन्हें एक नवीन देवता के रूप में स्वीकार किया है । वह भी ऋग्वेद काल तक विष्णु की कोई विशेष महिमा नहीं मानते। डा० राधाकृष्णन और मैकडॉनल ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

इन विद्वानों से भिन्न धारणा रखनेवाले मनीषी उस समय भी विष्णु को

---

१. एम० विंटरनित्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, पृ० ७६।

२. आर० सी० मजूमदार : वैदिक एज, पृ० ३६७।

३. मनुभाई सी० पंड्या : इंटेलिजेंट मैन्स गाइड टू इंडियन फिलासफी थियोलाजी ऑफ दी वैदिक डीटीज, पृ० ३१।

४. जे० एन० फरकुहर : एन आउटलाइन ऑफ दी रिलिजस लिटरेचर : दी राम सेक्ट, पृ० १८६।

साधारण देवता के रूप में न देख यथेष्ट विकसित रूप में ही देखते हैं। आर० जी० भंडारकर का मत है कि यद्यपि ऋग्वेद में विष्णु की प्रशंसा में अधिक ऋचाएँ नहीं हैं तथापि विष्णु का स्थान वहाँ किसी भी प्रकार से साधारण नहीं है। उनके तीन पगों में पृथ्वी के नापने को सदैव एक साहसिक कृत्य के रूप में ग्रहण किया जाता है।[1]

भारतीय दर्शन के इतिहास में श्री एस० एन० दासगुप्ता ने लिखा है कि विष्णु, भागवत, नारायण, हरि और कृष्ण आदि का उल्लेख भारतीय धार्मिक-साहित्य में ब्रह्म के अर्थ में हुआ है। इनमें से विष्णु ऋग्वेद के मुख्य देवताओं में से हैं। विष्णु एक आदित्य हैं जो पूरे आकाश को तीन पगों में पार करते हैं। ऋग्वेद में विष्णु का वर्णन महान् योद्धा के रूप में भी आता है। वे इन्द्र के सहायक है।[2]

इन विद्वानों के विचारों तथा ऋग्वेद में विष्णु सम्बन्धी अवतरणों पर दृष्टि डालने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि उस समय विष्णु का स्थान किसी भी प्रकार निम्न नहीं था। यद्यपि यह सत्य है कि विष्णु के लिए स्वतंत्र उद्धरण ऋग्वेद में अधिक नहीं हैं। परन्तु किसी की प्रशंसा में कम अथवा अधिक काव्य की रचना उसके मान के मापदण्ड नहीं होते, क्या और कैसा लिखा गया है, उसी का महत्त्व होता है। विष्णु का उस समय क्या व्यापार था और जनता उनकी उपासना किस रूप में करती थी, इसी से उनके स्थान का निश्चय हो सकता है।

आर्यों के देवता प्रकृति की शक्तियों के प्रतीक थे। आर्य जन प्रकृति से भयभीत रहते थे अतः उसकी शक्तियों को प्रसन्न करने के हेतु अनेक ऋचाओं की रचना कर और उच्च स्वर से उनका उच्चारण कर, अभीष्ट शक्तियों का आह्वान करते थे। परन्तु इन देवताओं में किस का क्या स्थान होना चाहिए इसका निश्चय वे नहीं कर पाते थे इसी से वह प्रायः देवताओं को युग्मों में सम्बोधित करते थे। वह एक ही देवता को कभी श्रेष्ठ और कभी साधारण कहते और कभी एक ही विशेषण से अनेक देवताओं को सम्बोधित करते। ऋग्वेद में इन्द्र तथा अग्नि की प्रशंसा में सम्भवतः इसीलिए अधिक ऋचाओं की रचना हुई क्योंकि आर्य इन दोनों देवताओं से ही सबसे अधिक भयभीत रहते थे। विष्णु से आर्यों को भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह उनकी श्रद्धा एवं प्रेम के पात्र थे। संभवतया विष्णु सम्बन्धी ऋचाएँ ऋग्वेद में इसीलिए अल्प संख्या में हैं, परन्तु विष्णु के सम्बन्ध में जो कतिपय छन्द ऋग्वेद में प्राप्त हैं उससे उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान निर्विवाद रूप से माना जा सकता है।

विष्णु-महामानव तथा लोकनायक—ऋग्वेद में विष्णु का अस्तित्व स्वतन्त्र है। वह मानवीय गुणों से युक्त होते हुए भी उससे परे महामानव के रूप में हमारे

---

१. आर० जी० भंडारकर : वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म, पृ० ३३।

२. एस० एन० दासगुप्ता : हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ० ५३५।

समक्ष आते हैं। वह स्वर्ग लोक के एकछत्र सम्राट् हैं तथा देव, असुर एवं मानवों पर समान रूप से शासन करते हैं। तीनों लोकों का नायकत्व उनके ही हाथ में है। देव जाति में जो इन्द्र सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे, ऋग्वेद के अनुसार वही विष्णु के पास सैनिक सहायता के हेतु याचक बनकर गए थे। इन्द्र विष्णु के घनिष्ठ मित्र थे तथा विष्णु ने अनेक अवसरों पर इन्द्र को सहायता दी थी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक 'दी आर्कटिक होम इन दी वेदाज़'[१] में कहा है कि ऋग्वेद में विष्णु और इन्द्र अभिन्न मित्र हैं तथा इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम में विष्णु ने इन्द्र की सहायता की थी।

ऋग्वेद के उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि इन्द्र का वृत्र के साथ घमासान युद्ध हुआ था जिसमें इन्द्र ने विष्णु से सहायता की याचना की थी। चतुर्वेदों तथा किसी भी परवर्ती साहित्य में इन्द्र का और किसी देवता से सहायता माँगने का उल्लेख नहीं है। देवराज इन्द्र के विष्णु से सहायता माँगने की क्रिया में विष्णु की परम शक्ति प्रच्छन्न रूप से देखी जा सकती है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि जिस समय इन्द्र वृत्र का वध करने ही वाले थे उस समय इन्द्र ने विष्णु से कहा[२] "विष्णु ! शीघ्र आओ।" इस वाक्य की विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्या की है, परन्तु मुझे इन शब्दों में वृत्र का वध करने के लिए इन्द्र की मानसिक आतुरता तथा स्वर में अनुनय का आभास प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में एक उल्लेख है[3] जिसमें विष्णु सोम रस का पान करने के अनन्तर इन्द्र के अनुरोध पर युद्ध-क्षेत्र से सौ भैंसें एवं दुग्धासव, जिन पर वृत्र का आधिपत्य था, लेकर भाग गए तथा इसी मध्य इन्द्र ने वृत्र का वध कर दिया।

विष्णु स्वयं महानायक हैं अतः नायक का सम्मान करना वह भली भाँति जानते हैं। विष्णु इन्द्र की विजय के उपलक्ष्य में एक उत्सव का आयोजन कर उस का सम्मान करते हैं। इस अवसर पर वह स्वयं अपने हाथ से भोज्य पदार्थ बनाकर इन्द्र को भोजन कराते हैं, सोम रस पान कराते हैं तथा संगीत से उसका मनोरंजन करते हैं।

वृत्र के वध में इन्द्र की सहायता करने के अतिरिक्त विष्णु दासों पर भी विजय प्राप्त करते हैं, शंवर के ९९ किलों को नष्ट करते हैं एवं वार्शिन की सेनाओं को पराजित करते हैं।[४] सोम रस पिलाकर वह इन्द्र की शक्ति वर्धन करते हैं।

---

१. पृ० ३२८।
२. ऋग्वेद : ४. १८. ११।
३. ऋग्वेद : १. ६१. ७।
४. ऋग्वेद : ७. ९९. ४-५।

विष्णु ने समस्त लोकों का नायकत्व भार भी वहन किया है। उनके तीन पगों में तीन लोकों को नापने की क्रिया को लोक मानस ने सदैव प्रशंसा तथा कृतज्ञता की दृष्टि से देखा है। यह तीन पग उन्होंने क्यों उठाए थे, वेदों में इसका कोई निश्चित कारण नहीं मिलता परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह पग उन्होंने दुष्टों से अपनी प्रजा की रक्षा करने के हेतु उठाए होंगे। तीन प्रयासों में ही सम्पूर्ण लोकों को जय कर भक्तवत्सल विष्णु ने अपनी प्रजा के कष्टों का निवारण किया।

विष्णु के तीन पगों के सम्बन्ध में आलोचकों में अनेक वैभिन्न्यपूर्ण मत हैं—

श्रीयुत और्णभाव, डॉ० आर० जी० भंडारकर, डॉ० आर० सी० मजूमदार, ह्विटने, डॉ० मैक्समूलर, केयगी, देशमुख एवं निरुक्तकार आदि विद्वान् विष्णु के इन तीन डगों को सूर्य की तीन स्थितियाँ उदय, मध्याह्न तथा अस्त मानते हैं।

मनुभाई सी० पंड्या के विचारानुसार विष्णु के तीन पग सूर्य के तीन मार्ग पृथ्वी, वायु तथा आकाश हैं।

डा० राधाकृष्णन विष्णु के दो चरण पृथ्वी तथा आकाश में एवं तृतीय चरण किसी अदृश्य स्थान में मानते हैं।

विष्णु के प्रथम दो पगों के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहीं कोई संकेत नहीं मिलता किन्तु तृतीय पग से सम्बन्धित कतिपय उल्लेख हैं जिनके आधार पर कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि विष्णु का यह तृतीय पग साधारण लोक-चक्षुओं की दृष्टि से परे है।[1] पवित्रात्माओं को यह स्थान आकाश में स्थिर एक नेत्र के सदृश दृष्टिगोचर होता है।[2] मुक्तात्मा जन वहां निवास करते हैं तथा आनन्द-उत्सव में रत रहते हैं, वहाँ पर मधु का एक कूप है।[3] इस स्थान पर विष्णु स्वयं वास करते हैं तथा यह परम पद कहलाता है। विष्णु यहाँ रहकर अपनी सम्पूर्ण प्रजा की चिंता करते हुए उसकी रक्षा करते हैं।[4] अपनी ऊँचाई के कारण यह स्थान पक्षियों की पहुँच के लिए भी अत्यंत दुर्लभ है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल में एक अवतरण है कि विश्व के समस्त प्राणियों की निवास भूमि का समावेश विष्णु के तीन पग स्थलों के अन्तर्गत हो जाता है।[5] यद्यपि यह तीनों ही लोक मधु से पूर्ण हैं[6] तथापि विष्णु को अपना तृतीय लोक अत्यंत

---

१. ऋग्वेद : १. १५५. ५, ७. ६६. २।
२. ,, : १. २२. २०।
३. ,, : ८. २६. ७, १. १५४. ५।
४. ,, : ३. ५५. १०।
५. ,, : १. १५४. २।
६. ,, : १. १५४. ४।

प्रिय है। इच्छानुसार विष्णु अपने तीनों लोकों में निवास[1] करते हैं, अतः उनको 'त्रिषध्यष्ठ' की उपाधि से भी विभूषित किया है।

ऋग्वेद में विष्णु को 'उरुगाय', 'उरुक्रम' एवं 'विक्रम' के विशेषणों से भी सम्मानित किया गया है। वह अपना प्रत्येक चरण उठाने में नियमों का पालन भी करते हैं।[2] वह नियम के साक्षात् जन्मदाता हैं। इस प्रकार तीनों लोकों का नायकत्व करने वाले विष्णु समस्त लोकों के महानतम नायक हैं।

विष्णु प्रकृति के प्रतीक—ऋग्वेद में विष्णु का रूप प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के प्रतीक रूप में भी दृष्टिगोचर होता है। पाश्चात्य तथा पौरस्त्य अनेक विद्वानों के मतानुसार विष्णु सूर्य के प्रतीक हैं। विष्णु शब्द की उत्पत्ति 'विश्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है व्याप्त होना। सूर्य प्रकाश रूप से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है अतएव विष्णु सूर्य के प्रतीक हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में डॉ० मैक्समूलर के आधार पर इस मत का प्रतिपादन किया है।[3]

विष्णु की तीव्र गति के कारण डॉ० मजूमदार ने उनको सूर्य का प्रतीक माना है। शाकपूणि, डॉ० ए० ए० मैकडॉनल, डा० दासगुप्ता आदि कतिपय विद्वान् विष्णु के तीन डगों को सूर्य की तीन स्थितियाँ उदय, मध्याह्न और अस्त के कारण सूर्य का प्रतीक मानते हैं। डॉ० दास के मतानुसार विष्णु द्वादश आदित्यों में से एक आदित्य हैं। वह उनको कनिष्ठतम किन्तु योग्यतम आदित्य मानते हैं।[4] ऋग्वेद में विष्णु का एक नाम शिपिविस्त है जिसका अर्थ श्री दुर्गाचार्य ने 'प्रातः किरणों से युक्त' किया है। इस कारण डा० दासगुप्ता का अनुमान है कि उस समय विष्णु या तो सूर्य के रूप माने जाते होंगे अथवा उनमें सूर्य के गुण वर्तमान रहे होंगे।

डॉ० राधाकृष्णन के कथनानुसार सूर्य विष्णु के रूप में संसार का पालन करता है।[5] श्री बलदेव उपाध्याय का विचार है कि विष्णु आकाशगामी सतत क्रियाशील सूर्य के प्रतीक हैं।

ऋग्वेद में सूर्य के अन्य अनेक पर्यायवाची देवताओं के नाम तथा उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ मिलती हैं। उस समय पूषन्, सवितृ, सावित्री, मित्र आदि अनेक देवता सूर्य के अर्थ में ग्रहण किये गये थे। इन देवताओं का उत्पत्ति-स्रोत संदिग्ध है परन्तु अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि पूषन् पहले चरवाहा जाति का सूर्य देवता था जो पथभ्रष्ट पशुओं को उचित मार्ग का प्रदर्शन करता था। मित्र शब्द का

---

१. ऋग्वेद : १. १५६. ५।
२. ,, : १.२२.१८।
३. डॉ० रामकुमार वर्मा : भक्तिकाल की अनुक्रमणिका, पृ० ५३५।
४. डॉ० एस०एन० दासगुप्ता : ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५३५।
५. डा० राधाकृष्णन : इंडियन फिलासफी, पृष्ठ ४८५।

विकास 'अवस्ता' के 'मिथ्र' से माना जाता है। मिथ्र ईरानियों का सूर्य देवता था। सवितृ जिसका अर्थ जीवनदायी है पहले सूर्य का विशेषण था परन्तु कालान्तर में आर्यों ने इन सब देवताओं को स्वधर्म में सम्मिलित कर लिया और वे आर्यों के स्वतंत्र देवता बन गए। विष्णु का उल्लेख देवता के रूप में किसी भी जाति अथवा देश में नहीं पाया जाता। विष्णु शब्द का प्रयोग सूर्य के विशेषण रूप में भी प्राप्त नहीं होता जिससे हम यह अनुमान कर सकें कि उसने बाद में स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्राप्त कर लिया होगा।

ऋग्वेद में विष्णु के विषय में एक उल्लेख है जहाँ वह एक घूमते हुए चक्र की भाँति चार नामों से (ऋतु) अपने ९० घोड़ों को (दिन) लेकर गतिशील होते हैं। संभवतः इसीलिए डॉ० मजूमदार ने उनको सूर्य का प्रतीक माना है।[1]

ऋतु तथा समय का परिचालन सूर्य की स्थिति के अनुसार होता है परन्तु विष्णु तो संसार के संचालक और स्रष्टा हैं। अप्रत्यक्ष रूप से वह स्वयं समय और ऋतु का परिचालन करते हैं। उनका यह कार्य सूर्य के कार्य के समान हो सकता है पर इसी कार्य-समता के कारण वे स्वयं सूर्य नहीं हो सकते। उनकी तुलना सूर्य से की जा सकती है परन्तु उन्हें सूर्य का प्रतीक मानना संगत नहीं प्रतीत होता।

गरुड़ विष्णु का वाहन है जिससे अग्नि के समान प्रकाश निकलता है। विष्णु के दो नाम 'गरुड़मत' तथा 'सुपर्ण' भी हैं। ऋग्वेद में यह दोनों विशेषण सूर्य-पक्षी के हैं। संभव है गरुड़ की गति सूर्य के समान होने के कारण विष्णु और सूर्य के भी यही विशेषण बन गए हों। सूर्य के लिये हमारे आदि साहित्य में कहीं पक्षी का रूपक नहीं मिलता परन्तु वाहन रूप में गरुड़ नामक पक्षी का वर्णन परम्परागत है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी समय से गरुड़ विष्णु का वाहन था इसलिये वह गरुड़-मत थे और सूर्य की गति में गरुड़ की तीव्रता थी इस कारण सूर्य गरुड़मत था। कुहण (Kuhun) ने विष्णु की कौस्तुभ मणि को सूर्य बताया है। ऋग्वेद में विष्णु का उल्लेख सूर्य के स्रष्टा के रूप में भी आता है।[2]

कहीं-कहीं विष्णु को अग्नि का प्रतीक भी माना गया है। अग्नि अपने तीन रूपों—सूर्य, विद्युत् तथा अग्नि से आकाश, मेघ और पृथ्वी में निवास करता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा है कि विष्णु का उच्चतम स्थान तथा अग्नि का उच्चतम स्थान एक ही है जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व विष्णु पर है।[3] विष्णु और अग्नि दोनों का एक ही स्थान होने के कारण विष्णु को अग्नि का प्रतीक मान लेना अधिक संगत नहीं है। विष्णु-लोक केवल अग्नि का ही नहीं, बल्कि सभी देवताओं

---

१. डॉ० मजूमदार : वैदिक एज, पृष्ठ ३६७।

२. बी० जी० रेले : वैदिक गॉड्स विष्णु, ३. १४. १।

३. ऋग्वेद : १०. १. ३।

का लोक है। आर्यों के सभी मान्य देवता विष्णु लोक में पारस्परिक वैमनस्य को त्याग कर प्रसन्नतापूर्वक रहते थे।[1]

विष्णु अपार्थिव सत्ता के रूप में—ऋग्वेद के दशम मंडल के पुरुष-सूक्त में पुरुष का उल्लेख हुआ है। आर्यों ने अपने हृदय की समस्त श्रद्धा और भक्ति इसी पुरुष के लिये अर्पित कर दी है। पुरुष सूक्त में कहा गया है कि जो कुछ हम देखते हैं वह पुरुष है, भूत और भविष्य सब वही है। विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं की सृष्टि उसी से हुई है। आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी सब उसी से उत्पन्न हैं। वह सबका संरक्षक है।

विष्णु के लिये ऋग्वेद में कहा है कि उन्होंने इन्द्र के साथ मिलकर सूर्य, उषा, और अग्नि की सृष्टि का है।[2] पृथ्वी का विस्तार करके वायु का प्रसार किया है।[3] वह परोपकारी, दयालु, उदार, संरक्षक, दानी और विश्व-संस्थापक हैं।[4] समस्त देवता विष्णु के लोक में उनके आधिपत्य में रहते हैं और पृथ्वी लोक के सभी प्राणी उनके लोक में जाने की आकांक्षा रखते हैं। विष्णु नियम के जन्मदाता हैं तथा विश्व की स्थापना करते हैं। वह प्राचीन भी हैं और नवीन भी।[5] एक स्थान पर यह भी संकेत मिलता है कि वह ऋतु नियन्ता हैं जहाँ उनके ९० घोड़े अपने चार नामों से एक चक्कर पूरा करते हैं। पृथ्वी लोक में अधिक प्राणियों को स्थान देने के लिए विष्णु ने तीन बार पृथ्वी पार की।[6] ऋग्वेद में[7] यह भी कहा गया है कि वरुण और अश्विन विष्णु की आज्ञा का पालन करते हैं। संसार को उन्होंने खूंटियों से बांध रखा है। उनके साथ कोई छल नहीं कर सकता।[8]

ऋग्वेद में विष्णु का गर्भ के देवता के रूप में भी मान्य होने का उल्लेख मिलता है। गर्भाधान के समय वह गर्भ की रक्षा किया करते थे।[9] ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक उद्धरण के आधार पर[10] एम० विंटरनित्ज का मत है कि विष्णु से प्रार्थना की गई है कि वह गर्भ में अत्यंत रूपवान पुत्र दें। एक दूसरा मत यह भी है कि उसमें एक ऐसा शिशु देने के लिए प्रार्थना की गई है जो विष्णु के समान सुन्दर हो। कालान्तर में दशरथ भी विष्णु से ऐसी ही प्रार्थना करते हुए दिखाई देते हैं।

---

१. ओल्डेन वर्ग ऋ० वे०, पृ० ६२·३।
२. ऋग्वेद : ७.९९.४।
३. ,, : ६.६९.५।
४. ,, : ७.४०.५, ८.२५.१२, ३.५५.१०।
५. ,, : १.१५६.२-४।
६. ,, : ७.१००.४।
७. ,, : १.१५६.४।
८. ,, : १.२२.१८।
९. ,, : ७ ३६.९।
१०. ,, : १८४ १७।

विष्णु के तीन पगों की कथा का वैष्णव दर्शन में अद्वितीय स्थान है। प्रत्येक पग में एक लोक को नाप लेने की उनकी शक्ति उन्हें उस परम सत्ता के समकक्ष पहुँचा देती है जहाँ से वह विश्व का संरक्षण एवं कल्याण करते हैं। विष्णु के उस समय तीन रूप प्रचलित थे। ब्रह्माण्ड का निर्माण करने से वह ब्रह्मा, विश्व में व्याप्त होकर पालन करने से विष्णु और संहार के समय रौद्र रूप दिखाने से वह रुद्र हुए। इन तीनों कार्यों में पालन कार्य प्रधान होने से विष्णु के इसी रूप का अधिक विकास हुआ। विष्णु के परम पद की प्राप्ति ब्रह्म की उपलब्धि है।[1] कालान्तर में विष्णु के यह तीन रूप स्वतंत्र हो गए और इन नामों से तीन पृथक् देवताओं का बोध होने लगा। आरम्भ में आर्य शिव को विष्णु और विष्णु को शिव कहते थे क्योंकि उनमें कोई मौलिक भेद न था। अतः त्रिदेव के रूप में यह पृथक्-पृथक् देवता ऋग्वेद में नहीं मिलते।

ऋग्वेद के मण्डलों में ही क्रमशः विष्णु की शक्तियाँ प्रति दिन अधिक विकसित हो रही थीं। आर्यों ने विष्णु को कहीं भी साधारण देवता नहीं कहा है। विष्णु की स्तुति में अल्प छन्दों को देखकर ही उनकी महत्ता के विषय में सन्देह करना अत्यन्त भ्रामक है। उस समय भी आर्यों ने विष्णु का संसार के मानवों और देवलोक के देवताओं से परे विश्व स्रष्टा के रूप में दर्शन किया था। विष्णु के इसी रूप को आर्यों ने पुरुष सूक्त में 'पुरुष' कहकर संबोधन किया है।

देवत्व के साथ ही विष्णु मानव जाति के पालक एवं रक्षक भी हैं अतएव इन अलौकिक गुणों के साथ-साथ उनमें लौकिक गुणों का समावेश भी है। उनमें देवत्व भी है तथा मानवत्व भी। मानव हृदय को वशीभूत करने के लिए उनमें मानवीय गुणों का होना आवश्यक भी था।

विष्णु देवराज इन्द्र के अतिरिक्त मानवजाति की भी सहायता करते हैं।[2] वह असुरों का दमन करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि 'मनुष्य ही विष्णु है'।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण काल तक लोक मानस में विष्णु ने पर्याप्त स्थान बना लिया था।

विष्णु का एक पर्याय नारायण है जिसका अर्थ है 'नर जाति में उत्पन्न।' इससे नर जाति के प्रति उनके सौहार्द का परिचय मिलता है। विष्णु का शंवर के ९९ किलों को जय करना, वर्शिन की सेनाओं को पराजित करना आदि प्रसंग उनके मानवत्व की ओर संकेत करते हैं।

---

१. ऋ० वे० : १.२२.२१।
२. ऋ० वे० : ६.४९.१३।
३. शतपथ ब्राह्मण : ५.२.५.२-३।

विष्णु में पार्थिव एवं अपार्थिव का अत्यंत सुन्दर सामंजस्य उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में विष्णु की शारीरिक विशेषताएँ, उनका वामन होना, बृहत् शरीर होना, गति में तीव्रता होना आदि उनके मानवीकरण के प्रतीक हैं। विष्णु के निवास स्थान तक पहुँच पाने में जीव मात्र की असामर्थ्य, सम्पूर्ण विश्व को खूँटियों से बाँधने की क्रिया, संसार का सृजन-कार्य, सूर्य, उषा तथा अग्नि की सृष्टि करना, पृथ्वी का विस्तार करना, वायु का प्रसार करना, निज लोक में देवताओं को शरण देना एवं युद्ध क्षेत्र से वृत्र की वस्तुओं को लेकर भाग जाना आदि क्रियाएँ उनके अपार्थिव गुणों की परिचायक हैं। इन्द्र के सम्मान में उत्सव का आयोजन कर उसका सत्कार, असुरों का दमन, आदि कार्य तथा विष्णु का परोपकार, सज्जनता, दानशीलता, उदारता, प्रजा-पालन आदि गुणों से समन्वित होना, तीन पगों में तीन लोकों को पार करना, निःस्वार्थ भाव से प्रजा की सहायता करना, परन्तु उसके छल को प्रश्रय न देना आदि गुणों में उनके देवरूप तथा मानवरूप का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है।

अन्य वेदों में विष्णु का रूप

ऋग्वेद के अन्त तक विष्णु का स्थान सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। उस समय तक आर्य सभ्यता का यथेष्ट विकास हो चुका था अतः जनता की धार्मिक भावनाएँ स्वतः सरलता से क्लिष्टता की ओर उन्मुख हो रही थीं। कर्मकाण्डों का श्रीगणेश हो रहा था तथा लोक जीवन-धारा अस्वाभाविकता की ओर प्रवाहित होने लगी थी। यज्ञों का आरम्भ हो चुका था एवं आर्यों के सम्पूर्ण मंत्र, उनकी समस्त निष्ठाएँ तथा प्रयत्न इसी ओर अग्रसर होने लगे थे। बहुदेववाद से आर्यों की दृष्टि एकदेववाद की ओर आकर्षित हो रही थी, फलतः अन्य देवताओं की अपेक्षा उनका आकर्षण विष्णु की महाशक्ति की ओर प्रबलतर होता जा रहा था।

यजुर्वेद में विष्णु—यजुर्वेद काल में आर्यों की प्रवृत्ति यज्ञ की ओर उन्मुख हुई जिसके परिणामस्वरूप विष्णु स्वयं यज्ञ रूप में स्वीकार कर लिए गए। वे यज्ञ के प्रेरक भी बने और रक्षक भी। यज्ञ के अवसर पर यज्ञकर्त्ता पुरोहित की पत्नी से कहता है 'तुम यज्ञकर्त्ता विष्णु की रक्षिता हो।' यज्ञ पात्र से हव्य सामग्री निकालते हुए पुरोहित उसे संबोधित कर कहता है 'तुम अग्नि का शरीर हो, तुम विष्णु के लिए हो, तुम सोम का शरीर हो, तुम विष्णु के लिए हो।' अन्यत्र एक मंत्र में प्रार्थी कहता है 'अग्नि ने एकाक्षर से जीवन पाया है मैं उसको प्राप्त करूँ······विष्णु ने तीन अक्षरों से तीन लोकों को पाया है, मैं उनको प्राप्त करूँ।'[1]

यज्ञ में वेदी के पास तीन पग चलता हुआ, हाथ में अग्नि-पात्र लेकर पुरोहित कहता है 'तू प्रतिद्वन्द्वीनाशक विष्णु का चरण है, गायत्री छन्द पर आरूढ़ होकर

---

१. यजुर्वेद : ६ ३१-३४।

पृथ्वी पर चल, तू शत्रुनाशक विष्णु का चरण है, त्रिष्टुप् छन्द पर आरूढ़ होकर वायु में चल, तू द्वेषीनाशक विष्णु का चरण है जगती छन्द पर आरूढ़ होकर आकाश में चल, तू विरोधीनाशक विष्णु का चरण है अनुष्टुप् छन्द पर आरूढ़ होकर विश्व के सम्पूर्ण भागों में चल।'[१]

इन यज्ञों में विष्णु का क्या स्थान है इसका आभास उपर्युक्त कुछ अवतरणों में देखा जा सकता है। विष्णु से यज्ञकर्त्ता की पत्नी-रक्षा की आशा की जाती है। यज्ञ का समस्त भोग विष्णु का भाग है। विष्णु लोक में गमनार्थ यज्ञ विधान किए जाते हैं तथा पुरोहित विष्णु के शत्रुओं के नाश की कामना से यज्ञवेदी की परिक्रमा करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में धर्म के प्रति आर्यों की श्रद्धा कम हो गई थी तथा वह अपने लाभ की कामना से अभिभूत होकर यज्ञ करने लगे थे। धार्मिक अनुष्ठान यज्ञ विधानों में सीमित हो गए थे और विष्णु इन यज्ञों की रक्षा करते तथा प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को वरदान देते थे।

अथर्ववेद में विष्णु—यजुर्वेद की विष्णु भावना तथा अथर्ववेद की विष्णु भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ऋग्वेद के विष्णु की सम्पूर्ण विशेषताएँ यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के विष्णु में विकसित होती रहीं। विष्णु के उन गुणों में किसी प्रकार का अभाव न होकर उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही। अथर्ववेद के यज्ञ के स्वामी विष्णु यजुर्वेद में एक सोपान और चढ़कर यज्ञाग्नि भी प्रज्वलित करने लगते है। उनकी इच्छा मात्र से ही यज्ञाग्नि प्रदीप्त हो उठती है।[२] अथर्ववेद में आर्यों ने विष्णु को 'मुख्यदेव:' कहा है।

इस समय से अन्य देवताओं की कीर्ति-ज्योति मंद पड़ने लगी तथा विष्णु-प्रभा अपने अलौकिक रूप में आर्यों के धर्माकाश में प्रतिभासित हो उठी।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में विष्णु का रूप

ब्राह्मणों में यज्ञ का महत्त्व वेदों की अपेक्षा और भी अधिक बढ़ा, फलस्वरूप विष्णु स्वयं यज्ञ के पर्याय 'विष्णुर्वै: यज्ञ:' हो गए। विष्णु का यह रूप वेद तथा पुराण काल के मध्य का है। ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी गई है कि अग्नि निम्नतम तथा विष्णु उच्चतम देवता हैं। शेष देवताओं का स्थान इन दोनों देवताओं के बीच में है—अग्निर्वैदेवानाम् अवमो। विष्णु परमम्। तदन्तरेण सर्वा: अन्या: देवता:।[३]

---

१. यजुर्वेद : १२५।
२. अ० वे० : ५.२६.७।
३. ऐ० ब्रा० : १.१।

ब्राह्मण और आरण्यकों में विष्णु का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अनेक कथाओं की सृष्टि हुई। इन कथाओं में संभवतः कवियों का उद्देश्य यह रहा होगा कि देवता अपनी दीनता स्वयं अपने मुख से स्वीकार करके विष्णु को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करें। देवताओं की यज्ञ भूमि में विष्णु के सर्वप्रथम पहुँचने की एक कथा शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक में मिलती है, जिसमें सबसे अधिक तीव्रगामी होने के कारण विष्णु सर्वश्रेष्ठ देवता माने गए।

तैत्तिरीय आरण्यक में नारायण और विष्णु का समन्वय कर दिया गया। अपने नाम के अनुसार (विश्=व्याप्त होना) विष्णु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त माने गए। सृष्टि के पूर्व समस्त संसार जलमग्न था इसलिए विष्णु का सम्बन्ध जल से स्थापित हुआ। जल का एक पर्याय नारा: है। मनु के अनुसार नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नारा: पड़ा और ब्रह्म की क्रीड़ा जल में होने के कारण उसका नाम नारायण हुआ इसलिए विष्णु का सम्बन्ध जल से स्थापित हुआ तथा उनका नाम नारायण विख्यात हुआ।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के ऋषि का नाम नारायण है। कुछ काल के पश्चात् यही नारायण संभवतः 'पुरुष' का पर्याय बन गया। आर्य उसे पुरुष सूक्त के कवि के स्थान पर स्वयं ब्रह्म ही समझ बैठे। विष्णु और ब्रह्म आरम्भ से ही एक थे। 'पुरुष' भी उसी विष्णु का एक नाम था अतः इस समय से विष्णु का एक नाम नारायण भी हो गया।

शतपथ ब्राह्मण में एक उल्लेख मिलता है[1] जिसके अनुसार विष्णु समस्त देवताओं की अपेक्षा अधिक परिश्रमी, कठोर तथा विश्वसनीय थे। वह सब देवताओं की अपेक्षा योग्यतम समझे जाते थे। वैष्णेय तथा तैत्तिरीय संहिताओं में विष्णु को सर्वोच्च कहा गया है।[2] विष्णु सब देवताओं की अपेक्षा अधिक कार्य तत्पर एवं अत्याचार का शमन करने में सबसे अग्रिम तथा कठोर थे। प्रजा उनमें सबसे अधिक विश्वास रखती थी।

शतपथ ब्राह्मण में विष्णु से सम्बन्धित चीटियों की एक कथा मिलती है[3] जिसमें चींटियों द्वारा विष्णु का धनुष काट दिए जाने पर उनका सिर कट जाता है और उसका सूर्य बन जाता है। विष्णु द्वारा उषा, वायु आदि के साथ सूर्य को जन्म देने का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। सम्भवतः उसी के आधार पर इस कथा का विकास हुआ होगा। सम्भव है आर्यों की इस कल्पना का मूलाधार यह भावना रही हो कि विष्णु के विचार करते ही सूर्य की उत्पत्ति उतने ही समय में हो गई जितने समय में वाण से शिरच्छेद हो जाता है।

---

१. श० ब्रा० : १४.१।
२. श० ब्रा० : १.३०; २.१.८।
३. श० ब्रा० : १४. १।

एक स्थान पर शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनुष्य ही विष्णु है।[1] इससे विष्णु की सर्वव्यापकता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है क्योंकि उस समय प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विष्णु के प्रति असीम आस्था थी।

शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में यज्ञकर्ता के तीन पग चलने का उल्लेख है जिसमें वह पृथ्वी, वायु एवं आकाश में विष्णु चरणों को उठाने की आकांक्षा करता है। विष्णु का आधिपत्य तीनों लोकों में पुष्ट करने के हेतु ही इस कथा का सृजन हुआ होगा। इसीलिए यज्ञकर्ता यज्ञ द्वारा तीनों लोकों में अपना मान बढ़ाने की आशा से विष्णु के तीन चरण उठाता है।

विष्णु में अवतार भावना का बीजारोपण

ब्राह्मण तथा संहिता काल में विष्णु में अवतार भावना का बीजारोपण हुआ। देवताओं एवं भूलोकवासियों की सहायतार्थ विष्णु के अवतारों की कल्पना का श्रीगणेश यहीं से मिलता है। विष्णु सम्बन्धी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि विष्णु की कल्पना आरम्भ में एक वामन के रूप में की गई थी। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था परन्तु ऊँचाई कम थी। डा० दासगुप्ता ने कहा भी है कि विष्णु सबसे छोटे किन्तु सबसे योग्य आदित्य थे। उनकी इस शारीरिक विशेषता को लेकर ही सम्भवतः बाद में उनके वामनावतार का आरम्भ हुआ होगा।

शतपथ ब्राह्मण में देवासुर संग्राम का एक उल्लेख है जिसमें असुरों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। देवों ने असुरों के पास जाकर यज्ञार्थ थोड़ी सी पृथ्वी की याचना की। अंत में असुर इस शर्त पर पृथ्वी देने को सहमत हुए कि वामनाकार विष्णु पृथ्वी पर लेट जाएँ और उतनी ही पृथ्वी देवता ले लें। देवताओं ने विष्णु की शरण में जाकर असुरों के इस अत्याचार से त्राण दिलाने की प्रार्थना की। शरणागत रक्षक विष्णु जाकर पृथ्वी पर लेट गए परन्तु धीरे-धीरे उनका आकार इतना बढ़ा कि उन्होंने समस्त पृथ्वी को ढक लिया। असुरों को विवश होकर सम्पूर्ण पृथ्वी देवताओं को देनी पड़ी। विष्णु में अपना आकार बढ़ा लेने की इस अलौकिक शक्ति की उद्भावना से ही उनके वामनावतार का आरम्भ होता है। परवर्ती साहित्य में उनके वामनावतार धारण कर पृथ्वी को प्राप्त करने के जो उल्लेख हैं, उनका मूलाधार यहीं से मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में विष्णु वामन रूप धारण कर तीनों लोकों को प्राप्त करते हैं।[2]

वृत्र-वध की कथा भी कुछ परिवर्तनों के साथ ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती है। तैत्तिरीय संहिता में कथा का रूप इस प्रकार है—

वृत्र ने असुरों की समस्त सम्पत्ति को सात पर्वतों के पीछे छिपा दिया था।

---

१. श० ब्रा० : ५. २. ५. २. ३।

२. तैत्तिरीय संहिता : २. १. ३. १।

इन्द्र ने कुश के एक गुच्छ से उसका वध कर दिया। विष्णु जो स्वयं यज्ञस्वरूप प्रजापति थे, उन्होंने वृत्र को देवताओं को यज्ञ के लिए दे दिया। तदनन्तर देवों ने असुरों की सम्पूर्ण सम्पत्ति को भी हस्तगत कर लिया। शतपथ ब्राह्मण में इसी कथा का एक दूसरा रूप है। वहाँ पर वृत्र लौकिक रूप में सामने आया है और[1] एम्यूज़ा (Emusa) नाम से पृथ्वी का जल से उद्धार करता है तथा वह प्रजापति का अवतार कहा गया है। सम्भव है वृत्र की शक्ति से प्रभावित होकर उसके अधीनस्थ असुरों ने उसे प्रजापति की उपाधि दे दी हो और कालान्तर में उस वृत्र को ही प्रजापति या विष्णु का रूप मान लिया गया हो।[2] इस प्रकार विष्णु के एक दूसरे अवतार की मान्यता का आधार मिल जाता है।

विष्णु के दो और अवतारों का बीज भी इसी समय मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में[3] एक मत्स्य जलप्लावन के समय मनु की रक्षा करता है। मनु मानव के आदि जनक हैं और विष्णु मानव के पालक। इसी कारण विष्णु का एक अवतार मत्स्य भी बन गया। शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक में एक कच्छप का भी उल्लेख है[4] जो कालान्तर में विष्णु के कच्छपावतार का आधार रहा होगा।

इस प्रकार विष्णु के सर्वप्रधान गुण, विपत्ति काल में अवतार धारण कर प्रार्थी की सहायता करने की भावना का जन्म इस समय हो गया था।

उपनिषदों में विष्णु का रूप

अब तक प्रचलित परम्पराओं, रीतियों एवं भावनाओं में उपनिषद् काल में आकर महान् परिवर्तन हुआ। आर्यों के धर्म तथा विश्वासों पर भी इसका गम्भीर प्रभाव पड़ा। ब्राह्मण युग के यज्ञों से जनता का विश्वास अब उठ चुका था। उसका विचार था कि जब जीवन स्वयं एक यज्ञ है तब इन बाह्य यज्ञों से क्या लाभ ? जनता की प्रवृत्ति आत्म-सुधार की ओर उन्मुख हो रही थी। उसके अनुसार आत्म-सुधार के लिए सर्वप्रथम अन्तःकरण की पवित्रता और आत्मा का परिष्कार आवश्यक था। उपनिषदों में वेदों के लिए कोई सम्मान की भावना नहीं है। उसमें केवल ब्रह्म ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ माना गया। याज्ञवल्क्य ऋषि सर्वश्रेष्ठ देवता का नाम पूछे जाने पर उत्तर देते हैं कि संसार में जो कुछ है ब्रह्म ही है, अन्य देवता सब उसी के अंश से उत्पन्न हैं।

कठोपनिषद् में लिखा है कि इस संसार में मानव की प्रबलतम इच्छा विष्णु लोक जाने की रहती है। उसमें मानव की आत्मिक उन्नति की समता एक यात्रा से की गई है जिसका गन्तव्य स्थान विष्णु लोक है।

---

१. शतपथ ब्राह्मण : १४. १. २. ११।
२. वैदिक माइथालोजी : मैकडॉनल, पृ० १३।
३. श० ब्रा० : १. ८. ६. १।
४. शतपथ ब्राह्मण : ७. ५. १. ५, तै० आ० : ७. २. ३. ३।

मैत्रेय उपनिषद् में भोजन को भागवत विष्णु का रूप कहा है।[1] विष्णु संसार को भोजन देकर उसका पालन करते हैं। इस समय विष्णु का मान गृह-देवता के रूप में भी स्थापित हुआ। विवाह में सप्तपदी के अवसर पर वर वधू से कहता है 'विष्णु तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारा मार्ग प्रदर्शन करें।' पारस्कर, आपस्तम्ब आदि के गृह्य सूत्रों में इसका उल्लेख है। धर्म सूत्रों तथा गृह्य सूत्रों में विष्णु पूजा का विधान है। वैखानस गृह्य सूत्र के चतुर्थ अध्याय के दसवें, ग्यारहवें और बारहवें खण्ड में विष्णु की स्थापना, प्रतिष्ठा, तथा अर्चना का विशेष वर्णन है।[2] उस समय प्रातः और संध्या में विष्णु पूजा एक आवश्यक दैनिक क्रिया बना दी गई थी।

विष्णु का शौर्य रूप—विष्णु पर लोकपालन का उत्तरदायित्व था इसलिए जब-जब लोक में अनाचारों की वृद्धि हुई विष्णु ने स्वयं अवतार धारण कर संसार में शान्ति स्थापित की और अत्याचारों का दमन कर आततायियों को दण्ड दिया। वेद-कालीन साहित्य में उनके शान्त स्वरूप के साथ-साथ उनका वीर रूप भी सामने आता है। एक ओर शान्त भाव से वह प्रार्थी को शिशु जन्म का वरदान देते थे तो दूसरी ओर युद्ध क्षेत्र में शस्त्र-कौशल तथा नीति-कौशल भी दिखाते थे। उनके प्रत्येक कार्य में शूरवीरता प्रतिभासित होती है। वृत्र के वध में इन्द्र की सहायता करने के अवसर पर उनका वीर रूप ही अधिक स्पष्ट है। अन्यायी से वह स्वयं युद्ध कर शरणार्थी मित्र को सहायता देते थे। युद्ध-क्षेत्र में उनके शान्त रूप की अपेक्षा वीर रूप ही प्रकट होता था। ऋग्वेद में प्रार्थी कहता है, 'हमसे अपना वह रूप गुप्त न रखो। युद्ध-क्षेत्र में तुमने अपना दूसरा ही रूप दिखाया था।'[3] विष्णु का तीन पगों में विश्व को नाप लेना, असुरों से देवताओं के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी को हस्तगत कर लेना, वृत्र वध में पृथ्वी का उद्धार करने आदि कार्यों में विष्णु का वीर रूप प्रत्यक्ष है। महान् शूरवीरों के समान ही वह वीरों का आदर भी करते हैं इसलिए इन्द्र उनके प्रेमपात्र थे। विष्णु अपनी शूरवीरता के कारण देव तथा मानव दोनों में अत्यंत लोकप्रिय थे। उनके प्रत्येक अवतार में भी उनका यही रूप प्रधान है।

इस प्रकार विष्णु भावना में निरन्तर विकास होता रहा। अन्त में यह भावना विकास की उस चरम सीमा पर पहुँच गई जहाँ जाकर विष्णु के नाम से एक स्वतंत्र धर्म का आविर्भाव हो गया। अन्य देवताओं तथा प्राणियों के समस्त श्रेष्ठ कर्मों का तिरोभाव भी विष्णु कृत्यों में ही हो गया। विष्णु के वृत्र वध और मत्स्य अवतार इसके प्रमाण हैं। विष्णु के संकेत पर सारे विश्व का संचालन होने लगा और विष्णु भावना विश्व की परम सत्ता की प्रतीक मानी जाने लगी।

---

१. मैत्रेय उपनिषद् : ६.१३।

२. भारतीय दर्शन : बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५३८।

३. ऋग्वेद : ७.१००.६।

महाकाव्यों में विष्णु

वैदिक साहित्य के उपरान्त दीर्घ काल तक हमें किसी संस्कृत काव्य ग्रन्थ का पता नहीं चलता। इसके बाद सर्वप्रथम जो साहित्य उपलब्ध है वह संस्कृत साहित्य के दोनों महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों की विकसित कला-शैली को देखकर निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य और इनके बीच विपुल साहित्य की सृष्टि हुई होगी जो आज किन्हीं कारणों से विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया है। दोनों महाकाव्यों में भी प्रथम रामायण की रचना हुई अथवा महाभारत की, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। एम० विंटरनित्स, एच० याकोबी, सी० बी० वैद्य, ए० ए० मैकडॉनल आदि अनेक विद्वानों के मत का विश्लेषण करने के पश्चात् डॉ० कामिल बुल्के इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मौखिक रूप से रामायण की रचना महाभारत के पूर्व हुई थी परन्तु उसका वर्तमान प्रचलित रूप उसे महाभारत की रचना के पश्चात् मिला था।[१] रामायण की रचना महाभारत के पूर्व मानकर वैदिक साहित्य के पश्चात् विष्णु के स्वरूप का निश्चय करने के लिए पहले हम इस आदि काव्य रामायण पर ही विचार करेंगे।

रामायण में विष्णु—रामायण में विष्णु को यद्यपि वह महत्त्व प्राप्त नहीं है जो उन्हें महाभारत तथा पुराणों में है परन्तु वैदिक साहित्य की अपेक्षा उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया है। रामायण में उन्हें सुरोत्तम,[२] पुरुष,[३] पुरुषोत्तम,[४] त्रैलोक्य गुरु,[५] हरि,[६] नारायण,[७] जनार्दन,[८] और जगन्नाथ[९] आदि विशेषणों से संबोधित किया गया है।

वैदिक कथाओं में विष्णु को कभी इन्द्र का अनुज और कभी सूर्य की शक्ति का प्रतीक माना गया था परन्तु कालान्तर में असुरों का दमन करने के कारण इनकी शक्ति क्रमशः बढने लगी और शनैः-शनैः इन्होंने इन्द्र तथा ब्रह्मा दोनों ही की महिमा छीन ली। विष्णु के उदात्त गुणों के कारण प्रजा में उनके प्रति श्रद्धा बढ़ी और समस्त अवतारों का नायकत्व करने के लिए सर्वसम्मति से वही सबसे योग्य देवता चुने गए। राम को विष्णु तुल्य सिद्ध करने के लिए राम की नर लीलाओं में देवत्व का आरोपण कर रामायण की सृष्टि हुई।

रामायण के नायक राम मूल रूप से राजा राम ही हैं परन्तु रामायण में १८ बार उनकी तुलना विष्णु से की गई है।[१०] रामायण में विष्णु के प्रति दो प्रकार की

१. कामिल बुल्के : राम कथा, पृष्ठ ४१-४२।
२. वा० रा० ७.२३ अ० ७६।
३. वा० रा० ७.२३ अ० ८४।
४. ,, ,, ७.२३ अ० ७६।
५. ,, ,, ७.२३ अ० ८३।
६. ,, ,, ७.२३ अ० ७७।
७. ,, ,, ६.६.४२।
८. ,, ,, ११.४.३३।
९. ,, ,, ७.१०८.२७।
१०. ,, ,, १.७८.२६, ६.५६.१२५, २.११८.२०, ३.२३.२६, ३.२४.२२, ५.३४.२६, ५.३७.२४।

भावनाएँ मिलती हैं, प्रथम उनके धीरोदात्त रूप के कारण कवि ने राम की तुलना उनके साथ की है और दूसरे स्थलों पर राम को उनका अवतार मान लिया गया है। दूसरे प्रकार के स्थलों को अधिकांश विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है। उनके अनुसार रामायण के वह अंश जहाँ विष्णु रामावतार रूप से वर्णित हैं, प्रक्षिप्त हैं।[१] यह विषय अभी तक विवादास्पद है अतः इस पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने की अपेक्षा है। रामायण में विष्णु से सम्बन्धित उल्लेखों तथा राम की विष्णु के साथ तुलनाओं की समीक्षा कर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि विष्णु का स्थान वैदिक साहित्य की अपेक्षा उच्चतर हो गया था और उनमें रामावतार की भावना का आरोपण करने की नींव यहाँ पड़ चुकी थी।

रामायण के एक उद्धरण के अनुसार विष्णु रावण का वध करने के लिए रामावतार लेते हैं :—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातनः॥[२]

विष्णु से सम्बन्धित अनेक कथाएँ पूरी रामायण में यत्रतत्र बिखरी पड़ी हैं।

दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं, उसी समय देवता विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि वह अवतार लेकर रावण का वध करें। विष्णु उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर रामावतार लेने का वचन देते हैं।

जब असुर इन्द्रादि देवताओं को बहुत कष्ट पहुँचाने लगे तो देवता महादेव की शरण में गए। महादेव ने असुरों के दलन के लिये उन्हें विष्णु के पास जाने का परामर्श दिया। विष्णु ने त्रस्त देवगण की प्रार्थना से द्रवित होकर असुरों को मारने का वचन दिया।[3]

उसी समय ब्रह्मा ने रावण नामक दुर्दान्त दस्युराज के अत्याचारों से दुखी हो कर देवताओं से रक्षा करने की प्रार्थना की। देवताओं ने रावण का संहार करने का आश्वासन दिया।[४]

रामायण के उपर्युक्त प्रसंगों के अनुसार विष्णु की शक्ति ब्रह्मा एवं महेश से भी अधिक है परन्तु आदि कवि की यह भावना सर्वत्र एक-सी नहीं है इसीलिये इन अंशों के प्रक्षिप्त होने का संदेह होता है।

रावण के विरुद्ध देवताओं की प्रार्थना सुन ब्रह्मा ने कहा कि मैंने रावण को वरदान दिया है कि गंधर्व, यक्ष, देवता, दानव, राक्षस कोई उसका अहित नहीं कर सकते। रावण मनुष्य को उपेक्षित दृष्टि से देखता है इसीलिये उसी के द्वारा उसका

---

१. विशेष विवरण के लिये देखिए राम कथा : कामिल बुल्के, पृष्ठ १२४—१३३
२. ७ अ० कां० १ सर्ग
३. वा० रा० ३ स० १—६
४. वा० रा० ३.१—६

विनाश होना संभव है। उसी समय दैवात् विष्णु वहाँ आ गये। देवताओं ने विष्णु से सहायता करने का अनुरोध किया। ब्रह्मा ने कहा, सम्पूर्ण लोकों में केवल विष्णु ही इन दुर्दमनीय राक्षसों का संहार कर सकते हैं। 'देवेश:, सर्वलोक-नमस्कृत: विष्णु:' उन्हें रावण के नाश तथा स्वयं ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर राज्य करने का अश्वासन देते हैं।

परशुराम राम से अपने द्वन्द्व युद्ध के अवसर पर एक अर्वाचीन कथा सुनाते हुए कहते हैं कि एक बार देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि विष्णु और महेश दोनों में कौन अधिक शक्तिशाली है, इसका निश्चय करें। ब्रह्मा ने अपनी माया से विष्णु तथा शिव दोनों में शत्रुता के बीज बो दिये। विष्णु और शिव दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अंत में विष्णु के अनुपम शौर्य के समक्ष शिव हतप्रभ हो गए। देवताओं ने दोनों वीरों को शान्त किया और तत्पर्यन्त विष्णु अधिक शक्तिशाली देवता घोषित कर दिए गए। शिव ने अपना धनुष भृगु वंशी देवार्त को तथा विष्णु ने विदेहवंशी ऋचिक् (Richika) को दे दिया। इस प्रकार विष्णु तथा शिव के यह धनुष जनक और परशुराम के पास आ गए। परशुराम राम से विष्णु के उसी धनुष को तोड़ कर अपनी सामर्थ्य का परिचय देने को कहते हैं।

वाल्मीकि का इस कथा की सृष्टि करने का मुख्य उद्देश्य संभवतया शंकर की अपेक्षा विष्णु को ऊँचा सिद्ध करना है परन्तु ब्रह्मा का स्थान यहाँ विष्णु और शिव दोनों ही से ऊँचा है।

वैदिक साहित्य में उल्लिखित विष्णु के वामनावतार की कथा को रामायण में आकर एक निश्चित स्वरूप मिल गया है। असुरों का राजा बलि अत्यन्त प्रतापी एवं धर्मात्मा राजा था। देवगण उसकी विपुल असुर वाहिनी का सामना करने में अपने को असमर्थ मानकर इन्द्रपुरी छोड़ कर भाग गए। विजय के उपलक्ष में बलि ने अश्वमेध यज्ञ किया। विष्णु ने छल करके तीन पग पृथ्वी के बहाने उसका सारा राज्य छीनकर इन्द्र को दे दिया।

विष्णु के इस छली रूप का प्रभाव उनके अवतार राम पर भी पड़ा है। वह भी सुग्रीव की सहायता के लिए छलपूर्वक बालि का वध करते हैं।

रामायण में विष्णु के तीन विभिन्न रूप मिलते हैं। कभी वह राम रूप में आते हैं, कभी परशुराम रूप में और कभी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को लेकर।

अग्नि परीक्षा के अवसर पर सीता जब अग्नि में प्रविष्ट होती है उस समय देवता आकाश में आकर राम के इस कार्य की आलोचना करते हैं। राम उनसे पूछते हैं 'मैं कौन हूँ, कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ ?' देवता उनको अनेक विशेषणों से सम्बोधन करने के बाद कहते हैं 'सीता लक्ष्मी है और तुम विष्णु। रावण के वध के लिए तुमने यह मनुष्य शरीर धारण किया है।' इस प्रकार राम के विष्णु का अवतार होने से सम्बन्धित असंख्य उदाहरणों से रामायण भरी पड़ी है।

सीता-स्वयंवर के पश्चात् विष्णु का धनुष लेकर राम के द्वन्द युद्ध करने के अवसर पर परशुराम विष्णु तेज से प्रतिभासित होते हैं।

राम के विवाह के अवसर पर विष्णु अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को लेकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उत्सव में सम्मिलित होते हैं।

विष्णु जहाँ राम के रूप में आते हैं वहाँ भी उनके तीन स्वरूप हो जाते हैं, कभी तो वह साक्षात् राम बन जाते हैं, कभी कवि विष्णु से उनकी केवल समानता दिखाकर रह जाता है और कभी राम न विष्णु रह जाते हैं और न विष्णु के समान बल्कि राम और विष्णु दोनों की सत्ता पृथक-पृथक् हो जाती है।

राम विश्वामित्र के समक्ष ताड़का के स्त्री होने के कारण वध करने से संकुचित होते हैं। विश्वामित्र उनको विष्णु द्वारा भृगुपत्नी के वध का उदाहरण देकर उन्हें इस संकोच से मुक्त करते हैं।[१]

हनुमान-रावण-संवाद में हनुमान राम की प्रशंसा में उन्हें विष्णु न कह कर 'विष्णु तुल्य पराक्रमी, सर्वलोकेश्वर, लोकत्रयनाथ' आदि कहते हैं।

हनुमान राम की तुलना विष्णु से करते हैं,[२] और राम से कहते हैं कि जिस तरह विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ होते हैं उसी तरह आप मेरी पीठ पर चढ़िए—

मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि।
विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणम् ॥[३]

सीता की अग्नि परीक्षा के अवसर पर ब्रह्मा राम को विष्णु का स्मरण कराते हैं। राम उनसे पूछते हैं—'मैं तो अपने आपको मनुष्य, दशरथ का पुत्र समझता हूँ। वास्तव में मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ इसे आप मुझसे कहिए।'

बालि राम से कहता है 'क्या तुम रघु की संतान हो जिसका नाम मैंने सुन रखा है······क्या तुम्हारे लिए छिपकर वाण चलाना अनुचित नहीं है।' राम उसे उत्तर देते हैं 'हम और दूसरे राजे भरत की आज्ञा से इन देशों में फिरते हैं ताकि न्याय और धर्म संसार में फैले······जंगली जानवरों का शिकार भी तो छिप कर करते हैं।' अपने विष्णुत्व का आभास राम यहाँ नहीं देते।

राम ने जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुना तब उनको अत्यंत दुःख हुआ। मूर्च्छित होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़े, उस हरे-भरे वृक्ष की तरह जिसे कुल्हाड़ी से काट दिया गया हो। सीता, भरत और लक्ष्मण उनको चेतना में लाए, चेतन होते ही राम उच्च स्वर से दीर्घकाल तक विलाप करने लगे।

अपनी इस दुर्बलता और संयमहीनता को लेकर राम विष्णु का अवतार नहीं हो सकते।

१. वा० रा० २५.२१
२. ,, ,, ५.३४.२६
३. ,, ,, ६.५६, १२२

विराध सीता को पकड़ता है। राम सीता की रक्षा करने के स्थान पर अन्य अवसरों की ही तरह व्याकुल होकर विलाप और अश्रुमोचन करने लगते हैं। लक्ष्मण उस समय उनको परिस्थितियों के प्रति सचेत करते हैं। राम का यह रूप विष्णु की उदात्तता के साथ मेल नहीं खाता।

राम बालि से कहते हैं कि वानरों का जीवन दूसरे जानवरों के ही समान मनुष्य जाति के लिए किसी उपयोग का नहीं। बालि के असभ्य जाति का होने पर भी राम का उसको पशुओं के तुल्य कहना उपयुक्त नहीं है, वैसे भी बालि तो एक विशाल सम्पन्न नगरी का योग्य राजा था।

पुस्तकान्त में ब्रह्मा राम से कहते हैं 'विष्णु ! राघव ! अपने देव समान भाइयों के साथ विष्णु पद को स्वीकार करो।' कवि ने यहाँ स्पष्ट कहा है कि राम के अन्य भाई देवताओं के समान हैं विष्णु के अंश नहीं। विष्णु के समान गुणों वाले राम (विष्णु नहीं) अपने महान् कार्यों के कारण देवतुल्य भ्राताओं सहित विष्णु-लोक जाते हैं।

रामायण युग में विष्णु की महिमा बढ़ी अवश्य परन्तु इतनी नहीं कि कवि निस्संशय होकर उसकी असीम सत्ता को स्वीकार कर सके। विष्णु के प्रति श्रद्धा होते हुए भी वह उन्हें सर्वश्रेष्ठ देवता मानने में संकोच करता है। इसीलिए वह कभी ब्रह्मा को और कभी शिव को विष्णु से बड़ा मान लेता है। तीनों देवताओं में एक को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर अभी सम्प्रदायवाद का बीज वपन करना इस आदि कवि को इष्ट न था इसीलिए अनेक स्थानों पर उसने शिव तथा ब्रह्मा का भी यशोगान किया है। राम नारायण विष्णु के साथ-साथ शिव के उपासक भी हैं। सीता को लंका से लेकर लौटते हुए राम उनको सेतुबंध पर शिव की स्वनिर्मित वह प्रतिमा दिखाते हैं जिसकी लंका जाने के पूर्व उन्होंने पूजा की थी। राम जब वनवास को जाते हैं तब कौशल्या भी उनकी शुभ कामना करती हुई शिव की पूजा करती हैं।

ब्रह्मा को एक स्थान पर आदि कवि ने 'त्रैलोक्य गति'[1] विष्णु को 'अतुल तेजस्'[2] 'त्रैलोक्य गुरु'[3], और शिव को 'देवाधिदेव'[4] कहा है।

वैदिक कवियों के समान वाल्मीकि भी एक देवता की प्रशंसा करते समय भूल जाते हैं कि अभी दूसरे देवता की प्रशंसा में वह ऐसे ही विशेषणों का प्रयोग कर चुके हैं।

वाल्मीकि अपनी रामायण में यद्यपि शिव और ब्रह्मा की स्तुति करते समय आत्मविभोर हो गए हैं परन्तु उनकी श्रद्धा और काव्य का मुख्य विषय विष्णु ही हैं।

१. वा० रा० : ७.२३.१०
२. ,, ,, : २.२५.३५
३. ,, ,, : ७.२३.८३
४. ,, ,, : ७.२३.८५

विष्णु की प्रशंसा में उन्होंने जितना कहा है अन्य किसी देवता के लिए नहीं कहा। विष्णु के प्रति वाल्मीकि की श्रद्धा यहाँ तक बढ़ी हुई है कि कभी-कभी उन्होंने त्रिदेव की शक्तियों का समाहार अकेले विष्णु में ही कर दिया है।

विष्णु को वाल्मीकि ने संसार का स्रष्टा, पालक और हन्ता तीनों ही कहा है।[1] उन्होंने विष्णु को 'सर्वरूप'[2] भी कहा है। विष्णु ही सब देवताओं के रूप में अवतरित होते हैं और सारे देवता विष्णु के ही अंश हैं। विष्णु सारे प्राणियों में तथा सर्वलोकों में व्याप्त हैं।

विष्णु के व्यक्तित्व की सर्वप्रमुख विशिष्टता यह है कि वह प्रेम और शान्ति के प्रतीक हैं। अन्य देवताओं के समान वह दानवों तथा दुष्टों को कभी रक्षा का वरदान नहीं देते बल्कि उनके नाश के लिए आवश्यकता पड़ने पर छल का सहारा लेकर मृत्यु का अभिशाप अवश्य दे देते हैं। उनके दोनों अवतारों राम तथा कृष्ण में यह गुण पूर्ण रूप से लक्षित होता है। सागर मंथन के अवसर पर विष्णु मोहिनी रूप धारण कर दानवों का नाश करते हैं और बलि का समस्त राज्य छलपूर्वक हरण कर लेते हैं। अपने प्रेमी भक्तों के पास वह पुत्र होकर भी आ जाते हैं परन्तु लोक के लिए दुःखदायी राक्षसों की ओर उनकी दृष्टि सदैव वक्र ही बनी रहती है।

रामायण युग में अनेक नवीन देवताओं का उदय तथा प्राचीन देवताओं का ह्रास हुआ। विष्णु और महेश विशेष रूप से लोक मानस के उपास्य हुए। इसी समय जनता का विश्वास पुनर्जन्म में भी हुआ। विष्णु आदि देवताओं को अनेक जन्म लेकर बारम्बार पृथ्वी पर आना पड़ा, फलतः रामायण के राम में अनायास ही मानव बुद्धि ने विष्णु की कल्पना कर ली।

जे० एन० फरकुहर के मतानुसार इस काल में त्रिदेव ब्रह्मा विष्णु और महेश की महिमा बढ़ी। इन्द्रादि अनेक देवताओं के कार्यों का समाहार विष्णु में हो गया। विष्णु के उपासकों का एक पृथक् दल बन गया परन्तु विष्णु अभी सर्वोच्च पद पर अभिषिक्त नहीं हुए थे।

कालान्तर में इन्हीं विष्णु की शक्ति इतनी बढ़ी कि उन्होंने सभी देवताओं की शक्तियों को छीन लिया। देवगढ़ में विष्णु की मध्यकालीन एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें वैदिक युग के सभी प्रसिद्ध देवता विष्णु के अनुवर्ती दिखाए गए हैं। ब्रह्मा कमलासन पर विराजमान हैं, इन्द्र ऐरावत पर, कार्तिकेय मोर पर एवं शिव पार्वती के साथ नादिया पर। लक्ष्मी देवी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी हैं, भूमिदेवी धीरे धीरे पैर दबा रही हैं और कुछ सोते कुछ जागते विष्णु शेषनाग की शैया पर आसीन हैं।

विष्णु का जो महत्त्व रामायण काल में है महाभारत तथा पुराणों में वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया है।

---

१. वा० रा० : ७.२३.८०-८१
२. ,, ,, : ७.२३.८३

महाभारत में विष्णु—'महाभारत' की रचना किसी भी समय हुई हो परन्तु अधिकांश विद्वानों ने अब इतना अवश्य मान लिया है कि उसे साहित्यिक मान्यता रामायण के बाद ही प्राप्त हुई। महाभारत की कथावस्तु तथा उसकी विकसित काव्य शैली को देखकर यही अधिक उचित भी प्रतीत होता है। रामायण के सम्बन्ध में अभी तक निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसके नायक राम यथार्थ में विष्णु के अवतार हैं अथवा ऐसे अंश प्रक्षिप्त हैं परन्तु महाभारत काल में आकर यह शंका पूर्णतया समाप्त हो जाती है। उसमें राम तो विष्णु के अवतार हैं ही, कृष्ण भी उनके एक अवतार हो जाते हैं। महाभारत में रामोपाख्यान के विष्णु निश्चित रूप से राम ही हैं और उनके दूसरे अवतार कृष्ण की लीलाओं की कथाओं का तो संग्रह ही महाभारत है।

महाभारत में शिव राक्षसों के उपास्य देवता और विष्णु धर्म-रक्षक तथा शान्ति समर्थक हैं परन्तु फिर भी दोनों में कोई विरोध नहीं है। महाभारतकार ने दोनों की प्रशंसा समान सहृदयता से की है। महाभारत में जहाँ-जहाँ विष्णु की प्रशंसा है वहीं पर महाभारतकार ने सौति के माध्यम से जान बूझकर शिव की प्रशंसा कराई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि विष्णु एवं शिव को समान श्रद्धा की दृष्टि से देखता है तथा अभी तक सम्प्रदायवाद का आरम्भ नहीं हुआ था, इसी से उसने विष्णु के साथ अनेक स्थलों पर शिव की स्तुति भी की है। इसीलिए महाभारत में जहाँ विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख है वहाँ शिव के सहस्र नामों का भी उल्लेख हुआ है। महाभारत में विष्णु को एक निश्चित आकार प्राप्त है। वह श्यामवर्ण और चतुर्भुज हैं यद्यपि यह आश्चर्यजनक बात है कि सूर्य की शक्ति समझे जाने वाले गौरवर्ण विष्णु का वर्ण परिवर्तित होकर अचानक श्याम कैसे हो गया।

आर्यों में मूर्ति पूजा का विधान बौद्ध तथा जैन धर्मों के प्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त हुआ था इसलिए विष्णु की उपासनार्थ मंदिरों का निर्माण बहुत कम, प्रायः नगण्य ही रहा। महाभारत में विष्णु का उनके सहस्र नामों से ही स्मरण किया जाता है, उनकी आरती नहीं उतारी जाती। भारत में जिस समय मूर्ति-पूजा का आविर्भाव हुआ उस समय जनता विष्णु को भूल उनके अवतार राम तथा कृष्ण की पूजा करने लगी थी। इसलिए विष्णु की पूजा घँटे-घड़ियालों से कभी नहीं हुई, उनका स्थान केवल जनता के अंतःकरण में ही बना रहा।

महाभारत में विष्णु पूजा का प्रतिपादन हुआ है परन्तु अभी तक ब्रह्मा का स्थान सर्वोपरि है। पालि साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि बुद्ध के समय में भी ब्रह्मा का ही स्थान सर्वोच्च था परन्तु विष्णु एवं शिव ब्रह्मा के समकक्ष माने जाने लगे थे और विष्णु के अवतारों में कृष्ण की गणना होने लगी थी। महाभारत के समय तक सारे अवतार विष्णु अवतारों के नाम से मान्य नहीं थे, मत्स्य अवतार अभी ब्रह्मा का ही था।

महाभारत में युधिष्ठिर भीष्म से पूछते हैं—"कौन सा धर्म सर्वश्रेष्ठ है ? समस्त देवताओं के मध्य किस देवता की उपासना करना अधिक श्रेयस्कर है ? कौन सा देवता मनुष्य को पापों से बचानेवाला और सबको शरण देनेवाला है ?" भीष्म उन्हें उत्तर देते हैं—"विष्णु की पूजा से, उनके चिंतन से, उनकी प्रशंसा करने से, उनके लिए यज्ञ करने से मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त करता है । विष्णु आदि हैं, अनंत हैं, इच्छा, श्रम, शत्रुता सबसे परे हैं ।" महाभारत के शान्तिपर्व तथा वनपर्व में विष्णु के वामनावतार की कथाओं का भी वर्णन हुआ है ।

रामायण की अपेक्षा महाभारत में आकर विष्णु अधिक यशस्वी हो गए हैं। उनके गुणों में भी वृद्धि हुई है, उपासकों का दल भी बढ़ा है परन्तु उनकी शक्तियों का चरम विकास पुराणों में ही आकर हुआ है । वहाँ उनकी महिमा छीनने न शिव आते हैं और न ब्रह्मा । विष्णु भगवान की रक्षात्मक शक्ति के प्रतीक हैं, वह संहार करते हैं परन्तु आसुरी शक्ति का, इसी से उनके गुणों की दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि होती रही ।

पुराणों में विष्णु—पुराणों का प्रधान उद्देश्य धर्म का प्रचार करना तथा प्राचीन उच्च वंशों की विरुदावलियाँ गाना था । उनमें देवताओं की यश गाथाएँ, प्राचीन ऋषियों और राजवंशों की वंशावलियाँ रहा करती थीं । उनमें वैदिक काल से चली आती हुई अनेक प्राचीन कथाओं और संस्कृत महाकाव्यों की अनेक कथाओं का संकलन है । अधिकांश पुराणों का उद्देश्य विष्णु की महत्ता का प्रतिपादन कर उनकी उपासना का प्रचार करना था परन्तु कुछ पुराणों में अन्य देवी-देवताओं का महत्त्व भी वर्णित है । शिव पुराण में शिव को, विष्णु पुराण में विष्णु को, देवी भागवत में भगवती दुर्गा को और सूर्य पुराण में सूर्य को देवताओं तथा पृथ्वी का जन्मदाता कहा गया है । कभी-कभी एक ही पुराण में अनेक देवताओं की प्रशस्तियाँ हैं परन्तु अधिकांश पुराणों में कवि का विशेष लक्ष्य एक ही देवता की ओर है । अनेक पुराणों में यह विशेष लक्ष्य विष्णु हैं ।

संस्कृत पुराणों का जन्म विभिन्न काल में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा हुआ है इसलिए कभी-कभी एक ही बात की कई स्थलों पर पुनरुक्ति हुई है और कहीं विरोधी बातें कही गई हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इन पुराणों की परम्परा मौखिक रूप से तो बहुत प्राचीन रही होगी किन्तु उनका संकलन बौद्ध तथा जैन धर्मों के विकास के बाद हुआ होगा क्योंकि इनमें से कुछ पुराणों में जैन तथा बौद्ध राजवंशों का वर्णन है । गरुड़ पुराण में तो बुद्ध को विष्णु का इक्कीसवाँ अवतार भी माना गया है । इनका संकलन भी अनेक व्यासों द्वारा हुआ होगा । सम्भव है व्यास किसी जाति विशेष की उपाधि रही हो ।

पुराणों में विष्णु एक स्वर से सर्वोच्च देवता स्वीकार कर लिए गए हैं । उनको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए इनमें अनेक नवीन कथाओं की सृष्टि भी कर ली गई है ।

पुराणों में सुरासुर युद्धों का विस्तृत वर्णन है। भागवत पुराण में वृत्रासुर की कथा संकलित है। वृत्र के अजेय होने पर देवता विष्णु से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। विष्णु पश्चिम दिशा से प्रगट होकर उनकी सहायता करते हैं।[1]

वैदिक कथाओं में वृत्रासुर के वध का श्रेय इन्द्र को प्राप्त है परन्तु पुराणों में विष्णु ने स्वयं उसका वध करके इन्द्र के महत्त्व को छीन लिया है।

भागवत पुराण में विष्णु सम्बन्धी एक और कथा है। ब्रह्मा ने हिरण्यकश्यप नामक असुर से प्रसन्न होकर उसे अमरता का वरदान दिया। इस वरदान को पाकर हिरण्यकश्यप अभिमानी हो गया और उसने देवताओं को त्रास देना आरम्भ कर दिया। पीड़ित देवगण ने जाकर विष्णु से प्रार्थना की कि वह उन्हें हिरण्यकश्यप के उत्पीड़न से छुटकारा दिलाएँ। विष्णु ने नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का वध किया। ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की और विष्णु ने प्रगट होकर उनसे कहा कि असुरों को अब कभी ऐसा वरदान मत देना जिसके कारण हमें अवतार धारण करना पड़े।

उपर्युक्त कथानक से ज्ञात होता है कि भागवत पुराण तक आते-आते ब्रह्मा विष्णु के उपासक हो गए हैं तथा विष्णु को यह अधिकार प्राप्त हो गया है कि वह ब्रह्मा को उनके अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के प्रति सचेत कर सकें। ब्रह्मा का स्थान यहाँ विष्णु के समकक्ष अथवा उनसे ऊँचा न होकर नीचा हो जाता है।

इस पुराण में इन्द्र दैत्यों की शक्ति से व्याकुल होकर विष्णु का आह्वान करते हैं। विष्णु अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से राक्षसों की माया का विनाश कर देते हैं :

तस्मिन्प्रविष्टे सुरकूटकर्मजाः माया विनेशुर्महिना महीत्यसः।[2]

दुर्वासा के शाप के कारण देवासुर संग्राम में देवताओं का पराभव हुआ। समस्त देवता एकत्रित होकर इन्द्र के नेतृत्व में ब्रह्मा की सभा में गए। ब्रह्मा सब देवताओं को लेकर विष्णु के पास गए और उनसे कहा 'मैं, दक्ष, शिव तथा अग्नि आदि देवगण सब आपके ही अंश हैं, कृपा कर हमारे कल्याण का उपाय बताइए।' विष्णु ने समुद्र मंथन करवा कर तथा स्वयं मोहिनी रूप धारण कर देवताओं को सुधा पिला कर अमर कर दिया और असुरों को तीव्र विष देकर सदैव के लिए उनकी शक्ति को कुंठित कर दिया। राहु केतु के छद्म वेश से देवताओं के मध्य आने पर विष्णु ने तत्काल उनका वध कर दिया।[3] भागवत पुराण में विष्णु के वामनावतार की कथा का वर्णन भी है जिसमें वह राजा बलि से दो पगों में दो लोक ले लेते हैं और तीसरे में बलि को पाताल में ढकेल देते हैं। बलि ने अपनी

१. भा० पु०, ६।६
२. भा० पु०, ८।१०
३. भा० पु०, ८।६

शक्ति के अभिमान में इन्द्रपुरी पर चढ़ाई की। उनकी शक्ति से भयभीत होकर इन्द्र ने अपने पुरोहित बृहस्पति से परामर्श किया। बृहस्पति ने कहा कि बलि से विष्णु के अतिरिक्त और कोई युद्ध नहीं कर सकता। अदिति की प्रार्थना पर विष्णु ने वामनावतार लेकर बलि का नाश किया।

इन कथाओं से एक बात स्पष्ट है कि त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में से विष्णु ने किसी भी समय राक्षसों की सहायता नहीं की। ब्रह्मा और महादेव दोनों ही राक्षसों से प्रसन्न होकर वरदान दे उन्हें अधिक उन्मत्त तथा शक्तिशाली बना देते हैं परन्तु विष्णु सदैव उनका संहार करते हैं। ब्रह्मा की अवस्था तो इन पुराणों में बड़ी विचित्र हो गई है। वह असुरों से प्रभावित होकर उनको वरदान भी देते हैं और उनके पापों का अतिक्रमण होने पर संहारार्थ बार-बार विष्णु की शरण में भी जाते हैं। इन राक्षसों के संहार में महादेव भी पूर्णतया समर्थ नहीं हैं बल्कि वह स्वयं राक्षसों की शक्ति के पोषक हैं। देवताओं को वह भी राक्षसों का वध करने में अपनी असामर्थ्य बताकर विष्णु की शरण में भेज देते है। विष्णु ने जिसको अभय-दान दिया ब्रह्मा और महेश उसका कोई अहित नहीं कर सके परन्तु ब्रह्मा और शिव से अभय पाए हुए अनेक राक्षसों का विष्णु ने नाश किया।

सातवलेकर जी सुरासुरों के इन संग्रामों को प्रकाश और अंधकार के काल्पनिक प्रसंग मानते हैं। उनके मतानुसार सृष्टि के चमत्कारों से प्रभावित होकर कवियों द्वारा रचित यह सरस और चामत्कारिक रूपक हैं।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है—'वह बड़े-बड़े पातकों और उपपातकों से छूट जाता है क्योंकि उसका मन विष्णु में लीन है।'

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
सर्वैः प्रमुच्यते सद्यो यतो विष्णुरतं मनः॥

स्कंध पुराण में लिखा है यदि विष्णु का भक्त दुराचारी या जातिच्युत हो तो भी वह सूर्य की तरह संसार को पवित्र करता है। स्कंध पुराण में एक कथा इस प्रकार है। जब समुद्र मंथन में अमृत कलश ऊपर आया तो उसे सबसे पहले विष्णु ने उठा लिया और उसका विभाजन किया। लक्ष्मी ने विष्णु की शक्ति से प्रभावित होकर सम्पूर्ण देवताओं के मध्य विष्णु का वरण किया। इन समस्त कथाओं से स्पष्ट है कि पुराणों के समय विष्णु सर्वशक्तिमान देवता के रूप में मान्य हो चुके थे।

विष्णु के वामनावतार की कथा अनेक पुराणों में वर्णित है। अग्नि पुराण,[1] हरिवंश पुराण,[2] मत्स्य पुराण,[3] विष्णु पुराण[4] आदि में यह कथा वेदों से कुछ भिन्न

---

१. ४.५ व ११
२. ७७२५, ४१५१, ४१६६
३. सेक्शन २३१-२३३
४. वि. पु., ३.१

रूप में कही गयी है। प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा ने, देवता, ऋषि, पितृ, दक्ष, भृगु, अंगिरस तथा पृथ्वी के अन्य राजाओं के सम्मुख वामन विष्णु को सम्पूर्ण लोकों का स्वामी बना दिया। उन्होंने उपेन्द्र विष्णु को वेदों, समस्त देवताओं, प्रसिद्धि, धन, यश, स्वर्ग, मोक्ष आदि सभी का अधीश्वर बना दिया। प्रजापति के इस कृत्य से प्रसन्न होकर सब देवताओं ने बड़ा हर्षामोद मनाया। विष्णु, हरिवंश और भागवत पुराण में विष्णु-शिव के युद्ध का भी उल्लेख है जिसमें विष्णु शिव पर विजयी होते हैं।

भागवत पुराण में विष्णु के २२ अवतारों का वर्णन है और कहा गया है कि विष्णु के अवतार अनंत हैं, सारे ऋषि, मनु, देवता, मनु-पुत्र, प्रजापति सब विष्णु के ही अंश से उत्पन्न हैं। गरुड़ पुराण स्मार्तों का पुराण है। इसमें विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश महत्त्वपूर्ण देवता हैं परन्तु इन सबमें विष्णु प्रधान हैं।

पुराणों के पूर्व उन सारे कार्यों का समाहार, जिनका श्रेय पहले ब्रह्मा और इन्द्रादि देवताओं को था यहाँ आकर विष्णु में हो जाता है। उनके सारे कार्य अब से विष्णु के कार्य हो जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में मत्स्य मनु की रक्षा करता है, महाभारत में वही मत्स्य प्रजापति का रूप और पुराणों में आकर वह विष्णु का अवतार हो जाता है। ब्राह्मणों में प्रजापति कच्छप रूप धारण कर जल में निवास करते हैं, पुराणों में वही कच्छप विष्णु का अवतार बन जाता है।

पुराणों में धार्मिक मतभेद की छाप स्पष्ट है। विष्णु की शक्तियों का प्रचार तथा अन्य धर्मों और उनके विश्वासों की उपेक्षा करने के लिए अनेक कथाओं की सृष्टि विष्णु से सम्बन्धित पुराणों में हुई है। उदाहरणार्थ एक बार असुरों ने वैदिक विधि से यज्ञ करके इतना बल प्राप्त कर लिया कि वे देवों से भी अधिक शक्तिशाली हो गए। भयभीत देवों ने विष्णु से प्रार्थना की और विष्णु ने द्रवित होकर बुद्ध का अवतार धारण किया। उन्होंने असुरों से कहा 'वेद की सत्ता को मत मानो, वैदिक विधि से यज्ञ मत करो क्योंकि यज्ञ में पशु-हिंसा होती है।' निदान असुरों ने यज्ञ छोड़ दिए और वे देवों के सामने दुर्बल हो गए।

ब्राह्मण पुराणकारों ने इस कथा में बुद्ध धर्म के अनुयायियों को असुर कहकर एक ओर जहाँ उनका निरादर किया वहाँ दूसरी ओर उन्होंने बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानकर उनकी स्वतन्त्र सत्ता का अपहरण करने का प्रयास भी किया है। इस समय विष्णु विकास की उस चरमावस्था पर पहुँच गए थे जहाँ से व्यक्ति का पतन होना आरम्भ हो जाता है। उनका व्यक्तित्व अब एक क्रीड़ा-कन्दुक बना दिया गया था जिससे ब्राह्मण जिस तरह चाहते खेल लेते थे।

पुराणों में विष्णु सुन्दर और चारों हाथों में क्रमश: शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं। विष्णु के इस सुन्दर स्वरूप ने भी भक्तों को अधिक से अधिक अपनी ओर आकर्षित कर उनके नैतिक पतन में कुछ-न-कुछ सहयोग अवश्य दिया होगा।

मराठी लोक साहित्य में एक कथा प्रचलित है जिसके अनुसार तुलसी विष्णु की साली है और विष्णु ने उसे बलात् अपनी पत्नी बना लिया है।

असुरेन्द्र जलंधर अपनी पत्नी वृन्दा के सतीत्व के कारण अमर था। विष्णु जलंधर का वेश धारण करके वृन्दा का सतीत्व हरण करते हैं। वृन्दा ने क्रोधित होकर विष्णु को शाप दिया जिससे जलंधर ने अगले जन्म में रावण होकर सीता हरण किया।[1]

सन् १०७० में रचित अमितगति की एक पुस्तक 'धर्म परीक्षा' प्राप्त हुई है जिसमें विष्णु के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख हैं। विष्णु ने जब राम कृष्ण, आदि के रूप में जन्म लिया था तो अनेक देव विरोधी अनुचित कार्य किये थे। उसमें विष्णु के दशावतारों का भी उल्लेख है। सन् १०७० तक विष्णु के सम्पूर्ण अवतार जनता का विश्वास बन चुके थे तथा बुद्ध भी उनके एक अवतार गिने जाते थे।

कालांतर में विष्णु के उपासकों ने विष्णु के नाम पर एक वैष्णव आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन बौद्ध तथा शैव धर्म की प्रतिक्रिया था। शैव आन्दोलन ने राजाओं को बनाया और बौद्ध धर्म ने भिक्षुओं को। वैष्णव धर्म की नींव विष्णु की भक्ति पर थी अतः इसने छोटी-छोटी जातियों को अपने धर्म में आश्रय दिया। ब्रह्मा तो सृष्टि की रचना करके अपने उत्तरदायित्व से विमुक्त हो गए। शिव संहार के प्रतीक होने से शैव आन्दोलन युद्ध का आन्दोलन है परन्तु प्रजा-पालन का दुष्कर कार्य विष्णु का ही उत्तरदायित्व है। श्रीमद्भागवत में कहा है—'सभी जातियों का स्वागत करने के कारण उस महान् देवता विष्णु को नमस्कार करता हूँ।'

विष्णु के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विषमता यह है कि जिस प्रकार अचानक भारतीय साहित्य तथा लोक मानस पट की भूमि पर उनका प्रादुर्भाव हुआ था उसी प्रकार उनका तिरोभाव भी हो गया। विष्णु की प्रसिद्धि जब राम और कृष्ण के अवतारों के रूप में होने लगी तब साधारण जनता उनके मूल रूप विष्णु को भूल गई एवं उसके मनन के आधार केवल यह दोनों अवतार ही रह गए। इसी से कालांतर में विष्णु का प्रत्यक्ष आधार लेकर न तो साहित्य की ही रचना हुई और न उनकी स्मृति में मन्दिरों का ही निर्माण हुआ। जनता के साहित्य तथा धर्म दोनों के नायक राम अथवा कृष्ण बन गए और विष्णु की स्मृति उत्तरोत्तर धूमिल होती गई।

राम तथा विष्णु का सम्बन्ध

भारतीय जनता के उपास्य राम अथवा भारतीय साहित्य के आलम्बन राम का आविर्भाव स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ है। यह राम विष्णु के अवतार हैं तथा विष्णु की समस्त शक्तियों एवं गुणों का इनमें समाहार है।

---

१. रुद्र संहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय २२।

वाल्मीकि रामायण के पूर्व राम कथा का कोई व्यवस्थित रूप हमें प्राप्त नहीं है। रामायण के कथारम्भ में वाल्मीकि नारद मुनि से प्रश्न करते हैं कि अमुक-अमुक गुण किस देवता में मिलते हैं जिनका आधार लेकर वह काव्य-रचना कर सकें। नारद उन्हें नर-चन्द्रमा राम की यशगाथा सुनाकर कहते हैं कि नर देहधारी राम अपने उदात्त गुणों के कारण किसी भी देवता से श्रेष्ठ हैं।

रामायण के उपर्युक्त प्रसंग तथा उसकी पुष्ट भाषा शैली को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि रामायण की रचना के पूर्व कतिपय राम कथाएँ अवश्य प्रचलित रही होंगी तथा कुछ काव्य ग्रन्थों की रचना भी अवश्य हुई होगी। रामायण में राम के व्यक्तित्व में विष्णुत्व का आरोप प्रथम तथा सप्तम काण्ड में मिलता है। हम पहले कह चुके हैं कि विद्वानों का बहुमत इसी पक्ष में है कि यह दोनों काण्ड प्रक्षिप्त हैं तथा राम को विष्णु का अवतार मानने की कल्पना वाल्मीकि के परवर्ती कवियों की देन है।

रामायण के अप्रक्षिप्त अंशों में कवि ने अनेक स्थलों पर राम की तुलना विष्णु से की है जैसे हनुमान राम से कहते है, 'जिस प्रकार विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ होते हैं उसी प्रकार आप मेरी पीठ पर आरूढ़ हों।'[1] रामदूत बनकर वह रावण से कहते हैं, 'मैं विष्णु की ओर से नहीं आया हूँ बल्कि राम की ओर से आया हूँ—

विष्णुना नास्मि चोदितः,
केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्।[2]

सीता भी अपने आपको सर्वत्र एक साधारण स्त्री समझती हैं तथा अपने इस जन्म के दुःखों का मूल कारण पूर्व जन्म के पाप समझती हैं। वह स्वयं भी राम की तुलना विष्णु से करती हैं। राम के विष्णुत्व से वह स्वयं भी परिचित नहीं हैं।[3] रावण उनसे अनुरोधपूर्वक कहता है कि राम एक साधारण मनुष्य हैं अतएव वह उनको छोड़ दे। सीता रावण के इस कथन का विरोध कर राम के विष्णुत्व का समर्थन नहीं करतीं।[4] राक्षसों के साथ युद्ध के अवसर पर वह राम की ओर से चिंतित हैं। यहाँ तक कि राक्षसों के प्रति उनकी हिंसात्मक प्रवृत्ति देखकर उनके परलोक के विषय में भी चिंतित हैं।

रामायण में राम के अतिरिक्त रावण,[5] अतिकाय,[6] इन्द्रजित,[7] हनुमान[8] आदि कतिपय अन्य पात्रों की तुलना भी विष्णु से की गई है।

---

१. वा० रा० ५. ३४. २९, ५. ३७. २४
२. वा० रा० ५. ५०. १३—१८
३. वा० रा० ५.२१.२८, ५.३८,६५
४. वा० रा० ३.४८.१४
५. ,, ,, ७.२०.५
६. ,, ,, ६.७१.८
७. ,, ,, ६.७३.७
८. ,, ,, ६.५६.३८

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि ने राम की तुलना विष्णु के साथ-साथ अन्य देवताओं के साथ जो विभिन्न कोटि में आते हैं, की है। इन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, बृहस्पति, कुबेर, वरुण, धर्म, कामदेव, अग्नि, पर्जन्य आदि कई देवताओं के साथ उनकी तुलना की गई है। यहाँ तक कि राम की तुलना विष्णु से १८ बार और इन्द्र के साथ ७७ बार की गई है। अनेक स्थानों पर राम की तुलना क्रमशः इन्द्र और विष्णु से की गई है जिससे अनुमान होता है कि उस समय विष्णु की अपेक्षा इन्द्र का स्थान ऊँचा था।[1]

ई० मूर[2] तथा सी० लासेन[3] ने अनेक उदाहरण तथा तर्क देकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि रामायण में राम विष्णु के अवतार नहीं थे। वह मानव थे, महापुरुष थे पर विष्णु नहीं थे।

मैकडॉनल के मतानुसार भी रामायण राम की जीवन कथा है। राम के विष्णु अवतार सम्बन्धी अवतरण प्रथम और सप्तम काण्ड में हैं। उनके अनुसार पुस्तक पहले पाँच कांडों में लिखी गई थी और प्रथम तथा सप्तम काण्ड उसमें बाद में सम्मिलित किए गए थे।

फरकुहर महोदय ने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद की भावना नहीं है। आदि से अन्त तक राम मानव और केवल मानव हैं। वह महापुरुष महानायक हैं पर उनमें देवत्व कहीं नहीं है।[4]

अवतारवाद की भावना अचानक ही हमें शतपथ ब्राह्मण में दृष्टिगोचर होती है। इसके पूर्व आर्य धर्म में अवतार की यह भावना कहीं भी उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अवतारवाद की यह भावना सम्भवतः बौद्धों के प्रभाव से आई थी। सर्वप्रथम गौतम बुद्ध में ही अलौकिक शक्तियों का आरोपण दिखाई देता है।

राम और विष्णु का सम्बन्ध स्थापित होने के पूर्व भी अवतार की भावना हिन्दू धर्म में उपस्थित थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में मत्स्य और वामनावतार की कथाएँ मिलती ही हैं परन्तु मनुष्य में इस भावना का आरोपण अभी तक नहीं किया गया था। इन कथाओं का प्रभाव राम और विष्णु के सम्बन्ध पर अवश्य पड़ा होगा।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण का पहला और सातवाँ काण्ड बाद का लिखा जान पडता है। इसका कारण यह है कि दूसरे से छठे काण्ड तक राम का जो रूप है वह ईश्वर का न होकर एक तेजस्वी महापुरुष का है। पहले और सातवें काण्ड में राम के चरित्र में अलौकिकता का अंश अधिक हो गया है। इसलिए यह काण्ड उस समय के लिखे हुए जान पड़ते हैं जब राम भावना के रूप में

१. विशेष विवरण के लिए देखिए कामिल बुल्के ; राम कथा पृ० १२३—१३३
२. ओरिजनल सँस्कृत टैक्सट्स, चतुर्थ भाग, पृ० ९८
३. इण्डियन एन्टीक्वटीज, भाग १, पृ० ४८८
४. जे. एन. फरकुहर : एन आउटलाइन आफ रैलीजस लिटरेचर, पृ० ४७

इतना विकास हो गया था कि वे मनुष्यत्व के धरातल से उठकर ईश्वरत्व के धरातल पर चले गए थे। उनमें ईश्वर की सभी विभूतियाँ प्रतिष्ठित की जा चुकी थीं। वाल्मीकि रामायण के मूल रूप में राम एक महापुरुष हैं, न तो वे देवता हैं और न देव के अवतार।[१]

रायबहादुर बैजनाथ के विचारानुसार राम आदर्श राजा थे। रामायण की पूरी कथा मानवीय है और राम में सत्य, कर्त्तव्य आदि अनेक गुणों का समाहार है। पुराणकारों और तुलसी जैसे परवर्ती कवियों ने उनमें देवत्व का आरोपण किया। राम में विष्णु की यह भावना यदि कालान्तर की देन न होती तो आज भारत में राम के भी उतने ही मन्दिर होते जितने कृष्ण के। राम का वास केवल मनुष्यों के हृदयों पर अधिक रहा परन्तु उनके भौतिक स्मारक बहुत कम हैं।[२]

वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने मत्स्य पुराण के अध्ययन में अवतारों के विकास पर विचार विमर्श किया है। वह लिखते हैं कि अवतार मानव सभ्यता के विकास के द्योतक हैं। विष्णु के दसों अवतार मानव सभ्यता के सोपान की दस सीढ़ियाँ हैं। राम के अवतार को वह सभ्यता के विकास का वह समय मानते हैं जब मानव पूर्ण सभ्य होकर नगरों में वास करने लगा था। राम केवल उस सभ्य मानव के प्रतीक हैं। उनके अनुसार विष्णु के दशावतार दस नाम हैं जो विभिन्न युगों की सभ्यता के प्रतीक हैं।

राम और विष्णु का सम्बन्ध परस्पर कब जुड़ा, इस विषय में हमें भारत के इतिहास से सहायता मिलती है। ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व मौर्य वंश के विनाश होने पर जब शुंग वंश की स्थापना हुई तो देश की राजनीति में तो परिवर्तन हुआ किन्तु धर्म का रूप वैसा ही बना रहा। बौद्ध धर्म इस समय उन्नति पर था। गौतम बुद्ध भगवान माने जा रहे थे। उनके लौकिक रूप का समन्वय हो जाने के कारण वैष्णवों को भी प्रोत्साहन मिला। स्पर्धा के आवेश में उन्होंने भी राम का सम्बन्ध विष्णु से जोड़ दिया। राम तो पहले से ही महापुरुष की विभूतियों से सम्पन्न थे। अब राम में ईश्वरत्व की भी प्रतिष्ठा हुई, उन्हें अवतार के रूप में मान्यता मिली अर्थात् वे ईश्वर होकर भी अवतार के रूप में मनुष्य हुए। विष्णु के साथ शक्ति का सम्बन्ध होने के कारण राम के साथ सीता की शक्ति भी जोड़ी गई। इसके बाद तो राम की शक्तियों का निरन्तर विकास होता रहा। शनैः-शनैः राम पूर्ण रूप से विष्णु के अवतार स्वीकार कर लिए गए एवं उनके इसी अवतारी राम रूप को लेकर विपुल साहित्य की रचना होने लगी।

अध्यात्म रामायण के अनुसार विष्णु परमात्मा हैं, आदि नारायण हैं। तुलसी के रामचरितमानस में भी विष्णु परमात्मा, परब्रह्म से अभिन्न हैं, वह सर्वत्र व्यापक,

---

१. रामकुमार वर्मा : विचार दर्शन

२. राय बहादुर बैजनाथ : हिन्दुइज्म एन्सिएन्ट एण्ड माडर्न, पृ० १६—२०

घट-घट के वासी हैं। यही परम विष्णु राम नाना अवतार धारण करते हैं। सीता लक्ष्मी हैं। वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा हरिवंश आदि पुराणों में विष्णु के अवतारों की तालिका में राम का नाम आया है। महाभारत में भी राम को विष्णु का अवतार कहा गया है। कहीं कहीं तुलसी ने राम और सीता को विष्णु तथा लक्ष्मी से भी ऊँचा माना है। राम का तादात्म्य विष्णु से करने पर भी अध्यात्म रामायण में राम-सीता की अपेक्षा विष्णु और लक्ष्मी उच्च हैं परन्तु मानस में राम सीता का स्थान अपेक्षाकृत ऊँचा हो गया है। तुलसी ने कहा है—'विष्णु कोटि सम पालन कर्त्ता, रुद्र कोटि सिवसम संहरता।' तथा 'विधि हरि शंभु नचावन हारे।' गोस्वामी जी ने राम को विष्णु तथा उनके सभी अवतारों से अभिन्न माना है। तत्पर्यन्त विष्णु के सारे अवतार राम के अवतार हो जाते हैं। इस प्रकार आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में राम को न तो विष्णु का अवतार माना है और न विष्णु से उनका कोई सम्बन्ध स्थापित किया है। जब बौद्ध धर्म का विकास चरम उत्कर्ष को पहुँचा और दैवी शक्तियों का समावेश करके बुद्ध को देवत्व प्रदान किया गया, उन्हीं दिनों अवतारवाद की आवश्यकता अनुभव कर वैष्णवों ने बुद्ध के समान राम को भी विष्णु का अवतार बना दिया।

विष्णु से राम बनकर विष्णु की महत्ता कम नहीं हुई बल्कि भक्तों को एक ऐसे उपास्य की प्राप्ति हुई जो देवत्व के साथ वीरत्व से भी अलंकृत था। ज्यों-ज्यों अवतार भावना विकसित हुई विष्णु के अधिकाधिक रूपों का वर्णन साहित्य में होने लगा। 'मानव धर्म शास्त्र' में विष्णु के ६ अवतारों का उल्लेख है। आगे चलकर उनके व्यक्तित्व में शक्ति के रूप में सीता का भी प्रवेश होता है। विष्णु पुराण में स्पष्ट रूप से राम भक्ति के दर्शन होने लगते हैं। अध्यात्म रामायण के राम और ब्रह्मा में कोई अन्तर नहीं है। भागवत पुराण में राम भक्ति का वर्णन विशद रूप से है। राम के अलौकिक व्यक्तित्व से प्रेरित होकर राम साहित्य का एक अजस्र स्रोत प्रवाहित होने लगा। विभिन्न भारतीय भाषाओं में राम को आलम्बन बनाकर विपुल साहित्य की सृष्टि हुई। उसके बाद राम भावना का पूर्ण विकास तुलसी साहित्य में जाकर होता है। अध्यात्म रामायण के समान तुलसी के राम भी परब्रह्म परमेश्वर का रूप हो जाते हैं।

भारतीय लोक-हृदय को विष्णु की अपेक्षा उनके अवतार राम अधिक मोहक प्रतीत हुए। विष्णु में वह इतनी तल्लीनता से न रम सका जितना राम में। राम मनुष्य देह धारण कर दुर्दिन में उसकी सहायता करते हैं अतः भक्तहृदय का सामीप्य भी उनसे ही अधिक है। क्रमशः भारतीय जनता विष्णु को भूल गई तथा राम ही उसकी समस्त निष्ठा तथा प्रीति के आस्पद बन गये। शनैः-शनैः वह विष्णु के अवतार होकर भी विष्णु के नियंता बन गये तथा परब्रह्म की शक्ति के प्रतीक माने जाने लगे।

दूसरा अध्याय

केशव के पूर्व राम-कथा तथा राम-काव्य की परम्परा

राम-कथा का आदि स्रोत, पाश्चात्य तथा पौरस्त्य चिन्तकों के मत—राम-कथा के प्रादुर्भाव काल तथा उसके विकास स्थल के विषय में निश्चित एकमत नहीं है परन्तु इसका प्रादुर्भाव वाल्मीकि के काव्य के पूर्व हो चुका था, इस पर प्राय: सभी विद्वान् एकमत हैं। विदेशी तथा वैदिक साहित्य में राम कथा के अनेक पात्रों का उल्लेख मिलता है परन्तु राम-कथा से सदैव ही इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा है। रामायण की रचना आरम्भ करने के पूर्व किसी राम कथा की स्थिति स्वयं वाल्मीकि ने भी स्वीकार की है। वह नारद से प्रश्न करते हैं, 'समग्रा रूपिणी लक्ष्मी : कमेकं संश्रिता नरम्'।[1] नारद उन्हें उत्तर देते हैं कि जिन गुणों की तुमने चर्चा की है वह तो देवताओं में भी दुर्लभ है परन्तु जिस नर-चन्द्रमा में इन गुणों का समाहार है उसकी कथा सुनो—

देवेष्वपि न पश्यामि कंचिदेभिर्गुणैर्युतम्।
श्रूयतां तद्गुणैरेभिर्यो युक्तो नर चंद्रमा॥[2]

वाल्मीकि ने रामायण में इसी नरचन्द्रमा के प्रचलित आख्यान को विकसित किया है परन्तु इस आख्यान का मूल स्रोत क्या था। इस सम्बन्ध में अनेक मनीषियों ने अपने-अपने मत का स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है।

राम-कथा की प्राचीनता

प्राचीन साहित्य में राम-कथा के पात्र—सर्वप्रथम हम वैदिक साहित्य के उन स्थलों को देखेंगे जहाँ वैदिक साहित्य में रामकथा से सम्बन्धित पात्रों का उल्लेख हुआ है।

राम—ऋग्वेद में राम असुर का नाम एक बार आया है। प्राचीन काल में असुर का अर्थ राक्षस नहीं था बल्कि तब उसका अर्थ महान् होता था। इससे ऐसा अनुमान होता है कि वह कोई महान् राजा था।[3]

ऋग्वेद के बाद ऐतरेय ब्राह्मण में राम भार्गवेय, शतपथ ब्राह्मण में राम

---

१. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड, प्रथम सर्ग, श्लोक ५

२. वही —श्लोक १६

१. ऋ० वे०, १०.६३.१४

औपतस्विनि के उल्लेख मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि वे उपतस्वन के पुत्र तथा याज्ञवल्क्य के समकालीन थे।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में राम क्रतुजातेय का दो बार एक दार्शनिक शिक्षक के रूप में उल्लेख है।

उपर्युक्त राम सम्बन्धी उल्लेखों से वाल्मीकीय राम के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राम नाम प्राचीन काल से ही एक प्रसिद्ध नाम था।

सीता—सीता नाम वास्तव में रामायणीय जनक की पुत्री सीता के नाम से बहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य में हमें सीता के दो रूप मिलते हैं प्रथम कृषि देवता सीता तथा दूसरा सीता-सावित्री का एक युग्म। दूसरी सीता का परिचय तैत्तिरीय ब्राह्मण से प्राप्त होता है जहाँ उसका उल्लेख सोम राजा के उपाख्यान में हुआ है।[१] वैदिक साहित्य में सीता, सूर्या, सावित्री कभी एक ही व्यक्ति के नाम हैं और कभी भिन्न।

ब्राह्मणों में सीता अपने पिता प्रजापति से स्थावर नामक अंगराग प्राप्त कर सोम राजा को वशीभूत करती है, तदनन्तर दोनों का विवाह होता है। सोम पहले सीता की बहन श्रद्धा से प्रेम करता था।[२]

वाल्मीकि रामायण में अत्रिपत्नी अरुन्धती भी सीता को एक अंगराग प्रदान करती है जिससे उसका शरीर दिव्य सौन्दर्य को प्राप्त करता है।

ऋग्वेद में सीता को उपजाऊ भूमि माना गया है। अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में धान्य देने वाली सीता का स्तवन है। गृह्य सूत्रों में कृषि कर्म बढ़ गया है इस कारण सीता का उल्लेख अधिक होने लगा है। उनमें लाँगल योजन अथवा सीता यज्ञ का भी विस्तृत वर्णन है। यद्यपि इस यज्ञ की विधियों में सीता ही एक मात्र कृषि देवता नहीं है, इन्द्र, अग्नि, विश्वदेव, पृथ्वी आदि अन्य देवता भी हैं परन्तु इनमें सीता का स्थान प्रमुख है। गृह्य सूत्रों में इस सीता का स्तवन इन्द्र पत्नी अथवा पर्जन्य पत्नी कहकर भी किया गया है। पाठक गृह्यसूत्र के भाष्यकार देवपाल का कहना है कि यह देवी कुमारी है।[3]

महाभारत के द्रोण पर्व में शल्य के ध्वज पर सीता की स्वर्ण प्रतिमा का उल्लेख है।

गृह्य सूत्रों में सीता का जो माहात्म्य था वह रामायण काल तक धीरे-धीरे कम हो जाता है। रामायण की सीता वैदिक सीता नहीं है, यद्यपि उसकी जन्म-कथा

---

१. तै० ब्रा० २ ३.१०

२. ऐत० ब्रा० ४।७

३. विशेष विवरण के लिए देखिए कामिल बुल्के : रामकथा पृष्ठ १—२७

पर वैदिक सीता की छाप है। कालांतर में सीता केवल राम पत्नी सीता ही रह गई है, उसका कृषि देवता का रूप लुप्त हो गया है। वैदिकोत्तर साहित्य में वैदिक सीता का रूपांतर दुर्गा में हो गया, आधार सारे पूर्ववत् थे केवल देवी का नामांतर हो गया।

विभिन्न प्रान्तों के लोक साहित्य में सीता अथवा जानकी नाम धान्यदेवी के पर्याय मिलते हैं। सीता विषयक कृषि सम्बन्धी कहानियों का लोक साहित्य में पर्याप्त प्रचार है। छोटा नागपुर में उराव जाति में इस प्रकार की दो कहानियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें सीता को पार्वती और सूर्य को राम माना है।[1] दक्षिण भारत की अनेक देवियों में एक सीतालम्मा भी है जो जल की देवी है।[2]

इक्ष्वाकु तथा दशरथ—वैदिक साहित्य में इक्ष्वाकु और दशरथ का उल्लेख एक-दो स्थलों पर हुआ है[3] पर वे वहाँ केवल एक वीर राजा हैं, इससे अधिक उनके विषय में कोई उल्लेखनीय सामग्री नहीं मिलती।

जनक—जनक का नाम सर्वप्रथम कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण में आया है जिसमें सावित्राग्नि यज्ञ का फल जानने के लिए जनक विदेह देवताओं से मिलते हैं। इसके पश्चात् शतपथ ब्राह्मण में चार बार याज्ञवल्क्य के साथ जनक का उल्लेख है। जनक एक विद्वान् तत्त्वज्ञ हैं जो याज्ञवल्क्य को शिक्षा देते हैं और स्वयं ब्राह्मण बन जाते हैं।[4]

बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक गायत्री के विषय में वुडिल आश्वतपस्वि से कुछ कहते हैं।[5]

राम-कथा के अन्य पात्रों की अपेक्षा जनक के उल्लेख वैदिक साहित्य में अधिक मिलते हैं। वैदिक साहित्य के जनक तथा राम साहित्य के जनक अभिन्न होते हुए भी दोनों को निश्चयपूर्वक एक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वैदिक जनक के साथ सीता तथा राम का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वायु पुराण तथा पद्म पुराण आदि में सीता के पिता जनक का एक नाम सीरध्वज भी है। रामायण में दो जनक—मिथि पुत्र जनक तथा ह्रस्वरोमा का पुत्र जनक, महाभारत में सीता के पिता जनक, इन्द्रद्युम्न का पुत्र जनक देवराति, जनक जनदेव, जनक कराल आदि अनेक व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है।

परशुराम—दक्षिण भारत की प्राचीन लोक-कथाओं में परशुराम से सम्बन्धित एक कथा प्रचलित है जिसके अनुसार परशुराम मरिअम्मा के पुत्र हैं। उनकी माँ अपने

---

१. कृषि देवता सीता : दुर्गा भागवत (सत्य कथा मराठी पत्रिका, अगस्त १९५२)
२. विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया : हेनरी व्हाइट हेड, पृष्ठ २२
३. ऋ० वे० १०.६०.४, १.२२६.४
४. श० ब्रा० ११.६.२.१.१०
५. बृ० उ० ५.१४.८

सतीत्व के लिए प्रसिद्ध थीं। एक बार स्नान से लौटते हुए गंधर्वों पर आकर्षित हो जाने पर वह अपने पति से इस गुरु अपराध को स्वीकार कर लेती हैं। परशुराम के पिता उनको अपनी माँ का सिर काटने की आज्ञा देते हैं। परशुराम माँ का सिर काट लेता है।[1]

रामायण में भी परशुराम का अपनी माँ का सिर काटने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार प्राचीन विदेशी साहित्य तथा भारतीय वैदिक साहित्य में राम-कथा से सम्बन्धित अनेक पात्रों के नाम मिलते हैं परन्तु इनका राम-कथा से कोई सम्बन्ध है, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। उस समय राम सम्बन्धी कुछ कथाएँ प्रचलित हो चुकी हों इसका भी कोई पुष्ट प्रमाण इन स्फुट उल्लेखों से नहीं मिलता। इनसे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि इस नाम के कुछ पात्र प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध थे।

विदेशों में प्राप्त राम-कथा के तत्त्व

श्री विशम्भरनाथ पांडेय ने अपने अनेक वर्षों के अथक परिश्रम तथा अनवरत शोध के अनन्तर विदेशी संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ निबन्ध 'विश्ववाणी' पत्रिका में प्रकाशित किए हैं। पांडेय जी का विचार है कि मिस्र और आर्य सभ्यता के मूल स्रोत एक ही हैं। दोनों जातियाँ एक ही स्थान से चलकर दो भिन्न स्थानों में बस गईं और इस प्रकार दो अलग-अलग सभ्यताओं का विकास हुआ।

अफ्रीका में काले रंग की किसी जाति को मिस्रवासियों ने पराजित किया था। उनके चित्र मिस्र के प्राचीन भवनों की दीवारों पर बने हुए हैं। उनके चेहरे बन्दरों के हैं और प्रत्येक के पीछे एक पुच्छ निकली हुई है। इन चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि पशुओं की जो खालें वे लोग पहने हुए हैं उनकी दुमें कमर पट्टों से बाहर निकली हुई हैं। इन चित्रों को देखकर रामायण की वानर सेना की याद आती है।[2]

मिस्र में रामेरु नाम के बारह राजा हुए हैं। उनके एक मन्दिर का नाम रामेसियम (रामेश्वरम्) भा है। संभव है कि इनमें से किसी रामेस की जीवन घटनाओं का प्रभाव रामायण के राम पर पड़ा हो।

मिस्र में एक प्राचीन राजा के पुत्र का नाम सियामन और पुत्री का नाम सीतामन भी पाया जाता है।

रामन ईराकियों का एक प्रधान देवता था। रामन को वैदिक इन्द्र का एक रूप बताया जाता है। रामन का अधिक प्रचलित नाम राम ही था। इसी राम पर

---

१. विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया : हेनरी व्हाइट हेड, पृष्ठ २३—२५

२. मिस्री संस्कृति की झाँकी, नवम्बर १९५० (१) पृ० ६३—५ विश्वम्भरनाथ पांडेय

वहाँ के लोग अपने बच्चों के नाम अवराम, जोराम आदि रखते थे। राम का अर्थ महान् भी था।[१]

फलस्तीन में अन्न के देवता अद्दू (इन्द्र) इत्यादि की पूजा होती थी। अद्दू को मेघ, वर्षा और तूफान का देवता माना जाता था। अद्दू का एक प्रसिद्ध नाम रामन भी था।[२]

संभव है इस रामन के व्यक्तित्व का प्रभाव भारतीय राम पर पड़ा हो तथा कालान्तर में इसी कारण कृषि की देवी सीता के साथ राम का सहयोग हुआ हो।

लेखक का यह भी अनुमान है कि मिस्र के राजा उस समय अपने को सूर्यवंशी कहते थे।[3] इस वंश में रामेश नामक एक शक्तिशाली राजा था। खत्री नरेश के साथ उसका घमासान युद्ध हुआ था जिसमें बाद में सन्धि हो गई थी। महाराज खेतसार की कन्या के साथ १३ वर्ष के पश्चात् रामेश का विवाह हुआ। उसने एक रामेशपुर नगर भी बसाया था। उसके समय में देश उन्नत, सुखी और सभ्य था तथा राज्य में समस्त सुविधाएँ उपलब्ध थीं।

महाराज खेतसार में जनक, १३ वर्ष में राम के वनवास के १४ वर्ष और रामेशपुर में रामेश्वरम् की छाया देखी जा सकती है।

ईरान में एक राजा का नाम वशिष्ठ मिलता है जिसने अपने देश में जरथुस्त्र के उपदेशों का प्रचार करवाया। मादे नरेशों में दो नाम रामात्रिय और रामेत मिले हैं। ये वीर सैनिक थे।[४]

असुरिया के राजा प्रारम्भ में सुमेरवालों के सामन्त थे और उन्हें खिराज देते थे। उसके बाद वह बाबुल के इशाक्कु (इक्ष्वाकु) अर्थात् सामन्त कहलाने लगे। मिस्र में इन लोगों में विवाह सम्बन्ध भी होते थे।[५] अतः ऐसा संभव है कि आर्यों ने इक्ष्वाकु वंश के नाम पर कतिपय सरदारों तथा राजाओं की तालिका बनाकर एक पृथक् वंश का निर्माण कर लिया हो। रामेरु सूर्यवंशी था अतः वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकु हो गए।

तुर्की में ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व आर्यों की शाखा मितन्नि में एक प्रतापी राजा दशरथ का उल्लेख आता है। पंडित सुन्दरलाल जी ने लिखा है कि खत्रियों की मूल भाषा संस्कृत थी। उनके और भारतीय आर्यों के देवता भी समान थे। उनके प्रमुख देवता मित्राश, अरुणाश और इन्दर (वैदिक मित्र, अरुण और इन्द्र) थे।

---

१. यहूदी धर्म और सामी संस्कृति सितम्बर, १९५० पृ० ३ वि० पांडेय
२. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ १७, वि० पांडेय
३. प्राचीन मिस्री संस्कृति, नवम्बर १९५०, पृष्ठ १२
४. जरथुस्त्री धर्म और ईरानी संस्कृति, जुलाई १९५० (१), पृ० १—५ वि० पां०
५. दजला फांठे की संस्कृति फरवरी १९५१ (१) पृ० ६०

खत्री जाति उस समय भी यथेष्ट सभ्य थी। वह लोग कृषि तथा पशुपालन को महत्त्व देते थे एवं इनकी स्त्रियां भी शस्त्रास्त्र लेकर रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं का सामना करती थीं।[१] वाल्मीकि रामायण में दशरथ के साथ कैकेयी के युद्धक्षेत्र में जाने का उल्लेख आता है।

डा० ए० के० मेनन ने अपने एक लेख में सिद्ध करने का प्रयास किया है कि होमर ने काव्य रचना करते समय वाल्मीकि रामायण को अपने महाकाव्य का आधार ग्रन्थ बनाया था। उन्होंने दोनों काव्यों का एक तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है[२] जिसका सारांश नीचे दिया जा रहा है—

१. रामायण में राम तथा लक्ष्मण का अटूट भ्रातृ-प्रेम दिखाया गया है। मेनेलौ कथा में भी दो यूनानी भाइयों के अनुपम प्रेम का वर्णन है।
२. राम और लक्ष्मण को सौतेली माँ ने षड्यन्त्र करके वनवास दिलाया। यूनानी भाइयों को अपने चाचा अर्गु के कारण बनवास मिला।
३. रामायण की सीता अयोनिजा है। यूनानी राजकुमारी हेलेन भी एक झाड़ी के नीचे हंस के अंडे से उत्पन्न होती है।
४. राम ने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को स्वयंवर में पराजित किया तथा सीता ने जयमाला डालकर राम को अपना पति चुना। मेनेलौ ने भी समस्त प्रतिद्वन्द्वी राजकुमारों को हराकर कुमारी हेलेन को प्राप्त किया।
५. सीता का हरण कर रावण समुद्र पार लंका में ले गया। हेलेन को भी शत्रु हर कर समुद्र पार कर ट्राय द्वीप में ले गए।
६. रामायण में विभीषण पर्वत शिखा पर खड़े होकर राम को रावण की सेना तथा उसके विशेष सेनापतियों का परिचय कराते हैं। यूनानी काव्य की हेलेन प्रधान यूनानी सेनापति प्रियम को शत्रु सेना का परिचय देती है।
७. राम के बाण शत्रु को बेध कर फिर तूणीर में वापस आ जाते हैं, इसी तरह हेक्टर के तीर पुनः तूणीर में वापस आ जाते हैं।
८. वीर हनुमान जिस तरह दाँत किटकिटा कर रावण की सेना का संहार करते हैं उसी प्रकार एचिल भी गरज कर ट्रॉजन सेना का संहार करता है।
९. रावण की मृत्यु के पूर्व समरांगण में रक्त की वर्षा होती है उसी तरह सर्पेदन की मृत्यु पर यूनानी रणक्षेत्र में रक्त बरसता है।
१०. प्रारम्भ में राम-रावण युद्ध में राम शत्रु शक्ति के समक्ष निरुत्साहित होकर सोचते हैं कि अपनी सेना भारत लौटा ले जाएँ। उसी प्रकार अगमेनन भी जनसंहार देखकर यूनान वापस जाने की बात सोचता है।

---

१. तुर्की में ५,००० वर्ष पूर्व पुरानी आर्य सभ्यता के खण्डहर : विश्ववाणी जनवरी, १९५१
२. 'पच्छिमी सभ्यता हिन्दुस्तान की कर्जदार है' विश्ववाणी, मार्च १९४१।

११. रामायण में कुम्भकरण पहाड़ के समान दीर्घकाय कहा गया है। मार्स का जब यूनानी योद्धा पल्लु ने वध किया तो मार्स की विराट् देह सात एकड़ जमीन घेर कर पड़ी।

१२. राम-रावण युद्ध देखने के लिए देव, गंधर्व तथा किन्नर आकाश में एकत्रित होते हैं। यूनानी ग्रन्थ में भी युद्ध के समय उभय पक्षों के देवता युद्ध देखने आते हैं।

१३. रामायण के कुबेर तथा शिव युद्ध के समय पांसा फेंकते हैं। यूनानी देवता जोव भी यही करता है।

१४. सीता निर्जल उपवास से प्राण त्यागने का निश्चय करती है तो इन्द्र आकर उन्हें अमृत देता है। एचिल भी जब यह निश्चय करता है तो जोव मिनर्वा को भेजकर एचिल को प्राणदायक पेय देता है।

१५. विभीषण लंका का चतुर पुरुष था। इसी प्रकार ट्राय में अन्तेनर का व्यक्तित्व है। क्रुद्ध रावण हनुमान का वध करने का आदेश देता है, उस समय विभीषण राजनीति समझाकर हनुमान की रक्षा करता है। जब मेनेलो प्रतिनिधि बनकर ट्राय में आता है और उसके वध का आयोजन होता है तो अन्तेनर उसके प्राण बचाता है। विभीषण रावण से प्रार्थना करता है कि सीता जी को लौटा दिया जाए, अन्तेनर पारि से प्रार्थना करता है कि वह हेलेन को लौटा दे। विभीषण अपने देश से विश्वासघात करके शत्रु को समुद्र का मार्ग तथा निकुम्भिल की गुप्त बातें बताता है। अन्तेनर भी अपने देश के विरुद्ध ट्राय जीतने के सारे भेद उलिस को बताता है। रावण की मृत्यु पर विभीषण को लंका का राजसिंहासन मिलता है वैसे ही अन्तेनर ट्राय का राज्य पाता है।

१६. युद्ध क्षेत्र में राम को पैदल देख इन्द्र उनके पास स्वर्ग से रथ और ब्रह्मास्त्र भेजते हैं, एचिल के पास भी स्वर्ग से एक रथ आता है।

डॉ० मेनन तथा पाश्चात्य विद्वान डॉ० वेबर का निष्कर्ष एक होते हुए भी दोनों की चिन्तन-पद्धतियों में पर्याप्त अन्तर है। डॉ० मेनन वाल्मीकि रामायण का प्रभाव होमर पर मानते हैं तथा डॉ० वेबर होमर के काव्य का वाल्मीकि पर। संभव है स्वदेश प्रेम के कारण दोनों ही मनीषियों की विचारधाराओं में पक्षपात का पुट आ गया हो जिससे वे इन काव्य-ग्रन्थों का विश्लेषण स्वतन्त्र रूप से न कर सके हों।

पाश्चात्य चिन्तकों के मत—राम-कथा का विकास यद्यपि भारत में हुआ है परन्तु इसकी मनोरमता ने पाश्चात्य विद्वानों को भी पूर्णतया प्रभावित किया है। उन्होंने भारतीय साहित्य एवं इतिहास का अत्यंत मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर भारत के प्रति अपनी असीम श्रद्धा का परिचय दिया है। राम-कथा के मूल स्रोत के सम्बन्ध

में डॉ० ए० वेबर, एच० याकोबी, एफ० हैविट, ए० ए० मैकडानल, ई० हाप्किस, जे० सी० श्रोमन, टालवायस व्हीलर आदि अनेक पाश्चात्य चिन्तकों ने अपने स्वतन्त्र मतों का निरूपण किया है। डॉ० वेबर राम-कथा का आदि स्रोत बौद्ध दशरथ जातक को मानते हैं, याकोबी तथा मैकडानल आदि विद्वान् राम-कथा का मूल रूप वैदिक देवी-देवताओं की कथाओं में सुरक्षित समझते हैं। डॉ० वेबर के अनुसार रामायण पर होमर के काव्य का भी प्रभाव पड़ा है। एफ० हैविट ने रामायण को इतिहास ग्रन्थ मानकर उसे आर्यों द्वारा दक्षिण के अनार्यों पर विजय का काव्यमय वर्णन माना है। सी० लासेन भी एफ० हेविट के इस मत से सहमत होते हुए प्रतीत होते हैं। जे० सी० श्रोमन ने रावण को दक्षिण में रहनेवाले अनार्यों का राजा कहा है तथा टालवायस व्हीलर के अनुसार रामायण ब्राह्मणों तथा बौद्धों का धर्म युद्ध है। यहाँ हम इन चिन्तकों के मतों का विस्तृत विवेचन करेंगे।

डा० वेबर का मत—डा० ए० वेबर के मतानुसार बौद्ध जातक कथाओं तथा वाल्मीकि रामायण में घनिष्ठ सम्बन्ध है। वाराणसी के ब्रह्मदत्त, बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाएँ, दशरथ जातक आदि कथाओं का रामायण पर गंभीर प्रभाव है। वाल्मीकि ने रामायण की रचना वस्तुतः बौद्धों के विरोध में की थी।

भारतीय साहित्य के इतिहास में डाक्टर वेबर ने लिखा है कि रामायण में हम आरंभ से ही स्वयं को आर्य सभ्यता के दक्षिण विशेषकर लंका में प्रसार के रूपकमय प्रदेश में पाते हैं। इसके पात्र ऐतिहासिक नहीं हैं बल्कि कुछ घटनाओं और परिस्थितियों के प्रतीक हैं।[1]

सीता खेत की सीता है जिसको ऋग्वेद तथा गृह्य सूत्रों में विशेष आदर प्राप्त है। सीता आर्यों की कृषि की प्रतीक है और राम उसकी रक्षा करते हैं। डा० वेबर ने राम का सम्बन्ध हलभृत से स्थापित किया। उनके विचार में आदिवासी अनार्य ही राक्षस और दानव हैं। उनमें जो कुछ सभ्य थे और जिन्होंने आर्य सभ्यता स्वीकार कर ली थी वह वानर कहलाए। आर्यों की अपेक्षा यह लोग कुरूप थे, संभवतः इसीलिए डा० वेबर ने इनमें ऐसी कल्पना की है।

ऋक्ष यथार्थ में ऋक्ष नहीं थे परन्तु हरिगण की एक जाति थी जो ऋक्ष पर्वत पर रहती थी। यद्यपि यह सब जंगली जातियाँ थीं परन्तु इनमें वानर सबसे अधिक सभ्य तथा विद्वान् थे।

डा० वेबर का विचार है कि राम के समय संभवतः कृषि उन्नतावस्था पर थी। अतः राम के वनवास का समय शीतकाल का प्रतीक है जब कृषि कर्म बंद हो जाता है।

उनके कथनानुसार रामायण के सीताहरण पर होमर के हेलेन हरण का तथा लंका युद्ध पर ट्रॉजन युद्ध का भी प्रभाव पड़ा है।[2] परन्तु डा० कामिल बुल्के

१. पृष्ठ १९२।
२. आन दी रामायणपृष्ठ, ११।

ने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि रामायण पर होमर का प्रभाव नहीं है।[१]

डा० वेबर ने सतर्क प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि महाभारत में जो रामोपाख्यान है वह यदि वाल्मीकि रामायण से प्रभावित नहीं भी है तब भी इतना ता कहा ही जा सकता है कि उस समय राम-कथा का कोई-न-कोई रूप अवश्य प्रचलित रहा होगा अतः राम-कथा अवश्य महाभारत से प्राचीन होगी।[२] डा० वेबर रामायण का मूल रूप दशरथ जातक को मानते हैं।

एफ० हेविट का मत—हेविट महोदय रामायण को इतिहास-ग्रन्थ मानते हैं। उनके अनुसार रामायण आर्यों की दक्षिण भारत पर विजय का काव्यमय वर्णन है और अपने प्रक्षिप्त अंशों के कारण इसे पौराणिक कथा का रूप मिल गया है। उनका एक दूसरा मत यह भी है कि रामायण की राम-कथा चन्द्रमा के उदय अस्त की प्रतीक है। कृष्ण पक्ष में १४ दिन जब चाँद दृष्टि से ओझल रहता है वही राम सीता के वनवास के १४ वर्ष हैं। चन्द्रमा का पूर्ण तिरोभाव रावण द्वारा सीता का हरण है। सीता की पुनः प्राप्ति चाँद का पुनः उदय है। कथा के बीच में अंधकारमय रात्रि की चन्द्र-नक्षत्र युक्त रात्रि पर विजय का एक और संकेत है वानरवंशी बालि की विजय, जो अपने आँधी-तूफान से नक्षत्रों को आच्छादित कर लेता है।[३]

ए० ए० मैकडानल का मत—ए०ए० मैकडानल राम-कथा को महाभारत और दशरथ जातक से पूर्व की मानते हैं। वह कहते हैं कि महाभारत में राम-कथा के अनेक पात्रों का उल्लेख स्वयं रामोपाख्यान में ही है परन्तु रामायण में महाभारत से सम्बन्धित कोई उल्लेख नहीं आया है।

मैकडानल का विचार है कि दशरथ जातक के लेखक को राम-कथा का उत्तरार्ध अर्थात् राम सीता का मिलन अवश्य ज्ञात था क्योंकि जातक कथा में भी राम और सीता दोनों का विवाह हो जाता है।

इसके अतिरिक्त रामायण का एक श्लोक भी पालि में रूपान्तर होकर दशरथ जातक में पाया जाता है परन्तु रामायण में महात्मा बुद्ध से संबन्धित कहीं कोई चर्चा नहीं हुई है अतः राम-कथा इन दोनों से ही पूर्व की रचना होनी चाहिए।[४]

सी० लासेन का मत—सी० लासेन का मत है कि रामायण आर्यों की दक्षिण विजय का रूपक है। परन्तु रामायण में वाल्मीकि ने कहीं भी इस प्रकार की चेष्टा नहीं की है जिससे यह प्रकट हो कि राम अपना राज्य विस्तार करना चाहते थे। वनवास के १४ वर्ष तो वह बिना ही किसी युद्ध के व्यतीत कर देते हैं और फिर

---

१. राम कथा : कामिल बुल्के, पृ० १०३

२. वेबर—आन दी रामायण : महाभारत का रामोपाख्यान

३. अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया : जे० आर० ए० एस० १८९०, पृष्ठ ७४४

४. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए० ए० मैकडानल

किष्किधापुरी तथा लंका का राज्य भी वह सुग्रीव और विभीषण को सौंप देते हैं अतः श्री लासेन का उपर्युक्त मत अधिक समीचीन नहीं प्रतीत होता ।

एच० याकोबी का मत—याकोबी महोदय का विचार है कि कौशल राज्य के चारणों में बहुत समय तक इक्ष्वाकुवंशीय राम के अनेक आख्यान प्रचलित रहे होंगे जिनको वाल्मीकि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा से एक सुन्दर काव्य में पिरो दिया । काव्य के नियमों से सर्वथा युक्त होने के कारण यह आदि काव्य कहलाया । इसके महत्त्व के समक्ष अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थों का महत्त्व कम हो गया और वे आज विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गए हैं । याकोबी के अनुसार रामायण किसी प्रकार का रूपक नहीं है बल्कि वह भारतीय (माईथालोजी) पुराणों पर अवलम्बित है । सीता का उल्लेख वेदों तथा गृह्य सूत्रों में उपलब्ध ही है । राम इन्द्र के अवतार हैं और उनका रावण से युद्ध ऋग्वेद के वृत्रासुर वध की छाया है । रावण द्वारा सीताहरण का पूर्व रूप ऋग्वेद में गायों का अपहरण है जिनका इन्द्र उद्धार करता है । मारुति और सरमा नाम भी ऋग्वेद में मिलते हैं । वृत्र के वध में इन्द्र मरुत पुत्रों की सहायता लेता है । सरमा नामक एक श्वान रसा नदी को पार कर गायों का पता लगाता है । प्रोफेसर याकोबी के विचार में संभवतः वाल्मीकि ने रामायण के हनुमान और राक्षसी सरमा की कल्पना वहीं से ली है ।[1]

डा० याकोबी का यह भी कथन है कि हनुमान कृषि सम्बन्धी कोई देवता थे । वह दक्षिण की ओर से जहाँ से वर्षा आती है सीता अर्थात् कृषि का शुभ सन्देश लेकर राम के पास पहुँचते हैं । निरुक्त में इन्द्र का एक नाम शिप्रवत भी है, इससे इन्द्र और हनुमान दो वर्षा के देवताओं के निकट सम्बन्ध का आभास मिलता है । सुमित्रापुत्र होने से लक्ष्मण का सम्बन्ध उन्होंने वैदिक मित्र से जोड़ा है । परन्तु याकोबी की इस कल्पना को श्री कामिल बुल्के ने सयुक्ति भ्रामक सिद्ध कर दिया है ।[2]

डा० वान नेगेनैल के अनुसार भी राम-कथा वैदिक साहित्य से ही निस्सृत हुई है । उनका विचार है कि ऋग्वेद में वर्णित पुरुरवा, उर्वशी आदि अप्सराओं का मनुष्यों के साथ विवाह करना राम-कथा का मूल बीज है । सीता का अलौकिक जन्म उनका अप्सरा होने की ओर निर्देश करता है । सीता पृथ्वी का मानवीकरण है और राम अथवा पृथु पृथ्वी का पुल्लिग ।[3]

ई० हाप्किन्स का भी यही मत है कि राम कथा वैदिक आख्यानों पर निर्भर है । जे० सी० ओमन डा० वेबर के इसी मत से प्रभावित हैं कि राम-कथा का मूल दशरथ जातक में खोजना चाहिए एवं सीताहरण तथा राम-रावण युद्ध यूनानी

---

१. डस रामायण : एच० याकोवी पृ० ८६, १२७
२. राम-कथा, पृ० १०६-७
३. जे० सी० ओमन : दी ग्रेट इण्डियन एपिक्स

कथानक से प्रभावित हैं। इन दोनों घटनाओं का वर्णन वाल्मीकि ने अपनी कलात्मक कुशलता द्वारा इतना अपना बनाकर किया है कि वे विदेशी प्रतीत नहीं होतीं।

रामायण का रावण शंकर का उपासक है तथा शिव अनार्यों के देवता हैं संभवतः द्रविड़ जाति के। अतः श्रोमन महोदय का मत है कि रावण एक द्रविड़ राजा था। रावण का दक्षिण भारत के अनार्यों में बहुत मान था। अपने इस मत की पुष्टि के लिए वह एक और प्रमाण देते हैं। उनको एक बार एक निम्न वर्ग की स्त्री मिली थी जिसके हाथ पर एक चित्र अंकित था जिसमें रावण सीता का हरण कर रहा था। उस स्त्री ने उनसे यह भी कहा कि वह कथा उसे अत्यन्त प्राचीन रूप में ज्ञात है।

ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत में रावण को भारतीय अनार्य जातियाँ सम्मान की दृष्टि से देखती थीं।

टालवायस व्हीलर का मत—टालवायस व्हीलर का मत है कि राम रावण का युद्ध ब्राह्मणों तथा बौद्धों के धर्म युद्ध का प्रतीक है। रामायण के प्रति उनके निम्न दृष्टिकोण हैं—

(क) राम के वनवास तक की कथा का आधार वैदिक साहित्य है।

(ख) यह एक ऐसे राम का वर्णन है जो दक्षिण भारत के शैव ब्राह्मणों का नेता है तथा भारत और लंका के राक्षसों का विरोध करता है। यह घटनाएँ उत्तर वैदिक काल की हैं।

(ग) राक्षस बौद्ध मतावलम्बी थे। राम-रावण का यह युद्ध बौद्धों के चरित्र को कलुषित करने के उद्देश्य से वाल्मीकि ने लिखा है।

(घ) वाल्मीकि ने राम को विष्णु का अवतार बनाने की चेष्टा की है।[1]

टी० व्हीलर की उपर्युक्त धारणा के आधार पर कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने पूर्व वैदिक कथा तथा उत्तर वैदिक काल की घटनाओं को लेकर अयोध्या के राम एवं दक्षिण विजेता राम दोनों को मिला दिया है।

पौरस्त्य चिंतकों के मत—कतिपय पाश्चात्य आलोचकों ने राम-कथा पर होमर का प्रभाव माना है परन्तु पौरस्त्य विद्वान् इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि इस कथा की जन्मभूमि भारत ही है, यह दूसरी बात है कि इसके विभिन्न अंशों का विकास भारत के विभिन्न भागों में हुआ है। बंगाली आलोचक दिनेशचन्द्र सेन, बौद्ध साहित्य के विश्लेषक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, त्र्यम्बक मुखी, वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, पंडित हीरालाल, रायबहादुर बैजनाथ आदि अनेक भारतीय विद्वानों की राम-कथा के मूल स्रोत के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् धारणाएँ हैं। दिनेशचन्द्र सेन रामायण का तीन विभिन्न कथाओं का गुम्फन मानते हैं। उनके अनुसार राम-कथा

---

१. हिस्ट्री ऑफ इंडिया : व्हीलर।

दशरथ जातक, दक्षिण भारत में प्रचलित रावण-आख्यान एवं हनुमान सम्बन्धी उपकरणों का सुन्दर समन्वय है। श्री त्र्यम्बक मुखी का अनुमान है कि रामायण एक नीति-ग्रन्थ है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने रामायण पर अनेक जातक कथाओं का प्रभाव दिखाने का प्रयास किया है। वी० आर० दीक्षितार ने रामायण में ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करते हुए वानर ऋक्ष आदि को दक्षिण-भारतीय जातियाँ माना है। पंडित हीरालाल ने इनका सम्बन्ध मध्यप्रदेश की गोड़ जाति से स्थापित किया है। रायबहादुर बैजनाथ का मत है कि रामायण का मूल रूप वैदिक साहित्य में निहित है। जयसुखराय पुरुषोत्तम राम जोशीपुरा ने राम-रावण युद्ध को प्रकाश तथा अंधकार का काल्पनिक प्रसंग माना है। एन०वी० थादानी की धारणा है कि रामायण के माध्यम से धार्मिक तथा सामाजिक आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। नीचे इन विद्वानों के विभिन्न मतों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

त्र्यम्बक मुखी का मत—भारतीय विद्वान् त्र्यम्बक मुखी के मतानुसार वाल्मीकि ने नीति शास्त्र को रोचक बनाने के लिए एक आदर्श व्यक्ति राम को चुन लिया है और इसी उद्देश्य से उन्होंने रामायण की रचना की है।[1]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन का मत—श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का मत है कि सारी रामायण दशरथ जातक, देवधम्म आदि जातकों को लेकर लिखी गई जान पड़ती है। जातक कथाएँ शुद्ध बौद्ध साहित्य हैं परन्तु अबौद्ध साहित्य पर इनका गम्भीर प्रभाव है। रामायण और महाभारत का उल्लेख न त्रिपिटक में है और न बुद्ध के समकालीन किसी ग्रन्थ में, परन्तु राजा शिवि का कथानक आदि अनेक कथाएँ महाभारत में हैं। रामायण में बुद्ध का नाम भी एक बार आया है।[2]

शक काल तक महाभारत और रामायण का भारत में न कोई अस्तित्व दिखाई देता है और न प्रचार। इन दोनों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में कहीं नहीं हुआ है। श्री आर० जी० भण्डारकर का अनुमान है कि रामायण पतंजलि के बाद की रचना होगी क्योंकि पतंजलि के महाभाष्य में राम का नाम कहीं नहीं आया है। उस समय तक के किसी शिलालेख में भी राम का नाम अंकित नहीं है।[3] इससे कम-से-कम इतना तो पता चलता ही है कि रामायण ने उस समय तक अपना वर्तमान रूप नहीं प्राप्त किया था।

श्री धम्मानन्दजी कौसम्बी की धारणा है कि रामायण के रामचन्द्र एवं उनकी अयोध्या नगरी दोनों ही भारतीय नहीं हैं। रामायण के अतिरिक्त किसी भी अन्य संस्कृत ग्रन्थ में अयोध्या का नाम नहीं आता, अतः रामायण की कथा की ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

---

१. धर्माकूत पुस्तक : त्र्यम्बक मुखी
२. जातक प्रथम भाग
३. वैष्णविज़्म और शैविज़्म, पृ० ६६

कौसल्यायन जी के अनुसार रामायण की कथा के आरम्भिक रूप का संकेत जातक कथाओं में ही विद्यमान है जिसे कालान्तर में संवार कर रामायण का रूप दे दिया गया है। उनका कहना है कि सर्वप्रथम पाँचवीं शताब्दी में बुद्ध घोष रामायण और महाभारत से परिचित प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार 'आख्यान का मतलब है भारत, रामायण आदि। वह कथा जहाँ हो रही हो वहाँ जाना ठीक नहीं है'। एक-दूसरे स्थान पर बुद्ध घोष ने भारत-युद्ध, सीता-हरण आदि को निरर्थक कहा है। जयद्दिस जातक में राम के दण्डकारण्य जाने का भी उल्लेख है। अतः यही समीचीन प्रतीत होता है कि इन अविकसित जातक कथाओं का पूर्ण विकास रामायण, महाभारत आदि काव्य-ग्रन्थों में हुआ है।[1]

कौसल्यायन जी के मत का विवेचन करने पर अधिक सम्भव यही प्रतीत होता है कि जातक कथाएँ तथा रामायण परस्पर एक-दूसरे के ऋणी न होकर किसी अन्य प्राचीन राम साहित्य परम्परा के ऋणी हैं। उस समय का अधिकांश साहित्य मौखिक रूप से प्रचलित रहा होगा एवं उसके बौद्ध तथा अबौद्ध दो स्पष्ट विभाग नहीं होंगे। उस समय प्रचलित आख्यानों ने स्वतन्त्र रूप से बौद्ध हाथों में पड़कर बौद्ध रूप और अबौद्ध कलाकारों के हाथों अबौद्ध रूप धारण कर लिया होगा।

दिनेशचन्द्र सेन का मत—दिनेशचन्द्र सेन राम-कथा के तीन पृथक्-पृथक् स्रोत मानते हैं—

(क) दशरथ जातक जो उत्तर भारत में प्रचलित था;

(ख) रावण सम्बन्धी आख्यान जो दक्षिण भारत में प्रचलित थे;

(ग) हनुमान सम्बन्धी सामग्री।

वाल्मीकि रामायण के मूल स्रोत जानने के लिए हमें पाली, प्राकृत तथा बंगाल के प्राचीन साहित्य पर एक दृष्टि डालनी होगी। बंगाली रामायणों में पूर्व-ऐतिहासिक काल में विकसित अनार्य सभ्यताओं के विकास के संकेत मिलते हैं। दशरथ जातक में सीता राम-लक्ष्मण की बहिन है। सीता का राम की बहिन होना राम-कथा की प्राचीनता की ओर संकेत करता है। प्राचीन काल में मिस्र, बैबीलोनिया आदि में इस प्रकार के विवाह विहित थे। भारत में शाक्यवंशियों में भी ऐसी रीति प्रचलित थी। कहा जाता है कि शाक्य वंश के किसी प्राचीन राजा ने अपने सभासदों से पूछा—'क्या वंश की पवित्रता बनाए रखने के लिए भाई बहन का विवाह सम्भव है?' सभासद 'शक्यते' ऐसा कहते हैं। यह कथानक उत्तरी भारत का है। राजकुमारी सीता का द्रविड़ राजा रावण द्वारा हरण तथा दो अनार्य जातियों के परस्पर सम्बन्ध का कथानक किस प्रकार इस जातक कथा में मिला दिया गया, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

---

१. जातक : प्रथम भाग

दशरथ जातक के अतिरिक्त अन्य जातकों से भी रामायण के कथानक में कतिपय समानताएँ हैं :

(क) साम जातक तथा वाल्मीकि रामायण के श्रवण आख्यान में सादृश्य है ।

(ख) वेस्संतर जातक तथा राम सीता के वनवास दृश्य में समानता है ।

(ग) शम्बुला जातक मे प्रेत की शम्बुला के प्रति उक्ति और रामायण में रावण की अशोक वन में सीता के प्रति वचनो में समानता है ।

जातक कथाएं सम्भवतः रामायण से प्राचीन हैं और ब्राह्मणों ने इस महाकाव्य की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए उसमें अनेक प्रक्षिप्त अश जोड़ दिए होंगे । उदाहरणाथ वाल्मीकि ने रामायण की रचना राम के जन्म से भी ७०,००० वर्ष पूर्व की थी ।

आचार्य हेमचन्द्र की जैन रामायण में राम कथा की अपेक्षा रावण तथा वानर कथाओं की प्रधानता है । ऐसा ज्ञात होता है कि द्रविड़ों में राम की अपेक्षा राक्षसों और वानरों का मान अधिक था । रावण का जो चरित्र-चित्रण इस रामायण में हुआ है उसमे वह एक ऋषि के समान श्रेष्ठ है । रावण ने अपनी तपस्या काल में जिस प्रकार काम तथा यक्षों की कुचेष्टाओं को जय किया है उससे तो उसका स्थान शंकर से भी उच्चतर हो जाता है । राम का प्रवेश जंन कथा मे बहुत बाद में हुआ है । प्रारम्भ के अनेक अध्याय केवल राक्षसों तथा वानरों के वर्णनों से ही भरे हुए है ।

ईसा पूर्व द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी में रचित लंकावतार सूत्र में राक्षस-राज रावण का गौतम बुद्ध के साथ वाद-विवाद का उल्लेख है । रावण की योग्यता और विद्वत्ता के दृष्टान्तो से यह सूत्र भरा पड़ा है । इसमें रावण एक अन्यतम विद्वान् है तथा सीता-हरण का कोई उल्लेख नही है । यह रावण महायान धर्म का पोषक है तथा राम की कीर्ति-दीप्ति इसके समक्ष अत्यन्त मन्द है ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कर्म-कीर्ति ने रावण के उज्ज्वल चरित्र को कलुषित करनेवाले ब्राह्मण लेखकों को बहुत बुरा कहा है ।

उत्तरी भारत में प्रचलित राम-कथा में पहले वानरों का कोई उल्लेख नहीं था परन्तु दक्षिणी भारत मे वानर सम्बन्धी अनेक आख्यान बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं । प्राचीन कथाओं के अनुसार वह राक्षसों के मित्र तथा सहायक थे ।

प्राचीन काल में संसार के अनेक भागों में वानर-पूजा होती थी । बैबिलोन, मिस्र, और जापान में वानर-पूजा का अत्यंत महत्त्व था । भारत में भी उस आदि युग में लोग वानरों की उपासना करते थे परन्तु कालान्तर में वैष्णव धर्मानुयायियों ने वानर-श्रेष्ठ हनुमान को उपास्य न रखकर स्वयं राम का उपासक बना दिया । वह वाल्मीकि रामायण में आकर केवल रामभक्त हनुमान रह गया है । हनुमान यदि केवल रामायण वर्णित रामसेवक ही होता तो उसके सम्मान में उसके उपासना

मन्दिरों का निर्माण प्रायः समस्त भारत में न होता। आज भारत में भरत, दशरथ आदि के, यहाँ तक कि अकेले राम के भी मन्दिर कहीं नहीं मिलते परन्तु हनुमान के मन्दिर स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। हनुमान की श्रेष्ठता के कारण ही उसे प्रायः सभी मतानुयायियों ने अपना बना लिया है। वह शैव भी है और बौद्ध भी।[1] प्राचीन कथानकों में वह वर्षा और समुद्र का देवता भी माना गया है।[2]

दिनेशचन्द्र सेन की धारणाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस समय चारणों द्वारा मौखिक रूप से सुनी हुई अनेक कथाओं को मिलाकर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की होगी। राम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए भी उन्होंने राम के चरित्र को अतिरंजित कर महान् बना दिया और रावण के अनार्य होने के कारण उसका चरित्र कलुषित कर दिया। संभवतः दो कथाओं के विशृंखलित भागों को मिलाने के लिए आदि कवि ने रावण द्वारा सीताहरण का नवीन अध्याय भी जोड़ दिया। राम-भक्ति को मान्यता प्रदान करने के लिए उन्होंने हनुमान, सुग्रीव आदि वानरों को भी उनका आज्ञाकारी सेवक बना दिया है।

वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार का मत—श्री वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने कहा है कि वाल्मीकि रामायण के वानर यथार्थ में वानर नहीं हैं। प्राचीन भारत तथा प्राचीन लंका में यक्ष और राक्षसों के समान उनकी भी एक जाति थी जो हरिगण कहलाती थी। उनकी अपनी सभ्यता और संस्कृति थी। वानर उनका उपासना-चिह्न था। बाद में वाल्मीकि ने इन हरिगणों को वास्तविक वानर ही बना दिया। कालान्तर में हरिगणों ने आर्य सभ्यता को अपना लिया था।[3]

कुछ वर्ष हुए 'नया हिंद' नामक पत्रिका में एक दक्षिणी भाई का पत्र मैंने पढ़ा था। उससे भी यही आभास होता है कि दक्षिण भारतवासी रावण तथा वानरों को अभी तक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उस दक्षिणी भाई ने लिखा था—

"आर्य पुराणों के मनगढ़ंत किस्सों में द्रविड़ जाति को बन्दर कहा गया है। द्रविड़ इतिहास में आनेवाली नारियाँ पतिव्रता थीं। आर्य लोग तो जानते ही नहीं पतिव्रता किस चिड़िया का नाम है। द्रौपदी का चरित्र तो अमेरिका तक में मशहूर है, उसके पाँच पति थे फिर भी वह पतिव्रता है।"

"रावण के जलाने से द्रविड़ों को दुःख होता है, वे लोग उसे अपनी जाति का वीर मानते हैं।"

"द्रविड़ कहते हैं—राम ब्राह्मणों का कठपुतला था। उसने छिपकर बालि-वध किया था और धोखे से रावण की बहिन ताड़का का वध किया था।"

---

१. शून्यपुराण, पृ० ९५
२. बंगाली रामायन्स : मैटिरियल फार वाल्मीकि रामायण : डी० सी० सेन
३. सम आस्पेक्टस ऑफ वानर कल्चर : इंडियन कल्चर

"यज्ञों के विरोधी द्रविड़ों को राक्षस या जंगली कहा गया, इसलिए हम रामायण को आग में जलाना चाहते थे।"

"रावण सीता को चुरा ले गया था। क्यों? बदला लेने के लिए। रावण द्रविड़ वीर था, कायर नहीं था। वह शास्त्रों का पंडित था। द्रविड़ों में स्त्री को अपना पति स्वयं चुनने का हक था। शूर्पणखा यदि राम या उसके भाई से शादी करना चाहती थी तो क्या उसकी यह सजा थी कि उसे बदशक्ल करके नाक-कान काट दिए जाएँ।·········विभीषण के विश्वासघात से रावण के मरने पर मंदोदरी कहती है, 'हाय पतिदेव! कुल परम्परा की लाज के लिए तुम शहीद हुए, सीता मुझसे सुन्दर तो नहीं थी। सीता से तुम्हें मोह न होने पर भी तुम्हें बदनाम होना पड़ा।"

पत्र के उपरोक्त अवतरणों से हम अनुमान लगा सकते हैं कि द्रविड़ जाति वाल्मीकि रामायण से अत्यन्त असन्तुष्ट है और वे उसे ब्राह्मणों की पक्षपातपूर्ण रचना मानते हैं।

डा० राधाकुमुद मुकर्जी का मत—डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने रामायण की रचना के दो उद्देश्य अनुमान किए हैं। उनका प्रथम अनुमान है कि रामायण आर्यों का दक्षिण के अनार्यों पर अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की छाप दिखाने का प्रयास है। दूसरे, वह यह भी अनुमान करते हैं कि राम विष्णु के अवतार हैं एवं रावण शंकर का उपासक, अतः रामायण संभवतः शिव की अपेक्षा विष्णु का महत्त्व प्रदर्शित करने का प्रयास है। डा० मुकर्जी के विचारानुसार इन्हीं दोनों उद्देश्यों को लक्ष्य करके वाल्मीकि ने ऋग्वेद, आरण्यक तथा उपनिषदों आदि से प्राचीन आख्यानों को लेकर उन्हें एक व्यवस्थित रूप देकर रामायण की रचना की है।[१]

मुकर्जी महोदय के द्वितीय अनुमान के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रामायण के राम विष्णु के अवतार नहीं हैं अतः रामायण की रचना साम्प्रदायिक उद्देश्य को लेकर नहीं हुई है।

पंडित हीरालाल का मत—पंडित हीरालाल ने अपने मध्यप्रदेश के इतिहास में लिखा है, "मध्यप्रदेश में गोंडों की संख्या अधिक है। गोंड का अर्थ है पशु। पशुओं और गोंडों की स्थिति में बहुत अधिक अन्तर नहीं था इसलिए जब आर्यों से इनका संपर्क हुआ तब इन लोगों को असभ्य समझकर इनको तथा इनके अन्य भाइयों को बंदर, भालू, राक्षस इत्यादि की उपमा दे डाली······यद्यपि आज गोंड यह नहीं जानते कि रावण कौन था। परन्तु अभी तक वे अपने को रावणवंशी बतलाते हैं। कोई चार सौ वर्ष पूर्व तक वे अपने सिक्कों पर अपने नाम के आगे पौलस्त्य वंश अंकित करते रहे।[२]

१. हिन्दू सिविलिजेशन : सिविलिजेशन ऑफ दी एपिक्स, पृ० १४०
२. मध्य प्रदेश का इतिहास, पृष्ठ ६

ऐसा मालूम पड़ता है कि प्राचीन काल में रावण नाम का कोई ऐतिहासिक व्यक्ति अवश्य रहा होगा जिसका वास्तविक इतिहास आज उपलब्ध नहीं है। सच तो यह है कि राम की महिमा ने जनता को इतना आक्रान्त कर लिया है कि उसने रावण का इतिहास सुरक्षित रखने की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया है।

उपरोक्त इतिहास से हमें यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल में गोंड जाति के लोग राज्य-कार्य करते थे तथा वस्त्राभूषण धारण करते थे। उनके शरीर पर बड़े-बड़े रोम हुआ करते थे। उनका पत्थरों से लड़ना, जंगलों में रहना आदि उनकी प्राचीन सभ्यता के प्रतीक हैं। आज भी वानर (गोंड) जाति के वंशधर विद्यमान हैं। उनके पिचके गाल, उभरी हुई गण्डास्थि, अंदर घुसी हुईं आँखें, बैठी नाक, चपटा चेहरा और लम्बी पतली उंगलियां वानरों से समता करती हैं। उनकी स्त्रियाँ आज भी अपने उन पूर्वजों की कथाएँ कहती हैं जिन्होंने राम के साथ लंका जाकर युद्ध किया था। श्री एम० के० वानर ने मौडर्न रिव्यू के अपने लेख में अपने को सुग्रीव आदि वानरों का वंशधर सिद्ध किया है।

वैशेषिक सूत्रों पर 'रावण भाष्य' प्राचीनतम भाष्य है। उसके अष्टम शतक में रावण के वैशेषिक पंडित होने का उल्लेख है। रावण के भाष्य लिखने की बात इतनी अधिक प्रसिद्ध थी कि उसको राम का प्रतिनायक होने का श्रेय दिया गया। सम्भव है नास्तिक मत का प्रतिपादन होने के कारण 'रावण भाष्य' लुप्त कर दिया गया हो। यह भी सम्भव है कि रावण शैव मत का अनुगामी था अतः शैव मत का विस्तार नियंत्रित करने के उद्देश्य से विष्णु मत के अनुगामियों ने उसका नाश कर दिया हो।

रायबहादुर बैजनाथ का मत—रायबहादुर बैजनाथ के अनुसार रामायण कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि उसमें पर्याप्त मात्रा में इतिहास का समावेश है। वह लिखते हैं—'अन्य देशों के महाकाव्यों के विपरीत भारतीय महाकाव्य धार्मिक भीत पर खड़े हैं। रामायण की कथा को एक रूपक अथवा आर्य सभ्यता के प्रचार के लिए आर्यों का दक्षिण पर आक्रमण माना जाता है परन्तु पुस्तक के अन्तःसाक्ष्यों से राम, सीता, रावण, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि सब ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। राम ने रावण का वध किया परन्तु आर्य सभ्यता के चिह्न कहीं नहीं छोड़े।...कुछ लोगों का यह विचार कि सीता खेत की सीता, राम चन्द्र, हनुमान मरुत, रावण वृत्र और सीता हरण में गायों के हरण की ओर संकेत हैं, ठीक नहीं है। वाल्मीकि ने जिस तरह राम का समकालीन बनकर उस समय का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि पूरी रामायण उनके मस्तिष्क की कल्पना नहीं है।[१]

'महावंश' सिंहल का ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उसके परिचय में आनन्द कौसल्यायन जी ने लिखा है कि सिंहल या लंका का नाम लेते ही राम रावण की

१. हिन्दुइज़्म ऐन्सियन्ट एण्ड मॉडर्न, पृ० १९—२०

कथा याद आती है। सिंहल के इतिहास में कहीं भी राम-रावण की कथा के उल्लेख नहीं हैं। सिंहल में विजय के पहुँचने से पहले वहाँ यक्षों की आबादी थी जिन्हें परास्त कर विजय ने लंका में अपना राज्य स्थापित किया था। लंका के इतिहास से रावण की लंका और उसके विजेता राम का कोई समर्थन नहीं होता। सिंहल में बहुत पीछे प्रसिद्ध हुए 'सीता एलिया' आदि कुछ जगहों के नाम राम-रावण के इतिहास के साक्षी समझे जाते हैं।[1]

विजय के वंश में कुश, महाकुश, नवरथ, दशरथ, राम आदि नाम आते हैं, इससे अनुमान होता है कि यह नाम या तो ऐतिहासिक हैं अथवा यह इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि हर धर्म के अंदर मिल जाते हैं। शाक्य राजकुमार राम का उल्लेख और उनका बसाया नगर रामगोण सिंहल में अभी तक पाया जाता है।[2]

बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व जनक नामक एक राजा मिथिलापुरी में राज्य करता था। संभव है आधुनिक जनकपुर उसी राजा जनक का बसाया हुआ हो। रिह्स डेविड ने 'बुद्धिस्ट इंडिया' में कहा है कि रामायण की रचना बौद्धों के विरोध में नहीं हुई है क्योंकि जातक कथाओं में राम के प्रति समुचित आदर की भावना है।[3]

जयसुखराय पुरुषोत्तमराय जोशीपुरा का मत—जयसुखराय पुरुषोत्तमराय जोशीपुरा की उक्ति नवीन परन्तु बड़ी विचित्र है। उनके मत के अनुसार रामायण में वर्णित सुरासुरों के संग्राम अंधकार तथा प्रकाश के काल्पनिक प्रसंग हैं। सृष्टि के चमत्कारों से प्रभावित होकर यह सरस और चामत्कारिक रूपक है।[4]

आगे चलकर वह लिखते हैं—"राम (सूर्य) उत्तर की ओर रहकर सुख देते हैं। दक्षिण दिशा में जाने पर वह त्रसित होते हैं। सीता (शुभ्र-प्रभा) का अपहरण होता है। राक्षस (अंधकार) उसका अपहरण करता है। राम पाताल में महि के द्वारा जाते हैं (दक्षिण दिशा में)। राक्षसों का नाश कर सीता वापस मिलती है और उत्तर की ओर जाकर राम सुखदान करते हैं। दक्षिण में छः माह सोने वाला कुम्भकर्ण है। राम के दक्षिण जाने पर वह जागता है और मारा जाता है। सूर्य के आने पर अंधकार नष्ट होता है। यह कल्पनाएँ उत्तर-ध्रुव और दक्षिण-ध्रुव की हैं। दक्षिण में छः मास सूर्य के जाने तक अंधकार रहेगा।

"सूर्य की संज्ञा दिवस पुत्र है। इससे दशरथ की कल्पना होती है। दश दिशाओं में (रथ) रमणीयता गमन सुलभ करने वाला दिन है। प्रातःकाल सूर्य के ऊपर आने पर ३० दिन का उषा-काल समाप्त होने पर दीर्घ प्रतीक्षा के उपरांत राम का

---

१. महावंश : आनन्द कौसल्यायन द्वारा लिखित परिचय।
२. महावंश : दूसरा परिच्छेद, पृष्ठ ८-९।
३. बुद्धिस्ट इंडिया : रिह्स डेविड्स।
४. अंग्रेजी साहित्य अने पुराण कथा, पृष्ठ ३१।

जन्म होता है। राम के दक्षिण जाने पर उत्तर में दिन (दशरथ) व्याकुल होकर प्राणों का त्याग कर देते हैं।

"दक्षिण की ओर दशमुख है। रात्रि का अंधकार दशों दिशाओं में व्याप्त है। उसकी अवधि भी कुम्भकर्ण की षट्मासिक निद्रा के उपरांत पूरी हो जाती है।

"राम के निज धाम जाने के पूर्व ही उनकी सीता भूमि के उदर में प्रवेश करती है फिर लक्ष्मण और अंत में राम परलोक गमन करते हैं।"[1]

अपनी प्रभा के नष्ट हो जाने पर सूर्य का इतने दिन जीवित रहकर प्रजा को सुखदान कर सकना एवं जोशीपुरा जी के अनुसार सूर्य की सीता का जन्म पृथ्वी से न होकर नभ से होना चाहिए था परन्तु यह सत्य नहीं है। अतः उनका यह रूपक केवल एक वैचित्र्यपूर्ण कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम पड़ता।

एन० वी० थादानी का मत—श्री एन० वी० थादानी ने भी एक स्वतन्त्र मत का प्रतिपादन किया है। वह कहते हैं कि विचारों की उच्चता, सभ्यता का विकास, कला और विज्ञान का उत्थान आदि आदर्श मानव के वास्तविक जीवन में आ सकें इसलिए राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के द्वारा उनका निरूपण किया गया है। आदि कवि ने अपनी काव्य कला से इन आदर्शों को जीते-जागते नायकों में समन्वित कर दिया है। प्रस्तुत लेखक का यह भी अनुमान है कि प्राचीन काल में भारत में विभिन्न मतों तथा धर्मों के प्रणेताओं का जन्म हुआ था। काल-गति से उनकी जीवन कथाएँ विस्मृत हो गईं, केवल सिद्धांत बच गए। राम आदि नायक उन सिद्धांतों के तथा आदर्शों के ही आदर्श रूप हैं।[2]

ई० मूर तथा येदातेरे सुब्बराव के अनुसार राम कथा एक दार्शनिक शास्त्र है।[3]

निष्कर्ष—राम कथा की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित एक मत नहीं है। उपर्युक्त अनेक विद्वानों के मतों के विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि राम कथा सत्य एवं कल्पना का अद्भुत मिश्रण है। उत्तर भारत में राम सम्बन्धी अनेक आख्यान प्रचलित थे तथा दक्षिण भारत में अनार्य जंगली जातियों में रावण, सुग्रीव आदि अनार्य राजाओं की अनेक कथाएँ प्रचलित रही होंगी। वर्षों तक मौखिक रूप से प्रचलित रहने के कारण इनमें चारणों के द्वारा अनेक कल्पनाओं का समावेश होना स्वाभाविक था। बाद मे वाल्मीकि ने जब अपने समय की उन्नत संस्कृति एवं सभ्य वातावरण के युग में राम-काव्य की सृष्टि की उस समय इन आख्यानों के विविध रूप रहे होंगे। वाल्मीकि ने अपनी बुद्धि के अनुसार

---

१. सातवलेकर : त्रिवेद निरूपण, पृष्ठ ५०—५२।

२. दी मिस्ट्री ऑफ दी महाभारत : एन० वी० थादानी।

३. हिन्दी पैवेयान, पृ० ३२९ और क्वार्टरली जर्नल ऑफ मिथिक सोसायटी, भाग २०, पृ० ५१४।

उनका संग्रह किया तथा अपनी कल्पना शक्ति के समन्वय से विश्रृंखलित भागों को श्रृंखलाबद्ध कर दिया। वाल्मीकि उत्तर भारत के ब्राह्मण ऋषि थे, साम्प्रदायिकता से मुक्त होकर भी वह अनार्यों को यद्यपि उतनी उदार दृष्टि से नहीं देख पाए तथापि परवर्ती ब्राह्मणों की संकुचित भावनाओं ने उन्हें अभी स्पर्श नहीं किया था। इसीलिए वह रावण को महात्मा भी कह सके हैं और बालि का छलपूर्वक वध करने के कारण राम को दोषी भी ठहरा सके हैं। सीता के जन्म को वह भी एक निश्चित रूप न दे सके। सीता का जन्म तो अभी तक राम-कथाओं में एक रहस्य ही बना हुआ है एवं इस सम्बन्ध में परवर्ती साहित्य में अनेक विचित्र कल्पनाएँ कर ली गई हैं।

वर्षों तक वाल्मीकि रामायण भी मौखिक रूप से चलती रही, इसलिए शनैः-शनैः उसमें भी अनेक प्रक्षिप्त अंश आ गए। वैष्णव मत के अनुयायियों ने उसमें दिन-दिन अधिक वैष्णव भावनाओं का समावेश कर विष्णु अवतार की भावना सम्मिलित कर दी। समय के अनुसार सामाजिक मान्यताओं में जो धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था वह भी स्वतः इसमें प्रविष्ट हो गया। इन प्रक्षेपों के कारण आज मूल रामायण का पता लगाना अत्यन्त कठिन हो गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राम-कथा का मूल रूप प्राचीन काल से प्रचलित अनेक लोक कथाओं तथा उसका विकसित रूप रामायण में सुरक्षित है। संभव है रामायण से पहले भी किसी राम-काव्य की रचना हुई हो जिसकी दीप्ति इस महान् काव्य के समक्ष क्षीण पड़ गई और आज उसका कोई संकेत भी अवशिष्ट नहीं रहा है।

वाल्मीकि ने जिस आदर्श मानव राम की प्रतिष्ठा की थी वह जनता को इतना अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ कि वह उसके अंतर में बस गया तथा वाल्मीकि को आधार मानकर सहस्रों रामकाव्यों की रचना हुई। देश, विदेश, सर्वत्र जन-जन के मानस में वह स्थायी रूप से बस गया। उत्कृष्ट काव्यों तथा सरल लोकगीतों सभी रूपों में इसने अतुल सम्मान पाया।

रामकथा का विकास—वैदिक साहित्य में आख्यान, इतिहास तथा पुराणों को पंचम वेद कहा गया है "इतिहास पुराणं पंचम वेदानां वेद"[1]—धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर इनका पाठ हुआ करता था। राजसी सूत 'नाराशंसी' गाथाओं की रचना कर, राजदरबारों में तथा कुशीलव जनसाधारण में इन गीतों का प्रचार किया करते थे। राम कथा सम्बन्धी अनेक गाथाएँ वाल्मीकि के पूर्व प्रचलित हो चुकी थीं इसके स्पष्ट संकेत सर्वप्रथम हमें जातक साहित्य में मिलते हैं।[2] राम इक्ष्वाकुवंशीय नरेश थे अतः सम्भव है कि राम कथाओं की सृष्टि इक्ष्वाकुवंशीय सूतों ने ही की हो। कालांतर में भिन्न-वंशीय सूतों ने अपनी कल्पना से श्रोताओं की रुचि को लक्ष्य करके इन गाथाओं की कलेवर वृद्धि की होगी एवं इस प्रकार राम सम्बन्धी स्फुट

१. छान्दोग्य उप० ७, १, २।
२. देखिये राम कथा : कामिल बुल्के, दशरथ जातक की समस्या, पृ० ७५—१०१।

41470

आख्यानों को लेकर एक विस्तृत साहित्य की रचना हुई होगी। इन गाथाओं की व्यापकता तथा प्रसिद्धि के कारण इनका प्रचार भी हुआ परन्तु कोई निश्चित प्रमाण न मिलने के कारण इनके रचना काल के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। इन्हीं स्फुट गाथाओं का संकलन कर संभवतः आदि कवि ने रामायण की रचना की। यह आदि कवि कौन था, इस सम्बन्ध में अश्वघोष के बुद्ध चरित्र का एक अवतरण उल्लेखनीय है—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्मम्।
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः॥[1]

अर्थात् जिस काव्य की रचना करने में महर्षि च्यवन असमर्थ रहे, वाल्मीकि ने उसे ही काव्य रूप में प्रस्तुत किया। अश्वघोष के उपर्युक्त कथन से केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि वाल्मीकि से पूर्व च्यवन नामक किसी ऋषि ने यह प्रयास किया भी हो तो वह इतना श्रेष्ठ नहीं था कि वाल्मीकि रामायण की तुलना में ठहर सके। वाल्मीकि के काव्य-सौन्दर्य से प्रभावित जनता उसको सहज ही भूल गई होगी। वाल्मीकि के पूर्व इस आदि राम काव्य का मौलिक कलेवर कितना था इसका भी कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं मिलता। इसके विकास के कई भिन्न सोपान माने जाते हैं—

१. सर्वप्रथम इसमें पाँच काण्ड थे, प्रथम तथा सप्तम काण्ड बाद में जोड़े गए।
२. अवतार भावना कालांतर में वैष्णवों ने जोड़ दी है।
३. राम, रावण तथा हनुमान सम्बन्धी स्वतन्त्र आख्यानों के समन्वय से इसकी रचना हुई है।
४. तीन खण्डों में इस कथा का विकास हुआ—
   (क) आरम्भ में राम को हिमालय प्रदेश में निर्वासित किया गया। सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ जाते हैं,
   (ख) वनवास का स्थान गोदावरी के तट पर हुआ और राम ने आदिवासियों के आक्रमणों से तपस्वियों की रक्षा की,
   (ग) सिंहल द्वीप की विजय का वर्णन इसमें जोड़ा गया।

उपर्युक्त मतों को श्री कामिल बुल्के ने सतर्क निर्मूल सिद्ध किया है। उनके अनुसार उस समय प्रचलित स्फुट आख्यान-काव्य के आधार पर ही आदि रामायण की रचना हुई थी।[2]

आदि रामायण में वस्तुतः क्षत्रिय राजकुमार राम तथा राजकुमारी सीता की कथा ही प्रधान है अन्य पात्र उनके चरित्र को विकसित करने के उपकरण मात्र

---

१. बुद्ध चरित्र : १।४३।
२. कामिल बुल्के : राम कथा, पृ० १३६—३८।

हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं जो अपने दैवी गुणों से संसार में लौकिक कर्म करते हुए अन्त में स्वर्ग लोक को प्रस्थान करते हैं। उनमें कर्म प्रधान है और धर्म गौण; अतः जैसे भारत में धार्मिक अनुष्ठानों तथा साम्प्रदायिक मतभेदों का विकास हुआ रामायण की मूल कथा में भी तदनुसार प्रक्षिप्त अंश जुड़ते गए। दीर्घकाल तक मौखिक रूप से इसका प्रचलन होने के कारण यह कार्य और भी सुगम हो गया। भवभूति के समय में रामायण सर्गों के स्थान पर अध्यायों में विभक्त थी परन्तु कालिदास के समय उसका वर्तमान रूप ही प्रचलित था, क्योंकि रघुवंश में कालिदास ने रामायण के ही काण्ड-क्रम का अनुसरण किया है। इससे अनुमान होता है कि रामायण के विकासक्रम में एक ऐसा समय अवश्य आया होगा जब इसका आद्योपान्त रूपान्तर किया गया था। रामायण के विकास पर ब्राह्मणों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। ब्राह्मणों ने आदि ग्रन्थ में अपनी ओर से इतनी अधिक सामग्री मिला दी है कि उसके मूल रूप को खोज निकालना अत्यन्त कठिन हो गया है। रामायण में अवतार भावना भी बहुत बाद में जोड़ी गई है। आदि काव्य के आदि राम यथार्थ में अवतार नहीं थे वह केवल दैवी गुणों से संभूत श्रेष्ठ पुरुष थे। उन्होंने देवत्व से उतरकर नर देह धारण नहीं किया था किन्तु नर रहकर ही अपने गुणों से देवत्व की समता की थी। बाद में बौद्ध धर्म के अनवरत विकास को देखकर संभवतः ब्राह्मणों ने आर्य धर्म की रक्षा करने के लिए महात्मा बुद्ध की तुलना में विष्णु को सर्वशक्तिमान देवता स्वीकार कर मर्यादा के प्रतीक राम को उसका अवतार बना दिया। इस प्रकार राम पुण्य के प्रतीक तथा प्रतिनायक रावण पाप के प्रतीक बना दिए गए। महाभारत से स्पष्ट पता चलता है कि राम कथा का प्रसार कौशल से आगे पश्चिम में भी हो रहा था। हरिवंश से यह भी पता चलता है कि उस समय रामकथा को लेकर नाटक खेले जाते थे।[1] राम-कथा की व्यापकता तथा राम के उदात्त गुणों से प्रभावित होकर बौद्धों ने राम को बुद्ध का एक पूर्व जन्म मान लिया तथा जैनियों ने अपने तीर्थंकर बलदेव की जीवन घटनाओं का आरोपण राम में कर लिया। शनैः-शनैः रामकथा की लोकप्रियता ग्राम, नगर, प्रान्त, देश सबकी सीमा पार करती हुई अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक पहुँच गई। अनेक देशी-विदेशी काव्यकारों ने राम कथाओं की रचना करने में अपना सम्मान समझा एवं उसकी अविच्छिन्न पुनीत धारा आज पर्यन्त निर्बाध गति से प्रवाहित होती हुई राम-प्रेमियों को सुख प्रदान कर रही है।

राम-कथा की मुख्य घटनाओं के बहुमुखी रूप—वाल्मीकि रामायण के द्वितीय से षष्ठ काण्ड तक कथा में जो काव्य-सौष्ठव और तारतम्यता पाई जाती है उसने राम-कथा प्रेमियों के अन्तर में इतनी गहरी नींव जमा ली है कि परवर्ती कवि उसमें सहज ही कोई परिवर्तन न कर सके परन्तु प्रथम तथा सप्तम काण्ड की कथा-वस्तु पहले से ही अनिश्चित एवं शिथिल थी इसीलिए इन दो काण्डों में प्राचीन काल से

---

१. विष्णु पुराण : पर्व अध्याय, ९३।

ही अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। प्रत्येक युग की सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव भी इन दो काण्डों की कथा पर सर्वाधिक पड़ा है।

रामायण के बालकाण्ड की कथावस्तु में राम जन्म, रामावतार के अनेक कारण, दशरथ के विवाह तथा संतति, राम-सीता विवाह, सीता जन्म आदि प्रमुख घटनाएँ भिन्न-भिन्न रूप धारण कर काव्य रसिकों के समक्ष आई। कृष्ण की बाल तथा विलास लीलाओं के अनुकरण पर इस काण्ड में राम की बाल लीलाओं एवं विलास क्रीड़ाओं के भी बहुमुखी चित्र राम कवियों ने प्रस्तुत किए।

राम का जन्म तथा उनके अलौकिक कार्य

विभिन्न राम-काव्यों में राम जन्म के सम्बन्ध में अलौकिक घटनाओं का समावेश मिलता है। अध्यात्म रामायण, पदमपुराण, आनन्द रामायण, रामचरित मानस, रामलिंगामृत, राम रहस्य आदि काव्यों में राम जन्म लेते ही माँ कौशल्या को अपना विष्णु रूप दिखलाते हैं। आरम्भ में भागवत पुराण में कृष्ण अपने माता-पिता को विष्णु रूप दिखलाते हैं। संभवतया वहीं से यह वर्णन राम साहित्य में आया है। कृष्ण साहित्य के आधार पर ही अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, राम रहस्य, आदि में बालक राम की उद्दण्डता के अनेक चित्र जैसे माखन चोरी, पात्र भंजन आदि मिलते हैं। सूर सागर के अनुकरण पर तुलसी की कवितावली तथा गीतावली में शिशु राम अनेक बाल क्रीड़ाएँ करते हैं।

पद्मपुराण, सत्योपाख्यान एवं कृतिवास की बंगला रामायण में राम शैशव काल में अनेक राक्षसों का वध करते हैं, जो अनेक प्रकार के छद्म वेशों में आते हैं। योगवाशिष्ठ तथा उदार राघव में राम विरक्ति की कथा भी पाई जाती है।

विभिन्न राम-कथाओं में राम द्वारा अहिल्योद्धार के अनेक रूप पाए जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में अहिल्या शिला न बनकर अदृश्य हो जाती है तथा अवधि की समाप्ति पर राम उनका उद्धार करते हैं। अहिल्या के शापवश शिला बन जाने के उल्लेख, रघुवंश, नृसिंह पुराण, स्कंद पुराण, आनन्द रामायण, गीतावली, सत्योपाख्यान, मानस आदि परवर्ती साहित्य में मिलते हैं जहाँ वह राम की पदरज के स्पर्श से स्वर्ग प्राप्त करती हैं। इसके अतिरिक्त महानाटक, रामलिंगामृत, कश्मीरी रामायण, आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण, स्कंद पुराण, जानकी परिणय, आदि में भी किंचित् परिवर्तनों के साथ राम अहिल्या-उद्धार का कार्य करते हैं।

अवतार भावना—वाल्मीकि रामायण में दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं और विष्णु अपने चारों अंशों से उनके चार पुत्रों में उत्पन्न होने का अभयदान देते हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख अनेक रामकथाओं में मिलता है परन्तु पायस विभाजन के सम्बन्ध में अनेक अन्तर पाए जाते हैं। यह पायस कहीं विष्णु और कहीं अग्नि देते

हैं। इस पायस को प्राप्त कर दशरथ की तीनों रानियाँ चार पुत्रों को जन्म देती हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख रघुवंश, भट्टिकाव्य, रामायण काकाविन, जानकी हरण, सेरी राम, राम कियेन, पद्म पुराण, अध्यात्म रामायण, रामचरित मानस आदि में मिलता है। आनन्द रामायण के अनुसार कैकेयी के हाथ से एक पक्षी ने पायस का कुछ भाग छीन कर अंजनी के मुख में गिरा दिया जिससे हनुमान की उत्पत्ति हुई। कतिपय रामकथाओं में इस पायस से सीता तथा विभीषण जन्म के भी उल्लेख मिलते हैं।

राम कथा के प्रथम विकास सोपान में विष्णु के रामावतार का कारण रावण वध था परन्तु कालांतर में अनेक वरदानों तथा शापों की कथाएँ इसमें सम्मिलित कर दी गईं जिनमें स्वयंभू-मनु को विष्णु का वरदान, भृगु द्वारा विष्णु को अनेक शापों, वृन्दा और नारद के शाप आदि कथाएँ उल्लेखनीय हैं।

आरम्भ में राम विष्णु के अंशावतार थे परन्तु बाद में वह विष्णु के पूर्णावतार माने जाने लगे। विष्णु धर्मोत्तर पुराण तथा नारद पुराण में चारों भाई चतुर्व्यूह के रूप में आविर्भूत हैं। तिब्बती रामायण में राम विष्णु और लक्ष्मण विष्णु के पुत्र के अवतार माने गए हैं। अद्भुत रामायण में राम विष्णु के अंशावतार, भरत तथा शत्रुघ्न विष्णु की दक्षिण और वाम भुजा एवं लक्ष्मण शेष के अवतार हैं।

राम के साथ शनैः-शनैः सीता में लक्ष्मीत्व की भावना का भी विकास हुआ। हरिवंश और भागवत पुराण में सीता तथा लक्ष्मी अभिन्न हैं। अध्यात्म रामायण में सीता योगमाया तथा परमशक्ति मानी गई हैं। सौर पुराण में पार्वती सीता का तथा राम जातक में इन्द्राणी सीता का जन्म लेती हैं।

दशरथ के विवाह—आनन्द रामायण में रावण कौशल्या का हरण करता है और तिमिंगल की रक्षा में छोड़ देता है। बाद में दशरथ कौशल्या से गांधर्व विवाह करते हैं। साकेत जाकर दशरथ, सुमित्रा, कैकेयी तथा अन्य सात सौ स्त्रियों से भी विवाह करते हैं।

पउमचरिउ में कैकेयी स्वयंवर में दशरथ का वरण करती है। दशरथ उसके अतिरिक्त अन्य तीन रानियों से भी विवाह करते हैं। सत्योपाख्यान में नारद तथा योगिनी की सहायता से दशरथ और कैकेयी का विवाह होता है। कैकेयराज इस शर्त पर अपनी कन्या देना स्वीकार करते हैं कि दशरथ के पश्चात् उनकी पुत्री का पुत्र राज्य प्राप्त करेगा।

सेरी राम, हिकायत महाराज रावण, सेरत काण्ड में दशरथ वलियापरी से विवाह करते हैं। अधिकांश विदेशी रामकथाओं में दशरथ की दो पत्नियों का ही उल्लेख है परन्तु वाल्मीकि के आधार पर भारतीय रामायणों में प्रायः दशरथ की तीन ही रानियाँ हैं।

पउमचरिउ तथा दशरथ कथानम में दशरथ की चार रानियाँ हैं। कौशल्या का नाम अपराजिता है और शत्रुघ्न की माता सुप्रभा है। जैन उत्तर पुराण में राम की माता सुबाला, तथा लक्ष्मण की माता कैकेयी है।

उत्तर रामचरित, स्कंद पुराण, पद्मपुराण तथा राम जातक में दशरथ पुत्री शान्ता का उल्लेख आया है। हिन्देशिया के सेरी राम में शान्ता के स्थान पर किकुवी और चन्द्रावती की बंगाली रामायण में ककुआ का नाम दिया गया है। दशरथ जातक में दशरथ की पटरानी के राम, लक्ष्मण और सीता तीन संतानें थीं। उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरी महिषी से भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

राम-सीता विवाह—वाल्मीकि रामायण में राम धनुष तोड़कर सीता का वरण करते हैं। इस रामायण का आधार लेकर कुछ राम-कथाओं में सीता स्वयंवर के मनोरम वर्णन हैं। कुछ कथाओं में राम स्वयंवर आयोजन के बिना ही धनुष तोड़ते हैं और कुछ में पारस्परिक आकर्षण के फलस्वरूप प्रणय-सूत्र में बंध जाते हैं।

उत्तर पुराण में राम-लक्ष्मण, विश्वामित्र के स्थान पर जनक के यज्ञ की रक्षा करते हैं और जनक पुरस्कार स्वरूप राम को सीता सौंप देते हैं। तिब्बती रामायण में राम वन में कृपकों द्वारा पालिता सीता से विवाह करते हैं। खोतानी रामायण में वनवास के समय राम तथा लक्ष्मण दोनों ही सीता से विवाह कर लेते हैं। दशरथ जातक में सीता राम की सहोदरा है जिनसे बाद में वह विवाह कर लेते हैं।

धनुर्भंग करके सीता को प्राप्त करने के उल्लेख महावीर चरित, अनर्घ राघव, सत्योपाख्यान, रघुवंश, भट्टि काव्य, सेरी राम, रेआमकेर तथा राम कियेन आदि में मिलते हैं। कश्मीरी रामायण में शिव जनक को इस शर्त पर धनुष देते हैं कि जो तोड़ेगा वही सीता से विवाह का अधिकार पा सकता है। पउमचरिउ में जनक के पास दो धनुष हैं, राम ने व्रजावर्त और लक्ष्मण ने सागरावर्त नामक धनुषों को चढ़ाया। आनन्द रामायण में सीता धनुष को उठा लेती हैं इसलिए जनक प्रण करते हैं कि जो उस धनुष को चढ़ायेगा वही सीता का पति होगा।

कुछ कथाओं में सीता स्वयंवर में रावण स्वयं आता है अथवा दूत द्वारा अपना संदेश भेजता है। बालरामायण, प्रसन्नराघव, आनन्द रामायण, रामलिंगामृत, महावीर चरित, अनर्घराघव, श्रीमद्देवीभागवत, मानस, रामचद्रिका आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

सेरत काण्ड, सेरीराम, हिकायत महाराज रावण में राम स्वयंवर में क्रमशः सात और चालीस वृक्षों का छेदन कर सीता को प्राप्त करते हैं। सेरी राम में राम मूर्तियों के बीच जाकर सीता का पता लगाते हैं।

महावीर चरित, जानकी हरण, मैथिली कल्याण नाटक, प्रसन्न राघव, मानस आदि में राम सीता के पूर्वानुराग के वर्णन हैं। राम कियेन में राम जनकपुरी जाकर

महल के झरोखे से सीता को देखते हैं और दोनों में प्रेम उत्पन्न होता है। अनेक लोक गीतों में भी परस्पर आकर्षण के कारण राम सीता का विवाह होता है।

सीता का जन्म—रामकथा के समस्त पात्रों में सीता की उत्पत्ति अत्यन्त संदिग्ध है। सीता के जन्म के सम्बन्ध में राम काव्यकारों ने विभिन्न कल्पनाएं की हैं। रामायणीय सीता पर कृषि देवता सीता का भी प्रभाव पड़ा है। सीता का सम्बन्ध पृथ्वी से होने के कारण सीता को अधिकांश अयोनिजा माना गया है। राम कथाओं में जनक, रावण तथा दशरथ तीनों ही सीता के पिता माने गए हैं। सीता और जनक का सम्बन्ध भी दो रूपों में प्रचलित है, कहीं वह जनक की पुत्री हैं और कहीं पालिता।

(क) जनकात्मजा—महाभारत में चार स्थानों पर राम कथा पाई जाती है परन्तु सीता उनमें सर्वत्र जनकात्मजा हैं, वहाँ उनके अप्राकृतिक जन्म का कोई संकेत नहीं है। हरिवंश पुराण तथा आदि रामायण में भी वह जनक की ही कन्या हैं। पउमचरिउ, विष्णु और वायु पुराण में सीता तथा उसके भाई के भी कुछ उल्लेख हैं। कालिका पुराण में जनक के एक पुत्री और दो पुत्र हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि सीता के अलौकिक जन्मों की कल्पना मूल कथा में बाद में सम्मिलित की गई है, अपने मूल रूप में सीता अयोनिजा नहीं थी। वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंशों में सीता का जन्म यज्ञ भूमि से कहा गया है। पद्मपुराण में जनक को भूमि में एक धनुप मिलता है जिससे सीता का जन्म होता है।

सीता जनक की अयोनिजा पुत्री के रूप में ही अधिक विख्यात हैं। वाल्मीकि रामायण के गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में सीता जनक की मेनका से मानसी पुत्री हैं। क्षेमेन्द्र की रामायण मंजरी में भी ऐसा ही उल्लेख है।

सीता के अपूर्ण जन्म को पूर्णता देने के लिए शताब्दियों से कवि स्वतन्त्र कल्पनाओं को जन्म देते आ रहे हैं। वाल्मीकि के उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त अंशों में वेदवती रावण से प्रतिशोध लेने के लिए जनक की यज्ञ भूमि मे सीता के रूप में जन्म लेती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा देवीभागवत पुराण में यही कथा किंचित् परिवर्तन के साथ मिलती है। उसमें वेदवती लक्ष्मी का अवतार है। यहाँ सीता का तादात्म्य लक्ष्मी के साथ स्थापित किया गया है। वेदवती और सीता की यह कथा कुछ परिवर्तित होकर पउमचरिउ, कृतिवास रामायण तथा विचित्र रामायण में भी मिलती है।

(ख) रावणात्मजा—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में वेदवती ने रावण को शाप दिया था कि आगामी जन्म में वह उसके नाश का कारण बनेगी। इस कथा के आधार पर अनेक राम कथाकारों ने जनक के स्थान पर सीता और रावण का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इन कथाओं में सीता किसी न किसी रूप में रावण तनया मानी गई है। रावण तनया सीता रावण के नाश की सूचिका है अतएव

रावण उसे त्याग देता है। किसी प्रकार वह जनक के पास पहुँच जाती है जहाँ से राम पत्नी बनकर वह रावण से प्रतिशोध लेती है। उत्तर पुराण तथा महाभारत देवी पुराण में एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार ज्योतिषियों ने रावण को बताया कि उसकी पुत्री सीता भविष्य में उसका नाश करेगी। इसलिए रावण ने उसे मारीच द्वारा मिथिला में गड़वा दिया और जनक की पत्नी वसुधा ने उसका पालन किया। दक्षिण भारत की कथाओं में यद्यपि रावण के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है परन्तु सीता के मंजूषा में प्राप्त होने के वृत्तान्त मिलते हैं।

कतिपय राम कथाओं में सीता रावण के घर जन्म लेने के उपरांत जल में फेंक दी जाती है। कश्मीरी रामायण में मंदोदरी सीता को अशुभ समझकर और सेरत कांड में उसे रावण की भावी प्रेमिका जानकर जल में डलवा देती है। प्रथम राम कथा में जनक तथा दूसरी में एक ऋषि सीता की रक्षा करते हैं। तिब्बती एवं खोतानी रामायणों में कृषक तथा ऋषि सीता की जल से रक्षा कर उसका पालन करते हैं। सेरी राम कथा के अनुसार सीता का मुँह काला है इसलिए रावण की महिषी अशुभ जानकर फेंकवा देती है। मरुत उसे एक पद्म पर रख देते हैं तथा एक ऋषि उसकी रक्षा करता है। श्याम के राम कियेन में मंदोदरी दशरथ यज्ञ के पायस का अष्टमांश खाकर लक्ष्मी-अवतार सीता को जन्म देती है। विभीषण एक कुंभ में रखकर उसे जल में फेंक देते हैं। एक कमल उस कुंभ का आधार बनता है और वह जनक के पास पहुँचता है। दीर्घ काल के उपरांत उस कलश से पद्मासीन सीता का जन्म होता है।

क्षेमेन्द्र के दशावतारचरित में रावण कमल सरोवर में एक कनक पद्म पर सीता को पाकर उसे मंदोदरी को सौंप देता है। नारद से यह जानकर कि यह कन्या भविष्य में रावण की प्रेमपात्री बनेगी वह उसे दूर देश में गढ़वाने का आदेश देती है। हल चलाते समय उसे जनक प्राप्त करते हैं।

अद्भुत रामायण, सिंहल की राम-कथा तथा उत्तर भारत की कुछ रामकथाओं में यह भी कथा मिलती है कि रावण ने राज कर के रूप में ऋषियों से उनका रक्त लिया था। इस रक्त को एक घड़े में बंद करके वह लंका ले आता है। अद्भुत रामायण में मंदोदरी इस रक्त का पान कर लेती है और कन्या के जन्म होने पर उसे त्याग देती है। अन्य कथानकों में राज्य में अनावृष्टि होने पर रावण उस कन्या को मिथिला में गड़वा देता है। दोनों प्रकार के कथानकों में यह कन्या जनक को प्राप्त होती है तथा कालान्तर में रावण के विनाश का कारण बनती है।

आनंद रामायण में सीता का जन्म अग्नि से कहा गया है।

रावण से सम्बन्धित सीता जन्म की कथाओं पर वाल्मीकि रामायण की भूमिजा सीता तथा वेदवती के कथानकों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है अतः

अधिक संभावना यही है कि इन कल्पनाओं का जन्म वाल्मीकि रामायण के बाद ही हुआ होगा।

(ग) दशरथात्मजा—किन्हीं राम कथाओं में सीता को दशरथ की कन्या कहा गया है। जावा के राम केलिंग, मलय के सेरी राम तथा हिकायत महाराज रावण में अत्यन्त विचित्र कल्पना मिलती है। इनमें मंदोदरी दशरथ की पत्नी है। रावण उसके सौंदर्य से आकर्षित होकर दशरथ से उसकी याचना करता है। मंदोदरी एक माया मदोदरी को उत्पन्न करके रावण के साथ भेज देती है जहाँ उसके एक कन्या उत्पन्न होती है जिसे जल में फेंक दिया जाता है।

दशरथ जातक में भी सीता दशरथ की पुत्री कही गई है। वह राम के साथ वन जाती है तथा अवधि के समाप्त होने पर उनसे विवाह कर लेती है।[1]

सीता की उत्पत्ति के इन विभिन्न रूपों से उसके वंश के अनिश्चय का भान तो अवश्य होता है परन्तु साथ ही राम कथा की लोकप्रियता भी सिद्ध होती है। सीता के अनिश्चित जन्म के कारण कथानक में शिथिलता होते हुए भी रामकवियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अपनी कल्पना शक्ति से निजी भावनाओं के अनुरूप सीता जन्म के प्रसंग को ढाल कर कवियों ने काव्य की प्रबन्धात्मकता में कोई शैथिल्य नहीं आने दिया है। सीता का जन्मदाता कोई भी हो लेकिन आधिकारिक कथा के लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह राम पत्नी है अतः इसी मान्यता को लेकर निरन्तर रामकाव्यों की रचना होती रही है।

महाभारत की राम-कथा

महाभारत के रामोपाख्यान में राम-कथा का वर्णन कुछ विस्तार से है तथा इसके अतिरिक्त महाभारत में तीन अन्य स्थलों पर राम-कथा के स्फुट अंश मिलते हैं। कहीं-कहीं उपमाओं के लिए भी इस काव्य में राम कथा के पात्रों का उल्लेख हुआ है। पर प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि महाभारत के पूर्व 'भारत' में भी राम कथा के यह उल्लेख वर्तमान थे अथवा नहीं। महाभारत में वाल्मीकि ऋषि का भी कुछ स्थलों पर उल्लेख हुआ है यद्यपि यही वाल्मीकि रामायणकार भी हैं, ऐसा कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। महाभारत की राम कथा की प्राचीनता के सम्बन्ध मे डा० वेबर के अनुसार चार संभावनाएँ हैं—

१. रामोपाख्यान रामायण का संक्षिप्त रूप न होकर उसकी कथा का मूलाधार है।

---

१. सीता जन्म के सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिये देखिये राम कथा : कामिल बुल्के, पृ० २९०—३०६।

२. रामायण के वर्तमान रूप के पूर्व रूप का संक्षिप्त रूप है।
३. महाभारत के रचयिता ने अपनी रुचि के अनुसार रामायण से कतिपय स्थलों को चुन लिया है।
४. किसी अन्य आधार पर रामायण तथा महाभारत दोनों की रचना हुई।[१]

ई० हापकिंस तथा ए० लूड्विग डा० वेबर के चतुर्थ मत से सहमत है परन्तु डा० याकोबी, एम० विंटरनित्स, एच० ओल्डेनबर्ग, तथा वी० एस० सुक्थांकर आदि विद्वानों का मत है कि रामोपाख्यान रामायण का ही संक्षिप्त रूप है क्योंकि दोनों में अनेक स्थलों पर शाब्दिक समानता पाई जाती है तथा कुछ प्रसंग जैसे इन्द्रजीत यज्ञ, काक वृत्तान्त आदि इतने संक्षेप में दिए गए हैं कि बिना रामायण का कथानक जाने समझ में नहीं आ सकते।

इससे केवल इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत का लेखक राम-कथा से अवश्य अनभिज्ञ था चाहे वह राम-कथा रामायण के रूप में वर्तमान रही हो अथवा किसी अन्य रूप में।

रामोपाख्यान—मार्कण्डेय ऋषि दुखी युधिष्ठिर को धैर्य बंधाने के लिए अनेक प्राचीन नरेशों की कथाएँ सुनाते हैं। इन्हीं नरेशों में एक राम भी हैं। युधिष्ठिर के पूर्ण रामचरित सुनने की जिज्ञासा प्रकट करने पर ऋषि उनको रामोपाख्यान सुनाते हैं। मार्कण्डेय अपनी रुचि तथा आवश्यकता के अनुकूल प्रसंगों को ही युधिष्ठिर को सुनाते हैं अतएव अनेक प्रसंग इस आख्यान में नहीं आ सके हैं।

रामोपाख्यान के आरम्भ में रावण तथा उसके भ्राताओं का जीवन इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसमें राम और उनके भाइयों के जन्म का उल्लेख है परन्तु दशरथ के यज्ञ एवं सीता स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं है। सीता इसमें जनक की पुत्री है, उसकी जन्म कथा पर रहस्य का कोई आवरण नहीं है। यथार्थ कथा दशरथ की राम को युवराज बनाने की कामना से प्रारम्भ होती है। अयोध्या तथा अरण्य काण्डों के बहुत संक्षिप्त वर्णन हैं। इसमें मंथरा को गंधर्वी नामक दुन्दुभी का अवतार कहा गया है। विराध तथा शवरी आदि के प्रसंग इसमें नहीं हैं। रामायण की क्रमबद्ध घटनाएँ, रावण और शूर्पणखा मिलने के पश्चात् आरम्भ होती हैं। यहाँ राम सुग्रीव को अपने बल की परीक्षा नहीं देते। हनुमान द्वारा सीता की खोज का वर्णन भी अत्यन्त संक्षिप्त है। हनुमान अपनी खोज का वृत्तान्त स्वयं लौटकर राम को सुनाते हैं। समुद्र राम के बाणों से भयभीत होकर नल के नेतृत्व में सेतु बाँधने को तत्पर हो जाता है। अविन्ध्य राक्षस का महत्त्व रामायण की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक है एवं कुम्भकर्ण का वध राम द्वारा न होकर लक्ष्मण द्वारा होता है। इन्द्रजीत के दोनों यज्ञों का वर्णन इसमें नहीं है। संजीवनी औषधि इसमें हनुमान द्रोणागिरि जाकर नहीं लाते बल्कि वह सुग्रीव के पास ही है। लंका दहन के वर्णन

---

१. वेबर ऑन दी रामायण : दी इंडियन ऐंटीक्वेरी, १८७२।

का इसमें अभाव है, विभीषण राम को कुबेर का भेजा हुआ जल देते हैं जिससे राम अदृश्य प्राणी को भी देख सकते हैं। लक्ष्मण शक्ति का कोई उल्लेख नहीं है। इसमें सीता की अग्नि परीक्षा नहीं होती बल्कि ब्रह्मा, वायु, वरुण, अग्नि आदि देवता स्वयं आकर सीता की पवित्रता की साक्षी देते हैं।

रामोपाख्यान की कथा में एक परिवर्तन यह भी है कि विश्रवा की तीन पत्नियाँ हैं तथा रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण एवं शूर्पणखा भिन्न माताओं की संतति हैं।

इस प्रकार कुछ परिवर्तनों के साथ रामोपाख्यान का यह कथानक राम के अयोध्या में प्रत्यागमन पर राज्याभिषेक के साथ समाप्त हो जाता है।

महाभारत के रामोपाख्यान के अतिरिक्त तीन अन्य पर्वों में भी राम-कथा पाई जाती है। अरण्य पर्व में हनुमान भीम से भेंट होने पर संक्षेप में राम वनवास तथा सीताहरण से लेकर उनके अयोध्या में प्रत्यागमन तक सारी कथा सुनाते हैं। इसमें बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की सामग्री तथा सीताहरण की घटना का अभाव है। राम विष्णु के अवतार हैं और ११,००० वर्ष तक राज्य करते हैं।

द्रोण पर्व तथा शान्ति पर्व में भी राम कथा के उल्लेख मिलते हैं परन्तु यहाँ कवि की दृष्टि राम-राज्य की महिमा पर केन्द्रित है, उनके जीवन की घटनाओं पर नहीं। राम के राज्य में कष्टों का अभाव, सुख समृद्धि की वृद्धि, राम के उत्कृष्ट गुण, उनका ११,००० वर्ष तक राज्य करना तथा अंत में बैकुण्ठ प्रस्थान की घटनाओं को चित्रित किया गया है।

इन दोनों पर्वों की राम कथा षोडशराजोपाख्यान के अंतर्गत आती है। पुत्र की मृत्यु से शोकातुर संजय को धैर्य बधाने के लिए नारद उन्हें सोलह राजाओं की कथाएँ सुनाते है जो सब प्रकार समर्थ और महान् होकर भी अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए थे। द्रोण पर्व में अभिमन्यु के वध से संतप्त युधिष्ठिर को यह कथानक व्यास और शान्ति पर्व में कृष्ण सुनाते हैं। इन्हीं सोलह राजाओं के कथानकों में राम-कथा भी है। द्रोण पर्व में नारद ने अत्यन्त संक्षेप में राम-कथा की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कर दिया है परन्तु शान्ति पर्व में कथा भाग प्राय: नगण्य है। दोनों में वक्ता का मुख्य लक्ष्य राम और उनके राज्य की महिमा वर्णन ही है इसीलिए कथानक का स्थान गौण रह गया है।

महाभारत में राम विष्णु के अवतार हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा उस समय विष्णु से श्रेष्ठ माने जाते थे क्योंकि रामोपाख्यान मे ब्रह्मा देवताओ से कहते हैं कि मेरे आदेश से विष्णु रामावतार लेकर रावण का वध करेंगे। अन्य अनेक स्थलों पर भी राम के विष्णु अवतार होने के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत का रचयिता निश्चित रूप से राम-कथा और रामावतार दोनों से परिचित था।

संस्कृत के धार्मिक साहित्य में राम-कथा का रूप

राम भक्ति का विकास रामावतार भावना के पर्याप्त काल पश्चात् हुआ। रामभक्ति संभवतः दक्षिण भारत की देन है, 'भक्ति द्राविड ऊपजी लाये रामानन्द' राम भक्ति का प्राचीनतम रूप कुलशेखर अल्वार की रचना में विद्यमान है। वैष्णव संहिताओं तथा उपनिषदों में रामभक्ति तथा रामपूजा का शास्त्रीय प्रतिपादन भी किया गया है। अगस्त्य-संहिता, कालिराघव, बृहद्राघव, राघवीय संहिता आदि संहिताओं में राम भक्ति का निरूपण किया गया है। रामपूर्व तापनीय उपनिषद्, रामोत्तर तापनीय उपनिषद् तथा राम रहस्योपनिषद् राम सम्बन्धी उपनिषद् हैं। इनमें राम परम पुरुष तथा सीता मूल प्रकृति हैं। तत्पर्यन्त रामभक्ति सम्बन्धी साहित्य विपुल मात्रा में लिखा जाने लगा। मध्य काल में रामानन्द द्वारा राम-भक्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला। अभी तक राम भक्ति साहित्य की रचना संस्कृत में होती थी परन्तु रामानंद के समय से इसकी रचना भाषा में भी होने लगी तथा राम भक्ति प्रासादों से उतरकर जनसाधारण की कुटीर तक पहुँचने लगी।

राम-भक्ति पर राधा कृष्ण पूजा का भी प्रभाव पड़ा। उसके अनुकरण पर राम साहित्य में भी राम की बाल लीला तथा राम-सीता के विलास के गीत गाए जाने लगे। अध्यात्म रामायण में राम की बाल लीला के चित्र हैं, आनन्द रामायण तथा सत्योपाख्यान में राम-सीता के विलास-वर्णन हैं। १७वीं शताब्दी में चन्द्रलाल ने राम सीता की युग्म भक्ति का प्रतिपादन किया। हनुमत्संहिता, बृहत्कौशल खण्ड तथा आदि रामायण आदि कृतियों में राम की रास लीलाओं के वर्णन भी हुए।

पौराणिक साहित्य

(क) **पुराण**—हरिवंश पुराण में संक्षिप्त रामचरित है जिसमें वनवास से लेकर रावण वध तक रामायण की मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है तथा अन्त में रामराज्य की प्रशंसा की गई है। इसमें दशरथ के यज्ञ और सीता के अयोनिजा होने का कोई उल्लेख नहीं है। हरिवंश में वाल्मीकि रामायण का दो स्थानों पर उल्लेख है तथा अवतारों में राम का भी नाम दिया है परन्तु इसमें राम-भक्ति का प्रतिपादन नहीं हुआ है।

विष्णु पुराण तथा वायु पुराण में रामचरित का एक ही रूप वर्तमान है। हरिवंश की अपेक्षा इनमें ताड़का वध, अयोनिजा सीता तथा दशरथ के पौत्रों का वर्णन आदि प्रसंग विस्तार से वर्णित हैं। ब्रह्माण्ड पुराण में सीता के अलौकिक जन्म का उल्लेख है। भागवत पुराण में सीता सर्वप्रथम लक्ष्मी का अवतार मानी गई है, उसमें सीता के स्वयंवर तथा लोकापवाद के कारण परित्याग का भी वर्णन है। कूर्म पुराण में राक्षस वंश वर्णन, सूर्यवंश का वर्णन, शिवलिंग की स्थापना तथा माया सीता के हरण का वृत्तान्त रामचरित की आधिकारिक कथा से अतिरिक्त

सामग्री है। ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में अनेक अवतारों के साथ राम का नाम भी आया है।

अग्निपुराण की रामकथा वाल्मीकि रामायण के सात काण्डों का सक्षिप्त रूप है। इसमें राम के वनवास का कारण उनका मंथरा पर अत्याचार करना है। इसमें उनके माल्यवत पर्वत पर चतुर्मास्य यज्ञ करने का भी उल्लेख है। नारद पुराण में राम के ब्राह्मणों द्वारा बाँधे गये विभीषण को मुक्ति देने की कथा है। इसमें वाल्मीकि रामायण की सक्षिप्त रामकथा है, जिसमें राम लक्ष्मण को क्रमशः नारायण तथा संकर्षण का अवतार माना गया है। ब्रह्म पुराण का रामचरित हरिवंश के आधार पर लिखा गया है। इसमें रावण द्वारा अमरावती से वासुदेव प्रतिमा हरण का वृत्तांत है। रावण का वध करके राम ने उसको समुद्रार्पण कर दिया था। गौतमी माहात्म्य में अनेक तीर्थों के साथ रामतीर्थ का भी वर्णन है जिसके अन्तर्गत एक राम कथा मिलती है। इसमें देवदानव युद्ध में कैकेयी दशरथ से तीन वरों को प्राप्त करती है तथा दशरथ श्रवण वध के प्रायश्चित्त स्वरूप एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं। आकाशवाणी द्वारा उन्हें पुत्रोत्पत्ति का आश्वासन मिलता है। वनवास के समय पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम गौतमी तट पर पिण्डदान करते हैं जिससे दशरथ की मुक्ति होती है।

सहस्र कुण्ड माहात्म्य में सीता त्याग तथा राम की तपस्या का वर्णन है। किष्किंधा तीर्थ माहात्म्य में राम के गौतमी तट पर पाँच दिन के निवास तथा शिवलिंग-पूजा का उल्लेख है।

गरुड पुराण में लक्ष्मण के स्थान पर राम स्वयं शूर्पणखा को विरूप करते हैं। इसमें राम पितृकर्म के लिए गयाशिर भी जाते हैं।

स्कंदपुराण में वृंदा के शाप तथा धर्मदत्त और कलहा की कथा है। सीता के पातिव्रत्य की अग्नि द्वारा प्रशंसा करना, रावण की ब्रह्महत्या होने के कारण राम का प्रायश्चित्त करना हनुमान का रुद्रावतार होना, दशरथ की पुत्री शान्ता का उल्लेख आदि अनेक नवीन घटनाओं का उल्लेख भिन्न-भिन्न खण्डों में दिया गया है।

पद्म पुराण के पातालखण्ड में भी कुछ नवीन सामग्री प्राप्त होती है, जैसे रजक कथन के फलस्वरूप सीतात्याग, कुश-लव का राम की सेना से युद्ध करना, दशरथ की चार पत्नियों का उल्लेख कुम्भकर्ण का वध रावण के पश्चात् होना आदि। इसमें राम की बाल लीला के भी कुछ चित्र हैं तथा कथान्त में राम सीता का सम्मिलन कर इसकी कथा को सुखांत बना दिया गया है।

पद्म पुराण के उत्तरखण्ड में अवतार की भावना अधिक व्यापक हो गई है। इसमें राम और सीता विष्णु तथा लक्ष्मी के अवतार एवं भरत तथा शत्रुघ्न अनन्त सुदर्शन और पांचजन्य के अवतार कहे गए हैं। इसमें भी राम ही शूर्पणखा को विरूप करते हैं।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भरत तथा शत्रुघ्न प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के अवतार हैं। इसमें भरत गंधर्व युद्ध का विस्तृत वर्णन है। नृसिंह पुराण में अहिल्या पाषाण-भूता कही गई है तथा सीता स्वयंवर के पश्चात् अन्य क्षत्रिय राजा राम पर आक्रमण करते हैं। हरण के समय रावण सीता का स्पर्श नहीं करता है।

वह्नि पुराण में हनुमान मूषिका रूप में लंका में प्रवेश करते हैं। इन पुराणों के अतिरिक्त शेष पुराणों मे साम्प्रदायिकता की गहरी छाप मिलती है। इनमे राम शिव अथवा देवी के भक्त हैं और उन्हीं की अनुकम्पा से रावण पर विजय प्राप्त करते हैं जिससे उन पर शाक्तों का प्रभाव लक्षित होता है।

शिव महापुराण में नारद-मोह कथा तथा सती द्वारा राम की परीक्षा के उल्लेख हैं।

श्रीमद्देवीभागवत पुराण में राम रावण का वध करने के लिए नवरात्रोपवास करते हैं। सिंहारूढ़ा देवी राम को रावण पर विजय का आश्वासन देती हैं। इसके नवें स्कंध में वेदवती का वृत्तांत भी है।

महाभागवत पुराण में देवी की शक्ति अपराजेय है। सभी देवता उसी की कृपा के याचक दिखाई देते हैं। राम रावण को पराजित करने में असमर्थ हैं क्योंकि लंका में देवी का वास है। देवताओं की विनीत प्रार्थना पर सीताहरण के कारण देवी लंका को छोड़ देती है। शिव हनुमान का रूप धारण कर राम की सहायता करते हैं, ब्रह्मा राम की विजय कामना से देवी की पूजा करते हैं। राम भी अनेक स्थलों पर देवी की प्रार्थना करते हैं। इसमें सीता मंदोदरी की पुत्री है।

बृहद्धर्म पुराण में हनुमान विजय का रूप धारण कर लंका में प्रवेश करते हैं। सौर पुराण में सीता गौरी के वंश से उत्पन्न हैं तथा राम महादेव परायण हैं। कालिका पुराण में जनक हल जोतते समय सीता तथा अन्य दो पुत्रों को प्राप्त करते हैं।

पुराणों की कथा का मूल रूप आज अनुपलब्ध है। वर्षों तक इनकी परम्परा मौखिक रहने के कारण इनमें अनेक प्रक्षिप्त अंशों का समावेश हो गया है। अनेक पुराणों का तो रूपांतर ही हो गया है। कुछ पुराणों की रचना प्राचीन पौराणिक कथाओं का संग्रह करके भी हुई है इसलिए इनका समय निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। राम-कथा में विभिन्न आनुषंगिक कथाओं की कल्पना किसी एक समय में न होकर दीर्घकाल में हुई है। जैसे-जैसे भारत में साम्प्रदायिक मतभेद बढ़ते गए, राम और राम-कथा को भी जनता ने अपने विचारों के अनुरूप ढाल लिया इसीलिए राम कहीं विष्णु के, कहीं शिव के और कहीं देवी के उपासक हैं। इस प्रकार जनता की रुचि के कारण राम कथानक में अनेक नवीन प्रसंगों की कल्पना कर ली गई है।

(ख) साम्प्रदायिक रामायण—योगवशिष्ठरामायण—इसके राम का रूप अन्य सभी राम कथाओं से विचित्र है। यहाँ राम प्रतिक्षण उदास बने रहते हैं। उनकी मौन उदासी के कारण समस्त अयोध्या नगरी में विषाद के श्याम मेघ छाये रहते हैं। गुरु वशिष्ठ राम को मोक्ष प्राप्ति के लिए एक उपदेश देते हैं जिससे प्रेरित होकर राम अपने कर्तव्य पालन में तत्पर होते हैं।

वशिष्ठ रामायण के राम पर सांसारिक विरक्ति की छाप गौतम बुद्ध के चरित्र की छाया में पड़ी है। कालांतर में रामचंद्रिकाकार केशव के राम भी योग-वशिष्ठ रामायण के राम से प्रभावित होकर लौकिक सुखों के प्रति विरक्त होने के कारण मलिन वदन रहते हैं तथा गुरुजनों के उपदेश से प्रेरित होकर राज्य संचालन में अग्रसर होते हैं।

अध्यात्म रामायण—इसके रचनाकार तथा रचनाकाल के विषय में निश्चित एकमत नहीं है। राम कथा की अपेक्षा राम भक्ति के विकास क्रम में इस ग्रन्थ का मुख्य स्थान है। अर्वाचीन कवियों ने विशेष रूप से तुलसी, एकनाथ आदि भक्त-कवियों ने इससे अनेक भाव ग्रहण किए हैं। इसकी पूरी कथा शंकर पार्वती संवाद के रूप में है। राम, सीता तथा लक्ष्मण परब्रह्म, प्रकृति और शेष के अवतार हैं। इस राम कथा के अन्य पात्र वशिष्ठ, जनक, विश्वामित्र, रावण आदि रामावतार रहस्य से परिचित हैं। लक्ष्मण वनवास काल में बारह वर्ष का उपवास करते हैं तथा रावण नाभिदेश में अमृत का वास होने के कारण अजेय है। अंगद रावण यज्ञ को विध्वंस करते हैं तथा मन्दोदरी को वस्त्रहीन कर उसका अपमान करते हैं। इस रामायण में कालान्तर में पल्लवित होने वाली शृंगारिक प्रवृत्तियों का आभास मिलने लगता है।

अद्भुत रामायण—इसकी कथा वाल्मीकि भारद्वाज संवाद के रूप में है। शापवश विष्णु, राम, श्रीमती जानकी तथा लक्ष्मी मंदोदरी की पुत्री बनती है। राम तथा हनुमान का भक्ति के सम्बन्ध में एक विस्तृत संवाद भी है। इसकी सीता देवी का रूप धारण कर सहस्रबाहु रावण का वध करती है। इस रामायण पर शाक्तों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

आनन्द रामायण—कवि ने इसमें अनेक अवतरण अध्यात्म रामायण से उद्धृत किए हैं तथा अनेक विचित्र कथाओं की सृष्टि भी की है।

रावण दशरथ पत्नी कौशल्या का हरण करता है। सीता की उत्पत्ति अग्नि से हुई है तथा उमा सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा लेती हैं। रावण शिव से आत्मलिंग तथा पार्वती को प्राप्त करना चाहता है परन्तु दोनों को खो बैठता है। ऐरावण तथा मैरावण राम लक्ष्मण को पाताल ले जाते हैं और हनुमान उनको अपने कौशल से मुक्त करते हैं। इस रामायण में कवि ने परम्परा के विरुद्ध सीता का नखशिख वर्णन किया है। इसमें सीतालंकार, जलक्रीड़ा तथा सीताराम की दिनचर्या के भी वर्णन हैं। राम एक पत्नीव्रत रखने के पुरस्कार स्वरूप अगले अवतार में अनेक

पत्नियों को पाने का आश्वासन प्राप्त करते हैं। वह कामपीड़ित देव-पत्नियों को कृष्णावतार के समय गोपिकाएँ बनने का आश्वासन देते हैं। रामदासी को ताम्बूल-रस खाने के उपलक्ष्य में राम आगामी जन्म में राधा होने का वरदान देते हैं।

शतस्कंध रावण राम को पराजित करता है तथा रावण का वध इसमें सीता करती है। चण्डी रूप धारण कर सीता भूलकासुर का वध भी करती है।

शक्ति पूजा के अन्तर्गत काली को शिवादि अन्य देवताओं की अपेक्षा श्रेष्ठ मानने तथा स्त्री पूजा के कारण उपासना मार्ग में जो शृंगारिक भावनाओं का उदय कालांतर में होने लगा था उसी का पूर्वाभास हमें इस रामायण में होने लगता है।

आनन्द रामायण पर कृष्ण चरित्र का भी यथेष्ट प्रभाव लक्षित होता है। राम को देखकर स्त्रियों का कामातुर होना रामचरित्र को कृष्णचरित्र की ही देन है। परन्तु फिर भी परम्परागत मर्यादा के कारण राम का चरित्र इस जन्म में तो उनकी रक्षा कर ही लेता है। कवि राम के आगामी जन्म में ही इसकी पूर्ति करता है। इस रामायण में कृष्ण तथा रामोपासकों के विरोध का उल्लेख भी है जिसमें कवि ने रामावतार को श्रेष्ठ कहा है। सीता के चण्डी रूप धारण करने में शाक्तों का प्रभाव भी स्पष्ट है।

'जैमिनीय अश्वमेध' के कुशलवोपाख्यान तथा 'मेरावणचरित' में हनुमान की मेरावण पर विजय का वर्णन है। 'सहस्रमुख रावण चरित्रम्', 'शतमुखरावण चरित्र', 'सीता विजय' आदि में रावण पर सीता की विजय के उल्लेख हैं। सत्योपाख्यान में मंथरा-कैकेयी संवाद है जिसमें दशरथ-कैकेयी के विवाह की कथा है। इसमें मंथरा के पूर्वजन्म की कथा है जिसमें वह दैत्य विरोचन की पुत्री है और इन्द्र ने वज्र से उसका वध किया था। इस ग्रंथ पर कृष्ण लीला का प्रभाव पड़ा है इसीलिए इसके उत्तरार्द्ध में राम सीता की क्रीड़ाओं का विलासपूर्ण वर्णन है। इसमें सीता स्वयंवर के अवसर पर सभा भवन में प्रहस्त भी उपस्थित हुआ है।

'हनुमत् संहिता' में सीता अपने शरीर से १८१०८ युवतियों की सृष्टि करती हैं तथा राम उतने ही रूप धारण कर उनके साथ नृत्य करते हैं। 'बृहत्कोशलखण्ड' में राम अपने विवाह के पूर्व गोपिकाओं तथा देव कन्याओं के साथ एवं विवाह के उपरांत सीता तथा उनकी सखियों के साथ रास रचाते हैं।

उपर्युक्त रामायणों के अतिरिक्त कुछ रामायणों की तालिका श्री रामदास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में दी है जिनमें कुछ परिवर्तनों के साथ किसी न किसी रूप में राम कथा पाई जाती है।[१]

संस्कृत का राम-साहित्यः—वाल्मीकि रामायण की आकर्षक कथावस्तु तथा उसके महान् नायक ने परवर्ती कवियों का मन इतना अधिक लुब्ध किया कि उससे

१. हिन्दुत्व, पृष्ठ १३७

प्रेरित होकर अनेकों रामायणों की रचना हुई। नायक राम का मान भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया, वह मानवी धरातल से उड़कर क्रमशः देवत्व तथा महादेवत्व के लोक में पहुँच गये। थलचर राम नभचर बन गये, सर्वशक्तिमान बनकर वह समस्त ब्रह्माण्ड पर छा गए। कालिदास, भवभूति, महानाटककार, तुलसी, केशव आदि अनेक महान् कवियों ने अपने काव्यारंभ में महाकवि वाल्मीकि को श्रद्धांजलियाँ भेंट की हैं।

वाल्मीकि के परवर्ती राम कवियों के काव्यों की आनुषंगिक कथा में अनेक परिवर्तन होते गए हैं। इन परिवर्तनों के लिए कवियों की सामयिक परिस्थितियाँ, भारत की उत्तरोत्तर परिवर्तित होती हुई सभ्यता तथा कवियों की व्यक्तिगत रुचि आदि अनेक कारण उत्तरदायी हैं। आदि रामायण की मूल भित्ति धर्म तथा कर्त्तव्य भावना थी परन्तु कालान्तर में धर्म के स्थान पर जनता की शृंगारिक प्रवृत्तियाँ उद्-बुद्ध होती गईं, फलतः राम भी मर्यादा पुरुषोत्तम का रूप त्याग कर विलासी राम बन गए। यह भावना आगे चलकर इतनी अधिक पल्लवित हुई कि कृष्ण के समान राम भी विलासमणि राम हो गए। उनका देवत्व लुप्त हो गया, अश्लील नरत्व जाग्रत हो उठा।

संस्कृत साहित्य को हम स्थूल रूप से तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं, (क) प्रथम वर्ग के अन्तर्गत हम उन कवियों को रख सकते हैं जिन्होंने हृदय की सच्ची प्रेरणा पाकर साहित्य की सृष्टि की, अतः उनकी कविता सरल, सरस तथा स्वाभाविक है। (ख) द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत वह कवि आते हैं जो काव्य शास्त्र के पंडित हैं तथा जिनमें काव्य का कथानक गौण, शास्त्रीय अभिव्यंजना शैली ही प्रमुख है (ग) तृतीय श्रेणी में वह कवि आ सकते हैं जिनके काव्यों में शृंगार का कलुषित पक्ष चित्रित हुआ है। इनमें कथा तथा काव्य-शैली दोनों ही गौण हैं, कवि का प्रधान उद्देश्य नग्न शृंगार का वर्णन करना है।

जयदेवकृत प्रसन्नराघव नाटक में नट सूत्रधार से प्रश्न करता है कि सभी कवि रामचंद्र का ही वर्णन क्यों करते हैं ?[1] सूत्रधार उत्तर देता है कि इसमें कवियों का दोष नहीं, राम के गुण स्वयं इसके लिए उत्तरदायी हैं। "उस कवित्व वृक्ष को जिसका पूर्व जन्मार्जित पुण्य ही बीज, प्रज्ञा ही नवीन अंकुर, विद्वानों का परिचय ही काण्ड और काव्य ही अभिनव पल्लव हो, कीर्ति ही पुष्प परम्परा हो, उसे रामचन्द्र के गुण वर्णन रूप फल के बिना निष्फल क्यों बनाया जाए।[2] इसलिए सभी श्रेष्ठ कवि राम-चरित का गुणानुवाद करते हैं।

---

१. कथं पुनरमी कवयः सर्वे रामचंद्रमेव वर्णयन्ति। प्र० रा०, प्रथम अंक, पृ० १२
(पं० श्री रामचंद्र मिश्र शर्मा कृत प्रकाश टीका)

२. बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितम् प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पंडितमंडलीपरिचय : काव्यं नवपल्लवः।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा परिस्खतः सोऽयं कवित्वद्रुमः
कि वन्ध्यः क्रियते बिना रघुकुलोत्तंसप्रशंसा फलम्।
प्र० रा० प्रथम अंक पृ० १२ (पं० श्री रामचंद्र मिश्र शर्मा कृत प्रकाश टीका १।१३)

रघुवंश—राम साहित्य की परम्परा में वाल्मीकि के पश्चात् हम जिस कवि का नाम सादर स्मरण करते हैं वह हैं रघुवंशकार कालिदास। यद्यपि कालिदास तथा वाल्मीकि के बीच कतिपय अन्य कवियों ने भी राम काव्यों की रचना की थी क्योंकि कालिदास अपने पूर्व कवियों की वंदना, बहुवचन में स्मरण करके करते हैं।[1]

कालिदास की सभी रचनाएँ प्रायः शृंगार रस प्रधान हैं परन्तु उनका यह शृंगार रस सर्वत्र मर्यादित है। राम कथा इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है क्योंकि कवि ने इसमें रघुवंश के प्रायः सभी राजाओं—राम के पूर्वजों तथा उत्तराधिकारियों तक का वर्णन किया है। रघुवंश के १९ सर्गों में से राम कथा केवल ५ सर्गों में है। राम सम्बन्धी कथानक में कालिदास बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण के ऋणी हैं। कालिदास की रुचि घटनाओं का वर्णन करने में उतनी नहीं है जितनी चित्रों का वर्णन करने में। कहीं-कहीं उन्होंने घटनाओं को बड़ी क्षिप्रता से चलता कर दिया है विशेषकर उन अंशों को जिनको वाल्मीकि द्वारा पर्याप्त विस्तार मिल चुका था।

कालिदास के समय शिव की उपासना को प्रधानता मिलने लगी थी यद्यपि विष्णु का स्थान अभी शिव से ऊँचा था। रघुवंश में रावण अपने मस्तक काटकर शिव को अर्पण करता है, रामायण के समान ब्रह्मा को नहीं।[2] विष्णु इस शिव भक्त दुराचारी रावण का वध करने के लिए राम रूप में दशरथ के घर जन्म लेते हैं। रामायण जिस रूप में हमें आज प्राप्त है उसका वह रूप कालिदास के समय तक पूर्ण हो चुका था क्योंकि रामायण के प्रक्षिप्त अंशों में ही राम के विष्णु का अवतार होने के संकेत हैं। कालिदास ने भी राम को विष्णु का अवतार स्वीकार कर लिया है जैसा कि दशरथ के वचनों से स्पष्ट है—दशरथ ने जगद्गुरु विष्णु भगवान् का पिता होने से अपने को सर्वश्रेष्ठ माना।[3]

कालिदास अपनी उपमा सौंदर्य के कारण विश्वविख्यात कवि हैं। 'रघुवंश' में भी हमें स्थान-स्थान पर कवि की सुन्दर कल्पना-प्रसूत उपमाओं के दर्शन होते हैं, जैसे 'रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसाऽत्राभवन रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्ट' अर्थात् रघुवंश में दीपक के समान अपरिमित तेज वाले उस राम से रक्षागृह में रखे हुए दीपक मानो फीके पड़ गए।[4]

---

१. अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः
   मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।
   रघु वं० १।४ हरगोविन्द शास्त्री : मणिप्रभा टीका

२. जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम्।
   रामस्तुलितकैलासमरातिं बह्वमन्यत।
   रघुवंश १२।८६

३. ताभ्यस्तथाविधान् स्वप्नांच्छ्रुत्वा प्रीतोहि पार्थिवः।
   मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः।
   रघुवंश १०।१४

४. रघुवंश १०।६८

कालिदास के कथानक में वाल्मीकि रामायण की मूल कथा से अधिक अन्तर नहीं है। कालक्रम तथा कवि की व्यक्तिगत रुचि के कारण कुछ स्थल संक्षिप्त हो गए हैं और कुछ विस्तृत। इसलिए आनुषंगिक कथानकों में भेद लक्षित होता है। विशेष रूप से जहाँ कहीं भी वर्णन का अवसर मिल सका है वहाँ कवि ने अनेक सुन्दर कल्पनाओं से काम लेकर उन स्थलों को रमणीय बना दिया है। इन स्थलों पर हमें कवि की प्रौढ़ प्रतिभा तथा परिपक्व प्रज्ञा का परिचय मिलता है। कालिदास के पात्र मुख्य रूप से स्त्री पात्र अत्यंत सजीव और स्वाभिमान से पूर्ण हैं। राम द्वारा परित्यक्ता सीता लक्ष्मण से कहती है—उस राजा राम से मेरी ओर से कहना—क्या यह आचरण आपकी विद्वत्ता अथवा कुल के अनुरूप है ?[1] सीता के लिए राम पहले राजा हैं पीछे पति क्योंकि उन्होंने पत्नी की मान मर्यादा की उपेक्षा की है इसीलिए सीता का व्यंग्य 'स राजा' अत्यंत मर्मस्पर्शी है।

रघुवंश में अहिल्या का शरीर पति-शाप से शिला बन गया है। राम की चरण रज से वह सुन्दर शरीर को प्राप्त करती है। भरत राम से मिलने के लिए विशाल वाहिनी को साथ लेकर वन जाते हैं। इस काव्य में नैतिक मर्यादाओं का संकुचित रूप नहीं प्रस्तुत किया गया है। श्रम के कारण परिश्रान्त राम निस्संकोच पत्नी सीता के अंक में शयन करते हैं —

कदाचिदंके सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात्।[2]

हनुमान द्वारा सीता जी चूड़ामणि प्राप्त कर राम ने हृदय पर रखे हुए चूड़ामणि के स्पर्श से आँख मूँदे हुए पयोधर संसर्ग से हीन प्रिय आलिंगन सुख को पाया—

स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिंगननिर्वृतिम्।[3]

शृंगारिक वर्णनों के साथ ही कालिदास वीर रस के भी श्रेष्ठ कवि हैं। कालिदास वर्णन प्रधान कवि हैं, जहाँ कहीं वर्णन के अवसर आए हैं कवि ने अत्यन्त सहृदयतापूर्वक उनका वर्णन किया है, विशेष रूप से उनकी यह प्रवृत्ति युद्ध प्रसंगों में अधिक दृष्टिगोचर होती है। राम-रावण युद्ध का वर्णन कालिदास ने पर्याप्त विस्तार से किया है। कवि की वर्णन प्रवृत्ति के उदाहरण रघुवंश में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। विस्तारभय से हम इस प्रकार का केवल एक ही उदाहरण देंगे। रावणवधोपरांत राम सागर को देखकर सीता से उसका वर्णन करते हैं। तेरहवें सर्ग के १७ श्लोकों

---

१. वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥
रघुवंश १४।६१

२. रघुवंश, १२।४१

३. वही, १२।६५

में कवि ने सागर का अनेक कल्पना समन्वित वर्णन किया है।[१] यह वर्णन रोचक है तथा कवि की कल्पना शक्ति का परिचायक भी है परन्तु इससे मुख्य कथा के रसास्वादन में आघात पहुँचता है। पाठक मुख्य कथा से हटकर कल्पना लोक में चला जाता है और इस प्रकार कथानक का सूत्र शिथिल पड़ जाता है। स्थान-स्थान पर कालिदास की श्लेषमयी भाषा के दर्शन भी होते हैं —

यां सैकतोत्संगसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे सम्भावयत्युत्तरकोशलानाम्।[२]

अर्थात् जिस (सरयू नदी) को मेरा चित्त तट रूप गोद में (मातृ पक्ष—तट के समान गोद में) सुख के योग्य तथा पर्याप्त जल से (मातृ पक्ष—दूध से) बढ़ाए तथा परिपुष्ट किए गए उत्तर कोशल के राजाओं की सामान्य यात्री के समान सत्कृत करता है।

प्रतिमानाटक :—महाकवि भासकृत १३ रूपकों में 'प्रतिमानाटक' अपने सभी सहोदरों से अधिक विपुलकाय और प्रांजल है। नाटक के क्षेत्र में भास सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने राम कथा की अवतारणा की। अपने इस प्रयास में वह पूर्णतया सफल हुए हैं। कथानक की दृष्टि से भास ने अपने नाटक में अनेक मौलिक परिवर्तन किए हैं—कहीं उसकी नाटकीयता वर्णन के लिए और कहीं शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से। सीता अपनी सखियों के साथ विनोद करते समय अवदातिका नामक सखी के हाथ में वल्कल देख लेती है। सहज कौतुहल से प्रेरित होकर वह वल्कल धारण कर लेती है और जब राम उनको वल्कल वस्त्रों में देखते हैं तो उनकी भी वल्कल वस्त्र पहनने की इच्छा जाग्रत हो उठती है। कैकेयी प्रथम वर में राम को चौदह वर्षों का वनवास और दूसरे में भरत के राज्याभिषेक की प्रार्थना करती है। यथार्थ में वह १४ दिन कहना चाहती है परन्तु मानसिक उद्वेलन के कारण १४ वर्ष कह जाती है। अयोध्यापुरी की सीमा पर एक प्रतिमा गृह बना हुआ है जहाँ राजपरिवार के मृतक व्यक्तियों की प्रतिमाएँ रखी जाती हैं। वहीं से भरत को पिता के मरण का समाचार मिलता है और वहीं पूजा के लिए आई हुई माताओं से भेंट भी होती है। वनवास की अवधि में जब दशरथ का श्राद्ध दिवस समीप आता है तो राम चिंतित होकर सीता से परामर्श करते हैं। सीता परामर्श देती हैं कि परिस्थिति के अनुकूल फलमूल से ही श्राद्ध कर लिया जाए, राजोचित उपकरणों से तो भरत कर ही लेंगे। इसी प्रसंग में रावण वहाँ श्राद्ध कल्पज्ञ ब्राह्मण के वेश में आता है और श्राद्ध की सफलता के लिए हिमालय पर प्राप्त कांचन पार्श्व मृग की आवश्यकता बतलाकर राम को भड़काता है। तभी वहाँ मायामृग प्रकट होता है और राम सीता को एकाकी छोड़कर (लक्ष्मण पहले से ही आश्रम में नहीं थे) मृग की खोज में चले जाते हैं। सीता हरण से अनभिज्ञ भरत सुमन्त्र को राम से मिलने भेजते हैं और सुमन्त लौटकर सीताहरण

१. रघुवंश १३।२—१८
२. वही, १३।६२

का समाचार सुनाते हैं। अन्तःपुर में हाहाकार मच जाता है। भरत राम की सहायतार्थ एक बड़ी सेना भेजते हैं। अन्त में राम विजय प्राप्त कर लौटते हैं और उनका राज्याभिषेक सुखपूर्वक हो जाता है।

कथानक और कविता दोनों ही दृष्टिकोण से भास की कविता वाल्मीकि के अधिक निकट है। वाल्मीकि में नरश्रेष्ठ राम की कथा वर्णित है, विष्णु के अवतार राम की नहीं। उसी प्रकार 'प्रतिमानाटक' में भी कवि ने राम को कहीं भी भगवान् नहीं माना है। यह पूरा कथानक राजकुमार राम का है तथा पग-पग पर हमें राजकीय व्यवहारों के दर्शन होते हैं। आरम्भ में ही सूत्रधार कहता है कि 'सीता के आनन्ददाता, सुग्रीव के मित्र, लक्ष्मण के सहचर, रावण के निहन्ता, विभीषण के आत्मीय राम हम सबकी रक्षा करें।'[1] लंकापुरी पर जय पाकर लौटे हुए राम को देखकर तपस्वी कहता है—'हे नरश्रेष्ठ आपकी जय हो·········।'[2] संपूर्ण नाटक में राम अथवा किसी भी अन्य पात्र द्वारा हमें यह संकेत नहीं मिलता कि राम श्रेष्ठ नर से अधिक कुछ हैं।

भास संभवतः महाराज राजसिंह के आश्रित कवि थे।[3] अतः उन्हें राज-व्यवहारों का समुचित ज्ञान था। राजपरिवारों की व्यवस्था और उनके जीवन का यथातथ्य चित्रण हमें इस नाटक में सर्वत्र मिलता है। यहाँ तक कि जब राम वनवास कर रहे हैं और भरत उनसे मिलने जाते हैं तब भी दोनों ओर से राजकीय मर्यादा का पूर्ण पालन होता है—

लक्ष्मण—कुमार, यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारे आने की सूचना आर्य को दे रहा हूँ।

भरत—आर्य, मैं अब शीघ्र ही उनका अभिवादन करना चाहता हूँ। उनको शीघ्र सूचित कीजिए।

लक्ष्मण—बहुत अच्छा, (राम के समीप जाकर) जय हो आर्य की। आर्य, आपके प्रिय अनुज भरत आए हैं, जिनमें दर्पण की भाँति पूर्णतः आपका रूप प्रतिबिंबित होता है।

राम—बताओ लक्ष्मण, क्या सचमुच भरत आए हैं?

लक्ष्मण—आर्य और क्या!

राम—मैथिलि! भरत को देखने के लिए अपनी आँखें विशाल बनाओ।

सीता—आर्यपुत्र! क्या भरत आए हैं?

---

१. प्र० ना० १।१ प्रकाश टीका
२. प्र० ना० ७।१
३. प्र० ना० ७।१५

राम—मैथिलि, हाँ सच। ······

लक्ष्मण—आर्य, क्या कुमार भीतर आएँ ?[१]

और इसके पश्चात् राम की आज्ञा पाकर सीता भरत का अभिनन्दन कर राम के पास लाती हैं। इसी प्रकार राजकीय व्यवस्था के अनुकूल भाई भाई से पुत्र माँ से और पति पत्नी से बिना पूर्व सूचना एव आज्ञा से भेंट नहीं कर सकता है। भास के ऐसे वर्णन व्यक्तिगत अनुभवों के कारण अत्यंत सुन्दर और स्वाभाविक हैं।

सम्पूर्ण राम कथाओं में कैकेयी को लेकर जितनी वितृष्णा फैली है उतनी और किसी पात्र को लेकर नहीं। राम की विमाता होने के नाते कवियों को उसके विरुद्ध विष वमन का अवसर भी सरलता से मिल गया है। यहाँ कवि ने दशरथ की कैकेयी से विवाह के अवसर पर प्रतिज्ञात शुल्क की बात सर्वजन विदित बताकर बहुत कुछ दशरथ की उस कूटनीति को प्रत्यक्ष कर दिया है जिसका संकेत हमें वाल्मीकि रामायण में मिलता है। कैकेयी का भरत को दशरथ के मुनि द्वारा शाप की कथा बताकर कवि ने बहुत कुछ उसका दोष परिहार कर दिया है। कवि का लक्ष्य राम और सीता का चित्रण करना नहीं, कैकेयी और भरत का चरित्र अंकित करना है।

कवि की उदारता तथा भावुकता का सबसे अधिक परिचय हमें दशरथ विलाप के प्रसंग में मिलता है। पुत्रों से वियुक्त पिता के हृदय का दारुण दुःख भास की लेखनी में साकार हो उठा है।

भास की भाषा सरल और सुबोध है। बीच-बीच में सुन्दर उपमाओं और सुभाषितों से नाटक का सौंदर्य निखर उठा है। कैकेयी को देखकर भरत कहते हैं—

---

१. लक्ष्मण—कुमार ! इह तिष्ठ ! त्वदागमनमार्याय निवेदयामि।
भरत— आर्य ! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि। शीघ्रं निवेद्यताम्।
लक्ष्मण—बाढम्। (उपेत्य) जयत्वार्यः। आर्य !
अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति।
राम —वत्स लक्ष्मण ! किमेव भरतः प्राप्तः ?
लक्ष्मण—आर्य ! अथ किम्।
राम —मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षु।
सीता —आर्यपुत्र। किं भरत आगतः ?
राम —मैथिलि ! अथ किम्।
अद्य साध्वगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः।
लक्ष्मण—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः ? प्र० ना० पृ० १०६-१०७ प्रकाश टीका।

'माता कौशल्या और सुमित्रा के बीच बैठी तुम उसी भांति बुरी लगती हो जैसे गंगा और यमुना के बीच में प्रविष्ट कुनदी।'[1] कवि ने नाटक में अनेक प्रकार के छंदों का भी प्रयोग किया है जिससे कथानक के प्रवाह में सहायता मिली है। भास को काव्य शास्त्र का ज्ञान अवश्य था परन्तु उन्होंने शास्त्र को काव्य का अनुगत न बनाकर स्वामी बना दिया है। भास बाह्य प्रकृति तथा अन्त:प्रकृति दोनों के सूक्ष्म मर्मज्ञ थे और अपनी उपमाओं के लिए उन्होंने अधिकांश उपादान प्रकृति से ही चुने हैं।

उत्तररामचरित—भास के पश्चात् इस परम्परा के सोपान की अंतिम सीढ़ी पर हम जिस कवि को खड़ा पाते हैं वह हैं करुण रस के आचार्य महाकवि भवभूति। नाटकों में परम्परा से अनुमोदित शृंगार अथवा वीर रस की रूढ़ि को तोड़कर भवभूति ने अपने दोनों नाटकों में—विशेष रूप से उत्तररामचरित में करुण रस को प्रधानता दी है। उत्तररामचरित के तृतीय अंक में सीता के विरह में व्याकुल राम की दशा का चित्रण करके करुणा जैसे स्वयं मूर्तिमान हो उठी है। यह वेदना मर्मस्थल में अनी के समान चुभकर दारुण यन्त्रणा तो उत्पन्न करती है परन्तु अमर्यादित और अनर्गल प्रलाप का रूप धारण नहीं करती इसीलिए यह गम्भीर और मर्मस्पर्शी है। भवभूति ने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अन्तर्दशाओं का मार्मिक चित्रण किया है जिससे प्रभावित होकर जड़ चेतन और चेतन जड़ हो जाता है।

भवभूति भाषा के स्वामी हैं, भाषा उनकी चेरी है। उनकी भाषा तथा भावों में अनुपम सामंजस्य है। प्रकृति से प्रचण्ड दृश्यों के चित्रण में जहाँ उन्होंने क्लिष्ट और ओज गुण से युक्त भाषा का प्रयोग किया, वहाँ उन्होंने ललित एवं कोमल भावों का वर्णन करते समय कोमल कान्त पदावली का भी प्रयोग किया। कभी एक ही पद्य के पूर्वार्ध में वैदर्भी रीति की कोमल पदावली और उत्तरार्ध में वीर रस की व्यंजना के लिए गौड़ी रीति का प्रयोग किया।[2] उन्होंने सरल शैली में भी लिखा है और उत्तररामचरित के आरम्भ में ही सूत्रधार के मुख से यह भी कहलवाया है कि वह कश्यप गोत्र में उत्पन्न, व्याकरण, मीमांसा और न्याय शास्त्र जानने वाले, जतुकर्णी के पुत्र और भवभूति उपाधि से युक्त श्रीकण्ठ नाम के विद्वान हैं।[3] भवभूति व्याकरण शास्त्र और मीमांसा आदि शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् हैं, इसी से भाषा का प्रौढ़त्व, व्यंजना प्रणाली और अर्थगौरव उनके पांडित्य तथा वैदग्ध्य के परिचायक हैं। उनमें पांडित्य और प्रतिभा का मणिकांचन संयोग है। 'उत्तररामचरित' में उन्होंने कई ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो अमर कोष तक में नहीं मिलते, जैसे आकूत[4] और कंदल।[5]

---

१. प्र० ना० ३।१६
२. उ० रा० च०, ५।२६
३. उ० रा० च०, १।सूत्रधार वचन
४. उ० रा० च०, ५।३५
५. उ० रा० च०, ३।११

प्रकृति का वर्णन कवि ने उद्दीपन के रूप में नहीं किया है। प्रायः उनका अनुराग प्रकृति के कोमल पक्ष की ओर न होकर उसके प्रचण्ड रूप की ही ओर अधिक है। उन्हें प्रकृति के मधुर दृश्यों में उतना आनन्द नहीं आता जितना उसके घोर रूपों में। इसीलिए अब वह मध्याह्न में गोदावरी का वर्णन करते हैं तो वह विश्राम करती हुई गोदावरी नहीं है बल्कि उसका वीभत्स रूप ही सामने आया है।[1]

भवभूति की सर्वप्रमुख विशिष्टता यह है कि वह कोई भी वर्णन संक्षेप में नहीं कर सकते। उनकी विशद वर्णना शक्ति अद्भुत है इसी से उन्होंने राम कथा के कलेवर को एक नाटक में संभालने में असमर्थ होकर उसका विभाजन दो नाटकों में कर दिया है। महावीरचरित में वीर रस का और उत्तररामचरित में करुण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। उन्होंने अनेक नवीन मौलिक कल्पनाओं की उद्भावना की है तथा प्रकृति का भी मानवीकरण कर दिया है। मूल कथा में वह वाल्मीकि से प्रभावित हैं परन्तु प्रासंगिक कथा में उन्होंने स्वतन्त्र रूप से अनेक परिवर्तन कर दिए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप कथानक में नाटकीयता अधिक आ गई है, जैसे चन्द्रकेतु और लव का युद्ध तथा वार्तालाप। इससे राम का भी अपकर्ष होने से बच गया है और लव की वीरता भी स्पष्ट हो गई है।

कवि ने जिस राम की कथा नाटकबद्ध की है वह वाल्मीकि और भास के अनुकरण पर राजा राम की ही कहानी है। देवत्व का आरोपण उनमें यहाँ भी नहीं हुआ है। इसी से यह नाटक शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से लिखा गया है। कवि ने अनेक स्थानों पर स्पष्ट संकेत दिए हैं कि वह राजा राम का ही कथानक लिख रहे हैं, जैसे राम दुर्मुख से कहते हैं…"लक्ष्मण से कहो यह नया राजा राम आज्ञा करता है…।" नाटक के आरम्भ में सूत्रधार नट से कहता है…रावणवंश के लिए अग्नितुल्य महाराज रामचन्द्र जी का रात दिन अविच्छिन्न मंगलवाला यह राज्याभिषेक का समय है…इस तरह राम के ही प्रसंग में नहीं बल्कि किसी भी पात्र के प्रसंग में किसी देवी-देवता का उल्लेख नहीं है। इन काव्य ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है कि राम के विष्णु का अवतार होने की भावना अभी सर्वव्यापक नहीं हुई थी।

भवभूति की प्रवृत्ति शृङ्गारोन्मुख हो चली थी परन्तु अभी वह शृङ्गारिकता कामुकता के स्तर पर नहीं उतरी थी। उन्होंने जिस दाम्पत्य प्रेम का चित्रण किया है वह अकलुष और गंगाजल के समान पवित्र है। उन्होंने अपने नाटकों में इसीलिए विदूषक की अवतारणा नहीं की जिससे वह हल्के प्रेम और राजाओं को कामोन्मुक्त करने में सहायक बातों की अवतारणा न करें। उनके प्रेमचित्रण में किसी विलासी राजा की कामुकता प्रधान क्रीड़ाएँ नहीं हैं बल्कि शुद्ध पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के चित्र हैं जिसमें पाप की प्रेरणा नहीं है। कहीं-कहीं यह चित्र अधिक स्पष्ट

---

१. उ० रा० च०, २।१

अवश्य हो उठे हैं पर इनमें कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं हुआ है, जैसे गर्भ भार से परिश्रान्त सीता से राम कहते हैं, "सीते! क्या खोजती हो? विवाह के समय से लेकर बचपन में, घर में, उसके अनन्तर युवावस्था में, वन में शयन का कारण, दूसरी स्त्री से अनाश्रित यह राम की भुजा ही तुम्हारा शिराधार है।"[1] सुप्त सीता को प्रेमपूर्वक देखकर राम कहते हैं—"यह सीता घर में लक्ष्मी है, नेत्रों में अमृत शलाका है। उसका स्पर्श शरीर में प्रचुर चन्दन का रस है और यह बाहु गले पर शीतल और कोमल मुक्ताहार है। इसकी क्या वस्तु प्रियतर नहीं है? परन्तु इसका वियोग तो बहुत ही असहनीय है।"[2] भवभूति के काव्य में इसी प्रकार के शिष्ट शृङ्गार रस के अनेक चित्र मिलते हैं।

कालिदास के परवर्ती कवियों में हमें शृङ्गार रस की ओर नित्य बढ़ती हुई प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगी है। काव्य के बाह्य रूप को अलंकृत करना, मुख्य रूप से श्लेष योजना कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करना, व्याकरण शास्त्र के प्रतिबंधनों से काव्य को आबद्ध कर देना, काव्य का प्रधान लक्ष्य बन गया। भाषा क्लिष्ट और दीर्घ समासों से युक्त होने लगी। साहित्य की इस दौड़ में भाव पीछे रह गए, अभिव्यंजना आगे बढ़ गई। इस समय तक कविता पूर्णतया समुन्नत हो चुकी थी अतः लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर लक्षण ग्रन्थों का निर्माण हुआ। काव्य शास्त्र एवं अलंकार शास्त्रों की सृष्टि हो जाने से उसका प्रभाव कविता पर पड़ा और कालान्तर में कवियों ने उनके नियमों के अनुसार रचनाएँ करके स्वतन्त्र कल्पनाओं की ओर से मुख मोड़ लिया। यह कवि नेत्रों को बन्द करके शास्त्रीय नियमों को सर्वश्रेष्ठ समझकर उसी धारा प्रवाह में बहने लगे। परिणामस्वरूप जिस साहित्य की सृष्टि हुई उसमें मौलिक उद्भावनाएँ कम, परम्परागत कल्पनाएँ अधिक रहने लगीं। सूक्तियाँ अधिक प्रयुक्त हुईं, काव्य कम रह गया, इसीलिए यह कविता अपेक्षाकृत अधिक दुरूह और विरस हो गई है।

रावण वध—इस प्रकार की कविता का पूर्ण प्रतिनिधित्व हमें भट्टि के भट्टि काव्य अर्थात् रावण वध में प्राप्त होता है। भट्टि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। भट्टि अलंकार शास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान अगाध था। उन्होंने राम कथा के साथ-साथ व्याकरण के नियमों के उदाहरण भी उपस्थित किए हैं क्योंकि यही उनका लक्ष्य था जिसे उन्होंने स्वयं ही स्वीकार कर लिया है—

दीपतुल्यः प्रबंधोऽयं शब्दलक्षणचक्षुसाम्
हस्तादर्श इवान्धानाम् भवेद् व्याकरणादृते।[3]

---

१. १।३७ उ० रा० च०
२. १।३८ उ० रा० च०
३. भट्टि काव्य : २२।२३

अर्थात् जो व्यक्ति व्याकरण का ज्ञाता है उसके लिए यह ग्रन्थ दीपक के समान अन्य शब्दों को भी प्रकाशित कर देगा परन्तु व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए यह काव्य वैसे ही है जैसे नेत्रविहीन के हाथों में दर्पण। भट्टि ने अपने काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का खूब प्रयोग किया है, इसलिए उनका काव्य अपेक्षाकृत जटिल हो गया है।

भट्टि ने उस समय प्रचलित रामकथा में कुछ मौलिक परिवर्तन भी किए हैं। संभवतया भट्टि स्वयं शिव के उपासक थे इसलिए उनके दशरथ शैव हैं और शिव ही राम को बताते हैं कि वह नारायणावतार हैं। 'सेतुबंध'[1] के अनुकरण पर इन्होंने राक्षस-राक्षसियों की संयोग क्रीड़ाओं का भी वर्णन किया है। वर्णनों तथा अलंकारों के बाहुल्य के कारण काव्य की प्रबंधात्मकता में बाधा पहुँची है परन्तु उसके संवाद प्रभावशाली हैं। प्राकृतिक दृश्य भी कहीं-कहीं अत्यन्त मनोरम हैं। इस प्रकार एक नवीन शिक्षा की ओर मुड़ते हुए साहित्य का उदाहरण हमें इस काव्य में भलीभाँति मिल जाता है।

राघव पाण्डवीय—इस कोटि के अन्य कवियों में "राघव पांडवीय" के लेखक कविराज का नाम उल्लेखनीय है। इनका सम्पूर्ण काव्य श्लेषालंकार में वर्णित है और प्रत्येक श्लोक में रामायण तथा महाभारत की कथा साथ-साथ चलती है। कविराज की इस काव्य प्रणाली का अनुकरण परवर्ती कई कवियों ने किया जिसके फलस्वरूप राम और राजा नल की कथा से संबंधित हरदत्तसूरि का राघव नैषधीय, रामायण, महाभारत और भागवत की कथा से संयुक्त चिदम्बर कवि का राघव पांडवीय-यादवीय, कृष्ण और राम की कथा को लेकर वेंकटाध्वरि का यादवराघवीय जिसमें सीधा पढ़ने से राम की कथा और उल्टा पढ़ने से कृष्ण की कथा है, आदि काव्य ग्रन्थों की सृष्टि हुई। मुरारि काव्य शास्त्र के पंडित हैं और उनका 'अनर्घराघव' नाटक कवित्व की प्रौढ़ता तथा व्याकरण विषयक ज्ञान की दृष्टि से आदर्श कृति है। इसमें नाटकत्व की अपेक्षा पांडित्य ही प्रधान है। अन्योक्तियाँ तथा चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ सर्वत्र बिखरी हुई दिखाई पड़ती है, जैसे ब्रह्मा ने सीता की सृष्टि करके सीता और चन्द्रमा को तुला में रखा। सौन्दर्य में सीता का मुख अधिक भारी होने के कारण पृथ्वी पर आ गया और चन्द्रमा हल्का होने से ऊपर आकाश में चला गया। इसी को आगे चलकर और स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि उस वजन को पूरा करने के लिए ब्रह्मा ने असंख्य तारे भी चन्द्रमा के साथ लगा दिए परन्तु तब भी वह अभाव पूरा न हुआ।[2]

मुरारि अपने पांडित्य की प्रशंसा करते हुए स्वयं ही कहते हैं "सरस्वती की उपासना तो अनेक कवि करते हैं किन्तु विद्या का यथार्थ सार तो मुरारि कवि ही

---

१. सेतुबंध अथवा रावणवध का लेखक अभी तक अज्ञात है।

२. अनर्घ राघव, ७।२७

जानते हैं क्योंकि उन्होंने गुरु के घर रह कर विद्योपार्जन में घोर परिश्रम किया है। बंदरों ने महासागर को पार भले ही किया हो परन्तु उसकी वास्तविक गम्भीरता तो पाताल तक डूबने वाला विपुलकाय मंदराचल ही जानता है।"

कल्पनात्मक एवं शाब्दिक कलाबाज़ी में एक पग आगे बढ़ने पर हमारी भेंट कविराज राजशेखर से होती है जिन्होंने 'बाल रामायण' की रचना की। इस कवि का लक्ष्य है राम वनवास के अवसर पर दशरथ और कैकेयी का दोष परिहार करना। कवि का यह प्रयास तो अवश्य श्लाघनीय है परन्तु उसकी कल्पना अत्यन्त हास्यास्पद है। शूर्पणखा तथा एक अन्य राक्षसी दशरथ और कैकेयी की अनुपस्थिति में उनका मायामय रूप धारण कर लेती है और राम को वनवास की आज्ञा देती है। राम को युद्ध क्षेत्र में अनुत्साहित करने के लिए रावण राम के सामने सीता का कटा हुआ कपट मस्तक फेंक देता है। इसी प्रकार शक्तिभद्र के आश्चर्य चूड़ामणि में रावण राम का वेश धारण कर लक्ष्मण के पास पर्णकुटी पर पहुँचता है और भरत को शत्रुओं के कुचक्र में फँस जाने की बात से भयभीत लक्ष्मण को वहाँ से हटा देता है। उधर सीता-हरण हो जाने पर शूर्पणखा सीता का वेश बनाकर पर्णकुटी में बैठ जाती है।

इस कोटि के कवियों की विशेषता यही है कि उनकी भाषा शैली अत्यंत कठिन तथा कल्पना की उड़ान ऊंची है परन्तु इनमें भाषा की प्रौढ़ता का प्रमाण स्पष्ट मिलता है। इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में दो-दो तीन-तीन कथाएँ एक साथ निबाहना साधारण प्रतिभाओं के वश की बात नहीं है। उसके लिए भाषा का गंभीर ज्ञान और उस पर पूर्णाधिकार होना अपेक्षित है।

तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत शृंगार रस प्रधान कवि हैं जिनका प्रधान लक्ष्य कविता के माध्यम से लौकिक भोग विलासों का चित्रण करना है। इन काव्यों में राम और सीता भगवान् और शक्ति के अवतार हैं पर वह इस लोक में आकर साधारण नायक नायिका बन गए हैं तथा कवियों के हृदयों में स्थित वासनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से शान्त करते हैं। इनमें कवियों को जहाँ कहीं भी अवसर मिल सका है, राम-जानकी के प्रसंग में अथवा राक्षस-राक्षसियों के प्रसंग में, अयोध्यापुरी में अथवा मिथिलापुरी में, उन्होंने इस स्वर्ण अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया है। ऐसे कवियों में 'सेतुबंध' के लेखक ने (नाम अज्ञात है) अपने काव्य में रामायण की युद्ध काण्ड की कथा का वर्णन किया है। सर्वप्रथम उसने ही 'कामिनी केलि' नामक सर्ग में राक्षस राक्षसियों के संयोग का वर्णन किया है। उसके बाद 'रघुवंश' की उपस्थिति में भी 'जानकीहरण' करने वाले कवि कुमारदास ने दशरथ और उनकी रानियों के विहार वर्णन, राम सीता का पूर्वानुराग और उनका संभोग वर्णन, तथा युद्ध के पूर्व राक्षसों की काम क्रीड़ाओं के वर्णन दिए हैं। इस ग्रंथ में कवि का अनुप्रास अलंकार के प्रति विशेष मोह है, भाषा प्रसाद गुण सम्पन्ना तथा शैली सुकुमार है परन्तु कवि की दृष्टि शृंगार रस के चित्रण की ओर ही अधिक है।

इन कवियों के पश्चात् प्रसन्नराघव के रचयिता पीयूषवर्षी जयदेव का नाम आता है। काव्य क्षेत्र में जयदेव उस सन्धि स्थल पर खड़े हुए हैं जहाँ शास्त्रीय दृष्टि से एक ओर काव्य शास्त्र उनका आँचल पकड़े हुए हैं और दूसरी ओर कविता के क्षेत्र में शृंगार रस उनके अंक में विश्राम पाने को आतुर है इसीलिए उनकी कविता जहाँ एक ओर दुर्बोध है वहाँ उसमें शृंगार रस से पूर्ण उक्तियों का भी एक अजस्र प्रवाह है। उनके अनुसार जिन कवियों की वाणी कोमल कान्त पदावली युक्त काव्य की रचना कर सकती है—उनको कर्कश तर्कशास्त्र के वाक्यविन्यास के उद्गार में कौनसी त्रुटि पड़ सकती है। जो हाथ सुन्दरी नवयुवतियों के स्तनमण्डल पर सानन्द नखक्षत कर सकते हैं वे ही अवसर पड़ने पर क्या मस्त हाथियों के गण्डस्थल को अपने बाणों से विदीर्ण नहीं कर सकते हैं।[1] जब अल्पबुद्धि आलोचक उनकी कठिन रचनाओं की निन्दात्मक दृष्टि से आलोचना करते हैं तो वह कहते हैं कि इसकी दोषी उनकी रचना नहीं बल्कि आलोचकों की नीरसता और अपरिपक्व ज्ञान है—

निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनां गिरः।
स्तूयन्ते न च नीरसैर्मृगदृशां बक्राः कटाक्षच्छटाः॥
तद्वैदग्ध्यवतां सतामपि मनः किं नेहते वक्रताम्।
धत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम्॥[2]

अर्थात् जो मन्दमति आलोचक जन कवियों की वक्र रचनाओं की निन्दा करते हैं, तो नीरस लोग कामिनियों की भ्रूभंगियों को कब सराहते है? क्या चतुर लोगों का हृदय भी कविता की वक्रता से विमुख होता है? क्या चन्द्रमा की वक्रता के कारण भगवान् शिव उसे अपने मस्तक पर स्थान नहीं देते?

जयदेव की तर्क शक्ति वास्तव में अपराजेय है। उनके संवादों में जो तर्क शक्ति है और उनमें जो व्यंग्य तथा प्रतिभा अन्तर्हित है वह बरबस मन को आकर्षित कर लेती है। संवाद उनके नाटक का प्राण हैं और इन्हीं का रामचंद्रिका में अनुकरण करके हिन्दी कवि केशव ने युग-युग के लिए पाठकों का मन मोह लिया है। उनका बड़े से बड़ा आलोचक भी उनके संवादों की प्रशंसा करते नहीं थकता। सम्पूर्ण प्रसन्न राघव नाटक कुशल संवादों से भरा पड़ा है। रावण-वाण संवाद, तापस भिक्षु संवाद, जमदग्नि-तांड्यायन संवाद, गंगा-यमुना संवाद, सीता रावण संवाद, रावण-प्रहस्त संवाद आदि अनेक संवाद कवि की गूढ़ तर्क शक्ति के परिचायक हैं। पूरा नाटक ही एक प्रकार से प्रश्नोत्तर की शैली में लिखा गया है।

जयदेव में तर्क शक्ति तथा शृंगार रस के चित्रण का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। यद्यपि जयदेव ने अन्य शृंगारी कवियों के सदृश कहीं भी शृंगार के

---

१. प्र० रा० १।१८
२. प्र० रा० १।३०

नग्न अंश का चित्रण नहीं किया है परन्तु इस ओर उनकी प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है जो प्रत्येक पात्र के माध्यम से मुखर हो उठी है। रावण वाण से कहता है—"मेरे बाहुओं के बल की परीक्षा तो कैलास उठाने से ही हो चुकी है अब केवल सीता के स्तनाभोग केलि की अभिलाषा से यह धनुष उठाने की प्रवृत्ति है।"[1] लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर विद्याधरी कहती है—"लक्ष्मण ने उसे प्रिया की भाँति वक्षःस्थल से लगाया।"[2] चन्द्रोदय होते हुए देखकर सुग्रीव विभीषण से कहता है—"मित्र विभीषण! देखो—जो प्राची दिशा के श्रीखण्ड निर्मित शृंगालेख, कामदेव रूप राजा के श्वेतछत्र, आकाश लक्ष्मी रूपी ललना के दंत पत्र, रति के क्रीड़ा श्वेत कमल और रात्रि रूप रमणी के मदपात्र की भाँति आचरण करता है, ऐसा यह चंद्रमा जगत् की आँख बन रहा है।"[3]

इस नाटक में हमें राम सीता का भी वह रूप नहीं मिलता जो परम्परा से अनुमोदित था। उस समय तक पतिव्रता के आदर्शों में अन्तर आ गया था अतः कवि को अनुगता सीता का रूप अभीष्ट नहीं है इसलिए सीता राम के चरण-चिह्नों पर चलने में अधिक आनन्द का अनुभव करती है। राम उन पर वल्कल के छोर से हवा करते हैं और सीता पति राम का श्रम अपने बंकिम कटाक्ष से दूर कर देती हैं।[4]

भाषा पर जयदेव का असामान्य अधिकार है। उनकी शैली परिष्कृत तथा भाषा मधुर और प्रांजल है। इनकी सरल, कोमल तथा ललित भाषा-सूक्तियों का सौन्दर्य स्थान-स्थान पर है जिससे प्रभावित होकर तुलसी तथा केशव ने अनेक पदों का अनुवाद कर अपनी कृतियों में ग्रहण कर लिया है।

हनुमन्नाटक—जयदेव के पश्चात् हनुमन्नाटककार का नाम आता है। इस लेखक के नाम का अभी तक निश्चित पता नहीं चला है परन्तु राम की प्रचलित कथा में इसने अनेक परिवर्तन कर दिए हैं। इस नाटक की काव्य प्रणाली से ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी रचना रंगमंच के उद्देश्य से न होकर अध्ययन तथा मनन के लिए ही हुई होगी। इस नाटक की रचना तिथि भी अज्ञात है परन्तु इतना निश्चित है कि यह संस्कृत राम साहित्य परम्परा में काफी बाद की रचना है। उस समय राम के कथानक को लेकर विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों ने अपने स्वतन्त्र साहित्य की रचना कर ली थी और राम कथा के पात्रों को अपने-अपने धर्म का अनुयायी बना लिया था। बौद्ध तथा जैन धर्मों का भी विकास हो चुका था और उन्होंने भी राम को 'बुद्ध' एवं 'तीर्थंकर' के रूप में स्वीकार कर लिया था जैसाकि मंगलाचरण करते समय नाटककार ने कहा है—"शैव मत के अनुयायी जिनकी उपासना शिव नाम से करते हैं, वेदान्ती ब्रह्म नाम से करते हैं, बौद्ध मतवाले जिनकी बुद्ध नाम से उपासना

१. प्र० रा०, १।५२
२. प्र० रा०, ७।२८
३. प्र० रा०, ७।६२
४. प्र० रा०, ५।२८

करते हैं, प्रमाण देने में चतुर नैय्यायिक जिनकी 'कर्त्ता' नाम से उपासना करते हैं और जैनी 'अर्हंत' नाम से। मीमांसक लोग जिनको 'कर्म' कहकर पूजते हैं ऐसे त्रिलोकीनाथ विष्णु स्वरूप रामचंद्र तुम्हारे मनोभिलाषित कार्यों को सफल करें।"[१]

राम साहित्य के इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले कवियों में इस नाटककार का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। कालांतर में इस नाटक का अनुकरण कर हिन्दी साहित्य में राम का नाम लेकर जो अंधेर मचा वह वर्णनातीत है। भोग विलास और कामक्रीड़ाओं का जितना नग्न प्रदर्शन इस नाटक मे हुआ उतना अन्य राम काव्य मे नहीं। नाटक का द्वितीय अंक किसी काव्य ग्रथ का अंक न होकर काम शास्त्र का अध्याय सा प्रतीत होता है। राम सीता तो केवल माध्यम हैं, वास्तव में कवि ने एक साधारण नायक-नायिका की रति क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, राम सीता के रात्रि मिलन के लिए कवि ने जो कल्पना की है, उसकी समता विश्व का शायद ही कोई कवि कर सके। राम सीता को लेकर अयोध्या पहुँचते हैं और लक्ष्मण के साथ सम्पूर्ण गुरुजनों को मस्तक से नमस्कार कर, काम के वाणों से विदीर्ण हृदय होकर, अति कठिनता से तीन पहर बिताकर अश्वशाला में जाकर अश्वों का दण्ड-ताड़न करने लगते हैं जिससे पुत्र और पुत्रवधू को काम से सन्तप्त देखकर भगवान् किरणमाली के अश्व पृथ्वी के अश्वों का ताड़न देखकर शीघ्रता से भागने लगें और उनका रात्रि-संगम यथासंभव शीघ्र सम्पन्न हो सके।[२] इसके पश्चात् ३१ छंदों तक राम सीता मिलन का अश्लील वर्णन है। इस क्रीड़ा में सीता का रूप जगज्जननी सीता से हटकर एक काम से उद्दीप्त नायिका का रह गया है जो अपनी शारीरिक वासना पूर्ति के लिए विभिन्न चेष्टाओं द्वारा नायक राम को आमन्त्रित करती है।

नाटक में कवि ने प्रकृति का जो चित्रण किया है वह तत्कालीन साहित्य में एक नवीन धारा का परिचायक है। दिवस का अवसान हुआ है और रात्रि का आगमन, आकाश मे चन्द्रमा का उदय हुआ है, उस पर कवि उत्प्रेक्षाएँ करता है— निकट भविष्य में राम के शाप के कारण चकवा-चकवियों के लिए उत्पात का कारण, अपनी इच्छानुसार कुमुदों की कलियों को खिलाता हुआ, तरुण पुरुषों के मन को दुःख देता हुआ और अपनी चाँदनी को फैलाता हुआ, अंधकार के टुकड़े गिराता हुआ, समुद्र को झकोलता अथवा बढ़ाता हुआ तथा चकवी चकवियों को व्याकुल करता हुआ और दशों दिशाओं को निर्मल करता हुआ यह चन्द्रमा उदय होता है।[३]

उत्प्रेक्षाओं का यह क्रम यहीं समाप्त नहीं हो जाता है बल्कि और भी छः श्लोकों तक चलता रहता है। इन सब कल्पनाओं में प्रकृति चित्रण का अभाव और दूर की कल्पनाओं का ही प्राधान्य है। प्रकृति का उपयोग उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत

१. हनुमन्नाटक २।१-२
२. ह० ना० २।५
३. ह० ना० २।५

हुआ है, स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण के दृष्टिकोण से नहीं। कथानक में यद्यपि कवि ने वाल्मीकि, मुरारि, कालिदास और बाण ने भाव लिए हैं तथापि अनेक स्थानों पर कवि ने स्वतन्त्र उद्भावनाएँ भी की हैं, जैसे मृग का आखेट करने राम और लक्ष्मण साथ-साथ जाते हैं, हनुमान शंकर के अवतार हैं और रावण स्वयं राम का वेश धारण कर सीता का सतीत्व भंग करने का असफल प्रयास करता है।

इस नाटक में कवि मार्मिक स्थलों को प्रायः बचा गया है। सीता वनवास का वर्णन एक ही वाक्य में कर दिया है परन्तु जहाँ वर्णन का अवसर मिला वहाँ कवि की कल्पनाएँ दर्शनीय हैं। जयदेव के समान संवाद भी इस नाटक की एक बहुत बड़ी सफलता है। केशव ने अपने कुछ संवाद इस नाटक से भी उद्धृत किए हैं, जैसे रावण-अंगद संवाद।

नाटककार ने कहा है कि इस नाटक का श्रवण करने से चतुर्दश भुवनों की निर्मल ब्रह्मसंज्ञक मुक्ति प्राप्त होती है। इसके संग्रहकार दामोदर मिश्र ने इसे वाल्मीकि रामायण से भी श्रेष्ठ कहा है।[1] निस्संदेह काव्यत्व की दृष्टि से यह नाटक बहुत श्रेष्ठ है। चलती हुई सरल भाषा, सुन्दर सूक्तियाँ और उच्च कल्पनाएँ नाटक में निरन्तर प्राण प्रतिष्ठा करती हैं परन्तु ग्रन्थ ब्रह्म मुक्ति का दाता धार्मिक ग्रंथ कदापि नहीं है।

इन शुद्ध काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी साहित्य था जो रामचन्द्रिका की रचना करते समय केशव के सामने था और जिसका पर्याप्त प्रभाव भी केशव पर पड़ा है। यह साहित्य है पुराण और उनके आधार पर लिखे गये अध्यात्म रामायण जैसे ग्रंथ। इनका धार्मिक महत्त्व तो है ही परन्तु साहित्य की दृष्टि से भी ये ग्रन्थ उच्चकोटि के हैं। इनमें राम सर्वसम्मति से भगवान् का अवतार मान लिए गए हैं एवं भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति, सदाचार आदि के उपदेश देने के लिए ही राम कथा का उपयोग किया गया है। रामचरित का वर्णन करते-करते पद-पद पर ऐसे प्रसंग उठा लिए गए हैं जहाँ उपदेश दिया जा सकता है। साहित्यिक ग्रथों का परिचय प्राप्त करते समय हम देख चुके हैं कि ग्रन्थों में राम को विष्णु का अवतार मान लिया गया है परन्तु फिर भी राम लौकिक प्राणियों के समान लीलाएँ करते हैं और कभी-कभी उनके नारायणत्व को स्मरण कराने के लिए अन्य पात्रों को यह उत्तरदायित्व सँभालना पड़ता है। जनता को शंका होती है कि यह कैसे भगवान् हैं जो सामान्य जीवों के समान व्यवहार करते हैं। उसी का उत्तर अध्यात्म रामायणकार ने पार्वती की शंका का शिव के द्वारा समाधान करवा कर दिया है। इसमें नारद जी ब्रह्मा से पूछते हैं कि जब कलियुग आएगा और मनुष्य पुण्य कर्म छोड़ देंगे, वे दूसरों की निंदा में तत्पर होंगे···तब उनका परलोक सुधारने

---

१. हनुमन्नाटक, १४-१४

का क्या उपाय होगा ?[1] तुलसी और केशव को भावी कलियुग की प्रतीक्षा नहीं करनी पडी है। उन्होंने उसे अपने नेत्रों से देखा था, अतएव उन्होंने मानस तथा रामचन्द्रिका में उसका सूक्ष्म वर्णन किया है।

अध्यात्म रामायण में अनेक स्थलों पर भगवान की महिमा तथा जीव के अज्ञान का वर्णन हुआ है। भगवान् राम माया के सहयोग से जीव को मनमाना नाच नचाते हैं। वह केवल भक्ति से ही वशीभूत हो सकते हैं। केशव पर इन विषयों का गहरा प्रभाव पड़ा था, वह योगवशिष्ठ की अनित्यता से भी प्रभावित थे। ऐसे ही ग्रंथों की छाया में रामचंद्रिका में रामकृत राज्यश्री निन्दा आदि के प्रकरण आए हैं।

उपर्युक्त राम काव्यों के अतिरिक्त कतिपय अन्य राम काव्य भी उपलब्ध हैं परन्तु केशव अथवा रामचंद्रिका पर उनकी कथा अथवा शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव न होने के कारण उनका परिचय हम अत्यन्त संक्षेप में दे रहे हैं।

उदारराघव—उदारराघव की रचना साकल्य नामक कवि ने चौदहवीं शताब्दी में की थी। इसके केवल नौ सर्ग सुरक्षित हैं यद्यपि यह १८ सर्गों की रचना कही जाती है। इसमें शूर्पणखा के विरूप करने तक की कथा है। यहाँ राम विष्णु के पूर्णावतार और लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न क्रमशः शेष, सुदर्शन तथा शंख के अंशावतार माने गए हैं। शृंगार की अधिकता इस काव्य में भी है, जैसे मैथिली स्त्रियों का वर्णन, राम सीता के वन विलास और शूर्पणखा के प्रसंग।

राघव पांडवीय—कविराज की यह रचना अत्यन्त अद्भुत है। इसके प्रत्येक श्लोक में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का साथ-साथ वर्णन है। इसके अनुकरण पर हरदत्तसूरि ने राघव-नैषधीय में राम तथा नल की, चिदम्बर ने राघव-पांडवीय-यादवीय में रामायण, महाभारत और भागवत की कथा के एक साथ वर्णन किए। वेंकटाध्वरि के यादवराघवीय में और भी आश्चर्यजनक रूप से कथा-वस्तु का संकलन है। इसमें सीधे पढ़ने से राम कथा और उल्टे पढ़ने से कृष्ण कथा मिलती है।

इनके अतिरिक्त तीन और महाकाव्य मिलते हैं जिनका कथा-वस्तु के दृष्टिकोण से कोई विशेष महत्त्व नहीं है, जैसे चक्र कविकृत जानकी परिणय, अद्वैतकृत रामलिंगामृत और मोहनस्वामि कृत राम रहस्य।

जानकी परिणय में दशरथ यज्ञ से परशुराम तेजोभंग तक की कथा है। इसमें अहिल्या शिला में परिणत हो जाती है।

रामलिंगामृत दो गोपिकाओं के संवाद से आरम्भ होता है। उनमें से एक रघुवंशीय गोपिका है जो रामचरित का वर्णन करती है। इसमें नारद रावण से जाकर सीता का सौंदर्य वर्णन करते हैं जिससे आकर्षित होकर रावण सीता का हरण

---

१. अध्यात्म रामायण माहात्म्य, ७।१५

कर लेता है। राम हनुमान को मुद्रिका के अतिरिक्त एक पत्र भी सीता को देने के लिए कहते हैं। रण-क्षेत्र में रावण एक विस्तृत भाषण देता है जिसमें वह राम को विष्णु का अवतार मानता है। कैकेयी राम से कहती है कि मैंने देवराज की प्रेरणा से रावण वध हेतु तुमको वन में भेजा था। शेष कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है।

राम रहस्य की अधिकांश सामग्री अन्य ग्रंथों से उद्धृत की गई है। १३ क्रीड़ोपकरणों की सामग्री अध्यात्म रामायण से और राम सीता के संभोग वर्णन, अंगद के कार्यों आदि के लिए अधिकांश सामग्री महानाटक से ली गई है।

महाकाव्यों की अपेक्षा कथा परिवर्तन का क्षेत्र नाटकों में अधिक विस्तृत है क्योंकि उसमें प्रासंगिक घटनाओं तथा नवीन पात्रों की सृष्टि सरलता से की जा सकती है। इसीलिए महाकाव्यों की अपेक्षा नाटकों की रचना अधिक लोकप्रिय होती है। राम कथा को लेकर भी अनेक नाटकों की रचना हुई। राम कथा को लेकर अभिनय प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार प्राचीन संस्कृत नाटक दुःखांत नहीं होते थे इसलिए अधिकांश नाटकों में सीता के जीवन का अन्तिम भाग परिवर्तित कर दिया गया है।

कुन्दमाला—दिङ् नाग की यह रचना भवभूति के उत्तररामचरित से प्रभावित है। भवभूति के समान दिङ्नाग ने भी इसमें केवल सीता त्याग से राम सीता सम्मिलन तक की कथा कही है।

इसमें राम नैमिषारण्य में अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करते हैं। वाल्मीकि के साथ सीता भी नैमिषारण्य पहुँचती हैं। गोमती के तट पर भ्रमण करते हुए राम लक्ष्मण जलधारा में कुन्द पुष्पों की एक माला बहती हुई देखते हैं, उसे सीता निर्मित समझ कर राम विलाप करने लगते हैं। तिलोत्तमा सीता का रूप धारण कर राम को और भी संतप्त करती है।

कुश लव के रामायणगान के पश्चात् सभा में पृथ्वी देवी सीता की निर्दोषिता की साक्षी देती हैं। राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं। पृथ्वी देवी तिरोहित हो जाती हैं और राम, सीता तथा पुत्रों का सुखदायक पुनर्मिलन होता है।

अनर्घ राघव—नाटक की प्रस्तावना में मुरारि ने कहा है कि उसने भयानक और वीर जैसे उग्र रसों के निरन्तर आस्वादन से थकित प्रेक्षकों को अद्भुत एवं वीर रसों से युक्त एक उदात्त रचना प्रदान की है।

मुरारि के इस नाटक में इसीलिए अनेक विचित्र परिवर्तन मिलते हैं। नाटक की कथावस्तु विशेष रूप से भवभूति के महावीरचरित से प्रभावित हुई है। कथानक विश्वामित्र के आगमन से लेकर राम के राज्याभिषेक तक है। महावीर चरित के अनुकरण पर इसमें भी रावण दूत शौष्कल जनक से रावण के लिए सीता की याचना

करता है। शूर्पणखा मायामयी मंथरा के रूप में कृत्रिम पत्र के आधार पर राम का वनवास माँगती है।

नाटककार ने कुछ स्वतंत्र कल्पनाएँ भी की हैं, जैसे परशुराम के धनुष चढ़ाते समय सीता को भय होता है कि राम कहीं पुनः अन्य स्त्री की प्राप्ति हेतु तो धनुर्भंग नहीं कर रहे हैं। कबंध केवट पर आक्रमण करता है। लक्ष्मण कबंध को मार कर निषाद की रक्षा करते हैं। कबंध का वध करते समय लक्ष्मण उस वृक्ष को गिरा देते हैं जिस पर दुंदुभि राक्षस का कंकाल लटक रहा था। बालि उससे उत्तेजित हो राम को युद्ध के लिए ललकारता है। मुरारि ने राम और बालि के युद्ध में इस प्रसंग को लाकर राम के उस दोष का परिहार कर दिया है जहाँ वह अकारण ही सुग्रीव के कारण बालि से युद्ध करते हैं। लंका विजय के पश्चात् राम जब अयोध्या लौटते हैं उस समय नाटककार ने उनकी विमान यात्रा का वर्णन भी अत्यन्त रोचक और अद्भुत ढंग से किया है। सुमेरु पर्वत, चन्द्रलोक आदि दिव्य लोकों का भ्रमण करते हुए ही राम अपनी राजधानी में प्रविष्ट होते हैं।

बालरामायण—कविराज राजशेखर ने बालरामायण नाटक की रचना की है। दस अंकों के इस नाटक का कथानक अत्यन्त शिथिल है। कालिदास की गंभीरता और भवभूति की करुणा इन सबसे यह नाटक बहुत दूर है। कथानक की अधिकांश घटनाएँ राजशेखर ने भवभूति और मुरारि से ली हैं। कुछ परिवर्तन उन्होंने स्वयं भी किए हैं।

सीता स्वयंवर में रावण स्वयं उपस्थित होता है परन्तु शंकर का धनुष चढ़ाने का साहस उसे नहीं होता, अतः वह राम को अनेक आपत्तियों का भय दिखा कर अपना शत्रु घोषित कर देता है। राम के विरुद्ध वह परशुराम को युद्ध के लिए प्रेरित करता है परन्तु परशुराम स्वयं उसी से युद्धार्थ तत्पर हो जाते हैं। लंका जाकर रावण सीता के विरह में व्याकुल होकर ऋतुओं, सरिताओं और पक्षियों से सीता की याचना करता है। राजशेखर ने विरह की यह भावना संभवतः कालिदास के पुरुरवा के विरह वर्णन से ली है। रावण को प्रसन्न करने के लिए नाटक का आयोजन होता है। नाटक में सीता स्वयंवर की घटना है। राम की सफलता देखकर रावण क्रोधित होकर नाटक रोक देता है। माल्यवान सीता की पुत्तलिका में सारिका स्थापित कर रावण को संतुष्ट करने का असफल प्रयास करता है:

दशरथ और कैकेयी की अनुपस्थिति में मायामय रावण, शूर्पणखा और एक अन्य राक्षसी दशरथ, मंथरा और कैकेयी का रूप धारण कर राम को वनवास दे देते हैं। इससे रामायण के दशरथ और कैकेयी का दोष परिहार तो होता है परन्तु यह कल्पना अत्यन्त हास्यजनक और हलकी लगती है। रावण लंका पर आक्रमण करने के लिए आती हुई राम सेना के सम्मुख राम को हतोत्साह करने के लिए सीता का कटा हुआ मस्तक दिखाता है परन्तु लक्ष्य में असफल होता है। अन्त में मुरारि के अनुकरण

पर अनेक दिव्य और लौकिक प्रदेशों का भ्रमण करते हुए राम विमान से अयोध्या **लौट आते हैं।**

आश्चर्यचूड़ामणि—शक्तिभद्र ने अपने इस नाटक में सीताहरण के प्रसंग से लेकर सीता की अग्नि परीक्षा तक की कथा दी है। सीता-हरण की घटना इस नाटक में अनेक परिवर्तनों के साथ आई है। मारीच राम लक्ष्मण को भेज सीता को कुटी में अकेली छोड़ने का प्रपंच रचता है। रावण राम का रूप धारण कर पर्णकुटी पर पहुँचता है। उसका सारथी लक्ष्मण के रूप में आकर कहता है कि अयोध्या में भरत शत्रुओं के कुचक्र में फँस गए हैं अतः वहाँ चलना अत्यावश्यक है। इस प्रकार बड़ी सरलता से रावण सीता को हर ले जाता है। सीता की अनुपस्थिति में शूर्पणखा कुटी में सीता का रूप धारण कर बैठ जाती है।

इसमें राम तथा सीता के पास मुनियों से प्राप्त एक मुद्रिका तथा चूड़ामणि है जिसके स्पर्श से राक्षसों को अपना वास्तविक रूप धारण करना पड़ता है। इसी से शूर्पणखा का कपट खुल जाता है पर राम उसे क्षमा कर लंका भेज देते हैं। इस आश्चर्यजनक चूड़ामणि के कारण ही नाटक का नामकरण आश्चर्यचूड़ामणि हुआ है।

नाटकों की इस परम्परा में कुछ अन्य राम नाटक भी मिलते हैं,[1] परन्तु काव्य की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व नहीं है।

---

१. नाटक	लेखक	विशेषताएँ
रामाभ्युदय	यशोवर्मा	पहले लक्ष्मण मृग का वध करने जाते हैं अनन्तर रामसहायतार्थ जाते हैं।
उदात्तराघव	मायुराज	
कृत्यारावण	अज्ञात	
मायापुष्पक	अज्ञात	
स्वप्न दशानन	अज्ञात	
अभिनवराघव	क्षीर स्वामी	
राघवाभ्युदय	रामचन्द्र	
मैथिली कल्याण	हस्तिमल्ल	अभिसारिका सीता का वर्णन है।
दूतांगद	सुभट्ट	
उन्मत्त राघव	भास्कर भट्ट	दुर्वासा के शाप से सीता मृग में परिणत हो जाती है।
रामाभ्युदय	व्यास मिश्रदेव	
अद्भुतदर्पण	महादेव	ऐन्द्रजालिक दर्पण द्वारा राम लंका की घटनाएँ देखते हैं।
जानकी परिणय	रामभद्र दीक्षित	विराध राम का रूप धर सीताहरण करने के प्रयास में शूर्पणखा का हरण कर लेता है जिसने सीता का रूप धारण कर रखा था।

नाटकों के अतिरिक्त मेघदूत तथा गीतगोविन्द के अनुकरण पर कुछ शृंगार रस प्रधान खण्ड काव्यों की भी रचना हुई।[१]

कथा साहित्य में राम सम्बन्धी प्राचीनतम रचना कदाचित् कथासरित्सागर मिलती है। इसमें दो स्थलों पर राम कथा का वर्णन है। प्रथम स्थान पर वनवास से लेकर राम की अयोध्या यात्रा तक का वर्णन है।[२] इसमें वाल्मीकि के कथानक से कोई मौलिक भेद नहीं है। दूसरे स्थान पर कांचन प्रभा राम कथा का वर्णन करती है। इस कथा में कुछ परिवर्तन है, जैसे वाल्मीकि के आश्रम में सीता की परीक्षा के अवसर पर पृथ्वी प्रकट होकर सीता को गंगा के उस पार पहुँचाती है। पहले केवल लव का जन्म होता है, अनन्तर कुश के अलौकिक जन्म की कथा है। इस कथा का अन्त राम सीता का सम्मिलन कराकर सुख में होता है।

राम कथा को लेकर कुछ चम्पू काव्यों की भी रचना हुई, जिनमें भोजकृत चम्पू रामायण उल्लेखनीय है।

बौद्ध साहित्य में राम कथा

गौतम बुद्ध ने अपने अनेक पूर्व जन्मों में एक जन्म में स्वयं को राम भी माना है। राम के श्रेष्ठ व्यक्तित्व के कारण बौद्धों ने भी अपने साहित्य में राम कथा के विविध अंशों को, अनेक रूपों में स्थान दिया। राम कथा की उत्पत्ति बताते समय राम कथा की प्राचीनता की ओर संकेत किया गया है। संक्षेप में राम कथा की प्राचीनता के लिए तीन मत हैं—

१. बौद्ध जातक कथाएँ प्राचीनतम हैं, उनसे ही रामायण आदि राम काव्यों को प्रेरणा प्राप्त हुई।

२. बौद्ध लेखकों ने रामायणीय घटनाओं को अपने-अपने जातकों में स्थान दिया।

३. बौद्ध साहित्य तथा रामायणकार दोनों ने उस समय प्रचलित प्राचीन लोक कथाओं को आधार मानकर स्वतन्त्र रचनाएँ कीं।

बौद्ध साहित्य तथा राम कथा की अन्तर्कथाओं में एक ओर जो असमानता दृष्टिगोचर होती है तथा दूसरी ओर अनेक स्थानों पर भाव एवं भाषा में जो समा-

---

१. नैयायिक रुद्र वाचस्पति कृत	अमरदूत
वासुदेव कृत	अमरसंदेश, कपिदूत
कृष्णचन्द्र कृत	चन्द्र दूत
हरिशंकर कृत	गीता राघव
हरिनाथ कृत	रामविलास

२. १४वीं लंबक

नता है उससे यही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है कि स्वतन्त्र लोक गीतों के आधार पर ही दोनों साहित्यों की रचना हुई होगी।

बौद्ध जातक कथाओं के अन्तर्गत दशरथ जातक में राम कथा का प्राचीनतम रूप सुरक्षित है। अन्य कथाओं में राम कथा के कतिपय अंश अथवा उससे मिलती जुलती घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ मिलती हैं।

दशरथ जातक—किसी गृहस्थ ने अपने पिता की मत्यु होने पर शोकातुर हो सारे कर्त्तव्य त्याग दिए। उसकी इस उदासीनता को दूर करने के लिए महात्मा बुद्ध पूर्वकालीन एक आख्यान सुनाते हैं जिसमें पिता दशरथ की मृत्यु पर राम किंचित् भी शोक नहीं करते। दशरथ जातक में शोक के प्रति राम की तटस्थता दिखाना ही महात्मा बुद्ध का लक्ष्य है, इसलिए राम कथा की अनेक घटनाओं को इसमें स्थान नहीं मिला है, जैसे सीता की अग्नि परीक्षा, लंका युद्ध आदि।

इस जातक की कथा यद्यपि रामायण से अनेक बातों में भिन्न है परन्तु राम कथा का मूल रूप इसमें अवश्य सुरक्षित है। इसमें कथा का मुख्य केन्द्र अयोध्या न होकर वाराणसी है तथा राम के वनवास का स्थान विंध्याचल न होकर हिमालय पर्वत है। दशरथ की १६०० रानियाँ हैं, जिनमें ज्येष्ठा रानी की तीन सन्तानें हैं राम, लक्ष्मण तथा पुत्री सीता। सीता यहाँ राम-लक्ष्मण की सहोदरा है। भरत दूसरी रानी के पुत्र हैं और शत्रुघ्न का इसमें कोई उल्लेख नहीं है। भरत के साठ वर्ष का हो जाने पर भरत की माता दशरथ से पूर्व प्रतिज्ञात वर मांगती है जिसमें वह भरत के लिए राज्य की याचना करती है। दशरथ उसे उचित-अनुचित अनेक बातें कहते हैं परन्तु वह राज्य की ही याचना करती रहती है। दशरथ आशंकित होकर राम लक्ष्मण दोनों पुत्रों को जंगल में जाकर वास करने की आज्ञा देते हैं, जिससे उनकी विमाता उनके प्रति कोई छल न कर सके। ज्योतिषी राजा की आयु बारह वर्ष बताते हैं इसलिए दशरथ पुत्रों से बारह वर्ष पश्चात् आकर राज्य करने को कहते हैं। सीता भी भ्राताओं के साथ जाने को तत्पर हो जाती है और तीनों क्रन्दन करते हुए प्रासाद से उतरते हैं।

वन में लक्ष्मण और सीता राम की सेवा करते हैं। पुत्रों का वियोग असहनीय होने के कारण दशरथ की मृत्यु नौ वर्ष पश्चात् ही हो जाती है। भरत के सिंहासनारूढ़ होने में अमात्यों के बाधा डालने पर भरत राम को लेने वन में जाते हैं। पिता की मृत्यु का ममाचार जानकर राम न चिन्ता करते है और न शोक। सन्ध्या को लक्ष्मण और सीता के लौटने पर जल में खड़ा करके राम उनसे पिता की मृत्यु का समाचार कहते हैं। इस दुःखद समाचार को सुनकर दोनों मूर्च्छित हो जाते हैं। भरत आश्चर्यचकित होकर राम के तटस्थ रहने का कारण पूछते हैं। तभी राम अनित्यता का उपदेश देते हैं जिससे जनता शोकरहित हो जाती है।

भरत के राज्य के लिए, अनुरोध करने पर राम स्वयं पिता की आज्ञा पालन करना श्रेष्ठ समझकर अपनी तृणपादुका देकर भरत को भेज देते हैं। लक्ष्मण और सीता भी भरत के साथ चले जाते हैं। यह तृण पादुकाएँ राज्य में अन्याय होने पर आपस में टकराती थीं अन्यथा शान्त रहती थीं। तीन वर्ष के पश्चात् राम सीता से विवाह कर राज्य स्वीकार कर लेते हैं।

इस कथा में दशरथ महाराज शुद्धोदन, माता महामाया, सीता यशोधरा, भरत आनन्द और रामपंडित स्वयं बुद्ध थे।

अनामक जातक—इस जातक का मूल भारतीय पाठ नहीं मिलता, वल्कि एक चीनी अनुवाद मिलता है। इसमें राम कथा के पात्रों के नाम नहीं मिलते परन्तु अनेक घटनाएँ ऐसी मिलती हैं जिनसे राम कथा के स्पष्ट संकेत मिलते है, जैसे राम सीता का बनवास, सीता हरण, जटायु वध, बालि सुग्रीव का युद्ध, सेतुबंध, अग्नि परीक्षा आदि।

इस कथा में राम के वनवास का कारण उनके माता-पिता नहीं हैं बल्कि राम स्वयं अपने मातुल की युद्ध की तैयारियाँ सुनकर वन चले जाते हैं जिससे व्यर्थ अनेक निरपराध व्यक्तियों का वध न हो। अहिंसा बौद्ध धर्म का मूल तत्त्व होने के कारण राम के लिए युद्ध का वर्णन स्वाभाविक ही है। अपनी रानी को लेकर राजा राम वन चले जाते हैं और उनके मामा राज्याधिकारी हो प्रजा को अनेक कष्ट पहुँचाते हैं।

वन में एक नाग रहता है। वह ऋषि का छद्म वेश धारण कर तथा रानी का अपहरण कर पर्वतों की ओर भाग जाता है। पहाड़ी पर एक विशाल पक्षी उस नाग का मार्ग रोकने का प्रयास करता है परन्तु नाग उस पक्षी का दक्षिण पंख तोड़ डालता है। राजा लौटकर रानी को न पाकर दुःखी होकर उसकी खोज करता है। एक नदी के स्रोत पर पहुँचकर उसकी भेंट एक बड़े बन्दर से होती है जो अत्यन्त विषण्ण दिखाई देता था। दोनों अपना-अपना दुःख सुनाकर परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा करते हैं। राजा के धनुष में वाण संधान करते ही वानर का चाचा भयभीत होकर भाग जाता है। वानर प्रसन्न होकर अपने अनुचरों को रानी की खोज करने की आज्ञा देता है। आहत पक्षी नाग द्वारा रानी के अपहरण का वृत्तान्त सुनाता है। वानरों का नाग द्वीप में नाग से युद्ध होता है तथा राजा नाग का वध कर रानी को पुनः प्राप्त करता है।

अपने मामा का देहान्त सुनकर राजा अपना राज्य स्वीकार कर लेता है। रानी अपने आचरण पर सन्देह सुनकर कहती है कि यदि उसमें सतीत्व है तो पृथ्वी फट जाए। पृथ्वी फट जाती है तथा उसका सतीत्व प्रमाणित हो जाता है। इसके अनन्तर राजा रानी दीर्घकाल तक राज्य करते हैं। तब बुद्ध राजा, गोपा रानी देवदत्त मामा तथा मैत्रेय इन्द्र था।

देव-धम्म जातक—देवधम्म जातक में राम कथा की दो घटनाओं के संकेत मिलते हैं—राम वनवास तथा सेतुबन्ध के समय सागर पर राम का कोप।

राजा ब्रह्मदत्त सूर्य कुमार के उत्पन्न होने पर अपनी रानी को एक वर देते हैं। रानी 'इच्छा होने पर लूँगी' कहकर उसे बंधक रख देती है। कुमार के वयस्क होने पर वह उसके लिए राज्य माँगती है। राजा की प्रथम रानी से दो पुत्र महिसास और चन्द्रकुमार थे। राजा अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर वन जाने की यह कहकर आज्ञा देते हैं कि उसकी मृत्यु के अनन्तर वह वहाँ आकर राज्य करें। जब सूर्य कुमार को यह ज्ञात हुआ तो वह भी अपने दोनों भ्राताओं के साथ वन चले जाते हैं।

बोधिसत्त्व अपने भ्राताओं को सरोवर से पानी लाने के लिए भेजते हैं। सरोवर का स्वामी एक ब्रह्मराक्षस है जो देव धर्म न जानने वाले को पकड़ लेता था। फलतः वह सूर्य कुमार और चन्द्रकुमार दोनों को पकड़ लेता है। बोधिसत्त्व भ्राताओं को छुड़ाने के लिए धनुप बाण का संधान करते हैं तभी ब्रह्मराक्षस मनुष्य वेश में आकर देव धर्म पूछता है और दोनों को छोड़ देता है।

जयद्दिस जातक—इस जातक में राम के दण्डकारण्य जाने का उल्लेख है। जयद्दिस कुमार के राक्षस का भोजन बनने के लिए जाते समय उसकी माता मंगल कामना करती है। वह कहती है कि दण्डकारण्य गए राम माता ने जिस प्रकार राम मंगल कामना की उसी प्रकार हे पुत्र मैं तेरी मंगल कामना करती हूँ।

साम जातक—साम जातक के साम तथा राम कथा की श्रवण मृत्यु में एक ऐसी अभिन्नता है जो इसके एक मूलस्रोत की ओर स्पष्ट संकेत करती है—

साम मिगासममती नदी से जल भरने जाता है। जल लेते समय वह बनारस के राजा पिलियाख के बाण से आहत होकर मृत्यु को प्राप्त करता है। अपने अंधे माता पिता के साम और श्रवण दोनों एक मात्र पुत्र हैं। दोनों अब्राह्मण हैं और दोनों के माता पिता संन्यासी हैं। दोनों का वध एक ही प्रकार से होता है और राजा ही जाकर यह करुण समाचार उनके जनक जननी को सुनाता है। दोनों के माता पिता के विलापों में भी सादृश्य है।

वेस्संतर जातक—वेस्संतर जातक से हमें राम-कथा के उन दृश्यों का स्मरण होता है जहां सीता राम से वन चलने का हठ करती हैं और राम उनको वन के अनेक कष्टों के सम्बन्ध में समझाते हैं। वेस्सांतर को निर्वासन मिलने पर उनकी पत्नी माद्री उसी प्रकार करुण शब्दों में याचना करती है जैसे सीता राम से। इसके अतिरिक्त वेस्सांतर अपना राज्य त्यागने के पूर्व राम के समान ही विपुल दान दक्षिणाएँ देकर जाते हैं। कौशल्या, भरत तथा वेस्सांतर जननी फुशाति के करुण विलापों में अनेक स्थलों पर समानता है।

शम्बुल जातक—शम्बुल जातक में पिशाच काशीराज स्पेथिसेनी की पत्नी शम्बुला से प्रणय का प्रस्ताव करता है। शम्बुला के पतिव्रत को देखकर पिशाच

क्रोधित होकर उससे कहता है कि यदि वह उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करेगी तो वह उसका वध कर उसका आहार कर लेगा। अशोक वन में वंदिनी सीता से रावण भी इसी प्रकार विवाह का प्रस्ताव रखता है और असफल होने पर ऐसे ही शब्दों से उसकी ताड़ना करता है।

इसके अतिरिक्त नलिनिका जातक और ऋष्यशृंग ऋषि के कथानक में भी समानता है।

दशरथ कथानकम्—दशरथ कथानकम् की राम-कथा के साथ सीता का कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु इसमें दशरथ के चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न का उल्लेख है। जम्बू द्वीप के राजा दशरथ की चार रानियों के क्रमशः राम, रावण, भरत तथा शत्रुघ्न पुत्र थे। राम में नारायणीय शक्ति थी। राजा का सबसे अधिक प्रेम तृतीय रानी पर था। राम का राज्याभिषेक होने पर वह राजा से अपना वरदान माँगती है। वरदान में वह राम के स्थान पर भरत को राजा बनाना चाहती है। प्रतिज्ञाबद्ध होने से राजा अपने वचन न तोड़ सका अतः वह अपने दो पुत्रों को बारह वर्ष का वनवास दे देता है। भरत उस समय वहाँ नहीं थे। दशरथ की मृत्यु के पश्चात् जब वह लौटते हैं उन्हें अपनी माता के कार्यों से घृणा हो जाती है। वह राम के पास जाकर शासन-भार ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं। राम के अस्वीकार करने पर भरत उनकी पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर राजकार्य चलाने लगते हैं। वनवास की अवधि समाप्त होने पर राम लौटकर राज्य स्वीकार कर लेते हैं।

जातक कथाओं के अध्ययन से ऐसा अनुमान होता है कि उस समय तक राम कथा ने वह रूप नहीं प्राप्त किया था जो वाल्मीकि रामायण में मिलता है। उस समय तक सम्भवतः राम और रावण के आख्यान स्वतन्त्र रूप से प्रचलित रहे होंगे अन्यथा सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में कहीं न कहीं रावण का उल्लेख अवश्य होता। दशरथ कथानकम् में यद्यपि राम कथा का कुछ अधिक विकसित रूप उपलब्ध होता है तथापि रावण का उल्लेख नहीं है। बौद्ध जातकों की अपरिपक्व शैली भी इनकी अपेक्षाकृत प्राचीनता की ओर संकेत करती है।

अन्य महापुरुषों के समान गौतम बुद्ध ने राम को भी एक महापुरुष माना था। इसलिए बौद्धों ने उन्हें आदर की दृष्टि से देख अपने साहित्य मे स्थान दिया परन्तु राम ने उनके जीवन को इतना अधिक आच्छादित नहीं किया कि भगवान् बुद्ध के पश्चात् भी बौद्ध अनुयायी राम कथा को महत्त्व देते रहते। ब्राह्मणों द्वारा रामायण की रचना होने के कारण बौद्धों ने और भी तत्परता से राम-कथा को त्याग दिया क्योंकि रामायण तथा जातकों के आदर्शों में असीम भिन्नता थी। बौद्धों को गृहत्यागी बुद्ध प्रिय थे, गृहस्थ राम नहीं। इसलिए परवर्ती बौद्ध साहित्य, जैसे अवदान शतक, दिव्यावदान, जातक माला, कल्पद्रुमअवदान, रत्नावदान माला आदि में राम कथा के कोई उल्लेख नहीं मिलते। लंकावतार सूत्र में लंकापति रावण तथा

महात्मा बुद्ध के धार्मिक वादविवाद का उल्लेख है परन्तु इससे केवल इतना ही पता चलता है कि रावण उस समय एक वेदान्ती के रूप में प्रसिद्ध था। परन्तु इससे राम-कथा के साथ रावण का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। बौद्धों के मध्य सम्भवतः राम-कथा का इसीलिए अधिक विकास नहीं हो सका।

अपभ्रंश राम साहित्य—अपभ्रंश साहित्य में राम कथा के दो सम्प्रदाय प्रचलित हुए। विमल सूरि की परम्परा और गुणभद्राचार्य की परम्परा। बाद में विमल सूरि की परम्परा को स्वीकार कर स्वयंभू ने 'पउम चरिउ' और गुणभद्राचार्य के अनुकरण पर पुष्पदंत ने उत्तर पुराण के अन्तर्गत पद्म पुराण की रचना की। रवि-षेण ने विमल सूरि के 'पउम चरिउ' का संस्कृत रूपान्तर ६६० ई० में किया।

विक्रम संवत् ७०० के लगभग जिस समय अपभ्रंश में राम काव्य की रचना हुई थी उस समय तक रामायणकार के रूप में वाल्मीकि लोकमान्य हो चुके थे। उस समय राम की प्रतिष्ठा महापुरुष के रूप में ही थी, विष्णु के अवतार रूप में नहीं। अपभ्रंश रामायणों में राम के उस महापुरुष रूप के दर्शन नहीं होते इसलिए ऐसा अनुमान होता है कि इन राम-कथाओं का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य कोई रामायण थी अथवा लोक गीतों में प्रचलित ऐसी कोई गाथा थी।

अपभ्रंश कवियों ने राम कथा को अपने विचारानुकूल ही स्वीकार किया और उस पर धार्मिकता का आवरण चढ़ाकर उसे जैन धर्म प्रचार का एक साधन बना लिया। इसमें राम, लक्ष्मण तथा रावण की गणना त्रिषष्ठि महापुरुषों में होती है और राम आठवें बलदेव, लक्ष्मण आठवें वासुदेव तथा रावण आठवे प्रति वासुदेव हैं। राम कथा के अन्य पात्रों का भी जैन धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन कथाओं में राम को वह मान्यता नहीं दी गई है जो अभी तक परम्परा से अनुमोदित थी बल्कि इसके विपरीत रावण और लक्ष्मण को राम की अपेक्षा महान् एव महत्त्वपूर्ण माना है। रावण के आन्तरिक और बाह्य रूपों में जो कुरूपता आ गई थी जैन कवि उससे अत्यंत क्षुब्ध थे इसलिए पुष्पदंत कवि ने कहा है कि वाल्मीकि और व्यास के वचनों पर विश्वास करके लोग कुमार्ग रूपी कूप में गिर पड़े हैं।[1] पुष्पदंत की कथा में लक्ष्मण को रावण वध का अपराध करने के कारण ही नरकवास करना पड़ता है। विमल सूरि की राम-कथा में रावण के दस सिर और बीस भुजाएँ बनाकर वाल्मीकि रामायण के समान कुरूप नही दिखाया गया है बल्कि वह एक सौम्य व्यक्ति है। उसके पिता रत्नश्रवा जब नवजात शिशु को देखने आते हैं तो उसके गले में पड़ी हुई माला में बालक के दस प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं इसी से वह उसका नामकरण 'दशमुख' अथवा दशानन करते हैं।

अपभ्रंश रामायणों में कहीं भी अलौकिकता की छाया नहीं है। उसके सभी पात्र पृथ्वी पर चलने वाले मानव हैं, न वे महामानव हैं और न दानव। राम के

१. महापुराण : ६९, ३, ११

जन्म का कारण राक्षसों का संहार नहीं है और न वह एक आदर्श पुरुष हैं। पुष्पदत ने राम और लक्ष्मण के जन्म का कारण इस प्रकार दिया है—राम पूर्व जन्म में प्रजापति नामक एक राजा थे और लक्ष्मण उनके मंत्री। युवावस्था में उन्होंने श्रीदत्त नाम के एक व्यापारी की स्त्री कुवेरदत्ता का अपहरण किया। राजा ने क्षुब्ध होकर मंत्री को आज्ञा दी कि उन्हें जंगल में ले जाकर मार दो परन्तु मंत्री ने उनका वध न कर जंगल में एक जैन तापस से परिचित कराया और वे भी जैनी हो गए। मृत्यु के अनंतर दोनों भिक्षु मणिचूल और सुवर्णचूल नामक देव बनते हैं और उसके बाद वाराणसी के राजा दशरथ के घर जन्म लेते हैं। इस कथा में राम का वर्ण श्वेत और लक्ष्मण का श्याम है। द्रोणमेघ कोई पर्वत नहीं है और न विशल्या कोई औषधि। यहाँ विशल्या द्रोणमेघ की कन्या है जो अपनी सेवा से लक्ष्मण को स्वस्थ करती है। रावण का वध भी राम के द्वारा न होकर लक्ष्मण के द्वारा होता है। इसमें इन्द्र, यम, वरुण, आदि देवता न होकर राजा हैं। सागर भी अपने शाब्दिक अर्थ के अनुसार सागर नहीं, राजा ही हैं जिसे नील युद्ध में परास्त करता है। सीता अयोनिजा नहीं हैं बल्कि विमल सूरि के अनुसार जनक की विदेहा नामक रानी की कन्या हैं। भामंडल नाम का उसका एक भाई भी है। गुणभद्र के अनुसार सीता रावण और मंदोदरी की पुत्री हैं जिसे अमंगलकारिणी समझकर मारीच मिथिला की भूमि में दबा देता है। वानर और राक्षस भी वास्तव में वानर और राक्षस नहीं हैं, वे विद्याधर हैं। कुछ विद्याधरों की ध्वजा पर यह वानर का चिह्न बना रहता था इसलिए यह वानर कहलाते थे।

अपभ्रंश रामायणों के समय शाक्त मत की प्रधानता थी इसलिए उसके पात्रों पर उनका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। वानर और राक्षस अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए तपस्या करते थे। उनको काम-रूपत्व, आकाश-गामिनी आदि अनेक प्रकार की विद्याएँ सिद्ध थीं अतः उनका नाम ही विद्याधर पड़ गया था। लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति के लिए वन में तपस्या करते हैं जहाँ उनकी असावधानी से चन्द्रनखा के पुत्र शम्बूक का वध होता है। पुष्पदंत की रामकथा में राम और लक्ष्मण रावण पर आक्रमण करने के लिए मायायुक्त अस्त्र विद्याओं को प्राप्त करने के लिए उपवास करते हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से अपभ्रंश रामायणों में वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा बहुत अन्तर है। उस समय नैतिक स्तर इतना रूढ़ नहीं प्रतीत होता, जितना वह बाद में बन गया था। परस्त्री पर दृष्टि न डालने वाले राम और सीता के चरणों तक दृष्टि सीमित रखने वाले लक्ष्मण की मान्यता इन रामायणों में नहीं है। गुणभद्र की रामायण में राम की आठ हज़ार रानियाँ और लक्ष्मण की सोलह हज़ार रानियाँ हैं। यहाँ पर राम और लक्ष्मण का चरित्र उन क्षत्रिय राजाओं का है जो युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् शत्रु देश की सभी कुमारियों को अपनी पत्नी बना लेते थे। लक्ष्मण को शक्ति लगने

पर विशल्या अपनी सेवा से लक्ष्मण को नीरोग करती है। लक्ष्मण उसके प्रति अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिए उससे विवाह कर लेते हैं। पुष्पदंत की राम कथा में राम की सात और लक्ष्मण की सोलह रानियाँ हैं। हनुमान यहाँ बालब्रह्मचारी नहीं हैं बल्कि चन्द्रनखा की पुत्री अनंग कुसुमा के पति हैं। रावण सीता का हरण चन्द्रनखा के अपमान के कारण नहीं करता है। चन्द्रनखा के राम और लक्ष्मण के प्रति अनुरक्त होने के प्रसंग का यहाँ अभाव है। विमलसूरि की कथा में लक्ष्मण शम्बूक का वध करता है इसलिए रावण सीता का हरण करता है और बाद में उन पर आसक्त हो जाता है। गुणभद्र की कथा में जनक के यज्ञ में रावण को निमन्त्रण न मिलने से रावण स्वयं को अपमानित अनुभव करता है और नारद से सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर सीताहरण करता है। राम सीता उस समय वाराणसी के निकट चित्रकूट वाटिका में विहार करते रहते हैं। लक्ष्मण की किसी असाध्य रोग के कारण मृत्यु हो जाती है और वह नरक जाते हैं।

लक्ष्मण की मृत्यु से क्षुब्ध होकर राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वी सुन्दर को राज्य का भार सौंपकर राजा तथा सीता पुत्र अजितंजय को युवराज बना देते हैं। वह स्वयं दीक्षा लेकर जैन भिक्षु हो जाते हैं और सीता भी अन्य रानियों के साथ भिक्षुणी बन जाती हैं।

अपभ्रंश की सभी रामायणों में राम की अपेक्षा रावण और लक्ष्मण के चरित्र अधिक उभर कर आते हैं। कवि वर्ग का लक्ष्य राम की अपेक्षा इन दोनों के गुणों को दिखाने की ओर अधिक है। विमलसूरि का रावण उदात्तता, सौम्यता, सौजन्यता, दया, क्षमा, धर्मभीरुता और गम्भीरता का पुंज है। उसका चरित्र श्रेष्ठ पुरुष और महात्मा का है। दूसरी ओर राम का स्थान गौण है। लक्ष्मण रावण का वध करते हैं। वह चिरकाल तक अर्धचक्रवर्ती होकर राज्य भोगते हैं और यहाँ वह राम के अनुगत भ्राता नहीं हैं। सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति के लिए तपस्या भी वही करते हैं और शम्बूक का वध भी। जंगल में राम लक्ष्मण की सहायता करने के लिए जाते हैं, लक्ष्मण नहीं। लक्ष्मण ने राम को सिंहनाद का संकेत बताया था। रावण लक्ष्मण के स्वर में सिंह-नाद करता है तब राम सीता को जटायु की रक्षा में छोड़ लक्ष्मण की सहायतार्थ जाते हैं और पीछे सीताहरण हो जाता है। लक्ष्मण ही बालि को मारकर सुग्रीव को राज्य देते हैं। विमलसूरि की कथा में स्वर्गवासी देव लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा लेते हैं और लक्ष्मण उसमें पूर्णतया सफल उतरते हैं। देव उन्हें बताते हैं कि राम का देहान्त हो गया है। इस दुःख से दुःखी होकर लक्ष्मण की मृत्यु हो जाती है।

अपभ्रंश की कथाओं में राम-कथा का केन्द्र साकेतपुरी न होकर वाराणसी है। गुणभद्र और विमलसूरि की कथाओं में भी परस्पर पर्याप्त अन्तर है। गुणभद्र ने अपनी कथा में कैकेयी हठ, राम वनवास, पंचवटी, दण्डक वन, जटायु प्रसंग, शूर्पणखा और खरदूषण प्रसंग आदि का कोई उल्लेख नहीं किया है और सीता को रावण की

पुत्री तथा जनक की पोषिता कन्या कहा है। रावण सीता का हरण वाराणसी के निकट ही करता है और लक्ष्मण की मृत्यु किसी असाध्य रोग से होती है। विमल सूरि का हनुमान रावण का मित्र है और उसकी ओर से वरुण के विरुद्ध युद्ध कर खरदूषण की पुत्री अनंगकुसुमा से विवाह करता है। इसमें दशरथ की चौथी रानी का नाम सुप्रभा दिया है जो शत्रुघ्न की माँ है। इसमें वनवास का प्रसंग भी भिन्न है। सीता की अग्नि परीक्षा और लोकापवाद के कारण सीता के त्याग का कवि ने वाल्मीकि रामायण के अनुसार वर्णन किया है। लक्ष्मण की मृत्यु के उपरान्त राम का जैन भिक्षु हो जाना दोनों कवियों ने समान रूप से स्वीकार किया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने विमलसूरि का अनुकरण करते हुए जैन रामायण की रचना की। उन्होंने अपनी कथा में राम कथा को गौण रूप से सम्मिलित कर प्रधान रूप से राक्षसों तथा वानरों से सम्बन्धित अंशों का ही वर्णन किया। रावण अपने दोनों भाइयों के साथ तपस्या करता है। कवि ने इन तीनों तपस्वियों की तपस्या का वर्णन अत्यन्त मनोयोगपूर्वक किया है। अनेक यक्ष सुन्दरियाँ उनकी तपस्या में बाधा डालने के लिए अप्सराओं का वेश धारण कर आती हैं परन्तु उनका प्रयास सफल नहीं होता। यक्ष भी अनेक भयानक रूपों में सर्प, सिंह, व्याघ्र आदि बनकर राक्षसों का तप खण्डित करने का असफल प्रयत्न करते हैं।

हेमचन्द्र की कथा पर शाक्तों की तान्त्रिक विधियों का बड़ा गहरा प्रभाव है। उस समय देश में शाक्तों का प्राधान्य था अतः तत्कालीन साहित्य के पात्र भी अधिकांश इस प्रभाव से बचे नहीं हैं। यक्ष जब किसी प्रकार रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की तपस्या खण्डित नहीं कर पाते तो कुम्भकर्ण के सामने रावण और विभीषण के माया मस्तक, विभीषण के सम्मुख कुम्भकर्ण और रावण के माया मस्तक और रावण के समक्ष कुम्भकर्ण और विभीषण के मस्तक गिराते हैं परन्तु इन मनीषियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। रावण की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रज्ञान, अणिमा, लघिमा, अक्षया, मनस्तंभनकारिणी, नभसंचारिणी, दिनरात्रि विधायिनी आदि सिद्धियाँ उसके पास आती हैं।

हेमचन्द्र के अतिरिक्त स्वयंभू ने राम-कथा को लेकर 'पउम चरिउ' की रचना की। स्वयंभू छन्दशास्त्र, अलंकार शास्त्र, नाट्य शास्त्र, संगीत, व्याकरण, काव्य, नाटकादि से पूर्णतया परिचित थे। इनका समय सम्भवतः ७०० वि० स० के पश्चात् और पुष्पदंत के पूर्व था। यह विद्वान् कवि थे और अपनी प्रतिभा तथा कवित्व के कारण ही कविराज चक्रवर्ती, छन्दस् चूड़ामणि आदि उपाधियाँ प्राप्त कीं। इनके 'पउम चरिउ' में कथा का जैन रूप उपलब्ध होता है।

जैन सम्प्रदायों को राम में वैष्णवत्व का आरोप स्वीकार नहीं था। 'पउम चरिउ' के सभी पात्र जैन हैं और सम्पूर्ण कथा जैन वातावरण में पल्लवित हुई है। राम-कथा के सम्बन्ध में कुछ शंकाएँ उठना स्वाभाविक था। स्वयंभू की राम-कथा

का प्रणयन इन शंकाओं के समाधान के लिए होता है। मगध नरेश श्रेणिक से प्रश्न करते हैं—यदि राम के उदर में तीनों भुवन है और वह इतने शक्तिशाली हैं तो उनकी पत्नी को रावण कैसे हर कर ले गया ?···वानरों ने पर्वत को कैसे उठाया और समुद्र को बाँध कर कैसे पार किया ? दशमुख और बीस हाथों वाला रावण अमराधिप इन्द्र को बाँधने में कैसे समर्थ हुआ ?

जइ राम हो तिहुयणु उयरि माइ, तो रामणु कहि तिय लेवि जाइ।
अण्णु विखरदूसण समरि देव, पहु जुज्झइ मुज्झइ भिच्चु केव ॥
किह वाषर गिरिवर उव्वहंति, बंधिवि मयरहरू समुत्तरंति।
किह रावणु दहमुहु बीसहत्थु, उमराहिव भुव बंधण समत्थु ॥[1]

इसी प्रकार की शंका तुलसीदास के रामचरितमानस में भी मिलती है जहाँ सती को राम की लौकिक लीलाएँ देखकर उनकी परमसत्ता में संदेह होने लगता है और शिव उसका समाधान करते हैं। 'पउमचरिउ' की कथा स्थूल रूप से वही है जो विमलसूरि की है परन्तु इसमें घटना बाहुल्य के साथ-साथ काव्यत्व भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। कथा के आरम्भ में ही कवि ने राम कथा का रूपक एक सुन्दर सरिता से बाँधा है।[2]

प्रकृति वर्णन—स्वयंभू और पुष्पदंत दोनों कवियों ने प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन बड़ी तल्लीनता से किया है। उन्होंने हमें उसके कोमल और भयावह दोनों पक्षों का दिग्दर्शन कराया है। यह प्रकृति कभी मानवीय सुख-दुःख के साथ हँसती और रोती है और कभी शब्द श्लेष के जाल में उलझी हुई जड़ सी खड़ी रह जाती है। पुष्पदंत ने संध्या का वर्णन करते हुए सूर्यास्त का एक चित्र अंकित किया है। मानव जीवन के साथ प्रकृति की सहानुभूति दिखाते हुए कवि कहता है—सीताहरण के अनन्तर सीता, राम और लक्ष्मण के आनन्द के अस्त हो जाने के समान ही सूर्य भी अस्त हो गया।[3] स्वयंभू ने समुद्र की तुलना ऐसे पदार्थों से की है जहाँ शब्द श्लेष के अतिरिक्त और कोई साम्य नहीं है। केवल शब्द साम्य के आधार पर वस्तुओं की तुलना करना बाण को अत्यन्त प्रिय था। कादम्बरी में इस प्रकार के बहुत से प्रयोग मिलते हैं और उन्हीं के अनुकरण पर परवर्ती कवियों ने इस प्रणाली का प्रयोग किया है। स्वयंभू ने लिखा है—

सूहव-पुरिसोव्व सलो-णसीलु।
दुज्जण पुरिसोव्व सहाव-खारु।
णिदण-आलाउव अप्पमाणु।

१. पउम चरिउ १.१०
२. राम कथा सरि एइ सोहंती, प० च० १.२
३. महापुराण ७३.२

जोइसुव मणि-कक्कडय-थाणु ।
महकव्व-णिवन्धुव सद्द-गहिरू ।[1]

अर्थात् समुद्र सत् कुल में उत्पन्न पुरुष के समान है क्योंकि दोनों सलोणशील हैं। दुर्जन पुरुष के समान स्वभाव से क्षार है। निर्धन के आलाप के समान अप्रमाण है। ज्योति मंडल के समान मीन कर्कट निधान है।

इन कवियों ने सरल अलंकृत भाषा में प्रकृति का सुन्दर पक्ष भी दिखाया है और अलंकार द्वारा मानवी सौन्दर्य की तुलना में उसका अपकर्ष पक्ष भी दिखाया। पावसराज और ग्रीष्मराज में युद्ध हुआ। ग्रीष्मराज पराजित होकर युद्धभूमि में मारे गए। विजय से उल्लसित पावस राज का वर्णन स्वयंभू ने उत्प्रेक्षालंकार द्वारा बड़ी सुन्दरता से किया है—

ददुर रडेवि लग्ग णं सज्जण, णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण।
णं पूरंत सरिउ अक्कंदे, णं कइ किल किलन्ति आणंदें।
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें, णं विरहिण लवंति परिओसें।
णं सखर बहु अंसु जलोल्लिय, ण गिरिवर हरिसें गंज्जयोल्लिय।
णं उणहविय दवग्गि विओएं, णं णच्चिय महि विविह विणोएं।
णं अत्थेविउ दिवायर दुक्खें, णं पइसरिउ रयणि सह सोक्खें।
रत्त पत्त-तरु-पवणाकंपिय, केण वि वहिउ त्रिभुण जंपिय।[2]

दूसरी ओर पुष्पदंत ने बाण के नैषधचरित के अनुकरण पर व्यतिरेक अलंकार द्वारा मानवी सौन्दर्य की तुलना में प्रकृति का अपकर्ष दिखाया है—"यदि उस सुन्दरी का मुख मैं चन्द्रमा के समान कहूँ तो मेरा क्या कवित्व ? उसके मुख में न मृगांक के समान कलंक है न मलीनता। वह मुख क्षय रहित है और न उसमें वक्रता है।"[3]

यही प्रकृति नदी के रूप में प्रियतम से मिलने जाती हुई स्त्री की शांत और कोमल मूर्ति बन जाती है और अन्यत्र संध्या समय गर्भ पतिता नारी का भयावह रूप भी बन जाती है। सागर की ओर जाती हुई नर्मदा की उपमा कवि ने प्रियतम मिलन को जाती हुई अलंकृत स्त्री से दी है—नर्मदा का शब्द करता हुआ जल-प्रवाह नूपुर झंकार के सदृश है। दोनों सुन्दर पुलिन उपरितन वस्त्र के समान हैं, स्खलित तथा उच्छलित जल रशनादाम की भ्रान्ति को उत्पन्न करता है, उसके आवर्त शरीर की त्रिवलि के समान हैं, उसमें जल-हस्तियों के सजल गण्डस्थल अर्धोन्मीलित स्तनों के समान हैं, आंदोलित फेनपुंज लहराते हार के समान प्रतीत होता है।[4]

---

१. प० च० ४६.३
२. प० च० २८-३
३. महा० पु० ५४१-१४-१५
४. पउम चरिउ १४-३

दूसरी ओर संध्याकालीन लालिमा के लिए कवि कहता है—सागर के तल पर फैली संध्याकालीन लालिमा ऐसी प्रतीत होती है मानो दिवसश्री नारी का गर्भ गिरा हो अथवा सूर्य के लिए मानो दिशारूपी निशाचरी के मुख में मांस का ग्रास हो।[1]

प्रकृति-वर्णन की एक और पद्धति है जिसे कालान्तर में तुलसी ने अपने साहित्य में ग्रहण किया था। इस वर्णन में कवि प्रकृति-वर्णन और उपदेश को मिला लेता है। यहाँ प्रकृति-वर्णन प्रकृति के लिए नहीं बल्कि उपदेशों को सूक्तिबद्ध करने के लिए होता है।

लकवण कहिं वि गवेसहिं तं जलु, सज्जण हियउ जेम जं निम्मलु।
दूरागमणे सीय तिसाइय, हिम हय नव नलिणिव विच्छाइय।

अर्थात् लक्ष्मण कहीं जल खोजते हैं जो सज्जन के हृदय के समान निर्मल हो। दूर गमन से तृष्णाकुल हो सीता हिमहत नलिनी के समान हतप्रभ हो गई।

अपभ्रंश के राम-काव्यों में इस प्रकार हमें प्रकृति का सर्वांगीण वर्णन मिलता है। प्रकृति का शायद ही कोई पक्ष ऐसा हो जहाँ इन कवियों की दृष्टि न गई हो। बाद के हिंदी कवियों ने किसी-न-किसी रूप में इन्हीं पद्धतियों को स्वीकार किया है। तुलसी ने उपदेशात्मक और केशव ने अलंकरणात्मक प्रणाली को विशेष रूप से अपने काव्यों में ग्रहण किया।

स्वयंभू काव्य शास्त्र के ज्ञाता थे अतः उनके अपभ्रंश काव्य में हमें छंदों और अलंकारों का प्राचुर्य मिलता है। छंदों में शब्दों का चयन इस प्रकार हुआ है जिसके ध्वनि मात्र से ही चित्र साकार हो उठता है। युद्ध के वर्णन में शब्दों की ध्वनि से धनुष की टंकार और खड्गों की खनखनाहट कर्णगोचर होने लगती है—

हण-हण-हंण्कार महारउद्दु। छण-छण-छणंतु गुणाथं-पंछि-सद्द।
कर-कर-करंतु कोयंड पयरू। थर-थर-थरंतु पाराय-णियरू।
खण-खण-खरंतु तिक्खग्ग खग्गु। हिल-हिल-हिलंतु हय चंचलग्गु।
गुगु-गुलू-गुलंत गयवर विसालु। 'हणु-हणु' मणतु णर वर विसालु।[2]

कवि ने गन्धोदकधारा, द्विपदीद्र हेला, द्विपदी, मंजरी, शाल, मंजिका, आरयाल, जंमेटिया, पद्धाड़िका, पदनक, पाराणक, मदनावतार, विलासिनी, प्रमाणिका, समानिका, भुजंगप्रयात[3] इत्यादि अनेक छंदों का प्रयोग किया है।

छंदों के अतिरिक्त कवि ने अनेक अलंकारों का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा में उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक, अनन्वय, अपह्नुति, तद्गुण आदि अनेक

---

१. महा० पु०, ४-१५-९, ४-१६-६
२. प० च०, ६३-३
३. अपभ्रंश साहित्य, हरिवंश कोछड़, पृ० ६७

अलंकार मिलते हैं परन्तु इन अलंकारों का प्रयोग कहीं भी बलात् नहीं किया गया है, वे स्वाभाविक रूप से ही यथास्थान आए हैं। जहाँ प्राचीन परम्परा का आश्रय लिया है वहाँ शैली अलंकृत और क्लिष्ट हो गई है अन्यथा वह सरल और प्रवाहमयी है। स्वयंभू ने अधिकांश उन्हीं उपमानों को प्रयुक्त किया है जो जनसाधारण के अधिक निकट हैं, जैसे पावस ऋतु में मेघ-प्रसार के लिए कवि कल्पना करता है कि आकाश में मेघजाल वैसे ही फैल गया जैसे सुकवि का काव्य, अज्ञानी का अंधकार, ज्ञानी की बुद्धि, पापिष्ठ का पाप, धार्मिक का धर्म, चन्द्र की चन्द्रिका, राजा की कीर्ति, धनहीन की चिंता, सुकुलीन की कीर्ति, निर्धन का क्लेश और वन में दावाग्नि सहसा ही फैल जाती है।[1]

स्वयंभू की अपेक्षा पुष्पदंत की भाषा में चमत्कार अधिक है। उन्होंने अनेक नवीन और मानव जीवन से संबद्ध उपमानों का प्रयोग किया है। सूर्यास्त का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

रमणिहिं सहुं रमणु णिविट्ठु नाम, रवि अत्थ सिहरि संपत्तु ताम।
रत्तउ दीसइ णं रइहि णिलउ, णं वरुणासा बहु घुसिण तिलउ।
णं खग्ग लच्छि माणिक्कु ढलिउ, रत्तप्पलु णं पहसरहु घुलिउ।
णं मुक्कउ जिण गुण मुद्धएण, णिय रायपुंजु मयरद्धएण।
अद्धद्धेउ जलणिहि जलि पइट्ठु, णं दिसि कुंजर कुंभयलु दिट्ठु।
चुनु णिय छवि रंजिय, सायरंभु, णं दिण सिरिणारिहि तणउ गब्भु।

अर्थात् रक्तवर्ण सूर्य ऐसा प्रतीत होता है मानो रति का निलय हो, या पश्चिमाशा वधू का कुंकुम तिलक हो, मानो स्वर्ग लक्ष्मी का मणिका ढलक गया हो या नभ सरोवर का रक्त कमल गिर पड़ा हो, अथवा जिन के गुणों पर मुग्ध हुए मकरध्वज ने अपना राग-पुंज छोड़ दिया हो, या समुद्र में अर्ध प्रविष्ट सूर्य मंडल दिग्गज के कुंभ के समान प्रतीत हो, निज छवि से सागर जल को रंजित करता हुआ सूर्य मानो दिनश्री नारी के पतित गर्भ के समान हो। रक्तमणि भुवनतल में भटकता हुआ कोई आश्रय न पाकर मानो पुनः रत्नाकर की शरण में गया हो, अस्तंगत सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो जल भरती हुई लक्ष्मी का कनक वर्ण कलश छूट कर जल में डूब गया हो। संध्या के राग से रंजित पृथ्वी ने पृथ्वीपति के विवाह पर धारण किया हुआ कुसुंभी रंग का वस्त्र मानो अब उतारा हो।

पुष्पदंत के छंदों का चुनाव भी ऐसा है जिनकी योजना मात्र से ही गति का

---

१. प० च० २८-१

चित्र अंकित हो जाता है। निम्न छंद की गति से ही शीघ्रता से वाण छोड़ते हुए लक्ष्मण के वाण सन्धान और प्रहार की शीघ्रता का आभास हो जाता है—

कहिं दिट्ठि मुट्ठि कहिं चावलांट्ठ
कहिं बद्ध ठाणु कहि णिहिउ बाणु।[1]

रस—रस की दृष्टि से दोनों काव्यों में मुख्य रूप से वीर, करुण, शृंगार और शान्त चार रसों की अभिव्यंजना दिखाई देती है। अपभ्रंश काव्यों में वीर और शृंगार की अभिव्यक्ति और दोनों की परिणति शान्त रस में करने की प्रवृत्ति प्रचुर रूप से परिलक्षित होती है। जीवन काल में भोगविलास और स्त्री की प्राप्ति के लिए युद्ध करना और जीवन के अंत में संसार से विरक्त हो निर्वाण पद को प्राप्त करना यही प्रायः सभी तीर्थंकरों की जीवनचर्या थी। युद्धक्षेत्र में प्रियजनों की मृत्यु हो जाने से करुण रस का समाहार भी इसी में हो जाता था।

शृंगार रस का वर्णन अधिकांश स्त्रियों के सौन्दर्य और नखशिख वर्णन में होता था। इनमें शृंगार के संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का चित्रण रहता था। सौन्दर्य के वर्णन में स्वयंभू ने प्रायः परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है परन्तु पुष्पदंत ने परम्पराओं का बन्धन तोड़कर नवीन उद्भावनाओं की कल्पना भी की है। स्वयंभू ने सीता के सौन्दर्य-वर्णन में परम्परा का पालन करते हुए लिखा है—

थिर कलहंस-गमण गई-मंथर। किस मज्झारे णियंबे सुवित्थर।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी। णं पिंपिलि-रिंछोलि विलिण्णी।
रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ। णं माणस-सर विअसिउ पंकउ।
घोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि। चंदण लयीहं ललइ णं णायणि।
कि बहु जंपिएण तिहिं भुयणिहि जं जं चंगउ।
तं तं मेलवेवि ण, दहवे णिम्मिउ अंगउ॥[2]

यहाँ पर कलहंसगमना, कृशमध्या, विशालनितंबा आदि विशेषण, पीठ पर लहराती हुई वेणी की चन्दन लता पर लिपटी हुई नागिन से उपमा सब परम्परामुक्त हैं। यहाँ सीता का निर्माण विधाता ने तीनों लोकों की सुन्दरतम वस्तुओं के मिश्रण से किया है परन्तु फिर भी उसके बाह्य सौन्दर्य का एक स्थूल चित्र ही कवि अंकित कर पाया है, उसके आन्तरिक सौन्दर्य का यहाँ कोई आभास नहीं मिलता। पुष्पदंत ने सीता के रूप सौन्दर्य का चित्र भिन्न रूप से अंकित किया है—

दिय दित्तिइ जित्तइं घतियाइं इयरहह कह विद्धइ मौत्तियाइं।
मुह ससि जोण्हइ दिस धवल थाह इयरह कह ससि झिज्जतु जाइ।[3]

---

१. म० पु० ७८.९.३-४
२. प० च० ३८-३
३. म० पु० ७०-११-५-६

अर्थात् सीता के दाँतों की दीप्ति से मोती जीते गए और तिरस्कृत हो गए अन्यथा वे क्यों बींधे जाते ? मुख-चन्द्र-चन्द्रिका से दिशाएँ धवलित हो गई अन्यथा शशि क्यों क्षीण होता। कवि ने यहाँ प्राकृतिक उपादानों का अपकर्ष दिखाकर मानवी सौन्दर्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि ने चमत्कार के द्वारा यहाँ परम्परा से प्रचलित सौन्दर्य की अपेक्षा एक सुन्दरतर मुख की रचना की है। परन्तु जहाँ कवि ने वियोग का वर्णन किया है वहाँ चमत्कार नहीं है बल्कि हृदय को स्पर्श करने वाली वेदना की करुण पुकार है। वियोगी का दुःख इतना गंभीर हो जाता है कि प्रकृति को भी उसके साथ समवेदना होने लगती है।

सीता के वियोग में राम को जल विष के समान, और चन्दन अग्नि के समान दिखाई देता है।[1] सीता के बिना राम का जीवन निरानन्द हो जाता है और उन्हें संसार की कोई वस्तु रुचिकर नहीं लगती। यहाँ राम के व्यथित हृदय का एक चित्र सा खिच जाता है परन्तु स्वयंभू राम के विरहदग्ध हृदय का वर्णन विस्तार से करने पर भी उस घनीभूत पीड़ा को अंकित नहीं कर पाए। सीता के बिना उनको भी संसार असार और जीवन निरर्थक प्रतीत होता है परन्तु वहाँ कवि का उद्देश्य संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न कर उपदेश देना अधिक है, उनकी व्यथा चित्रित करना नहीं।

"विरहानल-ज्वाला से ज्वलित और विषादयुक्त मन वाले राम इस प्रकार सोचने लगे—संसार में सुख कहीं नहीं है और मेरु पर्वत के समान दुःख अपरिमित है। यहाँ जरा, जन्म, मरण का भय लगा रहता है और जीवन जलबिन्दु के समान है। इस संसार में कहाँ घर, कहाँ परिजन, बंधु बाँधव, कहाँ माता-पिता और हितैषी स्वजन ? कहाँ पुत्र, मित्र, कहाँ गृहिणी, सहोदर और बहिन ? बंधु और स्वजन तभी तक हैं जब तक सम्पत्ति है। ये सब उसी प्रकार अस्थिर हैं जैसे वृक्षों पर पक्षियों का वास।"[2]

वीर रस के वर्णन में दोनों कवियों ने अनुरणनात्मक शब्दप्रणाली को अपनाया है। इसमें शब्दों का चयन इस प्रकार किया गया है कि उनकी ध्वनि से ही वीर रस की उत्पत्ति हो जाती है। स्वयंभू ने वीर रस का परिपाक करने के लिए कठोर और संयुक्ताक्षरों की परम्परा को ग्रहण किया है—

घण् अप्फलिउ पाउसेण, लडि टंकार फार दरिसंते।
चौहवि जलहर हत्थि हड, णीर सरासंणि मुक्क तुरंते।[3]

पावस ने धनुष का आस्फालन किया, तड़ित के रूप में मानों टंकार की

१. म० पु० ७३.३-८
२. प० च० ३९-११
३. प० च० २८-१

ध्वनि हुई, मेघ रूपी गजघटा को प्रेरित किया और जलधारा के रूप में सहसा बाणों की वर्षा कर दी। युद्ध की भयंकरता यहाँ जैसे मूर्त हो उठी है।

पुष्पदंत ने वीर रस के वर्णन में इस परम्परा को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कोमल और सरल पदावली के द्वारा भी वीर रस उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है।

भडु को वि भणइ जइ जाइ जीउ तो जाउ थाउ छुडु पहु पयाउ।
भडु को वि भणइ रिउं एंतु चंहु भइं अज्जु करेवउ खंड खंडु।
भडु को वि भणइ जइ भुंडु पडइ तो भहुँ रूंडु जि रिउं हषवि णडइ।[१]

कोई भट कहता है कि प्राण जाएँ तो जाएँ परन्तु स्वामी का प्रभाव स्थिर रहे। कोई भट कहता है शत्रु को इधर आता देख मैं उसे खंड-खंड कर दूँगा। दूसरा भट कहता है कि यदि मेरा सिर कट कर गिर भी गया तब भी धड़ शत्रु को मारने के लिए नाचता फिरेगा। इस प्रकार कवि ने भावों के अनुकूल शब्दों की योजना कर वीर-रस का बड़ा सुन्दर परिपाक किया है।

करुण रस की व्यंजना युद्धक्षेत्र में अनेक स्थलों पर हुई है। लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर यह समाचार वाराणसी पहुँचता है। इस दुःखद समाचार को सुनकर अन्तःपुर की स्त्रियाँ करुण क्रन्दन करने लगती हैं। इस अवसर पर कवि स्वयंभू की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी सहृदय दृष्टि सदा की उपेक्षिता उर्मिला की ओर भी गई है। लक्ष्मण की मृतप्राय मूर्च्छा को सुनकर उर्मिला पर क्या बीती, इस ओर से कविगण प्रायः उदासीन ही रहे परन्तु स्वयंभू की समवेदना उसकी वेदना की अवहेलना न कर सकी। कवि कहता है—राम की माता एक सामान्य नारी के समान रोने लगी, सुन्दरी उर्मिला हतप्रभ हो रोने लगी। सुमित्रा व्याकुल हो गई। उसके दुःख ने सबको रुला दिया—करुण कथा को सुनकर किसके आँसू नहीं आ जाते ?[२]

लक्ष्मण के लिए विलाप करते हुए राम का दृश्य भी अत्यंत करुण है। वह कहते हैं कि मैं सब प्रकार के कष्ट सहन कर सकता हूँ परन्तु भाई का वियोग मेरे लिए असह्य है।[3] भरत की दृष्टि में तो लक्ष्मण के बिना पृथ्वी भर्तृ-विरहिता नारी के समान अनाथ हो गई है।

भत्तार-विहूणिय णरि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि।

१. म० पु० ५२.१२.२-३
२. प० च० ६१.१३
३. प० च० ६७.४

रावण के लिए मन्दोदरी का विलाप, और अंजना के लिए पवनजय का विलाप भी इसी प्रकार करुणापूर्ण हैं। पुष्पदंत अपने काव्य में करुण रस की अभिव्यक्ति के प्रति उदासीन हैं।

शान्त रस की अभिव्यक्ति इन काव्यों में उन स्थलों पर हुई है जहाँ कवि निर्वेद भाव को जगाता है। ऐसे स्थलों पर कवि ने संसार की असारता का प्रतिपादन कर शान्त रस की उत्पत्ति की है। स्वयंभू रामायण में जब विरही राम इस प्रकार का उपदेश देते हैं,[1] वहाँ शान्त रस ही मानना चाहिए। पुष्पदंत भी संसार की असारता का उपदेश देते हुए कहते हैं—इस दारुण संसार में दो दिन रहकर कौन से राजा यहाँ से न गए? यहाँ धन इन्द्रधनुष के समान क्षणभर में नष्ट हो जाता है। हाथी, घोड़े, रथ, भट, छत्र, पुत्र, कलत्र कुछ भी स्थायी नहीं। पालकी, यान, ध्वजा, चामर, सब सूर्योदय पर अंधकार के समान विलीन हो जाते हैं। विद्वानों का उपहास करने वाली कमलालया जलधर के समान अस्थिर है। शरीर लावण्य और वर्ण सब क्षण में क्षीण हो जाता है, काल भ्रमर से मकरंद के समान पी लिया जाता है। करतलस्थित जल के समान यौवन विगलित हो जाता है। मनुष्य पक्व-फल के समान गिर पड़ता है।[2]

अपभ्रंश साहित्य में इन कवियों के अतिरिक्त राम-कथा के किसी उल्लेखनीय कवि का अभी तक कोई पता नहीं चला है। राम-कथा के कुछ विशृंखलित सूत्र यत्र-तत्र कभी उदाहरणरूप में और कभी अलंकार रूप में मिल जाते हैं परन्तु प्रबन्ध के रूप में कोई काव्य उपलब्ध नहीं होता है। राम-काव्य के विकास में स्वयंभू और पुष्पदंत दोनों में पर्याप्त अन्तर है। स्वयंभू के समय में धार्मिक भावना प्रधान थी अतः उनके काव्य में धर्म-प्रधान कथा मिलती है और काव्यत्व गौण है। पुष्पदंत के समय तक जैन धर्म एक प्रतिष्ठित धर्म था और अपभ्रंश का काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा चुका था। इसलिए उनकी दृष्टि काव्य में अलंकरण की ओर अधिक है और उन पर बाण का बहुत प्रभाव है। अपभ्रंश का साहित्यिक रूप व्यवस्थित हो जाने के कारण पुष्पदंत ने नवीन अलंकार और नवीन छंद रचना की ओर भी प्रयास किया था। स्वयंभू का काव्य पुरातन परम्पराओं का अनुगामी है परन्तु पुष्पदंत ने परम्परागत रूढ़ियों को तोड़कर कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी कीं। इस प्रकार स्वयंभू की रामायण कथा-प्रधान और पुष्पदंत की रामायण काव्य-प्रधान है।

अपभ्रंश राम साहित्य का केशव पर प्रभाव—काव्य-प्रधान होने के कारण केशव का काव्य स्वयंभू की अपेक्षा पुष्पदंत के अधिक निकट है। केशव की रामचन्द्रिका से प्रतीत होता है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य के साथ अपभ्रंश साहित्य का

---

१. प० च० ३९.११
२. म० पु० ७.१

भी अध्ययन किया था। रामचन्द्रिका की शैलीगत दो विशेषताएँ हैं—विभिन्न छंदों का प्रयोग और विभिन्न अलंकारों का प्रयोग। केशव काव्य में अलंकार को प्रधान मानने वाले कवि हैं इसलिए वह उन सभी कवियों से प्रभावित हैं जिन्होंने अपने काव्यों को विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया है। केशव पर अपभ्रंश का जो प्रभाव है वह रामचन्द्रिका के कथानक पर नहीं है अपितु उसके कला-पक्ष पर है। कथानक के साथ साथ विभिन्न अलंकारों के उदाहरण देने की केशव की प्रवृत्ति का पूर्वाभास हमें पुष्पदंत के काव्य में मिल जाता है। पुष्पदंत ने अपने काव्य में यमक, श्लेष, अनुप्रास, उपमा, व्यतिरेक, विरोधाभास, भ्रान्तिमान, अपह्नुति, अनन्वय आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। बाण के समान केवल शब्द-साम्य के आधार पर दो वस्तुओं की तुलना पुष्पदंत ने प्रायः की है।

'सुर भवणु व रंभाइ पसा हिउ उज्झाउ व सुयम सत्थहिं सोहिउ'

कहकर कवि वन को सुरभवन के समान बताता है क्योंकि वह रंभा—कदली वृक्ष से अलंकृत था। उपाध्याय के समान था क्योंकि श्रुतशास्त्र शिष्यों—शुकसार्थ से अलंकृत था। केशव ने भी अर्जुन, भीम आदि श्लिष्ट शब्दों के कारण पंचवटी को पांडव की प्रतिमा के समान कहा है—

पाँडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।[1]

गंगा-वर्णन के प्रसंग में पुष्पदंत कवि ने जहाँ अनेक उपमानों का प्रयोग कर उसके सौन्दर्य की व्यंजना की है, वहाँ गंगा को वाल्मीक से सवेग निकलती हुई जहरीली श्वेत नागिनी कहकर हृदय को भयभीत भी कर दिया है। केशव ने भी इस प्रकार के बहुत से प्रयोग किए हैं। उन्होंने भी सूर्योदय का वर्णन करते हुए उसकी उपमा कापालिक के रक्त-रंजित कपाल से दी है

कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक कालको।[2]

सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने मानवीय सौन्दर्य की तुलना में प्राकृतिक उपादानों का अपकर्ष दिखाया है। कवि का कहना है कि प्रकृति की सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी मानव के सौन्दर्य की तुलना में नहीं ठहर सकती। इसलिए वह कहता है कि सुन्दरी का मुख चंद्रमा से कहीं अधिक सुन्दर है क्योंकि चन्द्रमा में कलंक है और उसका क्षय होता है परन्तु सुन्दरी में न कोई मलीनता है और न क्षय।[3] केशव ने भी कहीं कहीं इस पद्धति को अपनाया है। सीता की सुन्दरता का वर्णन करते हुए ग्रामवधुएँ कहती हैं कि सीता का मुख चन्द्रमा और कमल दोनों से अधिक सुन्दर है।[4]

---

१. रा० चं० पूर्वार्द्ध ११.२१
२. रा० चं० पूर्वार्द्ध ५.१०
३. म० पु० ५४.१.१४-१५
४. रा० चं० पूर्वार्द्ध ६.४२

हरिवंश कोछड़ ने कहा है कि "अलंकारों के प्रयोग में (पुष्पदंत) कवि ने एक विशेष प्रकार के अलंकरण से काम लिया है। इसमें दो वस्तुओं या दृश्यों का साम्य प्रदर्शित किया गया है। उपमा में एक उपमेय के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपमानों का प्रयोग होता ही रहता है। रूपक में उपमेय और उपमान के अत्यधिक साम्य के कारण एक का दूसरे पर आरोप कर दिया जाता है। सांगरूपक में यह आरोप अंगों सहित होता है। कवि ने एक उपमेय और एक उपमान को लेकर उपमेय के भिन्न-भिन्न अंगों और उपमान के भिन्न-भिन्न रूपों का साम्य प्रदर्शित करते हुए दो वस्तुओं का अलग-अलग पूर्ण चित्र उपस्थित किया है। इस प्रकार का साम्य कभी श्लिष्ट शब्दों द्वारा, कभी उपमेय और उपमानगत साधारण धर्म द्वारा और कभी उपमेय और उपमानगत क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।"[1]

पुष्पदंत ने कभी गंगा नदी और नारी सुलोचना के रूपक द्वारा और कभी गृहिणी और काम-नदी के रूपक द्वारा इस साम्य को दिखाया है। केशव ने भी कभी वर्षा और कालिका के रूपक और कभी वन और शंकर के रूपक द्वारा इस पद्धति का अनुसरण किया है।

अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग अपभ्रंश के इन दोनों कवियों की विशेषता रही है। जिस प्रकार पुष्पदंत ने शब्दों की ध्वनि से ही अभीष्ट चित्र को अंकित कर दिया है वैसे ही केशव ने भी बहुत से स्थलों पर शब्द ध्वनि द्वारा ही मनोनीत दृश्य का वर्णन किया है। राम की दिग्विजय का वर्णन करते हुए कहा है—

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जब भूरि-भूरि थल नाथ को।
केशवदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी सम्पत्ति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाय नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविका डति मित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित के,
आई दिसि दिसि जीत सेना रघुनाथ की।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि केशव पर अपभ्रंश राम साहित्य का यदि कोई प्रभाव पड़ा है तो वह उसके बाह्य रूप पर ही है, कथानक पर उसका कोई प्रभाव नहीं है। काव्य का बाह्य रूप सँवारने में भी केशव अपभ्रंश की अपेक्षा संस्कृत से ही अधिक प्रभावित थे परन्तु कुछ ऐसी काव्यात्मक पद्धतियाँ थीं जो अपभ्रंश कवियों ने भी संस्कृत से ही ग्रहण की थीं। केशव का संस्कृत का ज्ञान बहुमुखी था अतः अधिक सम्भावना यही है कि उन्होंने इन पद्धतियों को अपभ्रंश से

---

१. अपभ्रंश साहित्य पृ० ६०

न लेकर सीधे संस्कृत से ही लिया हो। इतना निर्विवाद कहा जा सकता है कि केशव ने अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन किया था और वे उससे भलीभाँति परिचित थे। अपभ्रंश में यद्यपि पुष्पदंत के समय तक अलंकार अथवा छंद शास्त्र पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं लिखा गया था तथापि कवियों की दृष्टि इस ओर उन्मुख होने लगी थी। पुष्पदंत के साहित्य को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि काव्य में अलंकार और छंदों का महत्त्व बढ़ रहा था और कवि संस्कृत साहित्य से स्वतन्त्र मौलिक उद्भावनायें कर रहे थे तथा नवीन अलंकारों और छंदों की सृष्टि कर रहे थे। केशव को इनसे प्रेरणा अवश्य मिली होगी। और उन्होंने संस्कृत साहित्य के साथ इन अपभ्रंश कवियों की म लिकताओं का अपनी स्वतन्त्र कल्पनाओं के साथ योग कर इस कार्य को आगे बढ़ाया। जिस पथ पर केशव अग्रसर हुए थे, अपभ्रंश के कवि उस मार्ग को उनके लिए पहले ही प्रशस्त कर गये थे।

सूर साहित्य में राम-कथा—सूरदास ने सूरसागर में भागवत की कथा का अनुसरण किया है परन्तु कतिपय आलोचकों की यह धारणा कि उन्होंने सूरसागर के रूप में भागवत का अनुवाद किया है, नितान्त भ्रमात्मक है। अपने इस अनुसरण की बात स्वयं सूरदास ने अनेक स्थलों पर स्वीकार की है, जैसे—

"सुकदेव कह्यो जाहि परकार सूर कह्यो ताही अनुसार"[1]

इसी प्रकार अन्यत्र भी उन्होंने इस अनुसरण की बात स्वीकार की है।[2] परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सूरसागर में मौलिकता का अभाव है। भागवत में परब्रह्म परमेश्वर के अनेक अवतारों के साथ उनके रामावतार की भी चर्चा हुई है। सूरदास ने भी भागवत की कथाओं का वर्णन करते समय प्रसंग स्वरूप राम-कथा का उल्लेख सूरसागर के नवम स्कंध में किया है।

सूरसागर की राम-कथा के सम्बन्ध में श्रीयुत केदार जोशी ने कहा है "जिस प्रकार कोई पथिक प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देखकर क्षण भर विश्राम कर लेता है और उनकी प्रशंसा करने लगता है इसी प्रकार सूरसागर का कवि भी भागवत की कथा कहते-कहते कुछ विराम स्थलों पर पहुँच कर स्वतः अपनी भावनाओं को मुखरित करने लगता है। सूरसागर में राम-कथा और कृष्ण-कथा ऐसे ही विराम स्थल हैं।"[3]

सूरसागर में कृष्ण-कथा को तो नहीं राम-कथा को अवश्य हम इस प्रकार का विरामस्थल मान सकते हैं, क्योंकि सूरसागर में सूरदास के वास्तविक इष्टदेव कृष्ण ही हैं, शेष वर्णन केवल प्रसंग स्वरूप आए हैं।

---

१. सूरसागर : ३।३८७
२. वही ३।३६८, ५।४११, ७।४२६
३. नया पथ सूरसागर में राम-कथा : केदार जोशी

सूरदास वस्तुतः कृष्ण-काव्य के कवि हैं परन्तु उन्होंने जिन कृष्ण को अपना इष्टदेव तथा काव्य का केन्द्र-बिन्दु माना है वह केवल नंदनंदन कृष्ण न होकर सम्पूर्ण विश्व के प्रतिपालक भी हैं। सूरसागर के कृष्ण परवहन पुरुषोत्तम, घट-घट व्यापी, अन्तर्यामी, अज, अनंत, अद्वैत एवं विश्वस्रष्टा हैं। सूर ने कृष्ण तथा ब्रह्म की एकता स्थापित कर भगवान् के उसी रूप की ओर संकेत किया है जो संसार में आकर अनेक लौकिक-अलौकिक लीलाएँ करता है, असुरों तथा दुष्टों का संहार करता है और भक्त तथा साधुओं की रक्षा करता है। वह हरि, विष्णु, राम, कृष्ण सभी कुछ है।[1] सूर ने अपने प्रभु को राम, कृष्ण, गोविन्द, हरि आदि अनेक नामों से स्मरण किया है। उनके लिए राम और कृष्ण में को लिक अंतर नहीं, दोनों एक ही शक्ति के दो नाम हैं, सूरदास ने अनेक स्थलों पर कृष्ण के स्थान पर राम का ही नाम लिखा है, जैसे—

जो तू राम-नाम चित धरतौ

अथवा

कहा कभी जाके राम धनी[2]

उन्होंने राम कृष्ण का तादात्म्य स्थापित करते हुए कहा है—

रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ।[3]

कृष्ण के ही समान सूर ने राम को भी परब्रह्म माना है—

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहु, आवत गाढ़े काम।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसो हरिनाम।
बैकुण्ठनाथ सकल सुख-दाता, सूरदास सुख-धाम।[4]

साधारणतया सूरदास की आस्था भगवान् के राम रूप में नहीं है। उनके इष्टदेव कृष्ण ही हैं परन्तु उनके कृष्ण ने रामावतार में भी अपनी कुछ लीलाओं का दिग्दर्शन किया था इसलिए उन्होंने राम-कथा का भी यथास्थान वर्णन किया है।

सूरदास पुष्टिमार्ग के कवि थे। पुष्टिमार्गी कृष्ण के चौबास अवतारों में से चार को प्रधानता देते हैं—राम, नृसिंह, वामन और कृष्ण। वे इनका जयंतियाँ भी मनाते हैं। तथा समस्त देवी-देवताओं को कृष्ण का अंश मानकर स्तुति करते हैं। पुष्टि मार्ग की इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर सूरदास ने भी कहा है—

कृष्ण भक्ति सीतल निज पानौ
रघुकुल राघव कृष्ण सदा ही, गोकुल कीन्यौ थानौ।

---

१. सूर और उनका साहित्य : डा० हरवंश लाल शर्मा, पृष्ठ २४६
२. सूरसागर १।१७६, १।२४
३. वही, १।११
४. वही, १।६२

सूरदास के राम-विषयक पद शुद्धाद्वैत सिद्धान्त और पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली के अनुसार रचे गऐ हैं। श्री वल्लभाचार्य जी ने 'सुबोधनी' में लिखा है "कृष्ण एवं रघुनाथ" तथा "भगवान्-पूर्ण एवं रघुनाथोऽवतीर्णः।" सूरदास जी ने इन्हीं सूत्रों के अनुसार राम कृष्ण को अभिन्न मानकर काव्य रचना की है।[1]

---

१. सूरसागर : प्रथम खंड (सम्पादक : नंद दुलारे वाजपेयी)

सूरसागर में राम सम्बन्धी उल्लेख

प्रथम स्कन्ध

पद ३	पंक्ति ५	रावण अरि कौ.........भरत की नाई।
पद ११	,, ६	रघुकुल राघव.........कीन्यौ थानौ।
पद १३	,, ३	सबरी कटुक बेर.........भूमि त्याई।
पद १८	,, ४	रावण सौ नृप.........पर नाची!
पद २४	,, ४	गहि सारंग.........फिर दुखाई।
पद २६	,, ९	गौतम की.........अंचयो।
पद ३४	,, ५,६	तिनकी सखि.........राजा भारी।
पद ३५	,, ३, ४	कौन विभीषन.........गर्व गरै।
पद ४३	,, २	सौ जोजन.........राम विलोयौ।
पद ५९, ६१	,, ४, ६	तजि अभिमान, सूरदास तुम राम न.........
पद १०।९२	,, १, १	अदभुत राम, हमारे निर्धन के.........
पद १७६	,, ७,८	विभीषन को.........राज दरबारी।

द्वितीय स्कन्ध

पद ३६	पंक्ति १६	वामन बहुरो.........रूप करि।

रामावतार की कथा

पद १५ से लेकर १७२ पद तक राम की संक्षिप्त कथा

दशम स्कंध

पद १२७	पंक्ति ८-९	जिहिं बल.........सुनी कान।
पद १९८, १९९		सुनि सुत........., नंद नंदन इक......
पद २२१	पंक्ति १७, १८	राम रूप.........देखे हाऊ।
पद ९८१	पंक्ति सम्पूर्ण	रामचन्द्र राजीव.........पर सद।
पद ९८३	पंक्ति ८	मानहुँ कनक पुरी.........छत्र दये।

सूरसागर : द्वितीय खण्ड

पद २८,१५	पंक्ति ५-८	तोरयो धनुष.........सोध लयो।
पद २८,१६	,, ५,७	सिंधु मथ्यौ.........सुनाई।
पद ३०,८१	,, ११	सिंधु उद्धारन.........धनुष धारी।
पद ३१,३५	,, ८	तजे न प्रान.........त्रिवह्यौ।
पद ३१,३९	,, ४	सुनी न कथा.........मन।
पद ३१,६३	,, ४	दसरथ प्रान.........सारंग पानी।
पद ६८	,, ४	रघुपति दसरथ.........सुन गाई।
पद ९५	,, ५	बल आरु.........दुरायो।

—शेष अगले पृष्ठ पर

सूरदास के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता लेशमात्र भी नहीं है। महाकवि की सभी विशेषताओं से युक्त होते हुए भी तुलसीदास इस संकीर्णता से अछूते नही बचे थे। किंवदन्ती के अनुसार कृष्ण की प्रतिमा के समक्ष तुलसी ने तब तक मस्तक नवाना स्वीकार नहीं किया जब तक उनके भगवान् ने मुरली के स्थान पर धनुष बाण हाथ में नहीं ले लिया। सूरदास इस साम्प्रदायिक संकीर्णता से दूर थे। उन्होंने राम-कथा का वर्णन तथा राम-विषयक पदों की रचना उसी तल्लीनता से की है जिससे कृष्ण की। इसीलिए उनकी राम-कथा भी कृष्ण-कथा के ही समान सरस तथा मनोरम है।

सूरदास ने सूरसागर में राम कथा के उल्लेख तीन रूप में किए हैं—

१. वर्णनात्मक कथा के रूप में;

२. संक्षिप्त प्रसंगों के रूप में; और

३. अलंकार रूप में।

राम की विस्तृत कथा सूरसागर के नवम स्कंध में वर्णित है। इसके १५७ पदों में सूरदास ने राम-कथा की मुख्य घटनाओं एवं प्रसंगों का चयन कर मौलिक रूप से उनका वर्णन किया है। सूरसागर की अन्य कथाओं की अपेक्षा राम-कथा अधिक सरस है। सूरदास की शैली यहाँ वर्णनात्मक कम भावात्मक अधिक है। मंगलाचरण को छोड़कर इसके समस्त पद गेय हैं अतः उनमें नीति तत्त्व का आधिक्य होने के कारण कथानक कहीं-कहीं असंबद्ध हो गया है।

सूरदास को मार्मिक स्थलों की अच्छी परख थी। राम-कथा उनकी विशेष लक्ष्य न होते हुए भी उसमें प्रायः सभी मार्मिक स्थल आ गए हैं। सूर अच्छी तरह जानते हैं कि कथा के सर्वोत्कृष्ट वर्णनीय स्थान कौन से हैं इसलिए उन्होंने राम-कथा के सभी उत्कृष्ट स्थलों को चुन लिया है।

पद	३२,२६	पंक्ति	३,७	मिलि बिछुरे की·········बिछुरे रामचन्द्र······
पद	३२,६३	,,	५,६	सूर सकति·········ये प्रान।
पद	३३,१६	,,	६	सूरदास प्रभु·········रावन के।
पद	३३,६१	,,	४	सूपनखा वन·········वहोरी।
पद	३५,१५	,,	४,६	बालि कपिन·········मुरारी।
पद	३८,१३	,,	७	प्रगट प्रीति·········कै वनवास।
पद	३८,३६	,,	८	सूपनखा·········यह बानि।
पद	४०,०६	,,	१,३	हरि ते·········पुनि ताकौ।
पद	४०,६४	गोपविरह		राम जनम·········हियौ सिरायौ।
पद	४२,११		५	जिन प्रभु·········सकल नरू।
पद	४२,१५		१	करू खल·········हरन गज।

परिशिष्ट १

पृष्ठ १७२५	(१)	हनुमान का सीता समाधान।
	(२)	कुम्भकरण-रावण-संवाद।
१०, ३२ पद पंक्ति ६		सूरदास संत ने·········तरी।

सूरसागर में वर्णित रामावतार का कारण भागवत के आधार पर सनकादि ऋषियों का जय-विजय को शाप ही है। कृष्ण के बाल रूप के समान सूर की दृष्टि राम की बाल शोभा पर अटक कर नहीं रह गई है बल्कि दो छंदों में[1] उसका वर्णन कर उन्होंने कथा को आगे बढ़ा दिया है। कैकेयी और मंथरा विषयक कथानक सूर ने छोड़ दिया है। संभव है उन्होंने इस आख्यान को जनता में पर्याप्त प्रसिद्ध समझकर अथवा इन दोनों पात्रियों को अपनी सहानुभूति के अयोग्य समझकर उनका उल्लेख करना उचित न समझा हो।

सूर साहित्य मानस के समान लोक-कल्याण कामना से नहीं लिखा गया था। अतः सूर के काव्य में, विशेषतः उनके राम-विषयक कथानक में उपदेशों का अभाव है। जिन प्रसंगों पर सूरदास का मन रमा है उन्हीं का वर्णन किया है अन्यथा उन्होंने घटनाओं का केवल उल्लेख भर कर दिया। राम के वनवास पर भरत कैकेयी को अपराधी मानकर उसकी ताड़ना करते हैं तथापि उनका संयम और धैर्य तुलसी के भरत से कहीं अधिक है।[2]

---

१. करतल-सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहिया।
दसरथ-कौसिल्या के आगे, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरवर तैं बैठे आइ सदेहियाँ।
रघुकुल कुमुद चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनन्द निधि सब कहिया।
यह सुख तीनि लोक में नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ। ६।१६
धनुहीं-बान लए कर डोलत।
चारौ बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।
लछिमन भरत सत्रुहन सुन्दर, राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार, परम पुरुषारथ, मुक्ति-धर्म-धन धाम।
कटि तट पीत पिछौरी बाधे, काकपच्छ धरे सीस।
सर-क्रीडा दिन देखत आवत, नारद सुर तैंतीस।
सिव मन सकुच, इंद्र-मन आनन्द, सुख-दुख विधिहिं समान।
दिति दुर्बल अति, अदिति हृष्टचित, देखि सूर संधान। ६।२०

२. तैं कैकई कुमंत्र कियौ
अपने कर करि काल हंकारयौ, हठ करि नृप-अपराध लियौ।
श्रीपति चलत रह्यो कहि कैसे तेरो पाहन कठिन हियौ।
मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहिं बनवास दियौ।
कौन काज यह राज हमारैं इहिं पातक परि कौन जियौ।
लोटत सुर धरनि दोउ बंधू, मनौ तपत-विष विषम पियौ।
सू० सा० ६।४८

सूरदास ने सीता का वही मर्यादित रूप रखा है जो तुलसी को इष्ट था। उन्हीं सहज संकोच, शील और पातिव्रत की देवी सीता के दर्शन हमें यहाँ भी होते हैं। सूरसागर में सूर ने भगवान् राम के प्रति अपनी दीनता प्रकट करने का माध्यम भी सीता को बना लिया है। सीता के माध्यम से स्वयं सूर का हृदय अपनी दैन्य भावनाएँ प्रकट करता है।[१]

सूरदास द्वारा किया हुआ भगवान् राम के ऐश्वर्य का वर्णन तुलसी के वर्णन से भिन्न है। तुलसी ने राम के ऐश्वर्य वर्णन में मध्य युग के विलासी मुगल सम्राटों का चित्र उतारा है। उसमें उसी प्रकार के शिष्टाचारों का वर्णन किया है जिनका वहाँ प्रयोग होता था परन्तु सूर की सरल ग्रामीण प्रकृति इन आडम्बरों से अछूती थी। उन्होंने राम के वैभव के चित्र न खींचकर उनके हृदय की करुणा और कोमलता के ही दर्शन किए हैं। सूरदास तो भगवान् के निकटतम पहुँचकर अपना संदेश देना चाहते हैं बीच के शिष्टाचार उन्हें रुचिकर नहीं। महाराज राम की सेवा में वह सीधे ही रुक्का पहुँचाना चाहते हैं—

> एक उपाय करौ कँमलापति कहौ तो कहि समभाऊँ।
> पतित उधारण नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥[२]

सूर सागर में सीता हरण, जटायु और शबरी उद्धार के प्रसंग हैं जो अत्यंत करुण हैं। इसके राम साधारण मानव के ही समान सीता के वियोग में शोकाकुल हो जाते हैं।

सूरसागर में वर्णित राम कथा में लंका काण्ड अन्य काण्डों की अपेक्षा विस्तृत एवं चरित्र चित्रण तथा काव्यत्व की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। घटनाओं का वर्णन कथानक के प्रवाह को आगे बढ़ाने वाला है। इस काण्ड में राम की लंका पर चढ़ाई, राक्षसों का संहार तथा अंत में राम के अयोध्या लौट आने की कथा वर्णित है। तीन दिन बीत जाने पर भी जब समुद्र पार जाने का मार्ग नहीं देता तब राम हाथ में आग्नेय बाण लेते हैं। राम के रौद्र रूप से भयभीत समुद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर अनुनय विनय करता हुआ उनके सम्मुख आज्ञा की प्रतीक्षा में उपस्थित होता है।

---

१. मैं परदेसिन नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु पिता न सहेली।
रावण भेष जरयो तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़ मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह ताप तन अधिक जरावन, जैसे देव द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावौ, प्रान जात हैं खेली।
सू० सा० ९।९४

२. सू० सा० नवम स्कंध पद १७२

रावण अपने पराक्रम के अभिमान में मंदोदरी के परामर्श की अवहेलना करता है। विभीषण और कुम्भकर्ण भी रावण से विनय करते हैं कि वह राम की शरण में चला जाए परन्तु रावण उनकी भी शुभेच्छाओं की अवहेलना करता है। अपने हठ तथा शीघ्र शिवलोक प्राप्त करने के मोह के कारण वह अंगद की भी बात न सुनकर युद्ध के लिए प्रस्तुत होता है। लक्ष्मण शक्ति के करुण अवसर पर राम की कथा का वर्णन सूर ने अत्यंत सहृदयतापूर्वक किया है। नवम स्कंध का यह करुणतम स्थल है—

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन, बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर।
वारह बरष नींद है साधी तातें विकल सरीर।
बोलत कहा मौन कहा साध्यो, विपति-बँटावन वीर।
दशरथ-मरन, हरण सीता कौ, रन बैरिन की भीर।
दूजौ सूर सुमित्रा-सुत बिनु कौन धरावै धीर।[1]

हनुमान राम को समझाने तथा धैर्य बँधाने की चेष्टा करते हैं। राम की व्याकुलता देखकर वह द्रोणगिरि पर्वत को ही उठाकर ले आते हैं। भरत हनुमान को राक्षसी माया समझकर उन पर बाण चलाते हैं। हनुमान उन्हें सीता हरण और लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुनाते हैं। कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्य पुरवासी करुण विलाप करने लगते हैं। कवि ने इस अवसर पर कौशल्या तथा सुमित्रा की मातृ भावनाओं को अलौकिक रूप प्रदान किया है। सुमित्रा कौशल्या से कहती है कि लक्ष्मण को जन्म देकर मेरा मातृत्व सार्थक हो गया है इसलिए यह दुःख का अवसर नहीं है—

लछिमन जनि हौ भई सपूती, राम काज जो आवै।[2]

कौशल्या भी हनुमान द्वारा राम के पास जो संदेश भेजती है उसमें उन्हें राम की अपेक्षा लक्ष्मण की चिंता अधिक है—

नातरू सूर सुमित्रा सुत पर वारि अपुनपौ दीजै।[3]

सुमित्रा अपना जो संदेश राम के पास भेजती है, उसमें वह राम के प्रति कोई आक्रोश अथवा लक्ष्मण के लिए कोई दुःख प्रगट नहीं करती। कौशल्या तथा राम को आत्मप्रतारणा से बचाने वाली इस असाधारण नारी का त्याग भारतीय साहित्य में अनुपमेय है—

---

१. सू० सा० नवम स्कंध, पद १४५
२. वही, ९।१५२
३. वही, ९।१५३

सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै।
जब तें तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छांडे।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख समूह उर गांड़े।[१]

लक्ष्मण को एक बार यम के हाथों से बचाकर राम अपने प्राणप्रिय भाई को पुन: खोने को तैयार नहीं हैं अतः इस वार वह अत्यंत क्रोध में भरकर युद्धक्षेत्र में आए हैं। ब्रह्मादिक देवता विमानों से युद्ध देख रहे हैं। समस्त भूमण्डल में अस्तव्यस्तता फैल गई।

रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी तथा रावण की अन्य १४००० सुन्दरी रानियां विलाप करने लगती हैं। विभीषण भी रावण के रुण्ड-मुण्ड को गोद में लेकर शोक करता है। युद्ध के अन्त में इन्द्र अमृत की वर्षा करते हैं जिससे युद्धभूमि में पड़े हुए घायल तथा मृत ऋक्ष, एवं कपि समूह स्वस्थ हो उठता है।

अयोध्या लौटकर राम, लक्ष्मण और सीता सर्वप्रथम भरत से मिलते हैं तदनन्तर अन्य आत्मीय स्वजनों से। पुत्रागमन का समाचार सुन कौशल्या दौड़ कर आती है, सुमित्रा आरती सजा कर लाती है। दोनों माताओं के हर्ष का पारावार आज कहाँ। इस मिलन अवसर पर सूरदास ने कैकेयी को अनुपस्थित रख अपनी अन्तर्भेदिनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

राम-कथा के अंतिम पद में कवि कहता है कि वह अपनी प्रार्थना पतित-पावन राम के समक्ष निवेदन करना चाहता है। भगवान् के दरबार में तो अनेक संतों तथा भक्तों की भीड़ लगी रहती है। अधम सूर को वहाँ कौन प्रविष्ट होने देगा। इसलिए अपनी प्रार्थना वह पत्र द्वारा राम की सेवा में भेज रहे हैं :—

विनती किहि विधि प्रभुहिं सुनाऊं

× × ×

पतित उधारन नाम सूर प्रभु यह रुक्का पहुँचाऊं।[२]

राम-कथा यद्यपि सूरदास का मूल विषय नहीं था तथापि उन्होंने इसके वर्णन में यथेष्ट सहृदयता का परिचय दिया है। अपनी सरल और असाम्प्रदायिक वृत्ति से वह राम भक्तों को भी अत्यंत प्रिय हो गए हैं।

नवम स्कंध में राम-कथा के वर्णन के अतिरिक्त सूरदास ने कृष्ण-कथा के बीच में अनेक स्थानों पर राम-कथा के उल्लेख किए हैं। इनमें कुछ पद तो ऐसे हैं जिनसे राम का ब्रह्मत्व तथा कृष्ण की एकता दर्शित होती है। सूर की दृष्टि में राम और कृष्ण एक ही हैं अतः वह स्थान-स्थान पर कृष्ण को राम और राम को कृष्ण कहने लगते हैं।[3]

---

१. सू० सा० ९।१५४
२. वही, ९।१७२
३. वही, १० स्कंध : पद ३, पंक्ति ६, पद ५९, ६१, पंक्ति ४,६, पद ९०, ९२ पं० १, १

दूसरे प्रकार के पद वे हैं जहाँ प्रसंग तथा स्थान के अनुसार राम-कथा की विभिन्न घटनाओं के उल्लेख हैं। इस प्रकार के अनेक उल्लेखों में सूर सागर का एक प्रसंग हिंदी साहित्य में अपूर्व है। कृष्ण को सुलाने की चेष्टा में माँ यशोदा उनको अनेक प्राचीन कथाएँ सुनाती हैं। एक बार ऐसे ही अवसर पर वह उनको राम की कथा सुना रही हैं। कथा के बीच में जैसे ही सीता-हरण का प्रसंग आता है बालक कृष्ण चौंक पड़ते हैं और धनुष तथा लक्ष्मण की पुकार करने लगते हैं। कृष्ण वास्तव में राम ही हैं एवं उन्हीं की स्त्री सीता का अपहरण पूर्व काल में हुआ है। सीता का प्रसंग आते ही उन्हें सीता-हरण की घटना का स्मरण हो आता है।

रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नंदनंदन नींद निवारी।
चाप चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी।[1]

राम-कथा से संबंधित इस प्रकार के सुन्दर प्रसंग सूरसागर में अनेक स्थानों पर आए हैं।[2]

राम-कथा के तीसरे प्रकार के वे उल्लेख हैं जहाँ सूरदास ने अलंकारों के हेतु राम-कथा की घटनाओं का उपयोग किया है। यद्यपि ऐसे स्थल सूरसागर में बहुत कम हैं परन्तु उनसे इतना अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि वे राम-कथा को अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखते थे।[3]

वासुदेव कृष्ण के निःस्वार्थ उपकारों का वर्णन करते हुए उसकी पुष्टि में सूर राम का प्राचीन दृष्टांत देते हैं। रावण के शत्रु होते हुए भी राम उसके अनुज विभीषण से भरत के समान स्नेहपूर्वक मिलते हैं, निष्काम भाव से उससे मैत्री कर उसे लंकाधिपति बनाने का प्रयास करते हैं :—

बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि को अनुज विभीषण, ताकौं मिले भरत की नाई।[3]

कुछ स्थलों पर सूर ने राम-कथा का उपयोग उपमाएँ देने के लिए भी किया जैसे यशोदा कृष्ण का समाचार प्राप्त करने को व्याकुल है। नंद मथुरा से लौट अकेले आते हैं तो यशोदा का असीम दुःख और भी गंभीर हो जाता है। वह नंद को धिक्कारती हुई कहती है कि दशरथ के ही समान तुम भी वहीं अपने प्राण क्यों न छोड़ आए, यहाँ क्या दूध दही खाने को लौट आए हो :—

उन्हें छांडि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यो।
तजे न प्रान दसरथ लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ।[4]

---

१. सू० सा० १०।१६८ (सम्पादक : नंददुलारे वाजपेयी)
२. प्र० स्कंध, ३, ५, १३, ३, १८, ४, २४,४; द्वि० स्कंध ३६, १६; दशम स्कंध, पद २८, १५, ५, ८, ३१६३, ४ आदि
३. सू० सा०, प्रथम स्कंध, पद ३
४. सू० सा०, दशम स्कंध, पद ३११५

सूरसागर के अन्य पदों के समान राम-कथा के पद भी गीतिशैली में लिखे गए हैं। मंगलाचरण के अतिरिक्त इसके सभी पद गेय हैं। इसमें कथा का क्रम व्यवस्थित नहीं है परन्तु सूरदास को मार्मिक स्थलों की अच्छी परख है। वह भलीभाँति जानते हैं कि सर्वोत्कृष्ट वर्णनीय स्थल कौन-कौन से हैं इसलिए उन्होंने विशेष रूप से उन्हीं स्थलों को चुना है। इनके वर्णन में कवि की पूर्ण तल्लीनता का परिचय मिलता है। अपनी दिव्य प्रतिभा से समस्त राम-कथा को गीति काव्य का रूप देकर सूर ने तुलसी जैसे प्रतिभासम्पन्न कलाकार के लिए भी गीति-शैली का मार्ग प्रशस्त किया था।

सूरदास के पद अधिकांश सरल तथा आडम्बरहीन हैं एवं उनसे विषय की महत्ता पूर्णतया व्यंजित होती है। इनकी भाषा-शैली तत्सम तथा तद्भव दोनों प्रकार की शब्दावली से युक्त है। पदों में कथानक कम, भावात्मकता और रसात्मकता अधिक है।

इन पदों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि कथा के अन्तर्गत जहाँ संवाद आए हैं वहाँ वह तुलसी के कथोपकथनों से भी अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। तुलसी में यह गुण इतनी अधिक मात्रा में नहीं हैं, जैसे—

रे कपि, क्यों पितु-बैर बिसार्यो ?
तो समतुल कन्या किन उपजी, जो कुल सत्रु न मार्यौ।
ऐसौ सुभट नही महि मंडल देख्यौ बालि-समान।
तासौं कियौ बैर में हार्यो, कीन्हीं पैज प्रमान।
ताकौ बध कीन्हौ इहिं रघुपति, तुव देखत बिदमान।
ताकी सरन रह्यो क्यों भावै, सब्द न सुनियै कान।
"रे दसकंध, अंध-मति, मूरख, क्यौं भूल्यौ इहिं रूप ?
सूझत नहीं बीसहू लोचन पर्यो तिमिर कै कूप।
धन्य पिता, जापर परफुल्लित राघवे भुजा अनूप
वा प्रताप की मधुर विलोकनि पर वारौं सब भूप।"
"जौ तोहिं नाहिं बाहु बल-पौरुष, अर्ध राज देऊँ लंक।
मो समेत वह सकल निसाचर, लरत न मानें संक।
जब रथ साजि चढौं रन-सन्मुख जीय न आनौ तंक।
राघव सेन समेत संहारौ, करौं रुधिरमय पंक।"
"श्री रघुनाथ-चरन-व्रत उर धरि, क्यों नहिं लागत पाइ ?
सबके ईस परम करुनामय, सबही कौं सुखदाइ।
हौं जु कहत, जै चलौ जानकी, छांडौ सबै ढिठान।
सनमुख रोइ सूर के स्वामी, भक्तनि कृपा निधान।"[1]

---

१. सू० सा०, नवम स्कंध पद, १३४

उपर्युक्त रावण-अंगद संवाद में रावण अंगद को उसके पितृ-वध का स्मरण कराकर राम का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है। इसमें मफल न होने पर कुशल राजनीतिज्ञ के समान वह अंगद को 'अर्ध राज देऊँ लंक' का लोभ देता है परन्तु अंगद इस लोभ से अनासक्त रहकर रावण को अपनी कटूक्तियों से 'सूझत नाहीं बीसहू लोचन पर्यो तिमिर के कूप' आदि कहकर व्यंग्यशरों से बेधता है। इस प्रकार के प्रभावपूर्ण संवाद लिखने में सूरदास तुलसी की अपेक्षा केशव के अधिक निकट पहुँचते हुए दिखाई देते हैं।

पदों की रचना करने में सूरदास का उद्देश्य केवल परब्रह्म परमेश्वर के अवतार राम की गाथा गाना था, श्रोताओं में राम के ब्रह्मत्व का प्रचार करना नहीं अतः उन्होंने राम-कथा को सहज स्वाभाविक ढंग से लिखा है। स्थान-स्थान पर अवसर निकाल कर राम के अलौकिक रूप का स्मरण तुलसी के समान बारम्बार नहीं कराया है। इस दृष्टि से सूर की राम-कथा तुलसी की अपेक्षा अधिक सरल और प्रभावपूर्ण बन पड़ी है।

तुलसी और सूर की राम-कथाओं में कहीं-कहीं समान भावों का चित्रण हुआ है। सूरदास तुलसी के समकालीन होते हुए भी उनसे पूर्ववर्ती थे। उनके सूरसागर की रचना तुलसी के मानस से पहले हुई थी इसलिए जहाँ इन दोनों कवियों में भावापहरण के उदाहरण मिलते हैं उनके लिए निर्विवाद कहा जा सकता है कि तुलसी नेही सूर के भावों का अपहरण किया है। अपनी राम-कथा में भी सूरदास ने तुलसी के मानस से भाव या भाषा का कोई ऋण नहीं लिया है। सूरसागर की राम कथा में जो परिवर्तन हुए हैं वे या तो मौलिक हैं अथवा भागवत पर आधृत हैं।

इस प्रकार सूरसागर की राम-कथा अथवा राम सम्बन्धी समस्त उल्लेख यद्यपि व्यापकता की दृष्टि से मानस की समता नहीं कर सकते परन्तु राम साहित्य में उनका एक विशिष्ट स्थान है और वह उसकी एक अत्यन्त आवश्यक शृंखला है।

माधुर्य भावना का राम-काव्य

भगवान् के लिए भक्त के हृदय में जो मिलन-लालसा, वासना, रति अथवा प्रेम है उसीकी संज्ञा है भक्ति। भक्त प्रेमी है तथा भगवान् उसका प्रेम-भाजन। अतः भगवान् के विरह में भक्त को एक निमिष कल्प के समान दीर्घ प्रतीत होता है। कालान्तर में सम्भवतः अपने अहम् को सन्तुष्ट करने के लिए मानव के प्रेमी हृदय ने भगवान् में भी प्रेमी की कल्पना कर ली और स्वयं बन गया उसका प्रेम पात्र। तब से भगवान् भी भक्त की पुकार पर मानव रूप धारण कर प्रेमी के समान दौड़ने और भक्त के वियोग में व्याकुल रहने लगे। भक्त का प्रसन्न करने के लिए वह नाना प्रकार की लौकिक क्रीड़ाएँ भी करने लगे।

आरम्भ में भगवान् राम का दुष्ट दलनकारी रूप ही प्रधान था परन्तु कालान्तर में उनका मधुर रूप ही भक्तों को अधिक प्रिय लगा। यद्यपि राम का रूप कृष्ण

की अपेक्षा सदैव मर्यादित रहा परन्तु फिर भी मर्यादा के साथ-साथ उनके चरित्र में भी लीला-विलास का प्रवेश हुआ तथा अनेक ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें भगवान् राम के असंख्य सखियों के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं के वर्णन अत्यन्त ललित तथा काव्यमयी भाषा में उपलब्ध होते हैं।

कालिदास के समय तक राम साहित्य में माधुर्य भावना मर्यादित ही रही परन्तु उनके बाद शृंगारिक वर्णनों की परम्परा परवर्ती साहित्य में खूब पल्लवित तथा विकसित हुई। कुमारदास के जानकीहरण, हनुमन्नाटक, कंबन रचित 'रामायण', जयदेव के प्रसन्नराघव, साकल्यमल्ल के उदारराघव आदि अनेक काव्य ग्रन्थों में यह धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही तथा उत्तरोत्तर पराकाष्ठा पर पहुँचती रही। इन कवियों ने राम को भगवान् का अवतार मानते हुए भी अपने काव्यों में उनके लौकिक रूप ही को मान्यता दी है। वास्तव में यह राम भक्ति के साधक नहीं थे बल्कि कवि थे जो राम के प्रति अपने सम्बन्ध में माधुर्य भावना के समर्थक थे। यह मूलतः कवि थे अतः राम के अवतार रूप को विशेष महत्त्व नहीं देते थे।

संस्कृत साहित्य से होती हुई राम के चरित्र की माधुर्य भावना हिंदी साहित्य में आई। स्वामी रामानन्द[१] तथा भक्त नाभादास राम की दशधा अर्थात् शृंगारी भाव की उपासना के ही पोषक थे। रामानन्द ने विष्णु के अन्य रूपों की अपेक्षा राम रूप को लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझ चुन लिया तथा एक शक्ति-शाली सम्प्रदाय का संगठन किया। स्वामी रामानन्द के लिए रसिक प्रकाश भक्तमाल में कहा गया है कि उन्होंने सीता राम की रहस्य उपासना को मन्द पड़ता जान उसका उद्धार किया—

बीच पाय सियाराम रहस्य उपासना को
मन्द रीति पेषि सदाचार नए-नए हैं।
तब ही कृपाल निज भक्ति के दृढाइबे को
रामचन्द्र आपु स्वामी रामानन्द भये हैं।[२]

नाभादास तुलसी के समकालीन थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनका समय संवत् १६५७ के आस पास है।[३] नाभादास जी ने राम-सीता की 'चारुशीला' तथा 'चन्द्रकला' नामक दो सखियों को प्रधानता देकर अपने भगवान् के जीवन में माधुर्य भाव का संकेत किया है—

श्री अग्रदेव करुना करी, सियपद नेह बढाय।
'नाभा' मन आनन्द भो, महल टहल नित पाय॥

---

१. रामचन्द्र शुक्ल ने इनको संवत् १५४६ से १५४७ के बीच वर्तमान माना है। हि० सा० इति०, पृ० ११७

२. र० प्र० म०, पृ० १२

३. हि० सा० इति०, पृ० १४७

अली चारुशीलाष्टि जे, चन्द्रकलादिक बाम।
जुगल लाल-सिय सहचरी, रसमैं जिनके नाम।।
तिनकी कृपा कटाक्ष ते, 'अग्र' सुरति गुरु पाय।
'नाभा' उर आनन्द लहे, रसिक जनन गुण गाय।।[1]

नाभादास की सबसे अधिक प्रसिद्ध कृति 'भक्तमाल' है परन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने रामचन्द्र के दो अष्टयाम भी लिखे हैं। उन्होंने कतिपय फुटकर पदों की भी रचना की है जैसे—

जा दिन सीता जन्म भयो।
ता दिन ते सबही लोगनि को, मन को शूल गयो।।
अध्वर आदि अवनि ते उपजी, दिवि दुन्दुभी बजाये।
बरखत कुसुम अपार शब्द जै, व्योम विमानत छाये।।
जनक सुता दीपक कुलमंडन, सकल सिरोमनि नारी।
रावन मृत्यु कुमति अमरन गण, अभयदान भयहारी।।
सुन्दर शील सुहाग भाग की. महिमा कहत न आवै।
परम उदार राम की प्यारी, पदरज 'नाभा' पावै।।

उपरोक्त पद को देखने से अनुमान होता है कि ब्रजभाषा पर नाभादास जी का पूरा अधिकार था। प्रस्तुत पद उनकी काव्य प्रौढता का परिचायक है। इन्होंने राम सम्बन्धी दो अष्टयामों की रचना भी की थी, एक ब्रजभाषा गद्य में और दूसरा दोहा-चौपाई पद्धति पर।

नाभादास ने भक्तमाल में माधुर्य भावना के उपासक कुछ भक्तों का उल्लेख किया है, जिनमें से चार के नाम उल्लेखनीय हैं, मानदास, मुरारीदास, खेमालरतन राठोर तथा प्रयागदास।

मानदास राम की गोप्यकेलि के प्रसारक माने जाते हैं। उनके सम्बन्ध में मुन्शी तुलसीराम ने 'भक्तमाल प्रदीपन' में कहा है "जानकी जीवन महाराज के जो चरित्र रामायन और हनोमान नाटक और दीगर रामायनों में पोशीदा लिखे हैं उनको मानदास जी ने भाषा में इस लुत्फ व शायरी से बयान किया कि हर एक को मरग़ूब और फायदह बख्श कर दो जहाँ के है। अगर च जुमला नौ रस अपने ग्रन्थ में मुफस्सल बयान किए लेकिन भगवत का शृंगार और माधुर्य रस ऐसा बयान किया कि जिसके पढ़ने सुनने से बिलज़रूर भगवत सरूप में तबीयत लग जाती है और जो कवायद शृंगार के श्रीकृष्ण चरित्र में उपासकों ने बयान किए हैं उसी तरह राम चरित्र में मानदास ने बयान किया"।[2]

---

१. अष्टयाम, पृ० ४२
२. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, डा० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० १०१

मुरारी ने तो पैरों में घुंघरू बाँधकर 'रामलीला' का कीर्तन करते हुए ही अपने नश्वर शरीर का त्याग किया था। उनके संबंध में भक्तमाल में लिखा है :—

पगन घुंघरु बांध राम को चरित दिखायौ।
देसो सारंग पानि हंसता संग पठायौ।
उपमा और न जगत में पृथा विना ना दिन वियो।
कृष्ण विरह कुन्ती सरीर, त्यों मुरारी तन त्यागियो।[1]

खेमालरतन राठौर राम की रसमय लीलाओं के गायक तथा 'दशधा' भक्ति के साधक कहे जाते हैं। भक्तमालकार ने कहा है :—

दसधा संपति संत बल, सदा रहत प्रफुलित बदन।
खेमालरतन राठौर के अचल भक्ति आई सदन।[2]

चौथे भक्त हैं प्रयागदास। ये राम भक्तों को अति प्रेम भावना से ग्रहण कर उनके रंजन के हेतु रास-आयोजन किया करते थे तथा स्वयं भी उसमें सम्मिलित हुआ करते थे :—

भक्तन को अति प्रेम भावना करि सिर लीनी
रासमध्य निर्जान देह दुति दसा दिखाई
'आडो बलियो' अंक महोछै पूरी पाई
क्यारे कलस औली धुजा विदुष श्लाघा भाग की।
श्री अगर सुगुरु परताप ते, पूरी परी 'प्रयाग' की।[3]

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी का आविर्भाव १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इनकी 'ध्यान मंजरी' राम रसिकोपासकों की प्रिय पुस्तक है। इसमें कुल ८० पद हैं तथा अग्रदास जी ने अयोध्या के प्रासाद में अन्तःपुर निवासिनी युवती दासियों का वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। उन्होंने रत्न सिंहासनासीन युगल सरकार श्री सीता राम का सौन्दर्य वर्णन भी किया है। राम का ध्यान करते हुए वह कहते हैं :—

षोडस बरस किशोर राम नित सुन्दर राजै।
राम रूप को निरखि बिभाकर कोटिक लाजै।

सीता का सौन्दर्य वर्णन उन्होंने पर्याप्त विस्तार तथा सहृदयता से किया है, जैसे :—

लहगा कटि परदेश भांति अति शोभित गहिरी।
अरुण असित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी।

---

१. भक्तमाल (रूपकला), पृ० ७५७
२. वही, पृ० ७३८
३. वही, पृ० ८७०

अपने इन वर्णनों में अग्रदास जी भक्त से अधिक कवि हैं। उनके वर्णन अत्यंत सरस तथा भाषा अलंकृत एवं काव्यमयी है ।

नाभादास जी ने 'अष्टयाम' में राम के महल, अन्तःपुर में सखियों की सेवा, भोजन, नृत्य-संगीत तथा शयन आदि का विस्तृत वर्णन किया है। भोजन समय का चित्रांकन उन्होंने इस प्रकार किया है :—

प्रथम मधुर रस पंच ग्रास करि। भोजन करन लगे आनन्द भरि।
जेहि व्यजन पर सिय कर देही। सो प्रीतम पहिले धरि लेहीं।
सिय निज कर पिय मुख में देहीं। मन्द स्मित करि लालन लेहीं।
पुनि पिय सिय मुख ग्रास देति हंसि। वीडा युत ले होत प्रेम वसि।

नाभादास के काव्य में मानस के राम-सीता की मर्यादा नहीं है। उसमें हनुमन्नाटक के समान राम-सीता के दाम्पत्य जीवन का मधुर रूप अत्यंत स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है। यह ग्रन्थ राम भक्तों के अतिरिक्त अलंकार, छंद, रस तथा पिंगल प्रेमियों के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय आदि अलंकारों का यह अपूर्व संग्रह है। रस का तो यह अगाध सागर ही है जिसका रसास्वादन केवल रसिक ही कर सकते हैं। नाभादास जी के पश्चात् राम साहित्य परम्परा में हमें तुलसी के मानस के दर्शन होते हैं।

'रामचरितमानस' में तुलसी अपने मर्यादावाद के कारण राम सीता को छवि तथा श्रृंगार का समन्वय कह कर मौन हो गए हैं परन्तु कवितावली, गीतावली तथा बरवै रामायण आदि में उन्होंने राजा राम के ऐश्वर्य का वर्णन किया है। उनके यह वर्णन माधुर्य भावना के नहीं हैं बल्कि उनमें राम के ऐश्वर्यमय जीवन के ही कतिपय चित्रों की अभिव्यक्ति हुई है।

तुलसी साहित्य सृजन के पश्चात् देश में राम-सीता का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था। उस समय देश में मुगल सम्राट् अकबर का बोलबाला था। राम भक्ति की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई महिमा ने अकबर को भी प्रभावित किया। उसने अपने राज्य काल में कुछ मुद्राएँ प्रचलित कीं जिन पर राम-सीता के चित्र अंकित थे। इस प्रकार की तीन मुद्राओं का अब तक पता चला है। सोने की दो अर्द्ध मुहरें ब्रिटिश म्यूज़ियम और केबिनेट डे फ्रांस में हैं और एक चाँदी की अठन्नी भारत कला भवन काशी में सुरक्षित है। अर्द्ध मुहरों में राम का वेश प्राचीन है। वह धोती तथा उत्तरीय धारण किए हैं तथा सीता लहंगा, ओढ़नी और चोली पहने अपना अवगुण्ठन सम्हाल रही हैं। अठन्नी में सीता-राम अकबरकालीन वेश में हैं। इसमें सीता के दोनों हाथों में पुष्प-गुच्छ हैं। दोनों प्रकार की यह मुद्राएँ अकबर की मृत्यु के पूर्व की हैं। डा० भगवतीप्रसाद सिंह के मतानुसार स्वर्ण मुद्राओं पर राम के दाम्पत्य जीवन के आरम्भिक काल का चित्र है तथा अठन्नी में चित्रकूट के वन

विहार का।[1] अकबर को इन माधुर्य व्यंजक चित्रों को मुद्राओं पर अंकित करवाने की प्रेरणा निस्संदेह तत्कालीन राम भक्ति के रसिक साहित्य से मिली होगी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय राम भक्ति का प्रभाव बढ़ रहा था तथा उसमें विष्णु राम के स्थान पर राजा राम को प्रधानता दी जाने लगी थी।

राम भक्तों की मधुर उपासना के संबंध में श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र ने कहा है :—'सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओं में क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या बौद्ध, मधुर भाव की उपासना का ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण हैं। प्रभाव जो कुछ भी और जैसा कुछ भी हो, रामावत मधुर उपासना अपने-आप में से प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित, पुष्पित स्वतंत्र साधना शैली के रूप में ही उत्तराखण्ड में छा गई थी, फिर भी मर्यादा की मुख्यता के कारण इसे खुलकर खेलने का अवकाश नहीं मिल सका। इसीलिए यह दबी ई गुप्त परम गुह्य रूप में ही बनी रही और आज भी वह परम गुह्य ही है।'[2]

केशव के पूर्व मधुकरशाह के दरबार में रहने वाली मधुर अली नामक एक वैश्या ने 'राम चरित्र' की रचना की थी। इसके अतिरिक्त केशव के बड़े भाई बलभद्र मिश्र ने राम-कथा से संबंधित 'हनुमन्नाटक' की रचना की थी।

इस प्रकार केशव ने जिस समय अपने राम काव्य 'रामचंद्रिका' की रचना की उस समय उन्हें संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में भी दो प्रकार की काव्य परम्पराएं प्राप्त हुई—भक्ति राम-काव्य तथा माधुर्य भावना का राम-काव्य। भक्ति राम-काव्यों में राम विष्णु के अवतार थे तथा उनका जीवन मर्यादा पुरुषोत्तम राम का था, परन्तु रसिक राम-काव्यों में राम विष्णु का अवतार हो ने पर भी राजा राम थे तथा उनका जीवन पूर्णतया राजकीय वातावरण में विकसित हुआ था। रसिक साहित्य के राम चित्रकूट में वास करने पर भी तापस राम नहीं हैं बल्कि ऐश्वर्य से पूर्ण तथा नित्य रास लीलाओं नरत राम हैं। तुलसी ने भी चित्रकूट को राम-सीता की विहारस्थली माना है :—

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।

× × ×

भूमि विलोकु राम पद अंकित वन विलोकु रघुवर विहार थलु।

रामचंद्रिका में वनवासी राम चित्रकूट में गायन वादनादि कृत्यों में मग्न रह कर राजकीय जीवन ही व्यतीत करते हैं। रामचंद्रिका में राज्यारूढ़ होने के पश्चात् राम के जो राज वैभव के मध्य पोषित होने वाले राजा के चित्र पाए जाते हैं वह संभवत: इसी प्रकार के रसिक साहित्य का प्रभाव हैं। मधुराचार्य के अनुसार रामचन्द्र ने सारे दुष्कर कार्य सीता के ही लिए किए थे।

---

१. राम भक्ति में रसिक संप्रदाय : डा० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० ११२-११३
२. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १७४

रामचंद्रिका में भी राम सीता के समक्ष स्वीकार करते हैं कि उन्होंने सीता को प्रसन्न करने के लिए ही जन्म धारण किया है :—

निर्गुण ते मैं सगुण भो, सुनु सुन्दरी तव हेत।
और कछु माँगो सुमुखि, रुचे जु तुम्हरे चेत।[१]

मधुराचार्य ने यह भी कहा है कि अवतारों में केवल श्री रामचन्द्र ही हैं जो शृंगार रस की पूर्ण मूर्ति हैं क्योंकि श्री कृष्ण तो राम के अंशावतार हैं। वस्तुतः सभी अन्य अवतार, अवतार मात्र हैं, श्री राम ही अवतारी हैं। इन्हीं अवतारी, अवतारमणि राम की चन्द्रिका का प्रकाश केशव ने 'रामचन्द्रिक' में किया है—

सोई परब्रह्म श्री राम हैं अवतारी अवतारमणि।[२]

मधुराचार्य ने दासी की परिभाषा देते हुए कहा है कि "रूप, शील, वय में जो सीता के समान हैं वे 'सखी' कहलाती हैं, जो न्यून हैं 'दासी' कहलाती हैं"।[३] महात्मा बाल अली जी ने भी 'नेह-प्रकाश' नामक ग्रन्थ में इसकी पुष्टि इस प्रकार की है—

तुल्य वेश गुण रूप सखि न्यून किंकरी जानि।
गति बल धन मुख सबनि को एक मैथिलि मानि।[४]

रसिक साहित्य की इस परम्परा के अनुकरण पर केशव ने रामचन्द्रिका में सीता की दासियों का वर्णन किया है परन्तु साथ ही भक्त कवि की मर्यादाओं से आबद्ध रहने के कारण उन्होंने सीता-सौन्दर्य वर्णन छोड़ दिया है। रामचन्द्रिका पर उसके पूर्ववर्ती रसिक राम साहित्य की स्पष्ट छाप है। इसके साथ ही केशव को जो राजकीय वातावरण इन्द्रजीत के दरबार में मिला वह भी इसके अनुकूल था। केशव ने स्वयं राज-जीवन व्यतीत किया था अतः उनका वर्णन उनके अनुभव तथा अध्ययन का सम्मिलित प्रतिफल है जबकि राम-भक्ति-साहित्य के कवियों का वर्णन उनकी कल्पना तथा अध्ययन का परिणाम है। फलस्वरूप केशव के ऐसे चित्र अधिक स्वाभाविक, सुन्दर तथा प्रभावशाली बन सके हैं।

तुलसी का राम साहित्य

तुलसी ने राम साहित्य के माध्यम से भारत को जो अमूल्य निधि भेंट की है वह है एक सम्पूर्ण जीवन की कल्पना। इस कार्य को उनके पूर्ववर्ती कवि कबीर, सूर, कालिदास, भवभूति आदि कोई भी पूर्णतया सम्पन्न न कर सके थे। वाल्मीकि ने इस कल्पना को प्रस्तुत किया था परन्तु तुलसी ने उसका परिष्कार किया। उन्होंने

१. रा० चं०, ३३।२२
२. वही, १।१७
३. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १७६
४. वही, पृ० २०२

अपने मनोनुकूल जो भाव अथवा विचार रुचिकर प्रतीत हुए उन्हीं को उन्होंने ग्रहण कर लिया है।

तुलसी साहित्य में कवित्व तथा भक्ति की धाराएँ समानान्तर चलती हैं अतः मानस एक भक्त कवि का काव्य है। इसकी रचना पौराणिक ग्रन्थों की संवाद शैली में हुई है। इसका सम्पूर्ण कथानक चार वक्ताओं तथा चार श्रोताओं से चतुर्दिक् अनुबन्धित है। कागभुशुण्डि ने गरुड़ के प्रति, शिव ने उमा के प्रति, याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज तथा तुलसी ने 'सकल सज्जन' को सम्बोधित करके 'मानस' की कथावस्तु का विकास किया है। ये चारों संवाद सम्पूर्ण मानस में साथ-साथ चलते हैं तथा यत्र तत्र प्रश्नोत्तर भी होते रहते हैं। इन संवादों से दो उद्देश्य पूरे होते हैं। प्रथम कथानक की एकरसता कम हो जाती है, द्वितीय जिन सामयिक शंकाओं का समाधान कर कवि अपने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन करना चाहता है उनका अवसर बिना किसी गत्यवरोध के मिल जाता है। इनसे श्रोता कथानक की विविध कड़ियों को भी सरलता से जोड़ लेता है तथा कथा का विकास भी अबाध गति से चलता रहता है। किसी भी सिद्धान्त का निरूपण कथा के माध्यम से जितना बोधगम्य हो सकता है उतना प्रत्यक्ष उपदेशों द्वारा नहीं अतः इन संवादों से राम-कथा के साथ ही आर्य धर्म का प्रतिपादन एवं कर्म और ज्ञान के समन्वय पर आश्रित भक्ति का निरूपण सहज हा हो जाता है।

रामचरित मानस इतिहास से अधिक भक्ति ग्रन्थ है। उसमें ऐतिहासिक घटनाओं को भी भक्ति के ही अणुवीक्षण यन्त्र से देखा गया है। तुलसी के समकालीन कवि रसखान ने मानस के प्रति कहा था 'हिन्दुवान को वेद सम यवनहि प्रगट कुरान'। सारा मानस भक्ति शास्त्र के सिद्धान्तों से परिपूर्ण है।

तुलसी के राम में करोड़ों विष्णुओं की शक्ति निहित है। 'विष्णु कोटि सम पालन करता' यह राम सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं, महाविष्णु हैं। उनका पंचतत्त्वों पर भी अधिकार है। पत्थर की शिला को नारी में परिवर्तित कर देना क्षिति तत्त्व पर जय है, शरसंधान करके सागर के हृदय को जला देना जल तत्त्व पर जय, अग्नि का सीता को धरोहर रूप में सुरक्षित रखना और रामभक्त हनुमान का प्रज्वलित अग्नि के मध्य रहकर भी लंका से सुरक्षित लौट आना अग्नि पर अधिकार, लंका दहन के अवसर पर राम द्वारा प्रेषित दूत की स्वयं आकर सहायता करना 'हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास' वायु तत्त्व पर स्वामित्व, एवं काकभुशुंडि को उदराकाश में तथा कौशल्या को अखिल ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण दृश्य दिखाकर आकाश तत्त्व पर विजय दिखाई है।[1] इस प्रकार तुलसी ने मानस में राम का प्रभुत्व सिद्ध किया है।

१. तुलसी दर्शन : बलदेव प्रसाद मिश्र

मानस में अनेक हेतुकथाओं के अतिरिक्त तुलसी ने असंख्य अन्तर्कथाओं का भी प्रयोग किया है, जैसे सीता जन्म की कथा, सम्पाति का दुस्साहस आदि । इस प्रकार विविध कथाओं तथा सिद्धान्तों के योग से मानस की रचना सप्त काण्डों में हुई है जिसका संक्षिप्त ववरण इस प्रकार है—

(१) बालकाण्ड—इस काण्ड के पूर्वार्द्ध से भी अधिक भाग में शिव चरित, हेतुकथाएँ, और रावण चरित आदि का वर्णन है। शेषभाग में रामकथा है जिसमें राम के जन्म से लेकर उनके विवाह तक का अंश वर्णित है।

(२) अयोध्याकाण्ड—इसमें राम के अभिषेक प्रसंग से लेकर भरत के चित्रकूट से लौटकर नन्दि ग्राम में नियमित रूप से निवास करने तक की कथा है।

(३) अरण्य काण्ड—इसमें जयन्त प्रसंग से लेकर राम के पंपासर पहुँचने तक का वृत्तान्त है।

(४) किष्किधाकाण्ड—राम सुग्रीव मैत्री से लेकर हनुमान के सागर तट तक पहुँचने की कथा इस काण्ड में समाप्त हो जाती है।

(५) सुन्दर काण्ड—हनुमान के लंका प्रवेश से लेकर राम के ससैन्य सिन्धु तक पहुँचने का कथानक है।

(६) लंका काण्ड—सेतु बन्ध से आरम्भ होकर, रावणादि राक्षसों का वध और राम का अवध की ओर प्रत्यागमन है।

(७) उत्तर काण्ड—इसके अर्द्धांश से कम भाग में राम के अभिषेक तथा राम राज्य का वर्णन है। उत्तर भाग में काकभुशुंडि संवाद की प्रस्तावना, भुशुंडि के आत्मचरित, कलियुग का वर्णन एवं भक्ति-निरूपण तथा अन्त मे उमा शम्भु संवाद के साथ ग्रन्थ की फल स्तुति है।

तुलसीदास को अपने इष्टदेव राम के चरित्र पर पत्नी त्याग का कलंक अभीष्ट नहीं था अतः उन्होंने इस प्रसंग को मानस में तो बिल्कुल ही छोड़ दिया है तथा गीतावली में नितान्त परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी को अपने भगवान् का परलोक-गमन वर्णन करना भी रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। अतः उन्होंने उसका एक अस्पष्ट संकेत देकर छोड़ दिया है।

तुलसीदास महान् प्रतिभाशाली और विद्वान् लेखक थे। वह बहुश्रुत भी थे और उनका अध्ययन भी विस्तृत तथा गम्भीर था। तुलसी ने कहीं उनका अविकल अनुवाद, कहीं भावानुवाद, कहीं अक्षरानुवाद और कहीं छायानुवाद किया है। महर्षि वाल्मीकि रामकाव्य के आदि प्रणेता माने जाते हैं। तुलसी पर उनका यथेष्ट ऋण है परन्तु फिर भी तुलसी ने स्वतन्त्र रूप से अनेक घटनाओं के क्रम तथा कथानक में परिवर्तन किया है यद्यपि मानस के काण्ड-विभाजन में वाल्मीकि ही का अनुकरण है।

वाल्मीकि ने रामायण का प्रणयन जिस उद्देश्य से किया था वह तुलसी से नितान्त भिन्न है। वाल्मीकि ने नारद से पूछा था कि उस समय का सर्वगुण सम्पन्न वीर नायक कौन है। उन्होंने राम के रूप में एक महान् पुरुष का आदर्श चरित्र चित्रित किया है। उनके राम में ब्रह्मत्व का कोई अंश नहीं है परन्तु तुलसी ने राम कथा की एक परम्परा का उल्लेख कर 'राम जनक के हेतु अनेका' पर भी प्रकाश डाला है।

वाल्मीकि के काव्य में सीता स्वयंवर दृश्य को अधिक विस्तार नहीं मिला है और न उसमें पुष्पवाटिका प्रसंग है। तुलसी ने स्वयंवर के पूर्व पुष्पवाटिका प्रसंग उपस्थित कर स्वयंवर का विस्तृत वर्णन किया है। 'मानस' में परशुराम स्वयंवर-भवन में ही आते हैं सम्भवतः इसलिए क्योंकि तुलसी अपने राम की शक्ति का प्रदर्शन वीर नरेशों के समक्ष सभा भवन में करना चाहते थे। वाल्मीकि रामायण में अहिल्या पवन भक्षण करती हुई अदृश्य हैं और राम लक्ष्मण उनका चरण स्पर्श करते हैं परन्तु 'मानस' के राम उसे अपने चरणों से स्पर्श करते हैं। रामायण में मंथरा स्वयं ही कुटिल और राजनीतिज्ञ है परन्तु 'मानस' में सरस्वती उसका मति-भ्रम कर देती है। वाल्मीकि के दशरथ राम के साथ पक्षपात करने की दृष्टि से भरत को मातामही के घर भेज देते हैं और राम से कहते हैं—"हम तुम्हें कल ही युवराज बना देना चाहते हैं जिससे यह कार्य भरत के लौटने से पूर्व सम्पन्न हो जाए। नहीं तो उसके यहाँ रहने से शायद कोई विघ्न हो जाए।"[1] परन्तु तुलसी ने दशरथ की इस दुर्बलता पर आवरण डाल दिया है। वह इस बात का संकेत मंथरा से करवाते हैं जिसकी बुद्धि पहले ही भ्रष्ट है अतएव जिसकी बात का कोई महत्त्व नहीं है। रामायण में काक रूपी जयन्त सीता के वक्षःस्थल में आघात करता है परन्तु तुलसी के जयन्त में इतना साहस नहीं कि वह जगज्जननी सीता के साथ ऐसा अनुचित व्यवहार कर सके। वह तो चरणों में ही चोंच मारकर भाग जाता है। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं जहाँ तुलसी ने अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर लिये हैं। वस्तुतः वाल्मीकि रामायण की राम कथा उस समय यथेष्ट रूप से प्रख्यात थी अतएव तुलसी ने उसके अनेक अंश या तो छोड़ दिये हैं अथवा संक्षिप्त कर दिए हैं तथा जहाँ धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक अथवा नैतिक भावनाएँ प्रगट करने का अवसर प्राप्त हो सका है उन घटनाओं तथा पात्रों को प्रधानता दी है।

तुलसी पर वाल्मीकि के अतिरिक्त रामकाव्य परम्परा के अन्य कवियों का प्रभाव भी पड़ा है। कालिदास ने रघुवंश में अपने को अयोग्य, असमर्थ और अज्ञ आदि कहा है। तुलसी ने उनसे भी अधिक अपनी दीनता व्यक्त की है। कालिदास ने रघु के सम्बन्ध में कहा है—

---

१. अयो. का. सर्ग श्लोक २४-५

वशीनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः

उसी प्रकार तुलसी ने भी राम के लिए कहा—

नहिं लावहिं परतिय मन दीठि।

'हनुमन्नाटक' की अनेक उक्तियाँ तुलसी ने अपनी रचनाओं में ग्रहण की हैं, जैसे धनुर्भंग के समय जनक का नैराश्यपूर्ण वक्तव्य, लक्ष्मण द्वारा प्रदर्शित युवकोचित आवेश, परशुराम संवाद, अंगद रावण संवाद और मन्दोदरी रावण संवाद आदि अनेक संवाद। 'हनुमन्नाटक' का रावण अंगद संवाद इस प्रकार है—

परदारापहरणे न श्रुता या दशानन
दृष्टा दूतपरित्राणे लाघास्ते कर्मशीलता ॥[1]

इसी का भाव 'मानस' की पंक्तियों में इस प्रकार मिलता है—

'कह कपि धरम सीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी॥
धरमसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी॥'

इसी प्रकार 'मानस' तथा 'गीतावली' में अनेक प्रसंग हैं जहाँ तुलसी ने 'हनुमन्नाटक' से भाव-ऋण लिया है।[2]

तुलसी ने अपने काव्यों में कतिपय दृश्य प्रसन्नराघव से भी लिए हैं। पुष्प-वाटिका में राम सीता का परस्परावलोकन, रंगभूमि में परशुराम का आगमन, प्रसन्नराघव के ही ढंग पर है। इस नाटक में स्वयंवर सभा में रावण और वाणासुर भी आते हैं जिनका संवाद अत्यन्त ओजपूर्ण है। तुलसी ने भी रावण और वाणासुर का वहाँ आना दिखाया है—

रावन बान महाभट हारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥

'मानस' के सुन्दर काण्ड में राक्षसियों से घिरी सीता का रावण के साथ जो वार्तालाप है वह 'प्रसन्नराघव' के ही अनुसार है। सीता राम से कहती हैं—

चन्द्र हास हर मम परितापं। रघुपति-विरह अनल संजातं॥

'मानस' में भी सीता कहती हैं—

सतिल निसित वहसि वर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।

---

१. ह० ना०, अष्टम अंक, श्लोक २२
२. तुलना करिये—

मानस सु० काण्ड ३२-७-६	—हनु० ना० अंक ६ : ४४	
अरण्य ३०-८, १०, ३१	—हनु० ना० अंक ५ : १६	
अयो० ११५-१, २, ६, ७	,,	३ : १५
गीतावली अरण्य काण्ड गीत १२	,,	४ : १३
वही, अयो० गीत २८	,,	३ : १६

इसके अतिरिक्त 'मानस' की कतिपय अन्य पंक्तियों की रचना भी तुलसी ने प्रसन्नराघव नाटक की छाया में की है।[1]

रामायण तथा अध्यात्म रामायण में लक्ष्मण रावण की फेंकी हुई शक्ति से मूर्च्छित होते हैं तथा भवभूति के महावीर चरित में मेघनाथ की। तुलसी के ग्रन्थों में भी लक्ष्मण मेघनाथ की शक्ति से मूर्च्छित होते हैं।.

मानस पर विमल सूरि के 'पउम चरिउ' का भी प्रभाव पड़ा है। दोनों कवियों ने ग्रन्थ रचना स्वांतः सुखाय की है और दोनों ने ही बुधजन से प्रार्थना कर काव्य शास्त्र के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है। विमल सूरि ने अपने काव्यारम्भ में नदी का रूपक प्रस्तुत किया है—वर्धमान के मुख रूपी पर्वत से निकली हुई यह क्रमागत रामकथा नदी रूप है जिसमें अक्षरों का समुदाय जल है, सुन्दर अलंकार एवं छंद मत्स्य समूह, दीर्घ समास वक्र प्रवाह, संस्कृत तथा प्राकृत अलंकार पुलिन हैं, देशी भाषा दोनों उज्ज्वल तट हैं, कवियों के दुष्कर एवं सघन शब्द शिला तल हैं, अर्थबहुलता तरंगें हैं, सर्ग तीर्थ हैं। यह रामकथा सरिता इस प्रकार शोभायमान है।[2]

तुलसीदास ने इसी प्रकार मानसरोवर के रूपक की व्यंजना की है। यह सांगरूपक अत्यन्त सुन्दर और साभिप्राय है।[3]

श्रीमद्भागवत यद्यपि कृष्ण कथा से सम्बन्धित है परन्तु फिर भी उसकी छाप तुलसी के मानस पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। दोनों ग्रन्थों में अवतार के पूर्व पृथ्वी का ब्रह्मा के निकट जाना, देवताओं का भगवान् की स्तुति करना और भगवान् का आकाशवाणी द्वारा उनको आश्वस्त करना और अवतार के पश्चात् देवताओं का उत्सव मनाना, बालक का अलौकिक रूप देखकर माता का स्तुति करना, नामकरण तथा विद्याध्ययन के प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है। इसके अतिरिक्त राम लक्ष्मण के जनकपुर प्रवेश तथा कृष्ण एवं बलराम के मथुरा प्रवेश, सीता स्वयंवर में राम को देखकर तथा रंगभूमि में कृष्ण को देखकर दर्शकों के दृष्टिकोण में पर्याप्त समानता है। भागवत के वर्षा एवं शरद् ऋतु वर्णन में दार्शनिकता की पुट है। उसी से प्रभावित होने के कारण सम्भवतया तुलसी के ऋतु वर्णन में भी नैतिकता की छाप है। दोनों में वर्णित कलियुग वर्णन में भी सादृश्य है, अन्तर केवल इतना है कि भागवत में भविष्य में होने वाले कलिकाल का वर्णन है तथा मानस में उस समय वर्तमान कलियुग का।

---

१ प्रसन्नराघव अंक १, पृ० ५ — मानस बा० का० १०१-४-५
,, ,, पृ० ७ — ,, ,, ७-११, १२
,, ,, ७, पृ० १४८ — ,, लंका काण्ड ११-२, ३

२. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : नामवर सिंह, पृ० १६६-७१

३. मानस बालकाण्ड, दोहा ३६-४३

योगवाशिष्ठ रामायण आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों की अक्षय निधि है। आख्यानों के सुन्दर आवरण में जटिल, गूढ़ और शुष्क दार्शनिक विचारों को कवि ने बड़े कौशल से समझाया है। तुलसी पर इन विचारों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि जगत् की असारता तथा अनित्यता का जो सन्देश तुलसी के ग्रन्थों, विशेष रूप से विनयपत्रिका में मिलता है वही इस रामायण में भी है। वशिष्ठ ने नारी को 'मोह विपिन का बसन्त', 'अवगुन मूल सूलप्रद' तथा 'दुख खानि' कहा है। तुलसी ने भी इसी प्रकार अनेक स्थानों पर नारि जाति के प्रति अपनी वितृष्णा व्यक्त की है।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत साम्प्रदायिक साहित्य की कोटि में आने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है अध्यात्म रामायण। तुलसीदास पर इस ग्रन्थ का बहुत गहरा प्रभाव था।

अध्यात्म रामायण में राम विष्णु के अवतार हैं तुलसी के राम पूर्ण परब्रह्म। अध्यात्म रामायण में अहिल्या शिला पर निराहार बैठी है और मानस में वह शिला ही बन गई है। अध्यात्म रामायण की कथा उमा-महेश्वर संवाद रूप में है और मानस में उमामहेश संवाद चार संवादों में से एक है। आर्त देवों की पुकार सुनकर भगवान् का अवतार ग्रहण करना, विश्वामित्र का राम लक्ष्मण को अपने साथ ले जाना, धनुर्भंग, लक्ष्मण का निषाद को प्रबोधन, शबरी मिलन, राम का प्रवर्षण-प्रवास, त्रिजटा का स्वप्न, हनुमान का ब्रह्मपाश में फँसना, सेतु निर्माण, रामेश्वर प्रतिष्ठा, रावण की विकट युक्तियों से कुम्भकर्ण का जागरण आदि अनगिनत घटनाएँ दोनों में किंचित् परिवर्तन के साथ हैं।[१]

तुलसी और अध्यात्म रामायणकार दोनों ने राम का परमात्मत्व, सगुण ब्रह्म का समर्थन, सीता को परमात्मा की परम शक्ति एवं आदि नारायण की योगमाया मान कर लक्ष्मी से तादात्म्य किया है। दोनों में लक्ष्मण राम के अंश, अनन्त और मधुर हैं। भरत विश्व के भरण-पोषण कर्ता, शत्रुघ्न शत्रुओं के हन्ता, बानर सगुणोपासक और देवांश से उत्पन्न हैं, माया त्रिगुणात्मक, सृष्टि की कारक, धारक और संहारक है। ब्रह्मादि देव सभी उसके वशवर्ती हैं। वह स्वयं राम के आधीन है और अकेली रह कर दुर्बल है। राम का बल पाकर वह विश्व का निर्माण करती है और राम के भ्रू-विलास पर नटी के समान नृत्य करती। भक्ति रूपी राजमहिषी के समक्ष वह केवल नर्तकी मात्र है।

इन दोनों कवियों की मान्यताओं में केवल इतना अन्तर है कि अध्यात्म रामायणकार के विपरीत तुलसी राम का विष्णु से तादात्म्य करके भी विष्णु से श्रेष्ठ और सीता का लक्ष्मी से तादात्म्य करके भी उनको श्रेष्ठ माना है।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए तुलसीदास और उनका युग : राजपति दीक्षित, पृ० ३२०-२१

तुलसी के राम काव्य सम्बन्धी अन्य ग्रंथ

रामलला नहछू —यह सोहर छंद में लिखा हुआ केवल बीस छंदों का काव्य है। इसकी अपरिपक्व शैली तथा लघु आकार को देखकर अनुमान होता है कि यह कवि की सबसे प्रारम्भिक रचना होगी। 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार इसकी रचना मिथिला में हुई थी। यह नहछू किस अवसर का है इस सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। कतिपय विद्वानों के अनुसार, जिसमें माताप्रसाद गुप्त का नाम उल्लेखनीय है, यह नहछू विवाह के अवसर का है। कुछ विद्वान् इसे यज्ञोपवीत के अवसर का मानते हैं। यज्ञोपवीत और विवाह दोनों अवसरों पर होने वाले नहछू की रीतियों में कोई विशेष भेद न होने से ही यह भ्रम उत्पन्न हो गया है। परन्तु इस नहछू के विषय में तुलसी ने स्पष्ट लिखा है कि यह अवधपुरी में हुआ था :—

कोटिन्ह बाजन बाजत दशरथ के गृह हो।

तथा

आज अवधपुर आनन्द नहछू राम कहौ।

इसके अतिरिक्त नहछू में एक प्रसंग यह भी है कि कौशल्या का किसी ज्येष्ठा ने जाकर उनको नहछू करवाने की आज्ञा दी :—

कौसिल्या की जेठी दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावह बैठि सिंहासन हो।[1]

इससे इतना तो असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि यह नहछू अवधपुरी में सम्पन्न हुआ था अन्यथा विवाह-संस्कार के समय कौशल्या वहाँ उपस्थित नहीं हो सकती थीं। माताप्रसाद गुप्त ने इस 'जेठि' शब्द पर आपत्ति की है परन्तु इस शब्द के प्रयोग के दो कारण हो सकते हैं :—

(१) ज्येष्ठा की अनुपस्थिति में किसी भी परिवार की ज्येष्ठ स्त्री ने इस परामर्शदात्री का उत्तरदायित्व वहन किया हो,

(२) कतिपय राम-कथाओं में दशरथ की तीन से अधिक पत्नियों का उल्लेख है। सम्भव है ज्येष्ठा की भावना तुलसी ने वहीं से ली हो।

तुलसी ने इस ग्रंथ में 'वर' और 'दूलह' शब्दों का प्रयोग किया है जिससे कतिपय विद्वानों को भ्रम हो गया है कि राम कहीं 'दूल्हा' बने हुए तो नहीं हैं परन्तु इसमें प्रथम तो उनकी वधू का कोई उल्लेख नहीं है; दूसरे यज्ञोपवीत अवसर पर भी इन शब्दों का प्रयोग होता है, अतः यह भ्रम अधिक युक्तियुक्त नहीं है।

यथार्थ में इस पूरे ग्रन्थ में राम कौशल्या तो निमित्त मात्र हैं, कवि का मुख्य उद्देश्य लोकाचार तथा नीति का वर्णन करना है। यह ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य न होकर व्यावहारिक सांस्कृतिक गीति काव्य है। तुलसीदास यद्यपि लौकिक व्यवहार

१. नहछू, छंद ६

में लोकाचार के पक्षपाती थे परन्तु ऐसे अवसरों पर प्रायः अत्यन्त अश्लील भद्दे नहछू गाये जाते देख कर सम्भवतः तुलसी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से इसकी रचना की। यहाँ राम एक साधारण दूल्हा के प्रतीक और कौशल्या किसी भी साधारण वर माता की प्रतीक हैं। इन गीतों में तुलसी की समाज सुधार की भावना कितनी भी बलवती रही हो परन्तु यह काव्य उनकी प्रतिभा का यथार्थ परिचायक नहीं है।

तुलसी ने मानस में मर्यादाशील राम का चित्रण किया है, परन्तु दूसरी ओर नहछू में अश्लील गालियाँ सुनकर मुस्कराते हुए राम का चित्र अंकित है। यह रचना या तो तुलसी के गार्हस्थ्य काल की है जहाँ रहकर उनमें यह लोलुपता तथा काम वासनाएँ सम्भव हुई होंगी अथवा उस समय की है जब तुलसी गोसाईं बनकर भोग-विलास में लिप्त हो रहे थे। अधिक सम्भावना यही है कि यह रचना मानस के बाद की है क्योंकि तुलसी की बाल्यावस्था जिन परिस्थितियों में व्यतीत हुई थी वहां वह भिक्षा माँग कर चार चने भी कठिनता से प्राप्त कर पाते थे। उनकी तत्कालीन परिस्थितियाँ मानस के ही अधिक उपयुक्त थीं परन्तु बाद में मानस की सफलता से उन्मादित होकर सम्भवतः वह अपने लक्ष्य से भटक गये। उनकी कवितावली और गीतावली में भी इस ओर उनकी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। लोक गीत के ढाँचे में ढली यह अवधी भाषा की सरस रचना है। इसके चित्र तथा भाव स्पष्ट और मनोहारी हैं।

बरवै रामायण—बरवै रामायण समय-समय पर छंदों का संकलन है। कहा जाता है कि किसी सरदार की स्त्री द्वारा रचित बरवै की किसी पंक्ति पर मुग्ध होकर रहीम ने इस छंद में बरवै नायिका भेद की रचना कर तुलसी के पास भेजी। बाबा वेणीमाधव दास ने 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है :—

कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर के पास।
लखि तेह सुन्द छन्द में रचना किये प्रकास।[१]

इस ग्रन्थ की रचना कविवर रहीम ही की प्रेरणा से हुई। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित एकमत नहीं है परन्तु इतना असन्दिग्ध है कि रहीम के अतिरिक्त बरवै का इतना सुन्दर प्रयोग अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। क्रमबद्ध रामचरित वर्णन करने वाली रचनाओं में छोटी होने पर भी बरवै रामायण तुलसी की महत्त्व-पूर्ण रचना है। सात काण्डों के ६९ छंदों में लिखा गया यह ग्रन्थ तुलसी की अनूठी प्रतिभा का परिचायक है। बाल काण्ड और अयोध्या काण्ड के छंद रूप, चरित्र-चित्रण तथा भावचित्रण की सूक्ष्म विशेषता लिये हुए हैं। सीता के सौन्दर्य, राम के चरित्र तथा शील स्वभाव के वर्णन, सीता के विरह वर्णन, सेना वर्णन आदि से सम्बन्धित छंदों में ललित अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग मिलता है। उत्तर काण्ड के २७

---

१. पृ० ३१, छंद ९३

बरवै छंदों में वैराग्य, दैन्य, शान्त आदि भावों से पूर्ण भक्ति का वर्णन है। इसमें जहाँ एक ओर

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

जैसी शृंगारपूर्ण उक्तियाँ हैं, वहाँ दूसरी ओर मृत्यु का आतंक भी छा रहा है :—

तुलसी राम नाम सम मित्र न आन।
जा पहुँचाव रामपुर तानु अवसान॥

इस ग्रन्थ में तुलसी ने राम का जो चित्र अंकित किया है उसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें कहीं शंकर के पिनाक को तोड़ने वाले वीर राम का चित्र नहीं है। वह बलशाली और ब्रह्मचारी राम न होकर सुकुमार राम है। वह राजनीतिज्ञ के दाव-पेंचों से काम लेकर श्लेषालंकार में लक्ष्मण को शूर्पणखा के नाक-कान काटने का आदेश देते हैं :—

वेद नाम कहि, अंगुरिन खण्डि प्रकास।
पठयौ सूपनखाहि लषण के पास॥[1]

राम की सूक्ष्म बुद्धि और ज्ञान का यह सुन्दर उदाहरण है। विरहाकुल सीता का वर्णन स्पष्ट ही रहीम के बरवै नायिका भेद से प्रभावित है।

बिरह आजि उर ऊपर जब अधिकार।
ए अंखियाँ छोड़ बैरिनी देहि बुझाइ॥[2]
अब जीवन कै है कपि आस न कोई।
कनगुरिया कै मुन्दरी कंकन होई॥[3]

बरवै रामायण का मुख्य विषय राम नाम की महिमा का वर्णन है। उत्तर काण्ड का अधिकांश भाग राम महिमा से ही परिपूर्ण है। तुलसी के जो विचार 'मानस' के बाल काण्ड में हैं वही यहाँ भी हैं :—

राम नाम की महिमा जान महेस।
देत परम पद कासी कार उपदेस॥[4]

तुलसी के ये बरवै स्वाभाविक और कला की दृष्टि से अनुपम हैं। उनमें कला और स्वाभाविकता का मनोरम संयोग है। इसके सात काण्डों में कथा विभाजन इस प्रकार है :—

१. बरवै रामायण, छंद २१
२. वही, ३६
३ वही, ३८
४. वही, ५३

बालकाण्ड—इसके १९ छंदों में जनक के अन्तःपुर की स्त्रियों द्वारा राम जानकी छवि वर्णन, धनुर्भंग तथा विवाह की घटनाओं का आभास मात्र दिया गया है।

अयोध्या काण्ड—इसमें केवल ८ छंद हैं जिनमें कैकेयी कोप, राम वनवास, राम वनगमन, ग्रामवासियों की उक्तियाँ, गंगा माहात्म्य, गंगावतरण, वाल्मीकि मिलन आदि का वर्णन है।

अरण्य काण्ड—इसमें केवल ६ छंद हैं और शूर्पणखा प्रसंग, हेम-हिरण, सीता-हरण तथा राम का विरह सन्ताप आदि प्रसंग वर्णित हैं।

किष्किधा काण्ड—इसमें केवल २ ही छंद हैं जिनमें राम-सुग्रीव मिलन का उल्लेख है।

सुन्दर काण्ड—इस काण्ड में सीता विरह निवेदन, और हनुमान द्वारा राम के प्रति कथन है।

लंका काण्ड—इसमें केवल एक छंद है जिसमें राम सेना का वर्णन है।

उत्तर काण्ड—इसके २७ छंदों में राम-नाम महिमा वर्णन, चित्रकूट महिमा तथा अन्य सिद्धान्तों का निरूपण है।

इसके ६९ छंदों में कथा विस्तार अत्यन्त अनियमित है। यद्यपि यह राम काव्य है परन्तु राम-कथा के इसमें केवल संकेत ही मिलते हैं, उसका विस्तार नहीं। बाल काण्ड में सीता राम के सौन्दर्य वर्णन के साथ जनकपुर के स्वयंवर का केवल संकेत है। राम जन्म का इसमें कोई उल्लेख नहीं है। उत्तर काण्ड में कोई कथा नहीं है केवल ज्ञान और भक्ति का निरूपण है। भरत का प्रसंग काव्य में पूर्णतया उपेक्षित है।

यह काव्य भाव की अपेक्षा कला-प्रधान है। छंद कला की दृष्टि से बाल काण्ड तथा उत्तर काण्ड के बरवै अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। इनमें तुलसी ने रस तथा अलंकार निरूपण का प्रथम प्रयास किया है। बरवै रामायण के आरम्भिक छंदों की रचना अलंकार की दृष्टि से तथा उत्तर काण्ड के छंदों की रचना शान्त रस की अभिव्यक्ति के लिये हुई प्रतीत होती है। यदि इसके उत्तर काण्ड में कवि ने शान्त रस का निरूपण न किया होता तो इसकी गणना भक्ति काव्यों की अपेक्षा रीति साहित्य के अन्तर्गत सुगमतापूर्वक की जा सकती थी तथापि अवधी भाषा के बरवै छंदों में लिखी तुलसी की यह रचना काव्य के कलात्मक दृष्टिकोण से सराहनीय है।

जानकी मंगल—२१६ छंदों में लिखी गई तुलसी की इस कृति में २४ हरिगीतिका तथा शेष अरुण छंद हैं। इसमें राम सीता के विवाह का वर्णन है। इसमें

र्वणित घटनाओं पर वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण का प्रभाव पड़ा है एवं काव्य शैली पर मानस का। इसमें धार्मिक तत्त्व की प्रधानता न होने के कारण भावनाओं का क्रम अपेक्षाकृत गम्भीर है। राम सीता के मिलन में प्रेम का जो उत्कृष्ट विकास दिखाई देता है वह शिव और पार्वती के मिलन में भी नहीं है। तुलसी की मान्यताओं के अनुसार राम सीता दोनों समान वर्ण तथा वय के थे अतः उनकी प्रेम भावना का चित्रण तुलसी ने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक किया है। इसमें राम सीता का परस्पर दर्शन 'मानस' के विपरीत पुष्पवाटिका में न होकर यज्ञशाला में हुआ है—

राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि भयन सुधारत सायक॥[1]

× × ×

राम सीय वय, समौ, सुभाय सुहावन।
नृप जोवन छवि पुरइ चहत अनु आवन॥[2]

धनुष यज्ञ में जो राजा उपस्थित हुए हैं तुलसी ने उनके लिये पुरन्दर की उपमा दी है। 'मनहुं पुरन्दर निकर उतरि अवनि चले' इस काव्य में तुलसी का उपमा कौशल विशेष रूप से द्रष्टव्य है। विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम लक्ष्मण को देखकर वह कहते हैं—

कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिये।

तुलसी ने 'बरवै रामायण' के सदृश इसमें भी राम का मनोहर रूप ही आँका है, वीर रूप नहीं। उनके रूप को देख कर स्त्री-पुरुष सभी के नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है। परन्तु उनकी बलिष्ठ भुजाओं तथा चौड़े वक्ष को देखकर किस का हृदय गर्व से नहीं भर उठता। यही तुलसी की दुर्बलता है। ऋषि विश्वामित्र जब भ्राताओं सहित राम को देखते हैं तो—

रामहिं भाइन्ह सहित जबहि मुनि जोहेउ।
नैन नीर तन पुलक रूप मन मोहेउ॥[3]

और जनकपुरी में जब प्रजाजन राम को देखते हैं उस समय भी उनके

राम लषन छबि देख मगन भए पुरजन।
उर आनन्द जल लोचन, प्रेम पुलक तन॥[4]

लोचन जलपूर्ण हो आते हैं। बाल्मीकि रामायण के वीर रामरूप का यहाँ सर्वथा अभाव है। तुलसी ने वीरत्व तथा सौन्दर्य का सामंजस्य करने का प्रयत्न अवश्य किया है परन्तु उनका यह प्रयास वाल्मीकि के सदृश सफल नहीं हुआ है।

१. १।६४
२. २।६६
३. जानकी मंगल, छन्द २०
४. वही, ६१

सुचि सुजान नृप कहहि, हमहि अस सूझइ।
तेज प्रताप रूप जहं तहं बल बूझइ॥[1]

दुष्ट व्यक्ति स्त्री हो अथवा पुरुष, उसके वध में कोई हानि नहीं। अतः 'जानकी मंगल' के राम ताड़का का वध कर देते हैं। 'वधी ताड़िका, राम जानि सब लायक' उन्हें इसके लिए विश्वामित्र का परामर्श नहीं लेना पड़ता।

'जानकी मंगल' के अनुसार जब धनुष टूट जाती है तो अवधपुरी में इस शुभ समाचार को जनक के दूत देने नहीं जाते बल्कि कुलगुरु शतानन्द स्वयं जाते हैं। परशुराम राम को विवाह के अनन्तर मार्ग में 'पंथ मिले भृगुराज हाथ फरसा लिये' मिलते हैं, 'मानस' के समान सभा भवन में नहीं। तुलसी की श्रृंगारिक भावनाएँ इस ग्रन्थ में भी लक्षित होती हैं। उस समय प्रचलित अनेक निकृष्ट रीतियों का वर्णन तुलसी ने इस काव्य में किया है जैसे—

जुआ खेलावत कौतुम कीन्ह सयानिहू।
जीती हारि मिस देंहि गारि दुहुँ रानिहूँ॥[2]

इसी प्रकार तुलसी ने इसमें अनेक नेग भी दिलवाये हैं। राम विवाह के माध्यम से इसमें तुलसी ने अनेक वैवाहिक रीतियों, कुरीतियों का वर्णन किया है।

संक्षेप में यह अवधी भाषा में लिखा गया वर्णनात्मक शैली का काव्य है। इसकी कथा 'मानस' से भिन्न परन्तु वाल्मीकि रामायण के समान है। इसमें पुष्पवाटिका वर्णन, जनकपुर वर्णन, लक्ष्मण क्रोध आदि प्रसंगों का अभाव है परन्तु परम्परागत काव्यों के अनुकरण पर आरम्भ में मंगलाचरण तथा कथान्त में मंगल कामना आदि नियमित रूप से वर्णित है।

रामाज्ञा प्रश्न—रामाज्ञा प्रश्न ज्योतिष ग्रन्थ है तथा इसमें फलाफल का विचार किया गया है। शकुन विचारे जाने के कारण इसका दूसरा नाम 'रामशकुनावली' अथवा 'ध्रुव प्रश्नावली' भी है। कहा जाता है कि गंगाराम नामक किसी ज्योतिषी को काशी नरेश के पुत्र का कुशल समाचार बताने का उत्तरदायित्व मिला था। इसी चिन्ता से वह खिन्नवदन हो रहे थे तभी तुलसी ने उनकी चिन्ता दूर करने के लिये ६ घण्टों में २४३ दोहों की इस पुस्तिका की रचना कर डाली। इस किंवदन्ती में स्पष्ट ही अतिशयोक्ति है परन्तु इतना अवश्य सम्भव है कि उक्त घटना ने तुलसी को प्रस्तुत पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी हो।

ग्रन्थ रचना का प्रमुख उद्देश्य फलाफल ज्ञान होने के कारण सम्पूर्ण रचना राम कथा की एक सूची-सी बन गई है। अतएव इसमें शुद्ध साहित्यिक गुणों का

---

१. जानकी मंगल छंद, ६६
२. वही, १६८

अभाव है। इसका सम्पूर्ण सातवाँ सर्ग राम विषयक भक्ति, राम-नाम महिमा जैसे विषयों से परिपूर्ण है। इसके दोहों में संकेतात्मक रूप से विभिन्न काण्डों की रामकथा कही गई है। प्रथम सर्ग में बालकाण्ड, द्वितीय में अयोध्या और अरण्य काण्ड, तृतीय में अरण्य और किष्किंधा, चतुर्थ में फिर बालकाण्ड की कथा, पंचम में सुन्दर और लंका काण्ड तथा छठे में उत्तर काण्ड की घटनाएँ हैं। सप्तम में स्फुट प्रसंगों का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में बालकाण्ड की घटनाओं की पुनरुक्ति की गई है, सम्भवतः जैसा कि श्री रामकुमार वर्मा ने कहा है इसलिये कि ग्रन्थ के मध्य में भी मंगलमय प्रसंग आ सकें।[1]

इसकी कथा पर मानस की अपेक्षा वाल्मीकि रामायण का प्रभाव अधिक है। इसमें कवित्वपूर्ण दोहे अधिक नहीं हैं बल्कि घटनाओं के गूढ संकेत हैं। मानस में राम की जटायु से भेंट रावण-गीध-युद्ध के पश्चात् होती है परन्तु इसमें दण्डक वन में रहते हुए राम की जटायु से भेंट होती है और दोनों में परिचय हो जाता है। इसीलिये जब जटायु रावण को सीता का हरण कर ले जाते हुए देखता है तो उससे युद्ध करता है। यही अधिक युक्ति-संगत भी प्रतीत होता है। सीता-हरण होने के पश्चात् आहत गीध सीता का पता बताता है। तृतीय सप्तक में तुलसी ने गीध-रावण-युद्ध का वर्णन किया है। यह गीध पक्षी जाति का न होकर गीध नामक जंगली जाति का व्यक्ति था। राम ने स्वयं उसका दाह-संस्कार किया है। षष्ठ सर्ग में राम के राज्याभिषेक के पश्चात् उनके न्याय की कथाएँ तथा सीता निर्वासन एवं लवकुश-जन्मादि प्रसंगों का उल्लेख भी वाल्मीकि रामायण के आधार पर है, क्योंकि मानस में तुलसी ने इनका संकेत नहीं दिया है।

तुलसी का विश्वास था कि विभीषण उनके समय तक लंका में राज्य कर रहा था इसलिये वह कहते हैं—

अविचल राज विभीषण नहि दीन्ह राम रघुराज।
अजहुं विराजत लंकपुर तुलसी सहित समाज॥

मानस को छोड़कर कवि ने प्रायः सभी राम-काव्य-कृतियों में राम-परशुराम-भेंट मार्ग में ही कराई है। इस ग्रन्थ में भी परशुराम राम को मार्ग में ही मिलते हैं।

कवि जन्मपरक वर्ण-व्यवस्था को मानता है अतः उसने धूर्त तथा मूर्ख ब्राह्मण की भी प्रशंसा की है। प्रत्येक शुभ कार्य में लौकिक प्रणाली को महत्त्व दिया है। तुलसी ने अननुभूत शक्तियों के आधार पर भी अनेक बातों पर जोर दिया है।

इस काव्य की रचना दोहा छंद में हुई है। इसमें सात सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक तथा प्रत्येक सप्तक के सात दोहे हैं। इन दोहों में उत्कृष्ट काव्यतत्त्व

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३८१

तथा प्रबन्धात्मकता का अभाव है। इसकी रचना मुख्य रूप से अवधी भाषा में हुई है यद्यपि उसमें ब्रजभाषा का भी पर्याप्त मिश्रण है। तुलसी का लक्ष्य इस काव्य में काव्य के कला पक्ष की अपेक्षा घटना-वर्णन की ओर अधिक है, अतः यह घटना-प्रधान काव्य कहा जा सकता है।

कवितावली—विभिन्न काल तथा स्थानों पर लिखे गये तुलसी के कवित्त एवं सवैयों का काण्ड क्रमानुसार विभाजन करके जो ग्रन्थ तैयार हुआ है, उसका नाम है कवितावली। इस काव्य में क्रमबद्धता तथा प्रबन्धात्मकता का नितान्त अभाव है। इसके बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड की शैली ललित, मधुर एवं साहित्यिक है परन्तु इसके विपरीत सुन्दर तथा लंका काण्ड की शैली ओज एवं प्रसाद गुण से पूर्ण है। उत्तर काण्ड सरल तथा शान्त भक्ति के भावों से ओतप्रोत एवं कथानक से स्वतन्त्र छंदों के रूप में है। इस काण्ड के अधिकांश पदों में विनयपत्रिका के साथ सादृश्य है।

उत्तर काण्ड में कवि ने अनेक स्थानों पर राम कथा के मूल कथानक के असम्बद्ध प्रसंगों का वर्णन भी किया है, जैसे प्रयाग, अन्नपूर्णा, सीतावट, चित्रकूट आदि के वर्णन। इसमें काशी की महामारी, रुद्रबीसी, मीन की सनीचरी तथा अन्तिम महाप्रयाण के भी विवरण हैं जिनकी तिथियाँ क्रमशः सं० १६७३ तथा १६८७ हैं। इनसे स्पष्ट हो जाता है कि कवितावली में कम-से-कम १०-१२ वर्षों की अवधि में रचित कवित्त अवश्य संकलित हैं।

इसका उत्तरकाण्ड पूर्ण पुस्तक के अर्धांश से भी अधिक विस्तृत है। अरण्य तथा किष्किंधा काण्ड में केवल एक-एक छंद है। इसकी कथा 'मानस' के समान राम के जन्म से प्रारम्भ न होकर उनकी बाल-क्रीड़ाओं से आरम्भ होती है। राम के बाल रूप का इसमें सुन्दर झाँकियाँ हैं। बालक राम, धनुष भंग, वनवास, लंका दहन और युद्ध आदि के दृश्य अत्यन्त मनोरम हैं। 'मानस' के विपरीत राम की परशुराम से भेंट इसमें भी जनकपुरी से लौटते हुए मार्ग में होती है। कैकेयी मंथरा संवाद अथवा राम भरत मिलन का इसमें कोई उल्लेख नहीं है।

राम वनवास काल में अकर्मण्य होकर लक्ष्मण और सीता की सेवाओं पर निर्भर होकर नहीं बैठे रहते बल्कि आत्म-निर्भर होकर स्वयं भी मृगयारत रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें लंका-दहन का वर्णन अत्यन्त सजीव है तथा उसमें हनुमान के पौरुष का वर्णन तुलसी ने विशेष तन्मयता से किया है। ओज गुण से पूर्ण यह युद्ध दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली है। 'कवितावली' के उत्तर काण्ड का राम की आनुषंगिक कथा से प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि इसमें राम की गुण स्तुतियाँ एवं कवि के आत्म-परिचय के प्रसंगों का बाहुल्य है। इसमें कलियुग की दशा का वर्णन भी बड़ा मार्मिक है। अकाल के समय उठने वाला जनता का त्राहि-त्राहि का

स्वर तथा तुलसी की बाल्यावस्था की दीन दशा की आर्त पुकार दोनों ही इसमें उच्च स्वर से गूँज रहे हैं।

'कवितावली' की रचना में तुलसी के चार उद्देश्य प्रतीत होते हैं—

(१) राम के जन्मोत्सव एवं बाल-लीलाओं का वर्णन।
(२) सीता और राम के प्रेम तथा विरह का वर्णन।
(३) हनुमान के वीर रूप का चित्रण, तथा
(४) कलिकाल एवं आत्मचरित का वर्णन करना।

तुलसी के बाल-लीला के पदों पर उनके समकालीन कवि सूरदास की स्पष्ट छाप है। सूर-पदावली के अनुकरण पर ही गीति काव्य के रूप में इन पदों की रचना हुई है। तुलसी के भावों तथा विचारों की पृष्ठभूमि में सूर का स्वर सहज ही सुनाई पड़ जाता है जैसे—

कबहुँ ससि माँगत आरि करैं, कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहुँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहुँ रिसिआइ कहै हठि के, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में विहरैं।[1]

राम वधू सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वन की ओर जा रहे हैं, ग्राम-वासियों की दृष्टि उनके कोमल गातों पर पड़ती है। उनके माता-पिता की कठोरता की कल्पना कर कोमल-हृदय ग्रामवासी सिहर उठते हैं तथा उनकी सुकुमारता देखकर प्रेम से विह्वल हो जाते हैं। तुलसी ने ग्रामवधुओं की कोमल भावनाओं का चित्र अत्यन्त कुशलता से अंकित किया है—

वनिता बनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु री सखि! मोहि सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलि हैं? सकुचात मही पदपंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्राम वधू विथकीं, दुलकी तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥[2]

राम-सीता-लक्ष्मण की कोमलता देख उनके नेत्र भर आते हैं। वह परस्पर कहती हैं कि यह रूप तो आँखों में रखने योग्य है, बनवास दिये जाने योग्य नहीं। न जाने स्त्री का वशीभूत वह राजा किस पत्थर हृदय का बना है जिसने ऐसे सुकुमार बच्चों को कठोर वन में भेज दिया है। वन में भी राम-लक्ष्मण के शूरवीर रूप की ओर किसी की दृष्टि नहीं जाती। रावण का वध करने वाले राम का यह रूप सूर के कृष्ण के सदृश अधिक है। यह राम-सीता अबोध तथा कोमल बालक हैं जिन्हें

१. कवितावली, बाल काण्ड, छंद ४
२. वही, अयोध्या काण्ड, छंद १८

देखकर दर्शकों के नेत्र अश्रु मोचन करने लगते हैं। सम्भवतया इसीलिये तुलसी ने ग्राम पुरुषों की अपेक्षा ग्राम स्त्रियों के भावों का चित्रण किया है।

तुलसीदास प्रधान रूप से मर्यादावादी कवि हैं अतः उनके काव्य में हास्य-विनोद की मात्रा बहुत अल्प है। कतिपय विशेष स्थलों पर ही हमें उनके हास्य रस के प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं। कवितावली में अन्य काव्यों की अपेक्षा तुलसी अधिक हास्यप्रिय हो उठे हैं। मानस के जिस मर्यादावाद से वह वहाँ आबद्ध थे यहाँ उसका अतिक्रमण हो गया है—

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारो महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनि भै मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद कंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे।[1]

तुलसी में शृंगारिक प्रवृत्तियाँ होते हुए भी वह अपनी भावनाओं में उतने अमर्यादित कभी नहीं हुए जितने 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्नराघव' आदि ग्रन्थों के कवि। कवितावली में तुलसी की प्रेम भावना सर्वत्र मर्यादित तथा परिष्कृत है। सीता राम की रूप माधुरी से विमोहित होते हुए भी उपस्थित जन-समुदाय का सदैव विचार रखती हैं—

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर……
कर टेकि रहीं पल टारति नाहीं॥[2]

तुलसी ने इस ग्रन्थ में कलियुग की घोर निन्दा की है। आधी रचना में केवल कलिकाल के प्रति उनकी आक्रोश भावना मिलती है। उन्होंने कलियुग रूपी तत्कालीन मुगल नरेश को यथाशक्ति बुरा-भला कहा है। मुगलशासक को तिरस्कृत करते हुए वह कहते हैं—

संकर सहर सर नर नारि वारिचर……
रामहू की बिगरो तुही सुधारि लई है।

काव्य के आरम्भ में तुलसी की प्रार्थना सार्वजनिक है परन्तु शनैः शनैः बाहुपीड़ा तथा अन्य कष्टों के कारण वह व्यक्तिगत होती गई है। उनकी वेदना जितनी ही अधिक व्यक्तिगत हुई है उतनी ही अधिक मार्मिक है।

कवितावली में तुलसी ने राम के ऐश्वर्य तथा शक्ति को प्रधान स्थान दिया है। ऐश्वर्य तथा शक्ति का चित्रण कोमल पदावली में सम्भव न होने के कारण इसके चित्रण के लिये कवित्त, छप्पय, झूलना आदि ओज गुण व्यंजक छंदों को चुना है। गीतावली में तुलसी ने राम के कोमल जीवन की अभिव्यक्ति की है परन्तु

---

१. कवितावली, अयोध्या काण्ड, छंद २८
२. वही, बाल काण्ड, छंद १६

राम के जिस पुरुष रूप को उन्होंने 'गीतावली' में छोड़ दिया है उसी की 'कवितावली' में विस्तृत व्यंजना की है। 'कवितावली' के राम वीरत्व तथा शौर्य आदि गुणों से परिपूर्ण हैं इसीलिये इसमें वीर रस की व्यंजना सबसे अधिक हुई है। रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रसों का चित्रण वीर रस के पोषक रसों के रूप में हुआ है। राम की शक्ति के साथ ही कवि ने उनके ऐश्वर्य रूप का विस्मरण भी नहीं किया है अतएव वीर रस के साथ ही 'कवितावली' में शृंगार रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। करुण तथा हास्य रसों का इसमें प्रायः अभाव ही है, केवल दो-एक स्थलों पर हास्य रस के उदाहरण मिल जाते हैं। शान्त रस के उदाहरण 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड में मिलते हैं जहाँ कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा अपने इष्टदेव के समक्ष प्रस्तुत करता है। देवताओं की स्तुतियों में इस रस का निरूपण विशेष रूप से हुआ है।

विभिन्न काल में लिखे गये छंदों का संकलन होने के कारण 'कवितावली' में तुलसी की विविध शैलियों के दर्शन होते हैं। बालकाण्ड में उनकी भाषा सुबोध तथा स्वाभाविक है एवं उसमें भाषा का सौन्दर्य निरन्तर लक्षित होता है। ऐसे स्थलों की भाषा अनुप्रास आदि शब्दालंकारों से युक्त परन्तु सरल होती है। उनमें भाषा-सौन्दर्य रहता है परन्तु अर्थ-गाम्भीर्य नहीं। जैसे—

> बोले बन्दी विरद, बजाइ बर बाजनेऊ,
> बाजे बाजे वीर बाहु धुनत समाज के।[1]

काव्य के उत्तरार्द्ध में कवि की शैली प्रौढ़ हो गयी है तथा उसमें शब्द-सौन्दर्य के स्थान पर अर्थ-गाम्भीर्य का प्राधान्य रहने लगा है, जैसे—

> राखे रीति आपनी जो होइ सोइ कीजै बलि,
> तुलसी निहारौ घर जायउ है घर को।[2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'कवितावली' तुलसी के उन गीतों का संग्रह है जिसका प्रत्येक पद मुक्तक होते हुए भी उसमें कथानक का सूत्र अलक्ष्य रूप से वर्तमान रहता है। उत्तर काण्ड के अतिरिक्त इसके शेष छः काण्डों के पदों की रचना शुद्ध काव्य की दृष्टि से हुई है परन्तु उत्तर काण्ड में कवि मूल विषय से हट कर कथानक से असम्बद्ध स्थलों का वर्णन करने लगता है। ये छंद यद्यपि कवि के व्यक्तिगत जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं परन्तु इनसे मूल कथानक के प्रवाह में बाधा पड़ती है। वीररस के चित्रण की दृष्टि से 'कवितावली' तुलसी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है।

गीतावली—'गीतावली' की रचना सूर पदावली के अनुकरण पर मुक्तक पदों के रूप में हुई है अतः उसमें कथा-क्रम होते हुए भी प्रबन्धात्मकता का अभाव है। 'गीतावली' नीतिकाव्य होने के कारण उसमें तुलसी ने माधुर्य तथा कोमल भावनाओं

---

१. कवितावली, बालकाण्ड, छंद ८

२. वही, उत्तर काण्ड, छंद १२२

को ही अधिक प्रश्रय दिया है। राम के जीवन में जितने भी कोमल प्रसंग हैं उन सब ही को इसमें पर्याप्त विस्तार मिला है, तथा उनके जीवन के कठोर प्रसंग जिनका वर्णन तुलसी ने 'कवितावली' में किया है यहाँ प्रायः उपेक्षित हैं।

'गीतावली' के बालकाण्ड में राम के शैशव काल के अत्यन्त सुन्दर चित्र हैं। तुलसी ने राम के बालरूप का वर्णन अपने ग्रन्थों में अति संक्षेप में किया है परन्तु इस काव्य के ४४ पदों में शिशु राम का विस्तृत वर्णन है। तुलसी ने राम का रूप वर्णन बालकाण्ड में दो स्थानों पर किया है—शिशु राम तथा जनकपुर में युवा राम का। जनकपुर प्रसंग भी गीतावली में पूर्ण विस्तार से वर्णित है। जनकपुर की वनिताओं के माध्यम से सूर ने इस प्रसंग में भी राम के सौन्दर्य का वर्णन किया परन्तु दोनों ही प्रकरणों में तुलसी के वर्णन पर सूरदास की पदावली का गहरा प्रभाव पड़ा है। गीतावली के बालकाण्ड के ऐसे अनेक पद हैं जिनका साम्य सूरसागर के पदों से है जैसे—

गीतावली—पालने रघुपति झुलावैं।
सूरसागर—यशोदा हरि पालने झुलावैं।
गीतावली—आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।
सूरसागर—आँगन खेलत घुटुरुवनि धाए।
गीतावली—खेलन चलिये आनन्द कन्द।
सूरसागर—खेलन चलिये बाल गोविन्द।

सूर का यह प्रभाव तुलसी पर कभी-कभी तो इतना अधिक लक्षित होता है जैसे तुलसी ने कृष्ण के स्थान पर राम का नाम रखकर सूर पदावली को ही ग्रहण कर लिया हो। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने तुलसी पर सूर के इस प्रभाव के सम्बन्ध में कहा है—"तुलसीदास अत्यन्त जागरूक, बहुश्रुत, और नाना स्रोतों से भाव, विचार और मर्मोक्तियों की मुक्तावली संचित करने वाले राजहंस थे। अपने युग के महान् कवि, रस के सागर सूर से वे भला क्यों न लाभान्वित होते?"[1]

तुलसी ने राम के बालरूप का विशद वर्णन किया है परन्तु सूर के विपरीत तुलसी के वर्णन में सबसे प्रमुख अभाव यह है कि उसमें वर्णनात्मकता का आधिक्य है परन्तु राम के मनोवेगों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं है। जिस प्रकार सूरदास के कृष्ण माँ यशोदा से बालकौतूहल वश अनेक प्रश्न करते हैं उसी प्रकार तुलसी ने राम के अन्तर्मन में प्रवेश करने का प्रयास कहीं नहीं किया है। तुलसी का वर्णन राम के सौन्दर्य से मुग्ध एक दूर स्थित दर्शक का है परन्तु सूर कृष्ण की मानसिक स्थितियों के कुशल चित्रकार हैं।

'गीतावली' में राम का रूप एक तत्कालीन राजकुमार का हो गया है जो

१. डा० ब्रजेश्वर वर्मा : आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रसारित वार्ता, प्रसारण तिथि १-१२-५५

सामान्य लौकिक पुरुष के समान आचरण करता हुआ कभी चौगान खेलता है और कभी फाग। कृष्ण के समान राम नगर-नारियों के साथ हिण्डोला भी झूलते हैं—

आली री राघौ के रुचिर हिण्डोलना झूलन जैए।

अयोध्या काण्ड में कथा-वस्तु के सौन्दर्य तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण दोनों का ही अभाव है। वन मार्ग में स्त्रियों के द्वारा राम सीता के सौन्दर्य वर्णन में भक्ति भावना के साथ-साथ उनकी शृंगारिक मनोवृत्तियों का परिचय भी मिलता है। उन्हें राम रतिपति से प्रतीत होते हैं—

संग सिय सब अंग सहज सोहाए,
रति, काम, ऋतुपति कोटिक लजाए।[1]

कृष्ण साहित्य के प्रभाव में इस काण्ड में तुलसी ने कौशल्या की पुत्र-वियोग वेदना का वर्णन भी किया है। यशोदा के समान कौशल्या भी राम के वियोग में व्याकुल हैं—

सुनहु राम मेरे प्रान पियारे।
वारौं सत्यवचन सुति सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे।[2]

'प्रसन्नराघव' तथा 'हनुमन्नाटक' के आधार पर तुलसी ने इस काण्ड में वनगमन करते हुए राम-सीता की परस्पर व्याकुलता का चित्र भी अंकित किया है। सीता को श्रमित जान तथा उनके करुण वचनों को सुन राम के नेत्र जलसिक्त हो उठते हैं—

तुलसीदास प्रभु प्रिया वचन सुनि नीरज नयन नीर आए पूरि।
कानन कहाँ अबहिं सुनु सुन्दरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि।[3]

अरण्य काण्ड में घटनाओं का क्रम अत्यन्त क्षीण है। इसमें केवल उन्हीं प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है जिनसे राम की भक्ति का प्रतिपादन होता है, जैसे जटायु प्रसंग, शबरी प्रसंग, मारीच वध, सीता हरण आदि परन्तु जयन्त छल, शूर्पणखा प्रसंग, खर-दूषण वध, मारीच-रावण संवाद आदि घटनाओं का कोई संकेत नहीं है। कहीं-कहीं तुलसी ने कतिपय मौलिक प्रसंगों का समावेश भी किया है, जैसे राम जटायु से कहते हैं कि वह सीताहरण का समाचार स्वर्गलोक जाकर दशरथ से न कहें अन्यथा पिता को वेदना होगी। रावण वध के उपरान्त जब सीता प्राप्त हो जायेगी तब दशानन स्वयं यह सन्देश उन्हें दे देगा—

सीय हरन जनि कहेहु पिता सों, ह्वै हैं अधिक अन्देसो।
रावरे पुन्य प्रताप-अनल महं अलप दिननि रिपु दहिहैं।
कुस समेट सुर सभा दसानन समाचार सब कहिहैं।[4]

---

१. गीतावली तुलसी ग्रन्थावली, द्वितीय भाग (सम्पादक ब्रजरत्नदास) पृ० २७८, पद सं० २

२. गीतावली, अयोध्या काण्ड, पद १, पृ० २७४

३ वही, ३।१३, पृ० २७७

४. वही, पद १६, पृ० ३०८

किष्किधा काण्ड कथानक की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें केवल दो पद हैं जिनमें राम-सुग्रीव मैत्री तथा सुग्रीव द्वारा सीता की खोज का आदेश है। सुन्दरकाण्ड में तुलसी ने विभीषण के माध्यम से अधिकांश अपनी व्यक्तिगत भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की है अतः इसमें अवसर न रहने पर भी शान्त रस का निरूपण हुआ है। विभीषण का राम की शरण आना मानो स्वयं तुलसी के निजी उद्गार हैं। इस काण्ड में तुलसी ने सीता तथा मुद्रिका में एक वार्तालाप भी कराया है। यह वार्तालाप पर्याप्त विस्तारपूर्वक वर्णित है परन्तु मुद्रिका के सीता को प्रबोध देने के कारण यह अत्यन्त इतिवृत्तात्मक हो गया है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में इस प्रसंग का चित्रण अत्यन्त सरस तथा स्वाभाविक रूप से किया है। वस्तुतः 'रामचन्द्रिका' की मुद्रिका ने मौन रहकर राम के जिस गम्भीर प्रेम की व्यंजना की है, 'गीतावली' की मुद्रिका ने मुखर होकर उसे उतना ही प्रभावहीन बना दिया है। 'गीतावली' के इस काण्ड में तुलसी ने सीता की विरहावस्था, राम सैन्य संचालन तथा रावण-हनुमान संवाद आदि का वर्णन भी किया है।

लंका काण्ड में लंका-दहन, राम-रावण युद्ध आदि वीर रस के व्यंजक स्थलों का अभाव होने के कारण इसमें प्रबन्ध-सूत्र बहुत क्षीण हो गया है। इसमें शिक्षा और उपदेशों का बाहुल्य है तथा वीर रस का अभाव। लक्ष्मण शक्ति के उपरान्त राम की विजय एक ही पद में उल्लिखित है। हनुमान के शौर्य पर अवश्य तुलसी ने तीन पद लिखे हैं।

तुलसी ने जिन प्रसंगों की न्यूनता अपने 'मानस' में अनुभव की, उन्हीं की पूर्ति अपने अन्य ग्रन्थों में की है। जिस समय तुलसी ने 'गीतावली' की रचना प्रारम्भ की उस समय सूरदास के निधन को पर्याप्त समय बीत चुका था। सूरसागर के पद जन-जन के अंतर में अपने सौन्दर्य का प्रभुत्व जमा चुके थे। 'गीतावली' में तुलसी के राम की बाललीला, जटायूद्धार, सीता का विरह वर्णन, रामहिंडोला, होली, फाग आदि वर्णन सूर के भावों तथा भाषा दोनों से प्रभावित हैं।

'गीतावली' में 'कवितावली' की अपेक्षा तारतम्यपूर्ण घटनाओं का संगठन अधिक है। प्रबन्ध-धारा की गति मन्द होते हुए भी इसमें भावों की गम्भीरता है। कथानक भी 'मानस' से कई स्थानों पर भिन्न है। तुलसी के इस काव्य में उनकी सबसे बड़ी विशिष्टता सीता त्याग के दृश्य में प्रतिबिम्बित होती है। तुलसी को अपने इष्टदेव पर पत्नी-त्याग का कलंक अभीष्ट नहीं था इसलिए 'मानस' में वह इस प्रसंग को बचा गये परन्तु गीतावली में राम को कलंकमुक्त करने के लिए उन्होंने एक नवीन कल्पना की उद्भावना की है। राजा दशरथ की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण राम उनकी अवशेष आयु उपभोग कर रहे थे अतः सीता के साथ वह गार्हस्थ्य धर्म का पालन नहीं कर सकते थे, सीता का त्याग आवश्यक था। दूत से लोकापावाद सुनकर ऐसी सीता को त्यागने में उन्हें कष्ट होता है जो 'मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहु

नाहिं' समझती है परन्तु अंत में कर्तव्य का निश्चय कर वे सीता को सारी बात समझाकर बताते हैं 'दूत मुख सुनि लोक धुनि घर घरनि पूछी आय।' बाल्मीकि के समान तुलसी के राम यहाँ सीता को छल से वन नहीं भेजते बल्कि वह लक्ष्मण को वाल्मीकि के तपोवन तक सादर सीता को पहुँचाने के लिए पूरा आदेश देते हैं। इसी कारण राम का अन्तःकरण कभी ग्लानि अथवा पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध नहीं होता, सीता पर केवल उनकी करुणा जाग्रत होती है। सीता भी 'पालवो सब तापसनि ज्यौं राज धरम विचारि' कहकर वनवास स्वीकार कर लेती हैं। लव-कुश मुनि बालकों के साहचर्य में क्रीड़ाएँ करते हुए तथा सीता को राम के विरह में व्याकुल दिखाकर ही तुलसी इस प्रसंग का अंत कर देते हैं।

गीतावली का प्रमुख आकर्षण उसका कथानक नहीं, बल्कि उसकी भाव सम्पत्ति है। धनुप यज्ञ की चहल-पहल, राम के प्रति वनवासियों के कोमल भाव, सीताहरण पर पंचवटी की स्थिति, भरत के चित्रकूट जाने पर शुक-सारिका संवाद, अशोक वन में सीता की विरह दशा के चित्र अत्यन्त मार्मिक तथा मनोहारी हैं।

तुलसी ने गीतावली में एक ओर जातकर्म, नामकरण तथा यज्ञोपवीत आदि वैदिक संस्कारों की अवतारणा की और दूसरी ओर उस समय प्रचलित झाड़ फूंक टोना टोटका आदि अन्ध विश्वासों में अपनी आस्था दिखाकर पण्डित तथा मूर्ख जनता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया यद्यपि इस सामंजस्य के प्रयास में स्वयं तुलसी की निजी दुर्बलताएँ मूर्त हो उठी हैं। समाज की कलुषित रीतियों का वर्णन करते समय विशेष रूप से फाल्गुन मास में तुलसी राम को साधारण व्यक्ति के समान सामाजिक कुरीतियों से प्रसन्न होता हुआ दिखाते हैं—

नर नारि परस्पर गारि देत।
सुनि हँसत राम भाइन समेत।[1]

राम को किसी की दृष्टि लग जाने पर कौशल्या साधारण स्त्री के समान उनकी झाड़ फूँक करवाती है। राम का जो सुकुमार रूप तुलसी ने प्रस्तुत किया है वह एक लाड़-प्यार में पले किसी भी साधारण राजकुमार का है। राम की अपेक्षा उनके भक्त हनुमान ही अधिक वीरोचित वेश में हमारे सम्मुख आते हैं। 'रुन झुन करति पायं पैजनियाँ' व 'कानन कनियाँ' और 'नासिका लसत नथुनियाँ' का तुलसी ने जो राम रूप चित्रित किया है वह वस्तुतः गोपियों के साथ रास रचाने वाले कृष्ण का है, रावण का वध करने वाले राम का नहीं।

'गीतावली' की कौशल्या के चरित्र में प्रच्छन्न रूप से पातिव्रत धर्म का अभाव तथा तीव्र सपत्नी द्वेष परिलक्षित होता है। राम के वनगमन का समाचार सुनकर वह इसे पति की आज्ञा समझ कर मौन भाव से स्वीकार नहीं कर लेतीं, बल्कि यशोदा के समान पुत्र-प्रेम के समक्ष समस्त लौकिक मर्यादाओं का विस्मरण कर देती हैं। इसी से राम को विरोध करने के लिए उत्तेजित करती हुई वह कहती हैं—

१. उत्तर काण्ड, २२

जो सुत तात बचन पालन-रत जननिउ तात मानिबे लायक।
राखहु निज मरजाद निगम की, हौं वलि जाऊँ धरहु धनु सायक।।

राम के विरह में व्याकुल अयोध्यावासियों की, पशुपक्षियों की, चराचर प्रकृति की जिस दशा का वर्णन तुलसी ने किया है वह भी कृष्ण साहित्य से प्रभावित है। राम की अनुपस्थिति में नगर की शून्यता दिखाने के लिए कवि ने शुक-सारिका संवाद का एक नया प्रसंग उपस्थित किया है—

सुक सों गहवर हिये कहै सारो।
बार करि ! सिय राम लषन विनु लागत जग अंधियारो ।।[1]
को नर नारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम तें प्यारो।
विद्यमान सब के गवने बन। बदन करम को कारो ।।[2]

इसी प्रकार तुलसी ने राम के वियोग में अश्वों की विरह-दशा का चित्रण किया है—

अली हौं इन्हहिं बुझावौ कैसे।
लेत दियौ भरि भरि पति के हित, मातु हेतु सुत जैसे।[3]

कौशल्या की दशा के सम्बन्ध में कवि कहता है—

जिनके विरह विषाद बंटावन खग मृग जीव दुखारी।
मोहि कहा सजनी समुझावति हो तिनकी महतारी।[4]

'गीतावली' में मानस के समान अलौकिकता का समावेश नहीं है। राम का चित्र बहुत कुछ एक वैभवशाली नरेश का है। उनके दैनिक जीवन का सुखमय चित्रण कवि ने पर्याप्त विस्तार से किया है इसीलिये कवि लंका-दहन का वर्णन केवल एक पंक्ति में कर राम द्वारा रावण का वध भी भूल गया है परन्तु फाग, चाँचरि, हिंडोले आदि के उसने विस्तृत वर्णन किये हैं।

राम की सहायता के लिये सुमित्रा का शत्रुघ्न को भेजना, लक्ष्मण शक्ति पर गर्व का अनुभव करना, विभीषण के कुलद्रोह का कलंक परिमार्जन करने का प्रयास आदि कुछ स्वतन्त्र उल्लेख भी कवि ने किये हैं।

तुलसी के राम सम्बन्धी काव्यों में उनका अभिव्यंजना कौशल

काव्य-रूप की दृष्टि से समीक्षा—काव्य के विविध रूपों मुक्तक, खण्ड तथा महाकाव्य सभी पर तुलसी का समानाधिकार है। यह सत्य है कि तुलसी प्रधान रूप से भक्त हैं परन्तु वह उच्च कोटि के कवि भी हैं। मानस में उन्होंने कहा है—

---

१. ६६०१। अयोध्या काण्ड
२. ६७०२। अयोध्या काण्ड
३. अयोध्या काण्ड, ८६
४. गीतावली, अयोध्या काण्ड, पद ८५

कवि न होऊँ नहिं वचन प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरे।[1]

परन्तु यह कवि की विनम्रता है अन्यथा उनकी काव्य कृतियों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि काव्य के सभी रूपों पर उनका पूर्णाधिकार था।

मुक्तक काव्य में स्वतन्त्र पदों की रचना होने के कारण पूर्व प्रसंग से उनका सम्बन्ध होना अनिवार्य नहीं होता। उसमें कवि किसी प्रसंग विशेष का वर्णन कर क्षण भर के लिये पाठक को अपनी व्यंजनाशक्ति से विमोहित कर लेता है। इसी कारण उसमें जीवन के सर्वांगीण चित्र अथवा स्थायी रस निरूपण का अवकाश नहीं रहता। राजपति दीक्षित के अनुसार "इसमें बहुधा पूर्वापर प्रसंग की कल्पना का कार्य सहृदय पाठक या श्रोता पर छोड़ दिया जाता है। वे मुक्तक का आनन्द उठाने के लिये एक पूरे प्रसंग का स्वतः मानसिक अध्याहार कर लेते हैं।"[2] इस दृष्टि से तुलसी की 'बरवै रामायण', 'कवितावली', तथा 'गीतावली' उत्कृष्ट मुक्तक रचनाएँ हैं। तीनों में कवि यद्यपि आद्योपान्त राम कथा को लेकर चला है परन्तु कथा का यह क्रम निरन्तर शृंखलाबद्ध नहीं है। कथानक का विकास कवि ने इसी धारणा को लेकर किया है कि उसका पाठक राम कथा के सभी अंगों से पूर्णतया परिचित है अतः उसे जहाँ जो प्रसंग रुचिकर प्रतीत हुआ है उसने उसी का स्वतन्त्र चित्रण किया है। बरवै रामायण तुलसी के कुछ बरवै छंदों का संकलन है परन्तु उसमें राम के सम्पूर्ण जीवन का चित्र अंकित है, उसी प्रकार 'गीतावली' यद्यपि नीतिकाव्य है तथापि वह राम का जीवन काव्य है। 'कवितावली' के लंका काण्ड तक सभी छंद राम-कथा से सम्बन्धित हैं केवल उत्तरकाण्ड में कवि की आत्माभिव्यक्ति है। तुलसी के इन काव्य ग्रन्थों में कथानक के क्षीण होने के कारण प्रबन्ध काव्य की व्यापकता नहीं है परन्तु मुक्त कवि की प्रतिभा इनमें अक्षुण्ण है।

खण्ड काव्य यद्यपि प्रबन्ध काव्य ही है परन्तु उसमें प्रबन्ध काव्य के सदृश सम्पूर्ण जीवन का विशाल चित्र न होकर जीवन के एक अंग का विशद चित्र होता है। तुलसी के 'रामलला नहछू' तथा 'जानकीमंगल' खण्ड काव्य के अन्तर्गत आते हैं। 'रामलला नहछू' लोक गीतों की प्रणाली पर लिखा गया काव्य है जिसमें राम के यज्ञोपवीत अवसर पर उनके नहछू का वर्णन तुलसी ने अत्यन्त मनोरंजक शैली में किया है। 'जानकी मंगल' में सीता के विवाह का वर्णन है। इसमें तुलसी ने तत्कालीन जीवन का यथातथ्य तथा सुन्दर चित्र अंकित किया है। इन दोनों ही ग्रन्थों में राम तथा सीता के जीवन का एकांगी चित्रण है परन्तु खण्ड काव्य की दृष्टि से यह काव्यमयी ललित भाषा में लिखे गये तुलसी के सफल काव्य ग्रन्थ हैं।

---

१. मानस, १।८, ४, ६
२. तुलसीदास और उनका युग, रा० प० दीक्षित, पृ० ३११

देशकाल की सीमाओं के बन्धनों से मुक्त तुलसी की काव्य प्रतिभा का अमर स्मारक 'मानस' तुलसी का महाकाव्य है। 'मानस' वस्तुतः पुराण शैली पर लिखा गया महाकाव्य है परन्तु उसमें शास्त्रीय महाकाव्यों के भी प्रायः सभी गुण उपलब्ध हो जाते हैं। 'मानस' को महाकाव्यत्व निकष पर परखने से स्पष्ट पता चलता है कि कवि ने महाकाव्य सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों का अवलोकन अवश्य किया था। राम का लोक समादृत कथानक, धीरोदात्त गुणों से संभूत मर्यादा पुरुषोत्तम राम का नायक होना, चतुर्वर्ग की सिद्धि का उदात्त लक्ष्य, महाकाव्य के अनुरूप गरिमापूर्ण शैली आदि सभी काव्य लक्षण 'मानस' में मिल जाते हैं। ग्रन्थारम्भ में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति, आत्म परिचय तथा काव्य के क्षेत्र में अपनी लघुता की नम्र स्वीकारोक्ति, प्रकृति के बहुमुखी चित्र; वीर, शृंगार, शान्त आदि नवरसों का प्रतिपादन; मन्त्र, दूतकर्म, पुत्र-जन्म आदि अनेक प्रसंग महाकाव्य की परम्पराओं के ही अनुसार वर्णित हैं। आनुषंगिक कथा के साथ विविध प्रासंगिक कथाओं का विकास भी उचित सीमा के अन्तर्गत हुआ है। भावानुकूल तथा रसानुकूल अनेक छन्दों का भी इसमें उपयुक्त प्रयोग हुआ है।

राम की कथा भारत के काल्पनिक स्वर्ण युग की कल्पना है। यह स्वर्ण युग राम जैसा आदर्श राजा पाने के कारण युग-युग के राजाओं के लिये प्रेरणा प्रदायक है इसी से वेद-पुराणों, काव्य-महाकाव्यों सभी में इस कथा का विविध रूपी चित्रण हुआ है। तुलसी ने भी इस लोकप्रिय आख्यान को लेकर 'मानस' की रचना की। उन्होंने इस काव्य में मौलिक उद्भावनाएँ बहुत कम की हैं परन्तु विभिन्न काव्यकृतियों में उन्हें जो कुछ अनुकूल लगा, उसे उन्होंने 'मानस' में सहर्ष तथा सादर स्वीकार किया है।

राम का यह कथानक महान् तथा महिमामण्डित है। लोक में प्रचलित अधर्म का नाश कर धर्म-संस्थापन के हेतु रामचरित की अवतारणा की गई है। 'मानस' के राम लोक में पुण्य तथा नैतिक व्यवस्थाओं को स्थापित करने के लिये ही अवतार धारण करते हैं। 'मानस' की सभी प्रासंगिक कथाओं का विकास इसी आधिकारिक घटना को दृष्टिगत रखते हुए हुआ है। प्राकृत तथा अप्राकृत सभी शक्तियाँ राम के इस कार्य में सहयोग देती हैं।

'मानस' में घटना-बाहुल्य के साथ वर्णन-प्राचुर्य भी स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। इसी कारण कहीं-कहीं काव्य की प्रबन्धात्मकता में व्याघात भी उत्पन्न हो जाता है परन्तु इससे कवि की अपूर्व काव्य प्रतिभा का प्रमाण निस्संदेह मिलता है। जनकपुरी, लंका, तथा अयोध्या के ऐश्वर्य और वैभव के चित्रों, समुद्र तथा सामुद्रिक जलचरों के दृश्यों, पर्वतीय प्रदेशों तथा वनखण्डों के सौन्दर्य, वर्षा तथा शरद् ऋतु के रुचिर वर्णनों, बसन्त ऋतु के मादक सन्देश, चन्द्रोदय तथा सूर्योदय के वर्णनों से सम्पूर्ण 'मानस' परिपूर्ण है।

'मानस' काव्य शैली, छन्द, रस एवं अलंकार की दृष्टि से भी तुलसी का श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसका विस्तृत विवेचन हम तुलसी की काव्य शैली के अन्तर्गत करेंगे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तुलसी के मानस में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षणों का सम्यक् विकास हुआ है।

इस प्रकार तुलसी की सभी काव्य कृतियों का अवलोकन करने के अनन्तर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि काव्य के सभी रूपों पर तुलसी का पूर्णाधिकार था। महाकाव्य, खण्डकाव्य, एवं मुक्तक काव्य सभी तुलसी की लेखनी का स्पर्श पाकर जीवनमय हो उठे हैं। काव्य के तीनों क्षेत्रों में तुलसी की काव्य प्रतिभा का कौशल समान रूप से दर्शनीय है।

तुलसी की काव्य शैली तथा शब्द चयन—तुलसी के पूर्व जायसी आदि सूफी कवि अवधी भाषा में काव्य रचना कर चुके थे परन्तु उनकी अवधी साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण परिष्कृत भाषा नहीं थी। तुलसी ने उसका परिमार्जन कर उसे 'मानस' आदि काव्य कृतियों की रचना द्वारा पूर्ण साहित्यिक रूप प्रदान करने का प्रथम प्रयास किया। उस समय तक सूरदास आदि कृष्ण साहित्य के कवि ब्रजभाषा में रचना कर हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान दे चुके थे। तुलसी ने भी गीतावली तथा कवितावली आदि काव्य ग्रन्थों की रचना ब्रजभाषा में कर अपनी अपूर्व प्रतिभा तथा काव्याधिकार का परिचय दिया। राजपति दीक्षित ने उनकी काव्य भाषा के सम्बन्ध में कहा है—"वस्तुतः गोस्वामी जी ने अवधी और ब्रज दोनों के बाह्य रूप और उनकी सूक्ष्म अपरिहार्य प्रवृत्तियों की यथासम्भव रक्षा करते हुए उन्हें राष्ट्र भाषा के उपकरणों से सम्पन्न करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने दोनों भाषाओं को प्रशस्त करने और स्थायित्व देने के लिये उनका सम्बन्ध मूल प्राचीन आर्य भाषाओं से अविच्छिन्न रखकर हिन्दी भाषा की परम्परा का पालन एक ओर किया और दूसरी ओर अपने समकालीन समाज के अन्तर्गत विकसित और प्रचलित जनसामान्य की विभाषाओं और बोलियों तक के ही नहीं, अपितु अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के अनेकानेक पदजात भी ग्रहण करके दोना भाषाओं को अधिक-से-अधिक व्यापक और सर्व-जनमान्य स्वरूप देने का प्रयत्न किया।[1]

तुलसी का राम साहित्य उनकी काव्य शैली के विकास का इतिहास है। तुलसी की प्रारम्भिक रचनाओं में उनकी अभिव्यंजना शक्ति दुर्बल है परन्तु कवि की काव्य प्रौढ़ता के साथ ही उसकी यह शक्ति भी उत्तरोत्तर अधिक पुष्ट होती गई है। इसी कारण 'राम लला नहछू' की भाषा में जो शैथिल्य है वह क्रमशः कम होता हुआ 'मानस' में जाकर उसकी भाषा पूर्णरूपेण साहित्यिक हो जाती है। 'जानकी मंगल' की शैली सरल तथा ललित है परन्तु उसमें 'मानस' की प्रौढ़ता नहीं है। रामचरित-मानस की भाषा यद्यपि स्वाभाविक तथा सुबोध है परन्तु साहित्यिक दृष्टि से वह

१. तुलसीदास और उनका युग : रा० प० दीक्षित, पृ० ३९८

पूर्ण विकसित भाषा है। 'गीतावली' तथा 'कवितावली' एक निश्चित काल की रचना न होकर उसमें विभिन्न कालों में रचित पदों का संग्रह है अतः उनमें तुलसी की प्रौढ़ तथा अप्रौढ़ दोनों कालों की भाषा शैली का परिचय मिलता है।

तुलसी ने अवधी तथा ब्रज के अतिरिक्त संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है। कहीं-कहीं स्तुतियों के छंदों तथा 'मानस' की चौपाइयों में भाषा इतनी संस्कृत-बहुल हो गई है कि वह संस्कृत-सी ही प्रतीत होती है और कहीं तुलसी ने संस्कृत में ही श्लोकों की रचना कर दी है, जैसे—

> वर्णानामर्थसंघानाम् रसानां छन्दसामपि।
> मंगलानाम् च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥[१]

कतिपय स्थलों पर तुलसी ने संस्कृत के प्रत्ययों के योग से भी भाषा के शब्दों का निर्माण किया है, जैसे 'जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ'[२] 'मृग लोग कुभोग सरेन हिये'[३], 'मुकुट सुन्दर सिरसि'[४], 'उरसि गजमनि माल'[४] आदि। कहीं-कहीं 'मम', 'तव', 'ते', 'वयम्' आदि सर्वनामों तथा 'अस्मि', 'अस्ति', 'पश्य', 'वेद' आदि संस्कृत क्रियाओं का प्रयोग भी किया है।

संस्कृत के अतिरिक्त तुलसी ने प्राकृत, अपभ्रंश, पाली, भोजपुरी, देशज, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, पंजाबी, मराठी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, बंगला, खड़ी बोली, अरबी तथा फारसी के असंख्य शब्दों का प्रयोग कर[५] अपनी भाषा को यथाशक्ति पूर्ण तथा विकसित बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने यथास्थान मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। जैसे—

> **मुहावरा**—रेख खंचाइ कहउं बलु माखी।
> भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥[६]
> **लोकोक्ति**—धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को।[७]
> खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप है ॥[८]
> दुइ कि होहि एक समय भुआला।
> हसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥[९]

---

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड—प्रथम श्लोक
२. वही, अयोध्या काण्ड, ५३-४
३. वही, उत्तर काण्ड, १३-७
४. गीतावली, उत्तर काण्ड, गीत संख्या ६
५. विस्तृत विवरण के लिये देखिये तुलसीदास और उनका युग, पृ० ४०३—४१२
६. मानस अयोध्या काण्ड, १८-७
७. कवितावली, उत्तर काण्ड, छंद ६६
८. वही, छंद ११७
९. मानस, अयोध्या काण्ड, ३४-५

तुलसी की शब्द-निधि विपुल है। उन्होंने जनसामान्य की सरल भाषा में भी रचना की है एवं काव्यशास्त्रियों की दुरूह भाषा में भी। दोनों पर उनका समान अधिकार है। उन्होंने अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों में अनेक देशी-विदेशी शब्दों का समन्वय कर उन्हें मौलिक रूप से व्यापक भाषा बनाया है।

तुलसी की विभिन्न काव्य-कृतियों की भाषा में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण का भी सम्यक् परिपाक मिलता है। 'गीतावली' की भाषा अधिकांश माधुर्य तथा प्रसाद गुण से युक्त, 'कवितावली' की भाषा में ओज तथा प्रसाद गुणों का प्राधान्य, 'नहछू', 'जानकी मंगल' तथा 'बरवै रामायण' में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों की प्रमुखता एवं 'मानस' में तीनों ही गुणों की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है। यहाँ हम तुलसी साहित्य से इन तीनों काव्य गुणों का केवल एक-एक उदाहरण देंगे—

माधुर्य गुण—कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि कोहइ?
सीय सनेह-सकुच बस पियतन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ।[1]

ओज गुण— देखि ज्वालजाल हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं।
लिये सूल, सेल, पास, परिध, प्रचण्ड दण्ड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं।
तुलसी समिध सौंज लंक-जलकुण्ड लखि,
जानुधान पुंगीफल, जब, तिल धान हैं।
सुवा सो संगूल दलमूल, प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि-हाँकि हुनै हनुमान हैं।[2]

प्रसाद गुण—सजल कठौता कर गहि कहत निषाद,
चढहु नाव पग धोइ करहु जनि बाद।
कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ,
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ।[3]

अलंकार योजना—तुलसी के सभी काव्य-ग्रन्थों में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों दोनों का पूर्ण प्रस्फुटन लक्षित होता है तथापि यह कहीं भी इतना दुरूह तथा सप्रयास नहीं है कि पाठक को काव्य के अर्थ-बोध में बाधा प्रतीत हो। डा० रामकुमार वर्मा ने तुलसी हित्य में प्रयुक्त अलंकारों के सम्बन्ध में कहा है, "अलंकारों के स्थान के लिये (तुलसी को) भावों की अवहेलना नहीं करनी पड़ती।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, द्वितीय भाग, जानकी मंगल, छंद १२०-१२१
२. कवितावली, सुन्दर काण्ड, छंद ७
३. बरवै रामायण, अयोध्या काण्ड, छंद २५-२६

उसका कारण यह है कि तुलसीदास का भाव-विश्लेषण इतना अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसको भाव-तीव्रता या सौन्दर्य वर्णन के लिये अलंकारों की आवश्यकता नहीं रह जाती।"[१] यह ठीक है कि तुलसी के साहित्य में कविता कामिनी अलंकारों के अनुचित भार से आक्रान्त नहीं है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हें काव्य शास्त्र का ज्ञान अवश्य था। तुलसी ने मानस की रचना आरम्भ करने के पूर्व कहा है—

आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।[२]

जिससे ज्ञात होता है कि तुलसी ने नाना प्रकार के शब्दालंकार, अर्थालंकार, छंद, भाव, रस आदि काव्य लक्षणों का अवलोकन किया था। उन्होंने नम्रतावश यद्यपि इन काव्य लक्षणों से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है परन्तु उनकी कृतियों में विभिन्न अलंकारों, छंदों तथा रस योजना को देखकर उनके काव्य के शास्त्रीय पक्ष के ज्ञान के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

तुलसा ने अपने ग्रन्थों में शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत कम किया है। उनकी कृतियों में अनुप्रास अलंकार का ही सौन्दर्य लक्षित होता है। यमक तथा शब्दश्लेष की ओर उनकी दृष्टि प्रायः नहीं है। अनुप्रास अलंकार अवश्य सर्वत्र उनके काव्य का उत्कर्ष वर्धक है और कहीं भी सचेष्ट रूप से नहीं आया है, जैसे—

(क) कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हौ।[३]
(ख) गौरि गनेष गिरीसहि सुमिरि संकोचइ।[४]
(ग) जहाँ तहाँ बुबुक विलोकि बुबुकारी देत।[५]
(घ) दसरत सुकृत-बिबुध-बिरवा बिलसत,
विलोकि जनु बिधि बारि बारि बनाई।[६]
(ङ) बार्जाहं बाजने बिविध प्रकारा,
नभ अरु नगर सुमंगल चारा।
सची सारदा रमा भवानी,
जे सुरतिय सुचि सहज सयानी।[७]

तुलसी ने अपनी सभी कृतियों में अधिकांश अतुकान्त छंदों की रचना नहीं की है, अतः कुछ स्थलों को छोड़कर उनमें सर्वत्र अन्त्यानुप्रास का सौन्दर्य दिखाई देता है।

---

१. हिन्दा साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : राम कुमार वर्मा, पृ० ४५६
२. रामचरितमानस, बालकाण्ड, छंद ५
३. राम लला नहछू, पद ११
४. जानकी मंगल, पद ११२
५. कवितावली, सुन्दर काण्ड, छंद ६
६. गीतावली, बालकाण्ड, छंद ४।२७
७. रामचरितमानस, बाल काण्ड, ३।३१८

अर्थालंकारों के क्षेत्र में तुलसी का कौशल अपूर्व है। उनके ग्रन्थों में कदाचित् ही कोई ऐसा अर्थालंकार हो जिसका उदाहरण न मिल सके। विशेष रूप से साधर्म्य-मूलक अलंकारों—उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त तथा उदाहरण की दृष्टि से तो तुलसी सर्वाधिक सफल हुए हैं।

रूपक तुलसी का सबसे अधिक प्रिय अलंकार है। उनकी अधिकांश कृतियों में हमें इस अलंकार का प्रयोग मिलता है। 'मानस' तथा 'गीतावली में तो कहीं-कहीं बड़े-बड़े सांगरूपक भी मिल जाते हैं। उनके सांगरूपकों में आद्योपान्त सादृश्य का निर्वाह मिलता है तथा अप्रस्तुतों का चयन अधिकांश प्रस्तुतों के प्रभाव को बढ़ाने वाला होता है जैसे—

आस्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुं करुना सरित, लिये जात रघुनाथ॥
बोरति ग्यान बिराग करारें। बचन ससोक मिलत नद नारे।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट-तरु-बर कर भंगा॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अनर्न अपारा।
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहि आवा॥
बनचर कोल किरात बेचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे।
आश्रम उदधि मिली जब नाई। मनहु उठेउ अंबुधि अकुलाई॥[1]

रूपक के ही समान तुलसी के ग्रन्थों में उत्प्रेक्षालंकार का भी बाहुल्य है। जहाँ कहीं उन्होंने राम के प्रभाव अथवा सौन्दर्य का वर्णन किया है वहाँ वह तन्मय होकर उत्प्रेक्षाओं की माला सजा देते हैं; 'राम' नाम के दोनों अक्षरों का प्रभाव वर्णन करते हुए तुलसी की उत्प्रेक्षा-माला दर्शनीय है—

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन विभूषन। जग हित हेतु बिमल विधु पूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर वसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥
एक छत्र एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोऊ।
तुलसी रघुबर नाम के बरनि विराजत दोउ।
समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी।
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।[2]

राम के हृदय पर सुशोभित जयमाल को देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है:—

---

१. रामचरितमानस, अयोध्या काण्ड, २७५-१-६
२. रामचरितमानस, बालकाण्ड १६, ३-४ २०.१

सतानन्द सिष सुनि पायें परि पहिराई
माल सिय पिय हिय। सोहत सो भई है।
मानस से निकसि बिसाल सु तमाल पर
मानहुँ मराल पांति बैठी बनि गई है।[१]

तुलसी के ग्रन्थों में उत्प्रेक्षालंकार अपने सम्पूर्ण अंग उपांगों सहित मिलता है। उसमें वस्तूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा आदि उत्प्रेक्षा के सभी अंगों का सम्पूर्ण विकास हुआ है। 'जानकी मंगल' में वस्तूत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण उस समय मिलता है जब विश्वामित्र राम लक्ष्मण को ले जाते हैं :—

दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिबर।
नील पति पाथोज बीच जनु दिनकर।[२]

फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण उस समय मिलता है जब कवि गीतावली में शिशु राम की अलकावली में बँधी हुई मणियों का वर्णन करता है :—

गुमुआरी अलकावली लसै लटकन ललित ललाट।
जनु ठडेगन बिधु मिलन को चले तम बिदारि करि बाट।[३]

'गीतावली' में राम की बाल लीलाओं का वर्णन हेतूत्प्रेक्षा द्वारा करते हुए तुलसी ने कहा :—

सिसु सुभाय सहित जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाए।
मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सौं सचु पाए।
ऊपर अनूप विलोकि खेलोना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत
मनहुँ उभय अम्भोज अरुन सों विधु भय बिनय करत अति आरत।
चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा पुंज।
प्रेम बस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज।[४]

तुलसी ने अपनी विविध काव्यकृतियों में श्लेष, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, परिसंख्या-विभावना, अर्थान्तरन्यास, एकावली, कारणमाला, अपह्नुति आदि अनेक अलंकारों का समुचित प्रयोग किया है। उनके विपुल साहित्य से सभी अलंकारों के उदाहरण देना यहाँ असम्भव है अतः हम केवल कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण लेकर यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि तुलसी का विविध अलंकारों पर कितना अधिकार है एवं उनके प्रयोग में वह कहाँ तक सफल हुए हैं।

दण्डी तथा वाण आदि संस्कृत कवि एवं रामचन्द्रिका के केशव के सदृश श्लेष तुलसी का प्रिय अलंकार नहीं है अतः उसका प्रयोग तुलसी साहित्य में सीमित है।

---

१. गीतावली, ९४।४
२. जानकी मंगल, छंद ७०
३. गीतावली, बालकाण्ड, छंद १९
४. वहीं, पद ३८

अपने ग्रन्थों में तुलसी ने बहुत कम स्थलों पर श्लेषालंकार का प्रयोग किया है तथा जहां कहीं इसका प्रयोग हुआ है वहाँ यह सरल, सुबोध तथा स्वाभाविक रूप से हुआ है। इसके भार से भाषा कहीं बोझिल नहीं हुई, जैसे :—

बंदउं मुनि पद कंजु रामायण जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित।[1]

अतिशयोक्ति—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
व्याल वधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकंठ मुक्खर।
सुर विमान हिम भानु भानु संघटित परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कसमल्यौ।
ब्रह्माण्ड खण्ड किया चण्ड धुनि जबहिं रामसिव धनु दल्यौ॥[2]

अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग अधिकांश दोहावली में हुआ है :—

तुलसी तौरत तीर तरु, बक हित हंस बिडारि।
विगत नलिन अलि, मलिन जल, सुर सरिहू बढ़ियारि॥[3]

यहाँ प्रत्यक्ष रूप में बाढ़ग्रस्त गंगा के प्रलंयकारी रूप का वर्णन है परन्तु यथार्थ में कवि का संकेत वृद्धि प्राप्त सज्जनों में अहंकार भावना के उदय की ओर है।

परिसंख्या का प्रयोग यद्यपि तुलमी ने अधिक नहीं किया है परन्तु इसके प्रयोग में वह सर्वत्र पूर्णरूपेण सफल हुए हैं :—

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज॥[4]

अर्थान्तरन्यास—

कारन ते कारज कठिन होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि ते उपल ते लोह कराल कठोर।[5]

एकावली—

काल विलोकत ईस रुख, भानु काल अनुसारि।
रबिहि राउ, राजहिं प्रजा, बुध व्यवहरहिं बिचारि॥[6]

---

१. रा० च० मा०, बालकाण्ड, १४ (घ)
२. कवितावली, बालकाण्ड, छंद ११
३. दोहावली, दोहा, ४९८
४. रामचरितमानस, उत्तर काण्ड, दोहा २२
५. मानस, अयोध्या काण्ड, दोहा १७८
६. दोहावली, दोहा, ५०४

कारणमाला—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।[1]

अपह्नुति—

तुलसी ने अपह्नुति अलंकार के दोनों भेदों कैतवापह्नुति तथा हेत्वापह्नुति का समान रूप से प्रयोग किया है। दोनों का क्रमशः एक-एक उदाहरण लीजिए :—

कैतवापह्नुति—

सुनु सर्वज्ञ प्रनत सुखकारी। मुकुट न होंहि भूप गुन चारी।
साम दाम अरु दण्ड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियं जानि नाथ पहिं आए।[2]

हेत्वापह्नुति—

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी।
तब रिपुनारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों से तुलसी की अलंकार प्रयोग क्षमता का केवल आभास मात्र मिलता है, पूर्ण परिचय नहीं। तुलसी साहित्य के कुछ उदाहरण लेकर यहां केवल इतना ही बताना अभीष्ट है कि उसमें लक्षण ग्रन्थों में वर्णित प्रायः सभी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। तुलसी वस्तुतः अलंकारवादी कवि नहीं हैं। अलंकार को उन्होंने काव्य का आवश्यक अंग माना है, परन्तु अपरिहार्य अंग नहीं।

तुलसी की छन्द योजना—केशवदास के पूर्व हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक छंदों का प्रयोग सर्वप्रथम तुलसीदास ने ही किया। उनके मानस की रचना यद्यपि प्रमुख रूप से दोहा तथा चौपाई छंदों में हुई परन्तु तुलसी ने इसमें कतिपय अन्य छंदों का प्रयोग भी किया है जैसे—सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चवपैया, त्रिभंगी आदि मात्रिक छंद तथा अनुष्टुप, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, तोटक, वंशस्थ, भुजंगप्रयात, नगस्वरूपिणी, बसंततिलका, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीड़ित आदि वर्णिक छंद। इन छंदों के अतिरिक्त तुलसी ने अन्य ग्रन्थों में दूसरे छंदों का भी प्रयोग किया है। 'नहछू' की रचना सोहर छंद में हुई है जिसमें १२-१० के विश्राम से २२ मात्राएँ हैं। 'बरवै रामायण' की रचना बरवै छंदों में हुई है जिसमें १२-७ के विश्राम से १९ मात्राएँ होती हैं। 'रामाज्ञा प्रश्न' तथा 'दोहावली' की रचना दोहा छंदों में हुई है। 'दोहावली' में दोहा छंद के अतिरिक्त कहीं-कहीं सोरठा छंद का प्रयोग भी हुआ है। गीतावली की रचना विभिन्न राग-रागिनियों में हुई है। इसमें 'सूरसागर' के अनुकरण पर तुलसी

---

१. मानस, अयोध्या काण्ड, ६१
२. मानस, लंका काण्ड, ३७।४-५
३. मानस, लंका काण्ड, १

ने पद-योजना की है। 'कवितावली' वीर तथा शृंगार रस प्रधान काव्य है अतः इसमें इन रसों के अनुकूल सवैया, कवित्त, मनहरण, मनहर, छप्पय तथा झूलना छंदों का प्रयोग हुआ हैं।

विभिन्न छंदों पर तुलसी का पूर्ण अधिकार है। यह छंद योजना तुलसी ने भाव तथा रस दोनों के ही अनुकूल की है। जीवन का विशद तथा सर्वांगीण चित्र होने के कारण मानस में उन्होंने विभिन्न स्थितियों का दिग्दर्शन कराने के लिये सबसे धिक छंदों का प्रयोग किया है। साथ ही उसमें दोहा तथा चौपाई छंदों का बाहुल्य रख कर यह भी सिद्ध कर दिया है कि किसी भी स्थिति का चित्रण इन दोनों छंदों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। शृंगार रस प्रधान होने के कारण तुलसी ने 'बरवै रामायण' में उसके अनुकूल बरवै छंद का प्रयोग किया तथा 'दोहावली' में सूक्ति माला का प्राधान्य रहने से दोहा छंद का प्रयोग उपयुक्त ही हुआ है। 'गीतावली' में गीति तत्त्व की प्रधानता है इसलिये इसमें विविध राग-रागिनियाँ हैं तथा 'कवितावली' में वीर रस प्रधान है अतः कवित्त, घनाक्षरी और छप्पय तथा शृंगार की स्थिति के कारण सवैया तथा मनहरण आदि छंदों का प्रयोग है। कहीं-कहीं तुलसी ने दो विभिन्न प्रकार के छंदों का मिश्रण कर नवीन छंद सृष्टि का प्रयास भी किया है।[1] 'गीतावली' में दोहा छंद के द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में दो मात्राएँ बढ़ाकर एक नवीन छंद का निर्माण किया है।[2] 'मानस' में तुलसी ने कुछ स्थलों पर अतुकान्त छंदों का प्रयोग भी किया है। जैसे—

बन्दउं बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहं।
सन्त सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारूनी।[3]

कतिपय स्थलों पर तुलसी ने दो चरणों के छंद का प्रयोग भी किया है यद्यपि यह बहुत कम स्थानों पर है, जैसे—

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन विहंगा।[4]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि छोटे-बड़े, दुरूह-सरल, संस्कृत-भाषा सभी प्रकार के छंदों में तुलसी का काव्य-कौशल दर्शनीय है। उनके छंद काव्य शास्त्र के लक्षणों के निकष पर परखने से अधिकांश खरे उतरते हैं, उनमें यतिभंग आदि दोष बहुत कम, प्रायः नगण्य ही हैं। यद्यपि अपने परवर्ती कवि केशव के समान छंदों पर उनका बहुमुखी अधिकार नहीं है परन्तु जितने छंदों का उन्होंने प्रयोग किया है वह उनकी छंद सम्बन्धी प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त है।

---

१. गीतावली, अरण्य काण्ड, गीत १७।१८
२. गीतावली, बाल काण्ड, गीत १०।१-१६
३. मानस, बाल काण्ड, गीत १४ (च)
४. मानस, बालकाण्ड, ३३ ८

तुलसी साहित्य में रस निरूपण—तुलसी साहित्य में हमें शान्त, शृंगार, करुण, वीर, वीर के पोषक वीभत्स, भयानक तथा रौद्र, अद्‌भुत, हास्य, एवं वात्सल्य दसों रसों का पूर्ण परिपाक मिलता है। 'नहछू', 'बरवै रामायण', 'जानकी मंगल', 'गीतावली' आदि रचनाओं में राम के ऐश्वर्य रूप का वर्णन होने के कारण उनमें शृंगार रस की प्रधानता है। 'गीतावली' तथा 'कवितावली' में वात्सल्य रस के भी अत्यन्त सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। 'कवितावली' ओज गुण प्रधान रचना होने के कारण उसमें वीर रस की प्रधानता है यद्यपि उसके उत्तरार्द्ध में शान्त रस के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'मानस' में प्रायः सभी रसों का परिपाक हुआ है परन्तु उसमें मुख्य रूप से वीर शान्त तथा करुण रस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ तुलसी की कृतियों का स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने का अवकाश न रहने के कारण उनके राम साहित्य से हम प्रत्येक रस के केवल दो-एक उदाहरण ही देंगे।

शृंगार रस—तुलसी ने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है परन्तु उनके साहित्य में प्रधानता संयोग शृंगार की है। बरवै रामायण, गीतावली, कवितावली आदि ग्रन्थों में संयोग शृंगार का वर्णन ही अधिक मिलता है केवल 'मानस' में वियोग शृंगार के कुछ चित्र मिलते हैं।

संयोग शृंगार—

(१) राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नहीं।[1]

(२) राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहिं॥[2]

वियोग शृंगार—

देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकौ तारा।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी।[3]

वीर रस—

वीर रस के उदाहरण मानस में तथा विशेष रूप से 'कवितावली' में मिलते हैं। 'कवितावली' में वस्तुतः तुलसी की पुरुष वृत्तियों की उद्‌भावना हुई है। वीर रस के ये वर्णन ओज गुण से परिपूर्ण हैं तथा तुलसी ने कहीं द्वित्व वर्णों द्वारा और कहीं वर्णों की आवृत्ति द्वारा इसको अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इनमें वीरोचित उत्साह की अत्यंत सुन्दर व्यंजना हुई है—

---

१. कवितावली, बाल काण्ड, १७
२. जानकी मंगल, छंद ६४-६५
३. तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड (मानस), पृ० २४७

गहि मन्दर बन्दर भालु चलै सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचण्ड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥
बिरुझै बिरुद्दैत जे खेत अरे, न टरै हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले वीर रघुप्पति रावन के॥[१]

रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस अधिकांश स्थलों पर वीर रस के पोषक रस हैं। रौद्र रस का एक उदाहरण वीर शिरोमणि परशुराम के क्रोध में देखिये—

कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तब चितवन अनैसे।[२]

भयानक रस का सर्वोत्तम निरूपण 'कवितावली' के सुन्दर काण्ड में हुआ है—

पानी को ललात बिललात, जरे गात जात।
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप
बाप! तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे॥
तुलसी बिलोक लोग व्याकुल बेहाल कहैं।
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे॥[३]

वीभत्स रस—

(क) सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से।
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि।[४]
(ख) काक कंक लेइ भुजा उडाही। एक ते छीनि एक लेइ खाही।[५]

अद्भुत रस—

यह रस तुलसी साहित्य में या तो युद्ध प्रसंगों में मिलता है अथवा उन स्थलों पर मिलता है जहाँ भगवान् राम कौशल्या आदि विभिन्न पात्रों को अपना अमानवीय रूप दिखलाते हैं। यहाँ हम दोनों प्रकार के प्रसंगों का एक-एक उदाहरण देंगे—

---

१. कवितावली, लंका काण्ड, छंद ३४
२. मानस, बालकाण्ड, २७८।४
३. कवितावली, सुन्दर काण्ड, छंद १६
४. कवितावली, लंका काण्ड, छंद ५०
५. तु० ग्र०, प्रथम खण्ड, पृ० ४१३

(क) लाइ लाइ आगि भागे बाल जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भौ।[१]

(ख) देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।[२]

शान्त रस—

इस रस का प्रतिपादन 'मानस' तथा 'कवितावली' के उत्तर काण्ड में सर्वाधिक मात्रा में हुआ है। तुलसी ने इन दोनों ही ग्रन्थों में ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य का वर्णन किया है। देवताओं की स्तुति, विशेष रूप से राम की स्तुति में शान्त रस के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं—

(क) प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बडाई।
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई।[३]

(ख) माया जीव काल के, करम के सुभाय के।
करैया राम, बेद कहैं, साँचा मन गुनिए।
तुमतें कहा न होय, हाहा ! सो बुझैये मोहि।
हौंहूँ रहौ मौन हौ, बयो सो जानि लुनिए।[४]

करुण रस—

इस रस की अभिव्यक्ति 'गीतावली' तथा 'मानस' में हुई है। राम-कथा में दशरथ विलाप, दशरथ का स्वर्गारोहण, कौशल्या विलाप, लक्ष्मण शक्ति पर राम की दशा आदि कतिपय करुणतम स्थल हैं। तुलसी की कोमल भावनाओं की व्यंजना 'गीतावली' में ही हुई है अतः इसमें शोक का चित्रण भी अत्यन्त मर्मभेदी हुआ है—

(क) मोपे तो न कछू ह्वै आई।
और निबाहि भलो विधि भायप चल्यौ लखन सो भाई॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बंटाई।
ता संग हौ सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई॥
जानत हो या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा सुत को दरकि दरार न जाई॥[५]

(ख) सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा।
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते॥[६]

---

१. कवितावली, सुन्दर काण्ड, छंद ४
२. मानस, तु० ग्र० प्रथम० भाग, पृ० ८८
३. मानस, सु० काण्ड, ५८।४
४. कवितावली, उ० काण्ड, छंद ४४
५. गीतावली, लंका काण्ड, पद ६
६. तु० ग्र०, (मानस), पृ० २१८

वात्सल्य रस—

तुलसी ने सूर के अनुकरण पर गीतावली तथा कवितावली में राम के बाल रूप के चित्र कुछ अंकित किये हैं परन्तु सूर के चित्र कृष्ण की वियोगावस्था के चित्र हैं और तुलसी के राम की संयोगावस्था के। सूर की सहृदयता कृष्ण के वियोग में यशोदा तथा नन्दगाँवबासियों के असीम दुःख का चित्रण करने में अधिक मुखर हुई है परन्तु तुलसी ने राम की उपस्थिति में ही दशरथ तथा कौशल्या के वात्सल्यपूर्ण हृदय के चित्र अंकित किए हैं। राम की अनुपस्थिति में कौशल्या की मानसिक स्थितियों का तुलसी ने केवल एक-दो स्थानों पर ही संकेत किया है—

संयोगावस्था में वात्सल्य रस—

(क) सुभग सेज सोभित कौसिल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये।
बार-बार बिधुवदन बिलाकति लोचन चारु चकोर लिये।
कबहुँ पौढि पयपान करावति, कबहुँ राखति लाइ हियै।
बाल केलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम पियूष पिये।[१]

(ख) अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौ सोच विमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से॥[२]

वियोगावस्था में वात्सल्य रस—

बैठी सुगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फिरि बाता।
दूध भात की दोनी देहौं, सोने चोंच मढैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लषन उर लैहौं।[३]

हास्य रस—

तुलसी यद्यपि हास्य रस के विशिष्ट कवि नहीं हैं परन्तु उनकी कृतियों में जहाँ कहीं हास्य रस की अवतारणा हुई है वे स्थल अत्यन्त मार्मिक हैं। तुलसी प्रायः शिष्ट तथा स्मित हास्य की मर्यादा में ही विश्वास रखते हैं अतिहास में नहीं। अतः उनकी रचनाओं में हमें हास्य का यही रूप दृष्टिगोचर भी होता है। हास्य का एक उदाहरण मानस में उस समय मिलता है जब नारद अपने यथार्थ रूप परिवर्तन से अनभिज्ञ रहकर उत्सुक दृष्टि से वरमाला की आशा में राजकन्या की ओर देखते हैं —

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न विलोकि भूली।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुस्काहीं॥[४]

१. गीतावली, बाल काण्ड, पद ७
२. गीतावली, बाल काण्ड, छंद १
३. गीतावली, लंका काण्ड, पद १६
४. मानस, बा० का०, १३४।२

हास्य का एक दूसरा उदाहरण हमें 'कवितावलो' में मिलता है जहाँ तुलसी ने दाम्पत्य जीवन के लिए लालायित वनवासी तपस्वियों की कोमल भावना का एक चित्र अंकित किया है—

विंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला जब कंजमुखी, परखे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भलो रघुनायक जू, करुना करि कानन के पगु धारे।[1]

विभिन्न रसों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति करने के अतिरिक्त तुलसी ने कहीं दो विरोधी रसों का सम्मिश्रण तथा कहीं केवल रसाभास का प्रयोग भी मौलिक रूप में किया है। इस प्रकार निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि विविध रसों पर तुलसो का पूर्णाधिकार था तथा वह उनकी अवतारणा में पूर्ण सफल हुए हैं।

तुलसी साहित्य का अध्ययन करने के अनन्तर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तुलसी की कथानक तथा अभिव्यंजना सम्बन्धी मान्यताओं का यथार्थ दर्शन करने के लिए 'मानस' के अतिरिक्त उनकी शेष कृतियों का अध्ययन भी आवश्यक है। 'मानस' में हम जिस मर्यादावादी तुलसी का दर्शन करते हैं वही उनका एकमात्र रूप नहीं है। 'मानस' के विपरीत उनके शेष ग्रन्थों में हमें अध्यात्म रामायण आदि साम्प्रदायिक साहित्य की अपेक्षा वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, आदि ललित साहित्य का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है। इसी से मानस के राम जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा सीता जगज्जननी सीता हैं, वहाँ वह 'बरवै रामायण', 'जानकी मंगल', 'गीतावली', तथा 'कवितावली' आदि ग्रन्थो में परब्रह्म तथा परमशक्ति का रूप होकर भी लौकिक राजा रानी हैं। भक्त तुलसी की मर्यादा का कठोर बन्धन इनमें शिथिल हो गया है—

तुलसी ने 'मानस' के कला पक्ष के सम्बन्ध में कहा है—

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा।
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान विराग विचारि मराला।
धुनि अवरैव कवित गुन जातो। मीन मनोहर ते बहु भाँति।[2]

अर्थात् उनके काव्य में छंद, अलंकार, भाव, ध्वनि, वक्रोक्ति, सुन्दर भाषा, गुण आदि सभी का उचित प्रयोग हुआ है। तुलसी की यह मान्यता उनकी सभी कृतियों के सम्बन्ध में सत्य है। उनकी विभिन्न कृतियों में काव्य के शास्त्रीय लक्षणों के विकास का विवेचन करने के उपरान्त इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि तुलसी

---

१. कवितावली, अयो० का०, छंद २८
२. मानस, बाल काण्ड, ३६।३-४

ने धार्मिक साहित्य के अध्ययन के साथ काव्यशास्त्रों का भी अनुशीलन किया था तथा उनके साहित्य में काव्य के प्रायः सभी उपादानों का सम्यक् विकास हुआ है।

भारतीय लोक गीतों में राम कथा

न जाने कितना समय और कितने स्थान पार कर राम कथा बाल्मीकि तक पहुँची थी, कौन कह सकता है। महाकाव्य की परिभाषा के अनुसार महाकाव्य का प्रणयन ही उस कथा को लेकर होता था जो लोक प्रचलित तथा लोकवासियों द्वारा समादृत होती थी।

भारत के विभिन्न भागों में राम सम्बन्धी लोक-कथाएँ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। ये गाथाएँ रामायण की रचना के पूर्व ही देश के एक कोण से दूसरे कोण तक विख्यात हो गई होंगी जिनका एक सूत्र में संकलन समय तथा स्थानानुसार अनेक कवियों ने किया। राम केवल अयोध्या के राम न रहकर सम्पूर्ण देश के राम हो गए थे। सभी प्रान्तवासियों ने अपने स्थानीय रंगों के अनुसार राम-कथा को रंग लिया था। इन कथाओं में राम अपने राजसी स्तर से उतरकर लोक स्तर पर आ गए। राम का प्रभाव इतना बढ़ा कि प्रत्येक वर तथा शिशु में राम, वधू में सीता, और पिता में दशरथ की मूर्ति आँकी जाने लगी। राम चरित लोक-कथाओं का प्रधान विषय बन गया जिसकी नींव पर राम-कथा के अनेक विशाल तथा ललित प्रासादों का निर्माण हुआ।

मैथिली लोक-गीत—राम सीता के गीत मिथिला के जन-जन के जीवन में बस गए हैं। प्रत्येक अवसर पर जनता अत्यन्त उत्साह एवं प्रेम से इनका गान करती है। यहाँ का एक प्रचलित सोहर गीत इस प्रकार है—

राम ने सीता से कहा—तुम्हारे नैहर का निमंत्रण है वहाँ जाओ न।

सीता—नैहर में न मेरी माँ है न सहोदर भाई। पिता जनक भी नहीं हैं, किसके बल पर जाऊँ?

सीता एक कोस गई, दो कोस गई, जब तीसरा कोस गई तो प्रसव पीड़ा से व्याकुल हो उठी। यह देख लक्ष्मण उन्हें अकेली छोड़ अयोध्या लौट आए।

सीता वहाँ विलाप करने लगी। उसे सुनकर वनदेवियाँ बाहर निकलीं और सीता को धीरज बँधाया।[1]

---

१. दूअरे पे अएले रघुलाल कि धनि के बोला ओल है।
धनि अएलो नइहरवा के नेओत कि हमें तुहुं जाएव है।
नय मोरा नइहर में माए भइया सहोदर है।
प्रभु जी नए रे जनक रिसि बाप केकरा बल जाइए है।
एक कोस गेलि सीता दुइ कोस ओओरो तेसरे कोस रे।
ललना हुनको उठल जुरि वेदन लछ्न तेजि आएल है।
काने सीता इकल करे अंचरे लोर पोंछति है।
—मैथिली लोकगीत, राम इकबाल सिंह राकेश : पृ० ६०

एक दूसरा गीत है जिसमें राम दातुन कर रहे हैं और उनकी दृष्टि दूर से आते हुए नाई पर पड़ती है। वह नाई से पूछते हैं—

हे नाई ! तुम किस देश के रहने वाले हो ? यह चिट्ठी किसने दी है, किस सौभाग्यवती ने पुत्र जना है और किसके घर उत्सव हो रहा है ?

नाई ने कहा—"हे राम, मैं वन का बाशिंदा हूँ। सीता ने यह चिट्ठी दी है। सौभाग्यवती सीता ने पुत्र जना है और मुनि वाल्मीकि के आश्रम में उत्सव हो रहा है।"

कौशल्या ने समाचार पाकर नाई को अंगूठी दी, सुमित्रा ने मोतियों का हार दिया। लक्ष्मण ने सिर की पगड़ी दी और गाँव के लोगों ने जय-जय के नारे बुलंद किए।[1]

राम साहित्य में मिथिलापुरी सीता की मातृभूमि मानी गई है। सीता के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप निर्दोष होते हुए भी पति राम के द्वारा उनका परित्याग है। इसीलिए मिथिलावासियों की सहानुभूति स्वतः सीता के इसी रूप के साथ अधिक है। पति द्वारा अपमानित सीता इतनी क्रुद्ध हैं कि वह स्वाभिमान के कारण नाई को विशेषरूप से निर्देश देकर भेजती हैं कि वह राम से पुत्र जन्म का समाचार न कहे।

एक गीत में राम के जनेऊ अवसर पर गुरु वशिष्ठ मोढ़े पर बैठे हैं तथा कौशल्या मंगल गीत गा रही हैं।[2]

दूसरा गीत सीता स्वयंवर का है जिसमें राजा जनक ने घोषणा की, कि जो वीर भूप इस धनुष को तोड़ेगा उसी से सीता का विवाह होगा। पृथ्वी मण्डल के बड़े-बड़े राजा स्वयंवर में आए। राम और लक्ष्मण भी विश्वामित्र के साथ आए। अहिल्या का उद्धार तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा कर राम रामचन्द्र के नाम से लोकप्रिय हुए।

राम लक्ष्मण जनक की फुलवाड़ी देखने की अभिलाषा से वाटिका में गए।

---

१. ललना दवन करैं राजा रामचन्द्र नउआ मुख हिठ पऊ रे।
कहमा के छे तुहुं नअआ त केहि पांति लिखल रे।
ललना रे किनकाहिं मेल नन्दलाल त किनका आनन्द मेल रे।
बन के त छिकि हम हजमा सिताए पांति लिखल रे।
ललना सीता के मेल नन्दलाल कि मुनि-घर अमन्द मेल रे।
कौशिला रानी देलथिन मुनरिया सुमितरा गिमलहारनु रे।
ललना लछमन देल सिर के पगिया कि नगर लोग जय बोल रे।

—राम इकबाल सिंह राकेश, पृ० ७५-७६

२. मोढ़ाच डि वशिष्ठ बइसल कौशिला मंगल गावथु है।
आहे राम जी के हइन जनउआ न देव लोग हरसित है॥

—राम इकबाल सिंह राकेश, पृ० ९३

सीता भी सखियों के साथ फुलवाड़ी गई। उनकी दृष्टि राम पर पड़ी।

राम ने धनुष तोड़ डाला। सीता ने जयमाला पहनाई। दशरथ को पाती लिख कर भेजी गई जिसमें जनक ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि मैं अपनी श्रद्धापूर्ण अभिव्यक्ति को भली भाँति लेखबद्ध नहीं कर सकता, उसमें अनेक दोष हैं। हे सम्राट् ! आप स्वयं पिंगल और व्याकरण की कसौटी पर कसकर उन्हें शुद्ध कर लें।[1]

कन्यापक्ष में वरपक्ष के प्रति जो नम्रता एवं शालीनता होती है वही जनक के इस पत्र में प्रतिबिंबित है।

मैथिली गीतों में एक बार बारहमासा भी है जिसमें रामकथा के कुछ संक्षिप्त अवतरण पाए जाते हैं।[2]

गुजराती लोक-गीत—राम सीता के पूर्व उनके पारस्परिक आकर्षण के वर्णन अनेक राम काव्यकारों ने विभिन्न रूप से चित्रित किए हैं। लोककथाओं को देखने से प्रतीत होता है कि धनुष तोड़ने की कल्पना राम-कथा में बाद में जोड़ी गई होगी।

राम और लक्ष्मण दो भाई हैं, दोनों शिकार खेलने चले हैं।
राम को प्यास लग आई, 'भ्राता लक्ष्मण पानी पिलाओ।'
वे बोले

वृक्ष पर चढ़ कर लक्ष्मण ने निगाह दौड़ाई।
कहीं भी उसे अमृतनीर नज़र न आया।
खेत के बीच एक धारा बह रही है।
दूर से जल चमक रहा है।
वृन्दावन में एक बावली है।
पनिहारियों के समेत सीता जल भरने आई।

---

१. मैथिली लोक गीत। रा० इ० रा०, पृ० १०३
सीता स्वयंवर का एक गीत, पृ० १२२ पर भी है।

२. बारहमासा—
प्रथम मास अषाढ़ हे सखि।
राम अजहुँ न आव ही।
लछ्मण के संग विकल हे सखि।
सिया अति दुख पाव ही।
× × ×
जेठा में सिया भेंट हे सखि।
राम अति, सुख पावहीं।
'दास गोपाल' एहो बारहमासा,
सुयश तिहुँपुर गावहीं।
—राम इकबाल सिंह राकेश, पृ० ३१५-३१७

घड़े का समस्त जल राम पी गए।
जल पीकर उन्होंने पनिहारि का घर बार पूछा।
'तुम किसकी पुत्री हो।
विवाह हो गया या अभी कुँवारी हो'।

'मैं जनक की पुत्री हूँ। न विवाहिता हूँ, न पति द्वारा त्यक्ता। मैं बालकुँवरी हूँ।

तदनन्तर—

नौ लाख तारे निहार रहे हैं।
श्री राम सीता को व्याह रहे हैं।[१]

बिना किसी आडंबर के प्रकृति के इस विशाल प्रांगण में राम और सीता दोनों एक सूत्र में बँध गए सदा के लिए। राम सीता के नाम युग-युग से भारतीय लोक-गीतों में अभिनंदित होते चले आ रहे हैं परन्तु कब यह सबसे पहले रूढ़ि के रूप में परिणत होने लगे थे, यह कहना अभी कठिन है।

एक गीत में राम 'रायकरन की लकड़ी की शाखा झुका रहे हैं। मालिन वहाँ आकर हार गूँथती है। सीता हार को लेकर अपने माथे पर लगाती हैं। मालिन दूसरा हार तैयार करती। इससे राम अपने सिर का शृंगार करते हैं। राम का यह रूप सीता के मन में बस जाता है। वह हठ करती हैं कि उनका विवाह राम से ही हो अन्यथा वह उम्र भर कुँवारी रहकर तपस्या का जीवन बिताएँगी। रामायण के राम धनुष तोड़कर स्वयंवर की शर्त पूरी करने पर सीता को प्राप्त करते हैं, लोक गीत के राम पर सीता स्वयं आकर्षित हो जाती हैं।[२]

एक लोक गीत में रावण जोगी का वेश बनाकर सीता का अपहरण करने आता है। इस गीत में सीता की झोंपड़ी पंचवटी के स्थान पर वृन्दावन में है। रावण कहता है 'सीता तुम राम को भूल जाओ, मैं तुम्हारे लिए चूड़ा गढ़वा दूँगा' सीता कहती हैं —'तेरे चूड़े को मैं पत्थर पर दे पटकूँगी, अरे राम तो मेरे जन्म-जन्म के पति हैं।'[३]

---

१. राम लखमण बे बन्धवा; रामैया राम।
बे भाई चाल्या शिकार रे, रामैया राम।
राम ने तरस्युं लागीयुं, रामैया राम।
लखमण वीर पानीडां पाव रे। रामैया राम।
झाड़े चढ़ी जल जोई बल्या, रामैया राम।
छोडी जायो जूके रणला भोब रे, रामैया राम।
—देवेन्द्र सत्यार्थी : धरती गाती है, पृ० १००-१०१

२. वही, पृ० १०३

३. वही, पृ० १०५

गुजरात और राजस्थान में चूड़ा स्त्रियों का प्रिय आभूषण है। लोक गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन पर प्रत्येक प्रांत ने अपना अपना स्थानीय रंग चढ़ाकर उन्हें अपना बना लिया है। यहाँ की सीता गुजराती सीता हो गई है इसलिए रावण उन्हें चूड़े का लोभ देकर आकर्षित करना चाहता है।

. अनेक राम काव्यकृतियों में सीता-निर्वासन का कारण सीता का रावण का चित्र अंकित करना दिया गया है। रावण का यह चित्र कहीं राम की बहिन शांता, कहीं कैकेयी की पुत्री काकुंजा के कहने से और कहीं सीता ने स्वतंत्र रूप से खींचा है। राम एक साधारण राजा की भाँति शंकाकुल होकर सीता को घर से निकाल देते हैं। गुजराती लोक गीतों में भी सीता-निर्वासन का कारण सीता का रावण का चित्र बनाना ही है।

रावण का चित्र देखकर राम बिगड़ गए और कहने लगे मेरे शत्रु का चित्र बना कर किसने इतना बड़ा अपराध किया है? जब पता चला कि वह चित्र सीता की कृति है तो राम लक्ष्मण से कहते हैं कि वह सीता को वन में छोड़ आए। लक्ष्मण सीता को रथ पर बिठा कर ले जाते हैं। मार्ग में अनेक अमंगल होते हैं। वापस आकर लक्ष्मण राम से कहते हैं, 'जल बिन जैसे मीन तड़पती है, ऐसी सीता को छोड़ आया हूँ।'[1]

मर्यादा पुरुषोत्तम तथा आदर्श राजा राम एवं पतिव्रता रानी सीता के विविध चित्र अनेक राम काव्यकृतियों में देखे परन्तु उनके दैनिक जीवन के विवाद, मान-मनावन के दृश्य किसी रामायणकार ने हमारे सामने नहीं रखे। इन कवियों ने ऊँचे उड़कर कल्पना आकाश की सैर तो की परन्तु पृथ्वी पर उतर कर उसके मनोहर अकृत्रिम दृश्यों के दर्शन नहीं किए। लोक-जीवन की कल्पनाएँ इतने ऊँचे नहीं उड़ सकतीं, वह उसी लोक की सैर करती हैं जहाँ वह स्वयं रहते हैं। दाम्पत्य जीवन के छोटे-छोटे झगड़े इन लोकगीतों के पट पर बड़े सुन्दर उतरे हैं।

> लौंग की लकड़ी से राम ने सीता को मारा।
> फूल की गेंद से
> सीता ने राम को मारा।
> ओ राम तुम्हारी बोली से क्रोध में आकर
> मैं पराये घर पीसने चली जाऊँगी।
> ... ...
> ओ राम तुम्हारी बोली से क्रोध में आकर
> मैं जल कर राख बन जाऊँगी।

---

१. धरती गाती है : देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० १०५

मैं इसे रमाकर भभूतिया बन जाऊँगा ॥[1]

बुन्देली गीत—भारत कृषि-प्रधान देश है इसलिए बुन्देली लोक जीवन के राम सीता भी कृषक बन गए हैं :—

राम बीज बो रहे हैं लक्ष्मण हल चला रहे हैं
सीता माता निराई कर रही है
लक्ष्मण देवर, लौट कर देखो
मेरे खेत में दो दो अंकुर निकल आए हैं ॥[2]

दैनिक जीवन के देवर भाभी के साधारण झगड़े भी इन लोक-गीतों के सीता लक्ष्मण के जीवन में उतर आये हैं :—

काहे को धनुष बांधा है लक्ष्मण
काहे को पांचों वाण रख छोड़े हैं
मृग खेत में ऐसे चरते हैं
जैसे यह अनाथ का खेत हो।
भावज, काहे को धनुष को निरखती हो
काहे को पांच वाणों का दोष निकालती हो।
परसों मैं मृग को मारने चलूँगा
मुझे दशरथ की आन है ॥[3]

---

१. लवींग केरी लाकड़ीए,
राये सीता ने मारयाँ जो।
फूल के रे दडू लिए,
सीताई वरे मारया जो।
राम तमारें बोलड़िए,
हूँ पर धरे दलवा जईश जो।
तमे जशो जो पर धरे दलवा,
हूँ घंटलो थईश जो।
राम तमारे बोलड़िए,
हूँ पर धरे खांडवा जईश जो।
... ...
हूँ भभूतियो थईक जो। —बेला फूले आधी रात : देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० १११-११२

२. राम ववैं तो लछमन, जोतिओ
सीता माता काढ़े कांद
लछमन दिउरा लौट के हरियओ
मेरी बारी दो दो कान।
—बेला फूले आधी रात, पृ० ११९

३. वही, पृ० १२०

बंगला गीत :—बंगला लोक गीतों में कौशल्या के वात्सल्य भाव से आप्लावित हृदय के कुछ अत्यंत सुन्दर चित्र हैं ।

हिरनी कौशल्या से अपने हिरन की खाल माँगती है परन्तु कौशल्या यह कह कर मना कर देती है कि उसकी खलड़ी से वह खंजड़ी मढ़वायेंगी जिससे उनका राम खेला करेगा ।[1]

एक दूसरे सोहर गीत में सीता गर्भवती हैं। उनके पुत्र होगा, इस खुशी में राजा का बहेलिया आयेगा और हिरन का शिकार करेगा। यह सोचकर हिरनी उदास हो जाती है । वह कौशल्या के पास जाती हिरन के प्राण बचा लाती है। वह हिरन से कहती है :—

दशरथ ने बाग लगवाया,
लक्ष्मण ढूंढने आया।
रघुवर की युवती स्त्री गर्भवती है
उन्हीं के लिए तुझे मरवा डालेंगे ।

फिर कौशल्या के पास जाकर वह कहती है :—

सुनो कौशल्या रानी
रानी सीता के पुत्र होगा, आज मुझे कुछ दो
सोने से मंढाऊंगी तेरे हिरन के दोनों सींग
खाने को दूँगी तिल और चावल ॥[2]

कौशल्या यहाँ प्रेम तथा सहानुभू रिपूर्ण नारी के रूप में अवतरित हुई हैं ।

उड़िया गीत :—वाल्मीकि तथा तुलसी के राम अपने वनवास के प्रथम बारह वर्ष किधर और कैसे बिता देते हैं कुछ पता ही नहीं चलता। पलक झपकते ही बारह वर्ष अनायास ही बीत जाते हैं। राम के जीवन की छोटी-छोटी बातें, हास विलासमयी बातें सुनने का पाठक के मन में लोभ बना ही रह जाता है। उत्कल प्रांत के लोक साहित्य में ऐसे अनेक चित्र कल्पना की तूलिका द्वारा अंकित किए गए हैं। यहां के 'हलिया' और 'दोली' गीतों में राम चरित्र की सुन्दर झांकियाँ मिलती हैं। यह राम धनी भी हैं और निर्धन भी। एक ओर उनके घर में सोने के दीपक हैं दूसरी ओर वह सीता को नए वस्त्र तक नहीं पहना सकते ।

राम हल चलाते हैं, लक्ष्मण जुताई करते हैं और सीता जी बीज बोती हैं राम को जब हल चलाते-चलाते देर हो जाती है तो सीता व्याकुल हो जाती हैं

१. जाहु हिरनी घर अपने,
खलरिया नाहीं देवइ हो ।
हरिनी । खलरी क खंजड़ी मिढउबइ
त राम मोर खेलिहइ हो । —धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० १३४

२. वही, पृ० १३६

और लक्ष्मण से कहती हैं 'जाओ राम को बुला लाओ।' लक्ष्मण कच्चे आम लाते हैं, सीता चटनी पीसती हैं और राम सब खा जाते हैं। उड़ीसा में पान बहुत होता है अतः यहाँ के राम भी ताम्बूल प्रेमी हैं। सीता टूटे बर्तन में दूध दुहती हैं, सारा दूध नीचे बह जाता है। राम को जब पता चलता है तो वे क्रुद्ध होते हैं। लक्ष्मण पेट भर भात भी नहीं खा पाते। राम नारियल खोजते खोजते थक जाते हैं। इस प्रकार राम चरित्र सीता की भांति बहता चलता है। प्रवाह में कहीं अकृत्रिमता नहीं है, यहाँ के राम सारी जनता के राम हैं।

उत्कल के कृषक कवियों ने अपने हाथों से रंग तैयार किया है और अपनी ही तूलिका से राम का चित्र अंकित किता है। उन्होंने न किसी से रंग उधार लिया और न तूलिका।

एक गीत में राम सीता के प्रेम की व्याख्या कवित्व की सीमा तक पहुँच गई है :—

राम जल बन गये और सीता जल तरंग
राम बादल बन गये और सीता बिजली की गरज
राम दही बन गये और सीता मक्खन
राम घर बन गये और सीता घर वाली

एक गीत में सीता कहती हैं :—'रघुमणि राम मोती हैं।'

ऐसे मोती की किसे खबर है
मैंने अपना जीवन बेचकर यह मोती खरीदा है।

सीता के मुख से राम के प्रति प्रेम की अभिव्यंजना कराने में उत्कल का ग्रामीण लोक कवि अत्यंत सफल हुआ है। राम की निर्धनता का भी एक चित्र देखिए :—

राम टूटे बर्तन में भात खा रहे हैं
सीता नये वस्त्रों के लिए तरस रही हैं
लक्ष्मण भात के लिए तरस रहे हैं......
सीता जी आँखों में आँसू भरकर दूध दुह रही हैं
वे माता के घर को याद कर रही हैं।
राम खजूर का रस पीने जा रहे हैं।

राम खोज-खोज कर थक गए पर कपिला गाय कहीं न मिली तो सीता जी रोने लगीं :—

यह जानकर लक्ष्मण ने सीता से कहा
जरा सी बात के लिए क्यों रोती हो
मैंने यह शरीर राम की सेवा ही के लिए
धारण किया है।
तुम्हारे लिए ही मैं यह गाय लाया हूँ।

लक्ष्मण यहाँ सीता के चरणों पर दृष्टि रखने वाले संकोचशील देवर नहीं हैं बल्कि राम के अनुज अतएव सीता के प्रिय अनुज हैं।

मलय चदन को लकड़ी लाकर सीता ने आग जलाई
राम को सोने की कटोरी में दूध दिया
भूखा लक्ष्मण कुटिया में झाड़ दे रहा था
सीता ने उसे देखा तो एक नारियल दे दिया
अभागा लक्ष्मण व्याकुल हो कर रोने लगा
वह और कर ही क्या सकता था ॥[1]

उड़िया भाषा की माधुरी और उत्कल के स्वप्न दोनों ने मिलकर जिस सुन्दर काव्य की सृष्टि की है, वह वास्तव में दर्शनीय है।

भोजपुरी गीत :—भोजपुर के गीतों में देव चरित के माध्यम से हमें वहाँ के निवासियों के दैनिक जीवन का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। पत्नी की प्रसव वेदना को सुनकर दशरथ व्याकुल होकर धाय को बुलाने स्वयं दौड़ जाते हैं। मार्ग पूछते हुए वह धाय के घर तक पहुँच जाते हैं। अन्त में धाय इस शर्त पर आने को तैयार होती है :—

'मेरे लिए पालकी का प्रबंध करो जिसमें लाल परदा लगा हो। मैं उसी में चढ़कर घर चलूंगी।'[2]

गंगा जी ने हंसकर कौशल्या से कहा कि तुम पर कौन सी विपत्ति आ पड़ी है जिससे तुम अपनी मुक्ति पाने के लिए स्नान कर रही हो।

कौशल्या ने उत्तर दिया कि ऐ गंगा जी, मुझे सोने की आवश्यकता नहीं है। चाँदी की तो चर्चा ही नहीं भला उसे कौन पूछता है। मुझे पुत्र की इच्छा है वही मैं चाहती हूँ।

एक गीत में राम की बहिन राम से कह सुनकर सीता को रावण का चित्र बनाने के कारण वनवास दिलवा देती है। पुत्र जन्म पर सीता नाई को अयोध्या भेजती हैं और उसे समझा देती हैं कि इस संदेश को पहले राजा दशरथ, फिर रानी कौशल्या और फिर लक्ष्मण सुनें, परन्तु राम को यह संदेश मत सुनाना। नाई इन तीनों को संदेश सुनाकर जब चलने लगा तो राम ने उसको सीता के लिए एक पत्र दिया और कहा कि मेरी ओर से कह देना कि सीता मेरे सब दोषों को क्षमा कर दे।

संदेश सुनकर सीता कहती हैं कि राम का दिया हुआ वनवास रूपी कष्ट मेरे हृदय को वेध रहा है, मैं भला अयोध्या कैसे लौट सकती हूँ।[3]

---

१. बेला फूले आधी रात : देवेन्द्र सत्यार्थी, राम वनवास के उड़िया गीत —पृ० १२०—१३०
२. भोजपुरी गीत : कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० ५६-५८
३. वही, पृ० ६०-६१

राम की ग्लानि और सीता का स्वाभिमान यही इस गीत की विशेषता है। सीता यहाँ लाज से छुई-मुई और राम की मूक परिचारिका न होकर आत्म-सम्मान से प्रदीप्त नारी हैं।

पुत्र-जन्म पर प्रसन्नता से आत्मविभोर हो उठना लोक-जीवन की विशेषता है। इस प्रसन्नता को लोक-कवि अत्यंत सुन्दरता से इस गीत में उतार लाया है।

पुत्र-जन्म के बाद सीता अयोध्या को लौट रही हैं। वह कहती हैं कि मैं हस्तिशाला में हाथी, गोशाला में गाय और भैंस नहीं देख रही हूँ। मालूम होता है जैसे हमारी अयोध्या लुट गई हो।

हाथी ब्राह्मण को, भैंस भाटों को तथा गाय साधुओं को दान में दे दी गई हैं, क्योंकि मेरे पुत्र पैदा हुए हैं।[1]

एक गीत में तालाब के किनारे राम दातौन कर रहे हैं। सीता घड़े से पानी ला रही हैं।

सीता जी कहती हैं राम का घर रहना व्यर्थ है यदि द्वार पर वह एक बगीचा लगवाते तो मैं उसे आनंदपूर्वक देखती।

राम ने उत्तर दिया, सीता के घर रहने अथवा मायके जाने से ही क्या यदि उसके पुत्र पैदा होता तो मैं सुखपूर्वक सोहर सुनता।

सीता अप्रसन्न होकर मायके चली जाती हैं। वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न होता है। सीता दासी से कहती हैं—

व्यंग्य बोलने वाले मेरे पति को बुला लाओ जिससे वह इस सुन्दर सोहर को सुनें।

पति खड़ाऊँ पर चढ़ा हुआ चट-चट करता हुआ आँगन में खड़ा हो गया और स्त्री से बोला—

हे प्यारी, तुम जीत गई और मैं हार गया।

पति ने शीघ्र माली को आज्ञा दी, तुम लोग शीघ्र जाओ और एक बगीचा लगाओ, जिससे सीता उसे देखकर प्रसन्न होवें।[2]

एक अन्य गीत में जब राम सीता को पालकी पर विदा कराकर लिए जा रहे हैं, रास्ते में परशुराम मिल जाते हैं। सीता पालकी से निकलकर परशुराम से प्रार्थना करती हैं कि राम अभी बालक हैं और धनुष भारी है, इसे तोड़ने में विलंब अवश्य होगा।

परशुराम झगड़ने लगते हैं। उनका पहला बाण यमुना में, दूसरा कुरुक्षेत्र में और तीसरा फिर यमुना के जल में गिरा। इतने में परशुराम का धनुष टूट गया और वे भाग गए।[3]

---

१. भोजपुरी गीत : कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० ६४-६५
२. वही, पृ० ७९-८०
३. वही, पृ० १५९-१६०

युक्त प्रांत के गीत—युक्त प्रांत के अनेक गीतों में लोक-मानस ने जहाँ-तहाँ गंगा की चर्चा की है। एक गीत में सीता कहती हैं—मैं गंगा जल माँगती हूँ और हे ननद ! सामने की कोठरी लिपवा दो मैं रावण का चित्र बनाऊँगी।

मागों न गाँज गंगुलिया गंगा जल पानी।
ननदी समुहे को ओवरी लिपाउ मैं रखना उरहों।[1]

एक गीत में उर्मिला की आंखों में आँसू हैं। वहाँ वह लक्ष्मण की पत्नी के रूप में चक्की पीसती दिखाई गई है—घोड़े को लक्ष्मण ने बड़ वृक्ष की जटा से बाँध दिया है। झपट कर लक्ष्मण भीतर चला गया, पिसनहारी के आँसू पौंछ रहा है—

जाँत चलता नहीं ओ स्वामी न चलती है मकरी।
जो स्वामी जाँत पकड़ कर मैं जाँत घर में रो रही हूँ।
बाँह पकड़ कर लक्ष्मण ने उसे अपनी जाँघ पर बैठा लिया।
अपने गमछे से लक्ष्मण उसको आंखों के आँसू पोंछ रहे हैं।[2]

अलंकार विहीन इस गीत का अपना एक निजी सौंदर्य है।

आन्ध्र गीत—आंध्र प्रान्त के लोक-गीत उर्मिला के प्रति करुणा एवं सहानुभूति से ओतप्रोत हैं। लक्ष्मण की इस प्रेयसी के लिए सारी रामायणें मौन हैं। सीता के अस्तित्व के समक्ष उसकी भगिनी उर्मिला का सारा अस्तित्व ही दब गया है। सीता के विवाह मण्डप के नीचे हम यत्र-तत्र उर्मिला का नाम सुन लेते हैं कि लक्ष्मण के साथ उर्मिला का विवाह भी सम्पन्न हो गया परन्तु उसके बाद उर्मिला राम काव्य की पटभूमि से तिरोहित हो जाती है। क्रौंच वियुक्ता क्रौंची पर वाल्मीकि की दृष्टि परन्तु पति वियुक्ता इस उर्मिला पर उनकी दृष्टि नहीं जाती। भवभूति को एक बार उर्मिला का ध्यान अवश्य आता है पर वह क्षणिक है। वहाँ भी सहसा बिजली के समान एक बार कौंधकर वह विस्मृति के गगन में तिरोहित हो जाती है।

चित्र देखती हुई सीता एक चित्र की ओर संकेत करके लक्ष्मण से पूछती है :

---

१. धीरे बहो गंगा : देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ८

२. छोड़वा चढ़ल हो लछुमन करहू पुद्धमरिआ
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जंत सरिआ
तोहूँ नयं जानल हो लछुमन, तोहरे तिरिअवा
जंतवा के दूखे हो रामा, रोव जन्तसरिआ
... ...
वहियां पकरलन लछुमन, जंघिया बइठओलन
अपने गंमछवे हो लछुमन, पोंछे नैना लोखा
धीरे वहो गंगा : देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ५१

'वत्स यह और कौन है?' लक्ष्मण लजा जाते हैं। उनके हृदय में लहरें उठने लगती हैं—

'अये उर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः संचारयामि'[1]।

यह सोचकर वह परशुराम का चित्र दिखाने लगते हैं और यहीं भवभूति की करुणा की भी इति हो जाती है।

अयोध्या को सूना करके जब दोनों राजकुमार वनवासी हो जाते हैं तो सीता उनके साथ हो लेती है परन्तु उस दिन वह वृन्तच्युत कलिका उर्मिला राजप्रासाद के किस कक्ष में बैठी अश्रु-विसर्जन कर रही थी यह किसी ने नहीं देखा।

आन्ध्र के लोक-गीत में उर्मिला के प्रति करुणा साकार हो उठी है। अपनी विरह की पीड़ा को सुलाती वह स्वयं सो गई है।

अभिषेक के पश्चात् सम्राट् श्री राम दरबार में बैठे हैं। भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण आदि सभी समुचित रूप से सेवा में लगे हैं। समस्त दरबार की ओर देखकर आत्म-विश्वास से दीप्त सीता अन्दर आई और राम से विनती की—

'तब जब हम वन को गये थे, प्रिय देवर के साथ।
उसे चलते देख उसकी पत्नी उर्मिला भी चल पड़ी थीं।

'नहीं, तुम यहीं रहो', उसे यह कहकर लक्ष्मण हमारी सेवा में आ गया था।

उस दिन से वह नारी आँखें मीचे अपने पलंग पर सोई पड़ी है। सीता के शब्दों से प्रभावित होकर राम लक्ष्मण को उर्मिला के पास जाने की आज्ञा देते हैं,

'जल्द जाओ लक्ष्मण उस सुन्दरी से परे रहना वाजिब है क्या।
बहुत समय हो गया अभी अपनी प्रेयसी के पास जाकर
रसीली बातचीत से उसकी विरह पीड़ाएँ शान्त करो, जाओ'

लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते हैं। पत्नी के पलंग पर बैठकर वह विरह सहित बोला

—अमृत वरसानी, मेरे साथ बोल मेरी आत्मा में ठंडक पहुँचा।
छोटे कमलों से हैं तेरे पैर, इन पर स्वर्ण पहन।

उर्मिला किसी अन्य व्यक्ति को समझकर चेतावनी देती हुई कहती है —

यह नारी जो अपने आपको भूली पड़ी थी काँपने लगी।
ओ पुरुष तू कौन है? शरारत करने आया है।
·········अकेली मेरी बहिन ही सुनेगी तो धरती पर तेरी जान बाकी न छोड़ेगी।'

उर्मिला आँखें बंद किए ही बोल रही है और लक्ष्मण चुप हैं।

---

1. उत्तर रामचरित, पृ० ३२
(चन्द्रकला-विद्योतिनी टीका)

बेगानी नारी पर मन रखने से ही इन्द्र का समस्त शरीर क्या
हीन नहीं हो गया था।
पराई स्त्री पाने की इच्छा से ही क्या रावण अपने वंश सहित
नष्ट नहीं हो गया था।

लक्ष्मण—

तुमसे बिछुड़ कर प्राण सखी न मैं कभी सोया और न मैंने कुछ खाया।

फिर लक्ष्मण आत्महत्या की बात पर आ गए। उर्मिला के हृदय में इस प्रकार प्रेम जगाकर वह उसे एकदम आँखें खोलकर सत्य और असत्य की विवेचना के लिए एक झटका देते हैं।

'यदि तुम उठोगी नहीं ओ प्राण सखी मैं प्राण नहीं थाम सकता।'

यह कहते ही लक्ष्मण की आँखों में आँसू भर आए।

म्यान से कटार निकाल लक्ष्मण बोला—'मैं अपनी हत्या करूँगा।' यह उर्मिला की परीक्षा थी।

उसके यों तर्क करने पर उर्मिला चौंक कर उठ खड़ी हुई। क्यों चिंतित हो बाले? यों ढारस बंधाते हुए बोला।

ओ तरुणी चौदह वर्ष तुमसे बिछुड़, मैं किसी तरह जीवित रहा।
आहार और निद्रा मैंने नहीं जानी, ओ नारी मुझे तुम्हारी सौगंध॥[1]

इसके बाद उर्मिला के शृंगार और भोजन से सम्बन्धित गीत हैं। एक गीत में सीता और शांता का वार्तालाप है—

इन्द्र तक को मोह लेने वाले तुम्हारे चाँद से भाई जो हैं।
मेरे चारों भाइयों को मोह लिया तुमने कहीं।
कुदृष्टि न लगे तुम सी होशियार स्त्रियों को।

सीता—ऋष्यशृंग जो मेरे लिये भाई सम है वन में।
तुझसे मिलकर कभी भी तो तुझे तनहा नहीं छोड़ता।
उस भोले तपस्वी का तुम बेहद मजाक उड़ाया करती हो।
इसे सुन शांता बोली—सीता ओ मेरी भौजी, ओ धरती पुत्री।
ईश्वर की कृपा से तुमने हमारे घर में प्रवेश किया है।
ओ कोमलांगी सीता तुम हमारी वधू बनी तो हमारा घर पवित्र हुआ॥[2]

इस गीत में राम की तुलना इन्द्र से की गई है। इससे अनुमान होता है कि यह गीत उस समय का होगा जब राम विष्णु के अवतार नहीं माने जाते थे।

---

१. धीरे बहो गंगा : देवेन्द्र सत्यार्थी, उर्मिला का आंध्र लोकगीत, पृ० ५२-५७

२. वही, पृ० ६४

सजे हुए कक्ष में सज्जित शय्या पर लक्ष्मण और उर्मिला बैठे हैं। उर्मिला पूछता है, सिंह से बहादुर तुम वहाँ थे फिर सीता कैसे चुरा ली गई थी। उत्तर में लक्ष्मण अयोध्या से जाने से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक की मुख्य घटनाएँ सुना देते हैं।

एक आंध्र गीत का नाम 'लंकायागम' है। इसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि लक्ष्मण चौदह वर्ष न वन में सोए और न उन्होंने कुछ खाया। राम कहते हैं मेघनाद से वही लड़ सकता है जिसने चौदह वर्ष तक न कुछ खाया हो, न एक क्षण के लिए सोया हो। लक्ष्मण कहते हैं मैं नियमवान हूँ। वर्षों से न मैंने कुछ खाया है न सोया हूँ। राम पूछते हैं और वे अमृत पाणी केले जो मैंने खुद तुमको दिए थे। इस पर लक्ष्मण अपनी जंघा काट कर केले निकाल कर दिखाते हैं।

इस प्रकार लोक गीतों में राम-कथा का अनन्त विस्तार उपलब्ध है। वह उन राम-कथाओं की अपेक्षा कहीं अधिक हृदयग्राही हैं जिनको कवियों ने अपनी बुद्धि की करामातें दिखाकर कृत्रिम बना दिया है। जो नैसर्गिक सौन्दर्य इनमें पाया जाता है उनमें वह एक स्वप्न है—केवल स्वप्न।

केशवदास पर हिन्दी के राम साहित्य का प्रभाव

राम साहित्य के महान् कलाकार तुलसी ने रामचरितमानस में कहा है—

> जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।
> भए जे अहहिं जे होइहिं आगे। प्रनवऊँ सबहि कपट सब त्यागे।[1]

अर्थात् भाषा में जितने भी कवियों ने भगवान् राम के चरित्र का वर्णन किया है उन सबको मैं प्रणाम करता हूँ। यद्यपि सूरदास और तुलसीदास के अतिरिक्त भाषा में राम के व्यापक चरित्र का वर्णन करने वाले अन्य किसी प्रमुख कवि का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु तुलसी की इस उक्ति से अनुमान होता है कि उस समय तक राम सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, जिनको वह सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

अकबर ने सन् १५८४ में मुल्ला बदायूंनी को वाल्मीकि रामायण के अनुवाद का उत्तरदायित्व सौंपा था। बदायूंनी ने लिखा है "यह २५ हज़ार श्लोकों की पुस्तक महाभारत से भी पुरानी है। एक कहानी है—रामचन्द्र अवध का राजा था। उसको राम भी कहते हैं और अल्लाह की महिमा का प्रकाश समझकर पूजते हैं। उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यह है। उसकी रानी सीता पर आशिक हो उसे एक दस सिर वाला देव हर ले गया। वह लंका के टापू का मालिक था। रामचन्दर अपने भाई लखमन के साथ उस टापू में पहुँचा। बंदरों और रीछों की बेशुमार लश्कर जमा की।··· चार सौ कोस का पुल समुंदर पर बाँधा। किन्हीं किन्हीं बदरों के बारे में कहते हैं

१. रा० चा० मा०, हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० ३०

कूद-फाँद कर पार हो गए। कुछ अपने पाँवों से पुल पर चलकर उतरे। ऐसी बुद्धि विरोधी बातें बहुत हैं जिन्हें अक्ल न हाँ कहती है और न ना। किसी तरह रामचंदर बंदर पर चढ़कर पुल से उतरा। एक सप्ताह घमासान लड़ाई हुई। रावण को बेटों-पोतों समेत मारा। हज़ार वर्ष का खानदान बरबाद कर दिया और लंका उसके भाई को देकर लौटा। हिन्दुओं का विश्वास है कि रामचन्दर पूरे दस हज़ार वर्ष हकूमत करके अपने ठिकाने पर पहुँचा । ये बातें सच नहीं, केवल कहानी हैं, केवल ख़याल हैं जैसे शाहनामा और अमीर हमजा का किस्सा।"[1]

मुल्ला बदायूंनी हिन्दुओं और उनकी संस्कृति का कट्टर विरोधी था इसीलिए अकबर का हिन्दुओं के प्रति उदार व्यवहार उसे तनिक भी नहीं भाता था। वाल्मीकि रामायण के मूल कथानक में राम विष्णु के अवतार नहीं हैं परन्तु बदायूंनी के अनुसार उस समय राम की मान्यता अवतार रूप में लोकप्रसिद्ध हो चुकी थी। मुल्ला के अनुवाद और तुलसी के मानस में अधिक वर्षों का अंतर नहीं है अतः मानस उस समय तक इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ होगा। इससे अनुमान होता है कि तुलसी के अतिरिक्त भी कुछ राम काव्यकार थे जिन्होंने इस कथा को जन जन तक पहुँचा दिया था परन्तु दुर्भाग्य से वे रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।

भाषा के उपलब्ध प्रमुख ग्रन्थों में सर्वप्रथम सूरसागर के नवम स्कंध में राम-कथा मिलती है। सूरदास वस्तुतः कृष्ण के उपासक हैं अतः सूरसागर में राम-कथा प्रसंगवश ही आ गई है। राम-कथा का वर्णन करना सूरदास का लक्ष्य नहीं है जिस प्रकार कबीरदास केवल परब्रह्म परमेश्वर की सत्ता मानते हैं और राम, कृष्ण, साहब खुदा को पृथक्-पृथक् न मानकर उसी परमेश्वर के विभिन्न नाम मानते हैं उसी प्रकार सूरदास भी राम और कृष्ण को एक ही ब्रह्म का रूप समझते हैं।

सूरसागर की रचना लोकरक्षा के हेतु नहीं हुई थी इसलिए उनकी राम-कथा भी नीति के उपदेश अथवा भक्ति के सिद्धान्तों से भरी हुई नहीं है। यथार्थ में सूरदास की राम-कथा एक विनय-पत्रिका के रूप में लिखी गई है जिसे सूरदास सीधे राम के पास पहुँचाना चाहते हैं। सूरदास कहते हैं—

पतित उधारन नाम सूर प्रभु वह रुक्का पहुँचाऊँ।

सूरदास दरबारी कवि नहीं थे और न ही उन पर दरबारी सभ्यता का कोई प्रभाव पड़ा इसलिए उनकी राम-कथा स्वच्छंद गति से प्रवाहित होती है। राम के दरबार तक पहुँचने के लिए उन्हें मध्यस्थ कर्मचारियों की कोई आवश्यकता नहीं है। तुलसीदास इस प्रभाव से मुक्त नहीं थे इसलिए कभी विनय-पत्रिका में वह सीता की विनती कर राम से सिफारिश करने का अनुरोध करते हैं और कभी हनुमान चालीसा पढ़कर उनके द्वारा राम तक पहुँचने का प्रयत्न कर हैं।

---

१. अकबर : राहुल सांकृत्यायन, पृ० १२४

सूरदास ने राम-कथा का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है परन्तु उसमें उनके मनोवैज्ञानिक स्थलों की परख अनुपमेय है। राम-कथा के कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिन पर सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि की दृष्टि नहीं गई, जैसे सीता हरण की घटना राम के जीवन में एक बहुत बड़ा अपमान है। राम कथाकारों ने रावण की मृत्यु के अनन्तर जैसे इस अपमान का अंत समझ लिया और राम के कर्त्तव्य की इतिश्री हो गई। कुछ कवियों ने सीता के चरित्र पर अपवाद लगाकर और कुछ ने अन्य पात्रों के माध्यम से सीता के वनवास की घटना का भी वर्णन किया। सीता के वियोग में राम को साधारण नायक बनाकर उनके विरह का वर्णन भी साहित्य में पर्याप्त हुआ परन्तु अपमान आहत राम के हृदय में झाँकने की चेष्टा किसी कवि ने नहीं की। सूरदास समझते हैं कि यह एक ऐसी घटना है जिसे राम इस जन्म में तो क्या जन्मान्तरों तक भी नहीं विस्मरण कर सकते इसीलिए जब यशोदा बालक कृष्ण को राम की कथा सुनाती हैं तो सीता हरण का प्रसंग आते ही कृष्ण उत्तेजित हो जाते हैं। उनका अपमान-दग्ध हृदय तुरंत ही धनुष और लक्ष्मण की पुकार मचाने लगता है।[1]

इसी प्रकार का एक दूसरा अवसर रावण की मृत्यु का है। विभीषण ने विश्वासघात करके अग्रज का वध करवाया परन्तु उसे सभी कवियों ने राक्षस वंश में उत्पन्न राक्षस समझकर उसकी कोमल भावनाओं की ओर तनिक भी ध्यान न देकर उसे केवल एक स्वार्थी और राज्याकांक्षी के रूप में चित्रित किया है। सूरदास का कोमल मन उसमें मानवी दुर्बलताओं के साथ मानवी गुणों को भी देखता है। रावण की मृत्यु के पश्चात् विभीषण की ग्लानि, पश्चात्ताप और खेद का सूरदास ने बड़ा मंजुल रूप दिखाया है। वह अपने मृत भाई का रुण्ड मुण्ड लेकर विलाप करता हुआ अनायास ही हमारा मन खींच लेता है। वनवास से लौटने पर जब राम भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ भरत से मिलकर राजप्रासाद के द्वार पर पहुँचते हैं तो कौशल्या और सुमित्रा को ही आरती का थाल सजाए देखते हैं, कैकेयी को नहीं। उस समय उपस्थित जनसमुदाय के सम्मुख कैकेयी को अनुपस्थित रख कवि ने उसके अनुताप को सहस्रगुना प्रभावपूर्ण बनाकर उसके अपमान का अवसर भी बचा दिया है।

राम-कथा में सूरदास शृंगार पक्ष के कवि न होकर करुण रस के कवि हैं परन्तु कवि की यह करुणा अश्रुधारा प्रवाहित करने वाली न होकर स्वाभिमान एवं प्रीति को जाग्रत करने वाली है। द्रोणगिरि पर्वत से लौटते हुए हनुमान पुरवासियों को सीता हरण और लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुनाते हैं। उस समय माताओं तथा पुरजनों का विलाप कवि की सहृदयता का परिचायक है परन्तु उसी समय कवि हमें और भी उदात्त भावनाओं का दर्शन कराता है। कौशल्या की पुत्र-वधू का अपहरण और सुमित्रा के पुत्र की मूर्च्छा दोनों ही हृदयविदारक दुःख हैं, परन्तु दोनों माताओं

१. सूरसागर, सु० स्कंध, ३.५

की वेदना के साथ-साथ उनका कर्त्तव्य दिखाकर कवि ने दोनों को महामानवी का रूप दे दिया है। कौशल्या हनुमान से कहती है कि तुम राम से जाकर कहना कि वह अपने प्राणों की चिंता न कर अपना सर्वस्व देकर भी सुमित्रा सुत लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा करें 'नातरु सूर सुमित्रा सुत पर वारि अपुनयो दीजै।'[1] उधर सुमित्रा अपना संदेश भेजती हैं, लक्ष्मण की रक्षा के लिए नहीं बल्कि राम के दर्शन के लिए।

'सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु दुख समूह उर गादे'[2]

तुलसीदास ने अपनी राम-कथा में कथा के साथ नीति और राजनीति का भी समावेश कर लिया था परन्तु सूरदास की राम-कथा समाज के प्रति किसी आक्रोश अथवा सुधार भावना से नहीं लिखी गई इसलिए तुलसीदास ने राम के ऐश्वर्य वर्णन के रूप में तत्कालीन विलासी मुगल सम्राट् का चित्र खींचा और राक्षसों के माध्यम से उनके अत्याचारों का वर्णन भी किया। सूरदास ने राम के वैभव का वर्णन न कर उनकी करुणा और कोमलता का ही रूप आँका और शेष प्रसंगों का केवल उल्लेख मात्र कर दिया।

सूरदास ने शेष कथाओं के समान ही राम-कथा में भी भागवत का अनुसरण किया। उन्होंने भागवत का शब्दानुवाद न कर केवल उसकी मूल भावनाओं को ग्रहण कर लिया है। उनकी राम-कथा संक्षिप्त है और शेष पदों की ही तरह गीति शैली में लिखी गई है। इससे राम-कथा के बहुत से प्रसंग छूट गए हैं। सूरदास की दृष्टि कथानक के इन विशृंखल सूत्रों को जोड़ने की ओर नहीं है परन्तु फिर भी सभी मर्मस्पर्शी स्थलों पर उनकी पहुँच है। कृष्ण के समान राम के बालरूप पर इनकी लेखनी अधिक देर न रुक दो-एक पदों में ही राम की मनोहर मूर्ति दिखाकर आगे बढ़ जाती है।

कृष्णोपासक होने के कारण सूरदास की राम-कथा पर, प्रायः विद्वानों ने अधिक ध्यान नहीं दिया है परन्तु राम-काव्य की शृंखला में यह अत्यावश्यक कड़ी है जिसके बिना हिन्दी राम साहित्य का इतिहास अपूर्ण ही है।

सूरदास के पश्चात् राम-साहित्य में उसके महान् कलाकार तुलसी का उदय हुआ। सूरदास का साहित्य उस समय प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया था परन्तु तुलसीदास के समय में देश की राजनीतिक स्थिति जटिल हो जाने के कारण उनका लक्ष्य धार्मिक उद्बोधन के साथ राजनीतिक भी हो गया। दूसरे तुलसी प्रधानतः भगवान् के राम रूप के उपासक थे इसलिए उनका अधिकांश साहित्य राम से ही सम्बन्धित है और कृष्ण का वर्णन उसी प्रकार आकस्मिक है जैसे सूर साहित्य में राम का वर्णन।

---

१. सूरसागर, ९।१५३
२. सूरसागर, ९।१५४

तुलसी और केशव यद्यपि समकालीन माने जाते हैं साहित्य के क्षेत्र में तुलसी केशव के पूर्व ही अवतरित हो चुके थे और उनके 'रामचरितमानस' की रचना 'रामचंद्रिका' से लगभग सत्ताइस वर्ष पूर्व हो चुकी थी। जिस समय केशव ने अपने राम-काव्य की रचना आरम्भ की उस समय तुलसी का अधिकांश राम-साहित्य प्रकाश में आ चुका था। तुलसीदास के राम-काव्यों में तुलसी के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं—लोक-सुधारक तुलसी और कवि तुलसी; इसलिए उनकी भक्ति के भी दो रूप हो गए हैं, दास तुलसी और सखा तुलसी। रामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावली' में हमें उनके प्रथम रूप की तथा 'गीतावली', 'जानकी मंगल', 'रामलला नहछू', 'बरवै रामायण' आदि में द्वितीय रूप की प्रधानता प्रतिबिम्बित होती दिखाई देती है।

तुलसी का साहित्य समन्वय का साहित्य है। उन्होने अपने युग की बहुत-सी विरोधी धाराओं को एकत्रित कर एक ऐसी संयुक्त धारा निकालनी चाही जहाँ सबका सम्मेलन होकर विरोध दूर हो जाए। उस समय कबीर आदि संत कवियों के प्रयासों से समाज के निम्न वर्ग में जाग्रति हो रही थी इसलिए वर्णाश्रम व्यवस्था शिथिल होने लगी थी। समाज में पारिवारिक जीवन की मर्यादा क्षीण होने लगी थी और मुगल शासकों के राज्य-मोह के कारण देश में निरन्तर मारकाट हो रही थी। तुलसीदास ने राम-काव्यों के सहारे जनता के विचलित विश्वासों को स्थिर बनाकर राम-कथा का एक ऐसा अमोघ अस्त्र निकाला जिससे विशृंखलित होती हुई हिन्दू जाति बहुत कुछ शृंखलाबद्ध हो गई। उन्होंने राम के रूप में एक ऐसे लोकपालक का आदर्श देशवासियों के समक्ष रखा जो समाज में रहकर मर्यादा का पालन करते है और राजा बनकर देश में राम राज्य की स्थापना करते हैं। कबीरदास जिस ज्ञान और वैराग्य की दीक्षा देकर जनता को कठोर साधना मार्ग पर अग्रसर कर गए थे वह अधिक दिन तक स्थायी न रह सका। सूरदास ने कृष्ण भक्ति में शृंगार रस का समावेश कर शुद्ध भक्ति का द्वार अवरुद्ध कर दिया था। अतः तुलसी ने राम के द्वारा ज्ञान भक्ति और कर्म में सामंजस्य स्थापित कर और राम से शिव की उपासना करवाकर शैवों और वैष्णवों के विरोध को शान्त कर भक्ति का एक सरल मार्ग निकाला। उन्होंने—

सियाराम मय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

कहकर सारे संसार को ही राम सीता मय कर दिया और जन बोली में समझाकर उन्हें जन-जन तक पहुँचा दिया।

दूसरी ओर तुलसी का कवि रूप आता है परन्तु कविता उनका केवल साधन है, वास्तविक साध्य है राम भक्ति। 'रामचरितमानस' महाकाव्य है और तुलसी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। इसमे काव्य शक्ति का पूर्ण प्रसार मिलता है और इसमें सभी

रसों की आनुपातिक व्यंजना मिलती है। तुलसीदास ने अवधी और ब्रज भाषा दोनों में राम काव्य की रचना कर सिद्ध कर दिया कि भाषा भावों की अनुगामिनी है उसकी स्वामिनी नहीं। दोनों भाषाओं पर कवि का समान अधिकार है। प्रधान रूप से अवधी के कवि होते हुए भी उनकी 'गीतावली' में ब्रज भाषा का वही सौन्दर्य है जो सूर की पदावली में। तुलसी ने उस समय प्रचलित सभी शैलियों में रचना की। उन्होंने जायसी की दोहा-चौपाई पद्धति पर 'राम-चरितमानस', गंग की कवित्त-सवैया प्रणाली पर कवितावली, सूरसागर की पदावली में 'गीतावली', रहीम की बरवै शैली में 'बरवै रामायण' की और लोक-गीतों की पद्धति पर 'जानकी मंगल' की रचना की।

तुलसी के राम साहित्य पर जहाँ 'मानस' में अध्यात्म रामायण और पुराणों का विशेष प्रभाव लक्षित होता है वहाँ उनके अन्य ग्रन्थों में संस्कृत के ललित साहित्य तथा कृष्ण साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है। अध्यात्म रामायण और पुराणों की रचना धार्मिक उद्देश्य से हुई थी अतः 'मानस' पर उन्हीं की छाप अधिक है परन्तु बाद में हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव और सूरसागर के अनुकरण पर तुलसी ने राम के राज रूप को महत्त्व देकर उनके चरित्र में भी शृंगार का कुछ पुट दे दिया। 'मानस' के असुर संहारक राम 'गीतावली' में 'राजा राम काम सत सुन्दर' होकर कामदेव हो गये और पुरनारियों के साथ झूला झूलने लगे। ऐसे स्थलों पर तुलसी राम का वर्णन दास्य भाव से न कर सूरदास के समान सखा भाव से करने लगते हैं और यहाँ उनका उपदेशक रूप हटकर शुद्ध साहित्यिक रूप उद्भासित होने लगता है।

सूरदास तथा तुलसीदास के राम साहित्य के अतिरिक्त अन्य राम-काव्यों में उल्लेखनीय ग्रन्थ रामानन्द के वैष्णव मतांतर भास्कर तथा रामार्चन पद्धति एवं कबीर की कुछ साखियाँ हैं। ये धार्मिक ग्रन्थ हैं और इनमें राम को विष्णु का अवतार मानकर वैष्णव विचारों का प्रतिपादन किया गया है। कबीर ने तो राम को ब्रह्म का एक रूप मानकर उन्हें निर्गुण रूप से ही मान्य समझा पर वह सन्त कवि थे और उनकी रचनाओं का महत्त्व धार्मिक दृष्टि से ही है, साहित्यिक दृष्टि से नहीं।

केशव के समकालीन मुनिलाल नामक किसी कवि ने संवत् १६४२ में एक ग्रन्थ 'रामप्रकाश' लिखा था जिसमें राम-कथा का वर्णन था। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भूपति की दोहा-चौपाई पद्धति में लिखी 'रामचरित रामायण' नामक एक रचना का उल्लेख है परन्तु डा० श्यामसुन्दर दास, डा० दीनदयाल गुप्त आदि विद्वानों ने उसका समय संवत् १७४४ माना है।[1]

केशवदास संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे अतः उन पर संस्कृत का प्रभाव अधिक पड़ा है। 'रामचंद्रिका' में कथानक की दृष्टि से उन पर हिन्दी साहित्य का कोई ऋण नहीं है क्योंकि सूर और तुलसी ने जिन संस्कृत ग्रन्थों को आधार माना था, केशव ने स्वतन्त्र रूप से उनका अध्ययन कर अपनी रचनाओं में उपयोग किया था।

---

१. केशवदास : ही० ला० दी०, पृ० ६

'रामचंद्रिका' की रचना के उद्देश्य और उनके धार्मिक विचारों पर अवश्य कबीर आदि संत कवियों और विशेष रूप से तुलसी के विचारों की छाप दिखाई देती है। 'रामचंद्रिका' राम भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ है और रुहेलखण्ड तथा बुन्देलखण्ड में उसका धार्मिक महत्त्व अभी तक वर्तमान है। तुलसी और केशव में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि तुलसी समाज के निर्धन वर्ग के कवि हैं और केशव सामंत वर्ग के। तुलसी ने 'मानस' की रचना साधारण अशिक्षित जनता के लिए की और केशव ने शिक्षित वर्ग के लिए, अन्यथा दोनों के धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोणों में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। केशव की धार्मिक भावनाओं को तुलसी ने काफी प्रभावित किया है परन्तु तुलसी का लक्ष्य था भारतीय आदर्शों और संस्कृति की रक्षा करना और तुलसी को इसमें पर्याप्त सफलता मिली। केशव ने अपना लक्ष्य बनाया भारतीय साहित्यिक आदर्शों तथा परम्पराओं की रक्षा करना। इसी से उन्होंने काव्य शास्त्रों का अध्ययन कर धर्म और काव्य में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

भक्ति तथा दर्शन के क्षेत्र में केशव स्वामी रामानन्द और तुलसी से ही सहमत हैं। उन्होंने उसी प्रकार राम के नाम की महिमा का वर्णन कर तथा तत्कालीन पाखंडों का दिग्दर्शन कराकर भक्ति मार्ग को सरल बनाने की चेष्टा की जिस प्रकार रामानन्द तथा तुलसी ने। वर्ण-व्यवस्था तथा गृहस्थाश्रम में केशव की निष्ठा तुलसी के ही समान है। उसी प्रकार वह जीवन को अनेक दुःखों से पूर्ण मानकर उससे निर्लिप्त रहने की शिक्षा देते हैं। राजनीतिक आदर्शों को भी केशव ने 'मानस' के आधार पर ही पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने तत्कालीन राजाओं के दोषों को दिखाकर 'रामचंद्रिका' में राजा राम का आदर्श रखा। केशव ने नाथपंथी जोगी और हठयोगियों की शिक्षा को अव्यावहारिक देखकर गृहस्थाश्रम में रहकर ही राम द्वारा राज्यश्री की निन्दा करवाकर भोजों के प्रति निर्लोभ दिखाया परन्तु केशव ने राम को ही उससे उदासीन दिखाकर इसकी भी आवश्यकता नहीं समझी।

धार्मिक विचारों के अतिरिक्त केशव पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव एक और दृष्टि से भी समझा जा सकता है। केशव ने राम-कथा के बहुत से प्रसंगों को या तो छोड़ दिया है अथवा उनका संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है। तुलसी तथा सूर आदि कवियों ने राम-कथा के सम्बन्ध में इतना अधिक लिख दिया था कि केशव ने उन्हीं अंशों को पुनः विस्तार देने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। इसीलिए संभवतः उन्होंने राम-कथा के उन्हीं स्थलों को विस्तार दिया जो पूर्व कवियों ने अछूते छोड़ दिए थे।

तीसरा अध्याय

केशव-कालीन युग

केशव का समय—भारतीय इतिहास लेखक दीर्घ काल तक इतिहास लेखन के प्रति उदासीन रहे। इसी से प्रायः प्राचीन कवियों के जन्म की तिथियों से हम अभी तक अनभिज्ञ हैं। ये कवि अपनी यश-प्रसार की चिन्ता न कर या तो पारलौकिक सत्ता का कीर्तन करते थे अथवा काव्य-साधना करते थे। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे ', 'हौं प्रभु सब पतितन कौ टीकौ', अथवा 'उपजे तेहि कुल मन्दमति शठ कवि केशव दास' वाक्यों द्वारा नम्रता निवेदन करके वे अपने इष्टदेव का वर्णन करने में दत्तचित्त हो जाते थे। केशवदास ने भी 'जहाँगीर जस चंद्रिका'. 'रतनबावनी', 'कविप्रिया' आदि ग्रन्थों में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण दिया है परन्तु उनमें किसी की भी कोई तिथि नहीं दी जिससे उनके समय के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा निर्धारित की जा सके। उन्होंने अपने वंश का परिचय रामचंद्रिका में अवश्य दिया है परन्तु जन्म तिथि के सम्बन्ध में वह नितान्त मौन हैं।

केशवदास के जन्म के विषय में विद्वानों में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। गणेश प्रसाद द्विवेदी ने केशव का जन्म सं० १५०८ वि० में माना है। छत्रपुर निवासी बाबू गोविन्ददास जी का अनुमान है कि केशव का जन्म सं० १५६४ वि० में हुआ। स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, मिश्रबन्धु आदि अधिकांश विद्वानों ने केशवदास का जन्म सं० १६१२ के लगभग माना है। गौरीशंकर द्विवेदी तथा लाला भगवानदीन ने यह तिथि सं० १६१८ में मानी है।[1] प्रायः इन सब विद्वानों ने अपने अनुमान के आधार पर केशव की जन्म तिथि के केवल संवत् दिए हैं परन्तु उनकी पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नहीं दिए हैं।

केशवदास की उपलब्ध रचनाओं में हमें जिस रचना के दर्शन सर्वप्रथम होते हैं वह है 'रसिक प्रिया'। रसिक प्रिया उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ है। इसकी रचना संवत् १६४८ में हुई थी।[2] इसके प्रत्येक प्रकाश के अन्त में केशवदास ने 'इति श्रीमन्महाराजकुमारइन्द्रजीतविरचित्तयां रसिकप्रियाया'[3] लिखा है। इसकी रचना

---

१. केशवदास; ही० ला० दी०, पृ० ३१

२. संवत् सोरह सो बरस, बीते अड़तालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी, वार बरन रजनीस।

रसिकप्रिया, पृ० ११

३. वही, पृ० २०

मुख्य रूप से इन्द्रजीत के ही लिए हुई थी इसलिए केशव ने 'रसिक प्रिया' का इन्द्रजीत द्वारा विरचित होना लिखा है। पूना के 'भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' में 'रामचंद्रिका' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मैंने देखी हैं उनमें भी इसी प्रकार 'रामचंद्रिका' को इन्द्र-जीत द्वारा विरचित बताया है। इन दोनों ग्रन्थों में जो अंतर दिखाई पड़ता है वह यह है कि 'रसिक प्रिया' की रचना के समय ओरछा के सिंहासन पर इन्द्रजीत आरूढ़ नहीं हुए थे परन्तु 'रामचंद्रिका' की रचना के समय ओरछा इन्द्रजीत के आधीन था। 'रसिकप्रिया' की रचना के समय मधुकर शाह वहां के राजा थे अतः केशवदास ने इन्द्रजीत को 'महाराजकुमार इन्द्रजीत' कहा है और 'रामचंद्रिका' में केवल इन्द्रजीत। मधुकरशाह की मृत्यु संवत् १६४९ में हुई थी। महाराज इन्द्रजीत का जन्म संवत् १६२० में हुआ था। इन्द्रजीत केशव को अपना गुरु मानते थे और दूसरे केशव ने जिस प्रकार उन्हें 'कुमार' कहकर संबोधन किया है उससे इतना निष्कर्ष तो निकलता ही है कि वे इन्द्रजीत से अवस्था में बड़े थे और उनका जन्म संवत् १६२० के पूर्व हुआ था।

'रसिक प्रिया' केशव की पूर्णतया विकसित प्रतिभा का प्रतीक नहीं है यद्यपि उस समय भी वह संस्कृत साहित्य पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रजीत उस समय साहित्य के जिज्ञासु छात्र रहे होंगे। अतः यदि उनकी आयु उस समय बीस वर्ष के लगभग मानें और केशव का जन्म संवत् १६१२ में मानें तो केशव की आयु उस समय २८ वर्ष की होती है। अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि इस समय तक केशव ने संस्कृत साहित्य का पर्याप्त अध्ययन कर लिया होगा।

केशव ने 'रतन बावनी' में लिखा है कि मधुकरशाह जब अकबर से मिलने गए तो उनका ऊँचा जामा देखकर अकबर ने इसका कारण पूछा। मधुकरशाह ने उत्तर दिया 'मेरा देश कंटकाकीर्ण है।' अकबर ने कहा मैं तुम्हारा देश देखना चाहता हूँ। मधुकरशाह ने वहीं से अपने पुत्र रतनसेन को अकबर की सेना का सामना करने के लिए एक पत्र लिखा। रतनसेन ने अत्यन्त वीरतापूर्वक अकबर की विशाल वाहिनी का सामना किया और उसी युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हो गए। यह घटना संवत् १६३७ की है।[1] 'कविप्रिया' में दिए गए कवि के वंश वर्णन में रतनसेन इन्द्रजीत के बड़े भाई होते हैं अतः उनका जन्म निस्सन्देह संवत् १६२० के पूर्व हुआ होगा। केशवदास ने रत्नसेन के पुत्र राउभूपाल का उल्लेख भी किया है। यदि हम इन्द्रजीत और रत्नसेन की आयु में कम से कम दो वर्ष का भी अन्तर मानें तो मृत्यु के समय रत्नसेन की आयु १९ वर्ष के आसपास एवं केशवदास की २५ वर्ष के लगभग रही होगी। रत्नसेन के प्रति केशव की वात्सल्यमय ममता को देखते हुए इतना उचित भी प्रतीत होता है।

हीरालाल दीक्षित ने भी **केशव का जन्म** १६१२ वि० ही माना है।[2]

---

१. महाकवि केशवदास : चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० ३२

२. पृ० ३२, केशवदास : हीं० ला० दी०, १

मात्रा पाई जाती है। राम चरित्र का माहात्म्य कहते हुए केशव कहते हैं :—

यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारी का नर विप्र क्षत्रि वैश्य शूद्र जो कोय ॥[1]

इस प्रकार केशव के ग्रन्थों से हमें तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था का यथेष्ट परिचय मिल जाता है।

जिन राजनीतिक तथा सामाजिक धाराओं के मध्य केशवदास का उदय हुआ वह शासकों के प्रोत्साहन पर इतना अवलंबित नहीं था जितना जनता की प्रवृत्तियों पर। विदेशी शासकों के शासन-काल की अशांति एवं विप्लव के बीच जनता की जो प्रवृत्तियाँ दब गई थीं यह उन्हीं का क्रमिक विकास था।

पठान शासकों में भारत के प्रति कभी ममता का भाव जाग्रत नहीं हुआ। वे अपने कट्टरपन के कारण भारतीय संस्कृति से सदैव दूर-दूर रहे और उनका प्रयास केवल यहाँ की जनता को लूटने-खसोटने की ओर ही रहा। पठान शासकों ने हिन्दू जनता का बलात् धर्मपरिवर्तन कराने के भी अनेक प्रयत्न किए। देश में इस राजनीतिक उथल-पुथल का परिणाम यह हुआ कि जनता इन विदेशी शासकों के अत्याचारों से संत्रस्त हो उठी और मार्ग पाने के अन्धकार में भटकने लगी। उसका विश्वास ईश्वर की सगुण सत्ता से उठ गया क्योंकि उसने देखा कि उसके सामने ही देव मन्दिर लुट गए, उसकी पत्नी और बहिन की मर्यादा लुट गई, बच्चे देखते-देखते मृत्यु के घाट उतार दिए गए पर भगवान् का आसन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। चारों ओर देश में एक विचित्र निराशा का साम्राज्य था। दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के रक्षक शास्त्रों और पुराणों ने जीवन में कर्मकाण्ड का इतना अधिक विस्तार कर दिया था कि उससे जनता को कोई लाभ नहीं होता था और उनसे जीवन भी दुरूह बन गया था। उनमें ब्राह्मणों का इतना अधिक प्रभाव एवं अधिकार था कि शूद्रों के लिए दास वृत्ति के अपमानित जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग शेष नहीं था। इस दुःखी जीवन को बिताने की अपेक्षा उन्होंने धर्म-परिवर्तन अधिक श्रेयस्कर समझा।

देश की इस भयावह स्थिति को देखकर स्वामी रामानन्द ने एक ऐसे भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें सभी वर्ण के व्यक्ति निर्बाध सम्मिलित हो सकते थे। उन्होंने कहा कि व्यक्ति कर्म से ब्राह्मण अथवा शूद्र होता है, जन्म से नहीं। बाद में उनके शिष्य कबीर ने इस पंथ को आगे बढ़ाया और उन्होंने कर्मकाण्डों की तीव्र भर्त्सना कर हिंदू मुसलमान दोनों के अवगुणों को दिखाकर एक मध्यम मार्ग निकाला। कबीर ने कहा कि हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र सब का भगवान् एक ही है। सब एक ज्योति से उत्पन्न हुए हैं फिर कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र ?[2] गुरु नानक ने भी कहा कि ब्राह्मण केवल वही है जो ब्रह्म को पहचाने।[3] इस प्रकार

१. रा० चं०, ३९।३८
२. कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०३-५७
३. प्रा० स०, पृ० २३२, ५० १ (प्राण संगली)

समाज में ब्राह्मणों के विपरीत एक तीव्र प्रतिक्रिया जाग्रत हुई और इस समय अनेक संत कवि हुए जिन्होंने देश में घूम-घूम कर अपने विचारों का प्रचार किया। परन्तु इन संत कवियों में प्रायः सभी निम्न वर्ण के अथवा अभारतीय थे। इनमें उच्च शिक्षा का भी अभाव था अतः उच्च वर्णों और शिक्षक वर्ग पर इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। संत कवियों का योगदान केवल इतना ही रहा कि भारत का एक बहुत बड़ा भाग विधर्मी होने से बच गया और उनमें जीवन के प्रति एक आस्था जाग उठी।

संत कवियों के प्रतिपादित मार्ग में सबसे प्रधान दोष यह था कि इनके द्वारा भगवान् अपना रूप और गुण खोकर निर्गुण बन गए। कबीर ने स्पष्ट कहा— 'पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार' और 'ना दशरथ घरि औतरि आवा, ना जसवै लै गोद खिलावा।' इन कवियों ने सगुण पक्ष का निराकरण करके जिस कायिक साधना का प्रचार किया वह जटिल और दुरूह थी। इसी से निर्गुण और अव्यक्त को लेकर आर्य धर्म के भीतर कोई भक्ति मार्ग नहीं चल पाया। दूसरे यह शुष्क ज्ञान का मार्ग था जो साधारण लोगों की समझ में नहीं आता था।

इसी समय कुछ कवियों ने देखा कि समाज की मर्यादा डाँवाँडोल हो रही है। साधारण लोगों कीआस्था एक ओर पुरातन वर्णव्यवस्था से उठ रही है, दूसरी ओर गोरखनाथ आदि कुछ सम्प्रदायों ने योग की शिक्षा देकर और कबीरपंथियों ने ज्ञान का मार्ग दिखाकर उनको अनुचित मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। तत्काल उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर एक ऐसे सगुण भक्ति-मार्ग को मान्यता दी जो प्रेम और भक्ति पर आधृत था। उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों की अनिवार्यता उच्च वर्ग के लिए छोड़कर साधारण लोगों के लिए एक सरल मार्ग निकाला जिसमें केवल भगवान् का नाम लेने मात्र से उनका कल्याण हो जाता था। गुरु वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास ने कृष्णाश्रयी शाखा में माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा की। कबीरदास ने कहा था—

> पंडित बाद बदन्ते झूठा।
> राम कह्याँ दुनिया गति पावै, षांड कह्याँ मुख मीठा।
> पावक कह्याँ पावक जे दाझै, जल कहि तृष्णा बुझाई।
> भोजन कह्याँ भूख जै भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई।

परन्तु तुलसी ने इसे अस्वीकार कर भागवत के स्वर-में-स्वर मिलाकर कहा कि नाम सब प्रकार के कल्याण करने वाला है, चाहे उसे कोई भाव से ले या कुभाव से, क्रोध में ले या आलस्य में। अध्यात्म रामायणकार ने भी लिखा कि भगवान् का नाम सुनने या जपने से चाण्डाल भी पुण्यात्मा ब्राह्मण हो जाता है। सूरदास ने भी भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा ऊँचा पद देकर गोपियों द्वारा उद्धव को पराजित करवाया। उद्धव की पराजय ज्ञान पर भक्ति की विजय है। सूरदास ने कहा—

केशव की मृत्यु संवत् के विषय में भी विविध मत हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी तथा मिश्र बन्धु आदि विद्वानों ने केशव की मृत्यु संवत् १६७४ में मानी है। पं० अम्बिकादत्त व्यास का अनुमान है कि उनकी मृत्यु संवत् १६७० में एवं गौरी शंकर द्विवेदी के अनुसार सं० १६८० में हुई।

केशवदास जी की अंतिम रचना 'जहाँगीर जस चंद्रिका' है जिसका रचना काल केशव ने सं० १६६६ दिया है। इसके पश्चात् उनके साहित्यिक जीवन का सूर्य अस्त हो जाता है। पुस्तकान्त में केशव ने जहाँगीर के प्रति आशीर्वचन दिया है अतः इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि पुस्तक के रचना-काल तक उनकी मृत्यु नहीं हुई थी। उनके साहित्य जगत् से इस प्रकार तिरोहित होने के दो कारण हो सकते हैं—

(१) ग्रन्थ पूरा होने के अल्प समय के बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया अतः वह किसी नवीन ग्रन्थ का आरम्भ न कर सके हों।

(२) राजनीतिक उथल-पुथल एवं गृह-युद्धों से तंग आकर गंगातट पर चले गए हों तथा कुछ समय पश्चात् मृत्यु हो गई हो।[1]

केशव के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार तुलसी ने प्रेत-योनि से केशव का उद्धार किया था। इस प्रकार की अलौकिक घटनाएँ सम्भवतः तुलसीदास का महत्त्व बढ़ाने के लिए उनके भक्तों ने कालान्तर में प्रचलित कर दी थीं परन्तु इससे इतना अनुमान किया जा सकता है कि केशव की मृत्यु तुलसीदास के पूर्व हुई होगी। तुलसीदास की मृत्यु संवत् १६८० में हुई थी अतः केशवदास की मृत्यु की संभावना इससे पूर्व ही है।

केशवदास की मृत्यु सं० १६७० में अधिक समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि साहित्य का कोई भी उपासक अपने जीवन के अंत समय तक मौन होकर नहीं बैठ सकता। उनके अन्य किसी ग्रन्थ के न लिखने का अन्य कोई कारण समझ में नहीं आता। हीरालाल दीक्षित ने कहा है कि यदि केशव की मृत्यु संवत् १६७० में होती तो संवत् १६६६ में वह इतने स्वस्थ नहीं हो सकते थे कि इस ग्रन्थ की रचना कर सकते,[2] परन्तु हम उनके इस तर्क से पूर्णतया सहमत नहीं हैं क्योंकि हम तुलसीदास के सम्बन्ध में भली भाँति जानते हैं कि बाहु पीड़ा से कराहते-कराहते भी वह साहित्य की उपासना में दत्तचित्त रहे थे। अतः यह तर्क अधिक संगत नहीं प्रतीत होता।

---

१. वृत्ति दई पुरुखानि की, देउ बालनि आसु।
मोहि आपनो जानिकै, गंगा तट देउ वासु॥ ५६
वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करौं सकलत्र श्री, गंगा तट बस वास॥ ५७

—विज्ञान गीता, पृ० १२४, १२६

२. पृष्ठ ३३, केशवदास : ही० ला० दी०

केशव की मृत्यु किसी भी संवत् में हुई हो परन्तु इतना अवश्य है कि हिन्दी साहित्य का यह अनन्य उपासक दीर्घ काल तक हिन्दी की सेवा कर साहित्य में अपना उच्च स्थान बना गया है।

केशवदास ओरछा के महाराज इन्द्रजीत सिंह के राजकवि थे। वह मधुकरशाह के राजपुरोहित काशीनाथ के पुत्र थे। 'रामचंद्रिका' में अपने वंश का परिचय देते हुए केशव ने कहा है कि उनके पिता गणेश जी के समान प्रकांड विद्वान् थे। उनके पितामह श्रीकृष्ण भी अपने समय के ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे।[१] इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र ने संस्कृत साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था तथा भाषा में एक 'नखशिख' लिखा था। ऐसे महान् विद्वानों के वंश में जन्म लेकर केशव की भी स्वतः संस्कृत साहित्य में रुचि थी। इसीसे काशीनाथ की मृत्यु के अनन्तर मधुकरशाह ने कुमारों के अध्यापन का भार केशव को सौंप दिया। मधुकरशाह के आठ पुत्रों में सम्भवतः इन्द्रजीत को काव्य के प्रति अधिक प्रेम था। इसी से उनमें तथा केशवदास में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था।

केशव ने 'कविप्रिया' में कतिपय छन्द राना अमरसिंह[२] और महाराज चन्द्रसेन[3] को लक्ष्य करके लिखे हैं। हीरालाल दीक्षित का अनुमान है कि केशवदास इन्द्रजीत और वीरसिंह के अतिरिक्त इन दो राजाओं के दरबारों में भी रहे थे इसी से उन्होंने इनकी प्रशंसा की है।[४]

'कविप्रिया' की रचना केशव ने इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में आने के काफी समय के पश्चात् की थी। यदि केशव इन दोनों राजाओं के आश्रय में रहे होते तो यह घटना 'रसिक प्रिया' की रचना से पूर्व अर्थात् संवत् १६४८ के पूर्व की होनी चाहिए। तब इनका उल्लेख कहीं न कहीं 'रसिक प्रिया' में भी अवश्य होता। केशवदास स्वयं एक वीर योद्धा थे एवं वीरता का सम्यक् सम्मान करते थे। महाराज चन्द्रसेन तथा राना अमरसिंह दोनों ही अत्यंत पराक्रमी राजा थे और यथाशक्ति मुगल सेनाओं को यत्र तत्र पराजित करते रहते थे। संभवतः वीर-प्रशंसक केशव ने इसीलिए उनके शौर्य की प्रशंसा की है, राजकवि होने के कारण नहीं।

राजनीतिक दृष्टि से केशव का समय अकबर के शासन का उत्तरार्द्ध तथा जहाँगीर के शासन का पूर्वार्द्ध होता है। अकबर के राज्य के आरम्भिक वर्षों में ओरछा का राजा मधुकरशाह एक स्वतन्त्र नरेश था। जिसकी स्वतन्त्रता अकबर को अहर्निश खटकती रहती थी। उसने मधुकरशाह पर कई चढ़ाइयाँ कीं जिनमें प्रायः मुगल

१. रा० चं० पूर्वार्द्ध पृ० ४-५, छंद ४
२. क० प्रि०, छन्द ३१
३. वही, छंद ३८
४. केशवदास, ही० ला० दी०, पृ० ५३

सेनाएँ परास्त होकर लौट गईं। मधुकरशाह के पश्चात् ओरछे के सिंहासन पर उनका ज्येष्ठ पुत्र रामशाह बैठा। रामशाह ने सिंहासनासीन होते ही अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने छोटे भाई इन्द्रजीत का परिचय अकबर से कराया। रामशाह का दूसरा भाई वीरसिंह स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति था। उसे अकबर के अधीन रहना रुचिकर नहीं लगता था। दूसरे ओरछा की गद्दी वह स्वयं अपने लिए चाहता था इसलिए वह समय-समय पर अकबर-अधिकृत राज्य में उपद्रव करता रहता था। अकबर ने उसे बन्दी बनाने की कई बार चेष्टाएँ कीं, पर कभी सफल न हो सका।

एक बार वीरसिंह ने अकबर-पुत्र सलीम के कहने से उसके साथ षड्यन्त्र रच कर अबुलफजल का वध कर डाला। सलीम इस उपकार के कारण वीरसिंह का सदैव कृतज्ञ रहा और सिंहासन पर आसीन होते ही वीरसिंह को बुन्देलखण्ड का स्वतन्त्र अधिपति घोषित कर दिया। वीरसिंह ने ओरछा का राज्य अपने भाई इन्द्रजीतसिंह को सौंप दिया और इस प्रकार ओरछे में सुख शान्ति के दिन आरम्भ हो गए।

(आ) राजनीतिक परिस्थितियाँ—केशव के आश्रयदाता की स्थिति, वातावरण तथा अभिरुचि

मुगलकालीन इतिहासकारों ने तत्कालीन इतिहास के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा उसका मुख्य विषय मुगल बादशाह और उनका शासन ही था। उन्होंने देशी राज्यों के इतिहास पर बहुत कम प्रकाश डाला है। इसलिए ऐतिहासिक ग्रन्थों से इनके सम्बन्ध में हमें कोई विशेष ज्ञान नहीं होता। ओरछा के इतिहास के विषय में भी हमें जितना ज्ञान केशव के काव्य ग्रन्थों से होता है उतना ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं। केशव द्वारा वर्णित अधिकांश घटनाओं की पुष्टि इतिहास से हो जाती है अतः उनकी सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

केशवदास के वीरसिंह देव रचित 'रतन बावनी', 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' आदि ग्रन्थों से ओरछा के तत्कालीन इतिहास का हमें पर्याप्त परिचय मिल जाता है। केशव के जीवन के आरम्भिक वर्षों में दिल्ली की शासन सत्ता अकबर के हाथों में थी। अकबर महत्त्वाकांक्षी नरेश था। इसलिए सम्पूर्ण भारत को हस्तगत करना चाहता था। देशी राजा विशेष रूप से मध्य और दक्षिण भारत के राजा विदेशी सत्ता के विरुद्ध प्रायः विद्रोह किया करते थे जिनमें कभी वह सफल हो जाते थे और कभी कुचल दिए जाते थे। उस समय ओरछे पर मधुकरशाह का अधिकार था। वह स्वतन्त्र और स्वाभिमानी शासक था।

एक बार अकबर ने अपने अपने राज्य के अन्तर्गत यह घोषणा करवा दी कि शाही दरबार में कोई भी व्यक्ति तिलक लगाकर तथा माला पहनकर न आवे। मधुकरशाह उस दिन और भी लम्बा तिलक लगाकर दरबार में पहुँचे।[1] अकबर

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : गोरेलाल तिवारी

इससे अत्यन्त क्रोधित हुआ। एक दूसरे अवसर पर मधुकरशाह बहुत ऊँचा जामा पहनकर अकबर के दरबार में चले गए। अकबर ने इसका कारण पूछा तो बोले—'मेरा देश कंटकों से पूर्ण है।' अकबर इन व्यंग्यपूर्ण वचनों को सुनकर तिलमिला गया और बोला—'मैं तुम्हारा देश देखना चाहता हूँ, और कुछ ही समय के बाद उसने ओरछे पर चढ़ाई कर दी।'[1]

केशवदास ने 'कवि प्रिया' में लिखा है कि मधुकरशाह ने उस अकबर के कई गढ़ जीत लिए थे जिसका राज्य चारों दिशाओं में फैला हुआ था। खान और सुलतानों की गिनती कौन करे, जब स्वयं शाहज़ादा मुराद ही इनसे हार मान गया था।[2]

अकबर ने मधुकरशाह को परास्त करने के लिए कई बार योग्य संचालकों के नेतृत्व में सेनाएँ भेजीं थीं। 'आइने-अकबरी' में लिखा है कि मधुकरशाह ने सिरोनी और ग्वालियर के बीच के प्रदेश पर अधिकार जमाना चाहा था। इसलिए अकबर ने बरहा के सैयद महमूद और अमरोहा के सैयद मोहम्मद के नेतृत्व में एक सेना उसे दबाने को भेजी थी। इस युद्ध में मधुकरशाह हार गया था। अकबर को राज्यारूढ़ हुए उस समय अट्ठारहवाँ वर्ष था।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि मधुकरशाह ने फिर इन किलों को जीत लिया क्योंकि बाइसवें वर्ष में अकबर ने पुनः और दूसरे सरदारों के साथ एक सेना मधुकरशाह के विरुद्ध भेजी। दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। मधुकरशाह घायल हो गया और अपने पुत्र रामशाह के साथ भाग गया। सादिक वहाँ तब तक घेरा डाले पड़ा रहा जब तक मधुकरशाह ने अकबर से क्षमा याचना नहीं कर ली। उसने रामचन्द्र नामक अपने एक सम्बन्धी को क्षमा की प्रार्थना लेकर भेजा। अकबर ने

---

१. देख अकब्बर साहि उच्च जामा तिन केरो।
बोले वचन बिचारि कहौ—कारन यहि केरो।
तब कहत भयउ बुन्देल मणि मम सुदेश कंटक अवनि।
करि कोप ओप बोले वचन मैं देखौं तेरो भवन।

रतन बावनी, छन्द ५।

२. सबल शाह अकबर अवनि जीति लई दिसि चारि।
मधुकर शाह नरेश गढ़ तिनके लीन्हे मारि।
खान गने सुलतान को राजा रावत बादि।
हारे मधुकर शाह सौं आपुन शाह मुरादि।

—क० प्रि०, छन्द, २४-२५

3. Towards the end of the 18*th* year, he (Sayyid Mahmud of Barha) was sent with other Sayyids of Barha and Sayyid Muhammad of Amrohah against Rajah Madhukar, who had invaded the erritory between Sirony and Guualior, Sayyid Mahmud drove him away·········

Ain-i-Akbari—Pages 388-89.

उसे क्षमा कर दिया और रमजान के तीसरे दिन सादिक राजा मधुकरशाह को बंदी बनाकर अकबर के दरबार में पहुँचा।[1]

कुछ समय के बाद मधुकरशाह ने इन प्रदेशों पर फिर अधिकार कर लिया क्योंकि जब मुराद मालवा का राज्यपाल होकर जा रहा था तब उसने मार्ग में यह समाचार सुना। उसने मधुकरशाह पर चढ़ाई कर दी। मधुकरशाह हार कर नखर की पहाड़ियों में छिप गए जहाँ अगले वर्ष सन् १५९२ ई० में उनका स्वर्गवास हो गया।[2] परन्तु केशवदास के अनुसार मधुकरशाह ने मुराद को पराजित किया था। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने 'छत्रप्रकाश' की भूमिका में कहा है कि सन् १५८४ में शाहज़ाद: मुराद ने एक बड़ी सेना लेकर मधुकरशाह पर चढ़ाई की थी। मधुकरशाह की वीरता से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उसका सारा राज्य लौटा दिया।[3] संभव है केशव ने इसी युद्ध का उल्लेख किया हो जिसमें वास्तव में मुराद की पराजय ही हुई हो।

मधुकरशाह के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह राजा हुए। ओरछा के गजेटियर से पता चलता है कि रामशाह ने अकबर के दरबार में जाकर क्षमा माँग ली और अकबर ने उन्हें उनका राज्य लौटा दिया।[4] केशवदास ने रामशाह को वीर कहा है परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि रामशाह वीर होने के साथ साथ राज्य का लोभी भी था। इसी से उसने संघर्षमय जीवन व्यतीत न कर परतन्त्र जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर समझा। अकबर तो मधुकरशाह से पहले ही तंग आ चुका था इसलिए उसने ओरछा की ओर से आश्वस्त होने के लिए रामशाह के इस प्रस्ताव का स्वागत किया और उसे दरबार में सम्मानपूर्ण आसन दिया।[5] वह

1. In the 22nd year Cading, with several other granders was ordered to punish Rajah Madhukar············A fight ensued. Madhukar was wounded and fled with his son Ram Shah. Cading remained encamped in the Rajah's territory. Driven to extremities, Madhukar sent Ram Chand, a relation of his, to Akbar at Bahirah and asked and obtained pardon. On the 3rd Ramzan 986 Cading with the pentent Rajah arrived at the Court.

Ain-i-Akbari, Page 356.

२. ओरछा गजेटियर, पृ० १९

३. 'छत्रप्रकाश' भूमिका

४. Ram Shah went to Court and represented his case to Akbar who gave him and reinstated him in his possession.

Page 19.

५. रामसाह तो सूरता, धर्म न पूजै भान।
जाहि सराहै सर्वदा, अकबर सो सुलतान॥ ३२
कर जोरे ठाडे जहां, आठौ दिशि के ईश।
ताहि तहां बैठक दई, अकबर सो अवनीश॥ ३३

रामशाह की सदैव प्रशंसा करता रहता था और अन्य राजाओं की अपेक्षा उसे ऊँचा स्थान देता था।

मधुकरशाह के पुत्रों में वीरसिंह सबसे अधिक प्रतापी एवं महत्त्वाकांक्षी था। वह यह नहीं चाहता था कि रामशाह अकबर की आधीनता स्वीकार करे। ओरछा गजेटियर से ज्ञात होता है कि वीरसिंह ने चारों ओर अपना आतंक फैला रखा था। उसे बडौन की जागीर मिली थी परन्तु उसने पवांया और तोंबर को भी जीतकर नरवर तक अपना अधिकार कर लिया था। बाद में उसने ऐरच और गोपाचल भी जीत लिया और अकबर के बहुत से किलों को जीत लिया। अकबर ने रामशाह से कहा कि अपने छोटे भाई को मार्ग पर लाए, परन्तु वीरसिंह ने रामशाह का कहा न माना। सन् १६५२ में अकबर ने राजा असकरन के आधिपत्य में एक सेना वीरसिंह को दबाने के लिए भेजी और राजा रामशाह से वीरसिंह के विरुद्ध लड़ने को कहा। जगम्मन, जाट, गूजर, तथा हसन खां पठान और पँवार आदि ने भी असकरन और रामशाह का साथ दिया। वीरसिंह की तरफ से इन्द्रजीत और राव प्रताप लड़ रहे थे। गजेटियर में राजा असकरन के स्थान पर दौलत खाँ का नाम दिया गया है[1] पर केशव दास ने वीरसिंह देव चरित में असकरन ही लिखा है।

वीरसिंह के पास गिने चुने सैनिक थे अतः वह छापा मार युद्ध करते थे। असकरन ने बहुत चेष्टा की पर वीरसिंह किसी भी प्रकार उसके हाथ न आया। एक दिन जगम्मन ने असकरन को बताया कि रामशाह वीरसिंह से मिले हुए हैं इसीलिए वह उनके हाथ नहीं आता। रामशाह ने असकरन से कोई स्थान माँगा और कहा कि कोई जागीर मिलने पर ही वह उसकी सहायता करेगा। केशव ने इस स्थान का कोई नाम नहीं दिया है। असकरन के अस्वीकार करने पर रामशाह ने उसका साथ त्याग दिया और अकबर का यह प्रयास निष्फल गया।[2]

एक बार रामशाह के पुत्र संग्रामशाह ने भी वीरसिंह के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का असफल प्रयास किया था। अकबर ने अब्दुर्रहीम खानखाना को वीरसिंह का दमन करने के लिए भेजा था। संग्रामशाह खानखाना से मिल गया और कहा कि यदि बड़ौत की जागीर मुझे दे दो तो हम वीरसिंह को भगा दें।

खानखाना ने आदेशपत्र देकर दौलतखाँ को उसके साथ कर दिया। वीरसिंह ने रावभूपाल, इन्द्रजीत तथा रावप्रताप आदि भाइयों को लेकर सामना करने की तैयारी की। ठीक समय पर दौलतखाँ युद्ध करना उचित न समझ, दक्षिण की ओर चला गया। संग्रामशाह बड़ा लज्जित हुआ और अपने पिता के पास ओरछे आ गया।[3]

---

१. पृ०, २६
२. वी० दे० च०; छंद ३६-३६
३. वी० दे० च०, छन्द ८-३७

कुछ दिनों के बाद रामशाह ने वीरसिंह से मैत्री कर ली परन्तु यह प्रपंच था। रामशाह का अन्तःकरण छलपूर्ण था। उधर मुराद की मृत्यु के बाद अकबर ने दक्षिण दिशा में कूच किया। रामशाह ने अकबर से मिलकर कहा कि यदि बड़ौत की जागीर मुझे दे दो तो मैं वीरसिंह को सदा के लिए समाप्त कर दूँगा। अकबर ने उसे पंचहज़ारी मनसब देने का वचन दिया और राजसिंह को उसके साथ कर दिया। वीरसिंह की तरफ से फिर इन्द्रजीत और रावप्रताप युद्ध के लिए बड़ौत में एकत्रित हुए। दोनों दलों में युद्ध हुआ। अन्त में मुग़ल सेना पराजित हुई और राजसिंह ने गोपाचल भाग कर अपने प्राण बचाए।

इसी समय अकबर मेवाड़ की लड़ाई में हार कर आगरे वापस आ गया था। यादव गौर ने वीरसिंह को परामर्श दिया कि अकबर के पुत्र सलीम से मैत्री करनी चाहिए। वीरसिंह प्रयाग जाकर सलीम से मिला। सलीम बड़ा प्रसन्न हुआ और दोनों ने परस्पर मैत्री की शपथ ली।[1]

सलीम ने वीरसिंह से कहा कि अबुलफज़ल ने अकबर को उससे विमुख कर दिया है इसलिए वह उसे मार डाले। वीरसिंह ने सलीम को बहुत समझाया कि आप अबुलफज़ल के स्वामी हैं, वह आपका सेवक है। उस पर इतना क्रोध उचित नहीं है। परन्तु सलीम ने यह कहकर कि जब तक अबुलफज़ल जीवित है वह स्वयं मृत है, उसे स्वयं जिरह बख़्तर पहनाकर युद्ध के लिए भेज दिया। सिन्ध नदी के पार दोनों दलों का सामना हुआ। अबुलफज़ल को एक पठान सरदार ने बहुत समझाया कि युद्ध करने का यह उपयुक्त अवसर नहीं है परन्तु अबुलफज़ल तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि जब चारों ओर शत्रु उमड़े हैं तो मेरे भागने से संसार मुझे कायर कहेगा, मृत्यु तो दोनों दशाओं में है, भागा तब भी और युद्ध किया तब भी। अकबरशाह की मुझ पर कृपा है। यह कहकर वह युद्ध के लिए दौड़ पड़ा।

केशव ने इस युद्ध का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि अबुलफज़ल जिधर जाता था उधर के ही योद्धा भाग खड़े होते थे। अन्त में इस युद्ध में अबुलफज़ल को वीर गति प्राप्त हुई और वीरसिंह ने उसका मस्तक सलीम को भेंट कर दिया। सलीम ने शुभ दिन देखकर बड़ौत में वीरसिंह का राजतिलक कर दिया।[2]

राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ अकबर' में लिखा है कि शाहज़ादा सलीम ने अबुलफज़ल का काम तमाम करने की सोची थी। उसे बतलाया गया कि अबुलफज़ल का रास्ता बुँदेलों के देश के बीच से है। ओरछा के राजा नरसिंह का बेटा मधुकर आजकल बगावत पर उतरा हुआ है। वह काम में मदद कर सकता है।

---

१. वी० दे० च०, छन्द २-५३
२. वी० दे० च०, छन्द ७०-१०२

सलीम ने मधुकर को लिखा कि यदि तुम अबुलफ़ज़ल को खत्म कर दो तो तख्त पर बैठने पर हम तुम्हें मालामाल कर देंगे।"

"मधुकर अपने सैनिकों को लेकर शेख के पास पहुँचा। अबुलफज़ल ५१ वर्ष के थे पर उस वक्त उनके खून में जवानी दीख पड़ी। लड़ाई हुई और अन्त में बुन्देलों ने अबुलफ़ज़ल के मृत शरीर को एक पेड़ के नीचे पाया। वहाँ आसपास बहुत सी लाशें पड़ी थीं। मधुकर ने उसका सिर काटकर सलीम के पास भेजा। जब सलीम तख्त पर बैठा तो उसने मधुकर को तीन हज़ारी मनसब दिया।'[1]

राहुल जी ने बुन्देला नरेश के नाम को छोड़कर शेष घटना प्रायः वही दी है जो केशव ने दी है। आइने-अकबरी के लेखक[2] तथा डा० बेनी प्रसाद[3] ने भी इस घटना का वर्णन किया है पर उन्होंने केशव के समान वीरसिंह का ही नाम लिया है। जहाँगीर ने अपने 'जहाँगीर-नामे' में वीरसिंह देव के विषय में लिखा है 'राजा वीर-सिंह देव को तीन हज़ारी मनसब मिला। यह बुन्देला राजपूत मेरा बढ़ाया हुआ है। बहादुरी, भलमनसी और भोलेपन में अपने बराबर वालों से बढ़कर है। इसके बढ़ने का कारण यह है कि मेरे पिता के पिछले समय में शेख अबुलफज़ल ने जो हिन्दुस्तान के शेखों में बहुत पढ़ा हुआ और बुद्धिमान था, स्वामिभक्त बनकर बड़े भारी मोल में, अपने को मेरे बाप के हाथ बेच दिया था। ......वीरसिंह का राज्य अबुलफज़ल के मार्ग में पड़ता था और यह उन दिनों बागी भी हो रहा था इसलिए मैंने इसको भेजा कि उस फसादी को मार डालो तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।...... वीरसिंह देव ने उसको मार डाला।......

—अनुवादक बालमुकुन्द गुप्त, पृ० ३५

मधुकरशाह की मृत्यु भी अबुलफजल से पहले हो चुकी थी अतः अबुलफजल की मृत्यु वीरसिंह के हाथ मानना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

अबुलफज़ल की मृत्यु से अकबर को मर्मान्तक वेदना हुई। उसने पत्रदास और राजसिंह को वीरसिंह को पकड़ने के लिए भेजा। पत्रदास के साथ युद्ध करते हुए बीरसिंह अनेक बार पराजित हुआ, परन्तु कभी उसके हाथ नहीं आया। इधर राम-शाह भी राज्य का भार इन्द्रजीत को सौंपकर सम्राट् अकबर के दरबार में उपस्थित हुए।[4]

कुछ समय के पश्चात् सम्राट् अकबर ने इन्द्रजीत को अपने दरबार में बुलाया। सम्राट् के आदेशानुसार रामदास कछवाहे ने इन्द्रजीत से कहा कि यदि वह मन-वचन कर्म से सम्राट् की आज्ञापालन करने की प्रतिज्ञा करे तो सम्राट् उसे सम्पूर्ण

१. अकबर, पृ० १००
२. आइने अकबरी भूमिका, पृ० २४–२५
३. हिस्ट्री आफ जहांगीर, पृ० ५०-५२
४. वी० दे० च०, छन्द ३६-५१

बुन्देलखण्ड का राज्य सौंप देंगे। परन्तु इन्द्रजीत को राज्य की अपेक्षा अपनी स्वतन्त्रता अधिक प्रिय थी इसलिए उसने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। अकबर ने त्रिपुर को बुन्देलखण्ड का राज्य सौंप दिया।[1]

एक दिन त्रिपुर ने राजसिंह, रामशाह, रामदास कछवाहा, भदौरिया जाट और चौहान आदि की एक-एक विशाल वाहिनी लेकर वीरसिंह पर धावा बोल दिया। इन्द्रजीत, संग्रामशाह, राव प्रताप तथा उग्रसेन ने वीरसिंह की सहायता की और अन्त में त्रिपुर की सेना को हरा दिया। इस पराजय से अकबर को बड़ी निराशा हुई थी। इसके कुछ दिनों बाद अकबर की मृत्यु हो गई और वीरसिंह को बन्दी बनाने का उसका स्वप्न अपूर्ण ही रह गया।

अकबर की मृत्यु के अनन्तर जहाँगीर के उपनाम से सलीम दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने वीरसिंह को मिलने के लिए बुलाया। वीरसिंह इन्द्रजीतसिंह को लेकर जहाँगीर के पास गया। जहाँगीर ने वीरसिंह का बहुत आदर-सत्कार किया और दरबार में सर्वोच्च स्थान दिया। उसने वीरसिंह को समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य भी दे दिया। रामशाह अपने भाई के इस अभ्युदय से प्रसन्न नहीं थे। इन्द्रजीत वीरसिंह के पुत्रों को लेकर रामशाह के पास गए। रामशाह बहुत प्रसन्न हुआ और इन्द्रजीत को परिवार तथा राज्य का भार सौंपकर उसे वीरसिंह से सन्धि अथवा युद्ध करने की स्वतन्त्रता दे दी।

ओरछा अभी तक मुगल आक्रमणों का केन्द्र बना हुआ था। अब वहाँ की धरती पर गृह-युद्धों का आरम्भ हुआ। वे युद्ध विदेशी सत्ता के विरुद्ध न होकर दो भाइयों के पारस्परिक युद्ध थे। रामशाह से परामर्श करके इन्द्रजीत ने अंगद, प्रेम तथा अपने विश्वासपात्र केशव मिश्र को दूत बनाकर वीरसिंह के पास सन्धि का संदेश लेकर भेजा। केशव ने अपने इस जाने का उल्लेख 'वीरसिंह देव चरित' में किया है—

अंगद पायक प्रेम बनाय। पठये केशव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सु प्रमान। यों कहि पठये राम सुजान।[2]

केशव ने वीरसिंह के पास जाकर उनको युद्ध के विरुद्ध बहुत समझाया। वीरसिंह तो स्वयं गृह-युद्ध के पक्ष में नहीं थे। वह केशव की बात से बहुत प्रभावित हुए और उनसे कहा—

कासोसनि के तुम कुल देव। जानत हौं सब ही के भेद॥
जानत भूत-भविष्य विचार। वर्तमान को समुझत सार॥
जिहि मग होय दुहुन को भलो। तेहि मग हौंहि चलावौ चलौं॥[3]

---

१. वी० देव-चरित, छंद २५-४७
२. वही, छं०, पृ० ६४
३. वही, पृ० ६४

केशव समझते थे कि जब देश विदेशी सत्ता से आक्रान्त हो उस समय गृह-युद्ध करके अपनी शक्ति को नष्ट करना उचित नहीं है, इसलिए उन्होंने वीरसिंह से कहा कि—

जुद्ध परे जे जानि न परै, को जाने को हारै मरै।
इत को उत को दल संघरै, तुमको दुहू भाँति घटि परै।

रामशाह तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, नेत्रहीन हैं, रोग से आक्रान्त हैं, ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से दुखी हैं। उनकी तो तुमको सेवा करनी चाहिए। उनसे द्रोह करने में तुम्हारी क्या बड़ाई है ?

इक पुरिखा अरु राजा वृद्ध। हूहू दीन दीरघ परसिद्ध।
नेन विहीन रोग संयुक्त। जीवत नाहीं जेठो पुत्र ॥
ताके द्रोह बडाई कौन। सुख दैके बैहारो मौन।
सेवा के सुख दे सुख दानि। पांव पखारि आपने पानि ॥
भोजन कीजौ तिनके साथ। ठारौ चौर आपने हाथ।
पूजा यों कीजे नरदेव। जो कीजे श्रीपति की सेव ॥[1]

वीरसिंह केशव की शिक्षा से सहमत हो गए। उन्होंने कहा कि यदि रामशाह सन्धि चाहते हैं तो मैं इसके लिए तत्पर हूँ, परन्तु इसके पूर्व रामशाह को मुझ से एक बार मिला दो।

मैं मानो जो माने राज। सफल होहि सबके काज।[2]

वीरसिंह ने केशव, अंगद तथा प्रेमा को अत्यन्त सम्मानपूर्वक विदा किया। केशव ने आकर रामशाह को वीरसिंह का अनुरोध बताया तो रामशाह भी वीरसिंह से मिलने को तैयार हो गया। परन्तु प्रेमा इस सन्धि के पक्ष में नहीं था। उसने रानी कल्यान दे को भड़का दिया जिससे वीरसिंह तथा रामशाह के बीच यह सन्धि सम्भव न हो सकी और युद्ध के लिए तैयारियाँ होने लगीं। केशव ने रामशाह को युद्ध के विरुद्ध बहुत समझाया परन्तु रानी कल्यान दे ने इसे केशव की चाल समझकर उन्हें वहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दी। केशव को इससे बड़ा दुःख हुआ और वह वीरसिंह के पास वीर गढ़ चले गए।[3]

कुछ समय के बाद अब्दुल्ला खाँ ने ओरछा पर चढ़ाई की। वीरसिंह देव ने केशव से कहा कि वह रामशाह को एक पत्र लिखे और सब बातें समझाकर बताए कि यदि इस समय वह संधि नहीं करेगा तो उसका भविष्य अंधकारमय हो जाएगा। रामशाह ने पत्र का उपहास किया और इन्द्रजीत तथा भूपालराव को लेकर अब्दुल्लाखाँ का सामना किया। वीरसिंह ने भी अब्दुल्ला की सहायता की। अब्दुल्ला ने छल से रामशाह को बंदी बनाकर जहाँगीर के सम्मुख उपस्थित किया।[4]

'आईने अकबरी'[5] और 'तुजुके जहाँगीरी'[6] में लिखा है कि जहाँगीर ने

---

१. वी० दे० च०, पृ० ६६
२. वी० दे० च०, पृ० ६६
३. वी० दे० च०, छंद ३६-५०
४. छन्द ५७ ६. पृ० ८२
५. पृ० ४८७-८८

सिंहासन पर बैठने के बाद प्रथम वर्ष में ही ओरछा की गद्दी पर वीरसिंह को बैठा दिया, इसलिए रामशाह ने विद्रोह किया था। कालपी के जागीरदार अब्दुल्ला खाँ ने उसे बंदी बनाकर सम्राट् के समक्ष उपस्थित किया। सम्राट् ने उसे क्षमा कर दिया। इस प्रकार रामशाह के बंदी बनकर जहाँगीर के सामने जाने की पुष्टि अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य दोनों से ही हो जाती है। रामशाह के सम्बन्ध में केशवदास ने लिखा है कि वीरसिंह देव अपने भाई को मुक्त कराने जहाँगीर के पास गया। आइने-अकबरी में रामशाह को सम्राट् द्वारा क्षमा कर दिए जाने का जो उल्लेख है वह संभवतः यही है। वीरसिंह के अनुरोध पर जहाँगीर ने रामशाह को क्षमा कर उसके भाई के साथ भेज दिया। तत्पर्यन्त जहांगीर ने वीरसिंह को ओरछाधिपति घोषित कर दिया और एक लिखित आज्ञा पत्र दे दिया।[1]

इतिहास ग्रन्थों तथा केशव के ग्रन्थों, विशेष रूप से 'वीरसिंह देव चरित' से स्पष्ट पता चलता है कि उस समय ओरछा एक समृद्ध और स्वतन्त्र राज्य था जिस पर मुगल सम्राटों की कुदृष्टि लगी रहती थी। यहाँ के राजा अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए प्राणपण से चेष्टा करते थे परन्तु पारस्परिक ईर्ष्या तथा मुगल सम्राट् की विशाल वाहिनी के सम्मुख अंत में उन्हें नतमस्तक होना पड़ता था। रामशाह और वीरसिंह दोनों भाइयों में भी इस प्रदेश के लिए सदा खींचातानी चलती रही और मुगल सम्राट् जहाँगीर की सहायता से ही वीरसिंह यहाँ का अधिपति हो सका।

इस राजनतिक उथल-पुथल का प्रभाव केशवदास के साहित्य पर भी पड़ा था। केशवदास को अपना देश अत्यन्त प्रिय था। यही उसकी स्वतन्त्रता के आकांक्षी थे इसीलिए कभी रामशाह को युद्ध करने से वर्जित करते और कभी वीरसिंह को युद्ध का अकल्याणकारी पक्ष समझाते। परन्तु राज्य के लिए महत्त्वाकांक्षी उन नरेशों के सम्मुख उनकी कुछ चल न सकी। केशव के ग्रन्थों से भी हमें उनकी इस प्रवृत्ति का पता चलता है।

'रसिक प्रिया' उनकी उस समय की रचना है जब वह युवा थे और जीवन के संघर्षों से दूर थे। मधुकरशाह अकबर का विरोध कर रहे थे परन्तु इससे केशव के जीवन की धारा में कोई व्याघात उत्पन्न नहीं होता था। उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था और इन्द्रजीतसिंह के वे गुरु थे इसलिये उनको शिक्षा देने के लिए 'रसिकप्रिया' की रचना की। इसके बाद उन्होंने रतनसेन की वीरता से प्रभावित होकर 'रतनावली' की रचना की। जब मधुकरशाह ने अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली तब से ओरछा के जीवन में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ।

'रसिक प्रिया' के पश्चात् लगभग नौ वर्ष तक हमें केशव के साहित्यिक जीवन का कोई परिचय नहीं मिलता। इसके बाद हम अकस्मात् केशवदास को रामचंद्रिका

१. वी० दे० च०, छंद ४८-६२

की रचना में संलग्न पाते हैं। केशवदास इन्द्रजीत के साथ रहा करते थे और इन्द्रजीत सिंह को हम कई बार वीरसिंह के पक्ष में अकबर और रामशाह की सेनाओं से युद्ध करते हुए देख चुके हैं। जब वीरसिंह ने सलीम से मिलकर अबुलफजल का वध कर डाला तो ऐसा ज्ञात होता है कि इन्द्रजीत और केशव इस कार्य को उचित न समझकर रामशाह के दरबार में आ गए। कुछ समय बाद रामशाह ओरछे का उत्तरदायित्व इन्द्रजीत पर छोड़कर सम्राट् अकबर के दरबार में चले गए।[1] संभवतः यही समय 'रामचंद्रिका' की रचना का है। केशवदास ने लिखा है कि इस समय उनका हृदय अशान्त था। रामशाह और वीरसिंह के कार्यों से उन्हें शायद मर्मान्तक वेदना हुई थी इसीलिए वह अत्यन्त चिन्तित थे। तभी एक दिन स्वप्न में वाल्मीकि ऋषि ने दर्शन देकर उनकी समस्या का समाधान कर दिया। केशव ने उनसे पूछा कि सुख कैसे मिलेगा?[2] मुनि ने उनसे कहा 'अवतारमणि राम की वंदना करो वही तुम्हारे दुःख दूर करेंगे।'[3] तभी केशव ने रामचन्द्र को अपना इष्टदेव स्वीकार कर रामचंद्रिका की रचना की। रामचंद्रिका के उत्तरार्द्ध में उन्होंने जो राम द्वारा राज्यश्री की निन्दा करवाई है उससे ज्ञात होता है कि राज्य के लोभी ओरछाधिपतियों के कार्यों से उन्हें कितना क्लेश होता था।

इसी वर्ष अर्थात् संवत् १६५८ में ही कविप्रिया की भी रचना हुई। यह कवि के जीवन में संभवतः सबसे अधिक प्रसन्नता का काल था क्योंकि केशव ने कहा है—

> भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग।
> केसोदास जाके राज राज सो करत है।[4]

ओरछा का राज्य मिलने के बाद इन्द्रजीत अपनी सुन्दर शासन-व्यवस्था के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गए। उस समय ओरछा में सुख और शान्ति का राज्य था और ओरछा इन्द्रपुरी क सदृश सुशोभित होता था। काव्य, संगीत और नृत्य की निर्बाध धाराएँ चहुँ ओर बहने लगीं। केशवदास ने कहा है—

> कस्यो अखारो राज के शासन सब संगीत।
> ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रणजीत॥[5]

परन्तु यह सुख शान्ति बहुत दिनों तक स्थायी न रह सकी। रामशाह अब भी अकबर से मिलकर वीरसिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में तत्पर था। अकबर ने सोचा कि यदि वह इन्द्रजीत को भी अपनी तरफ मिला ले तो वीरसिंह को सरलता

---

१. वी० दे० च०, छन्द ५१
२. रा० च० पूर्वार्द्ध प्रकाश, १, छंद ७
३. वही, छंद ६-१७
४. कविप्रिया, चौथा प्रभाव, छन्द २१
५. वही, पहला प्रभाव, छन्द ४१।

से समाप्त किया जा सकता है। परन्तु अकबर इसमें सफल नहीं हुआ क्योंकि इन्द्रजीत सिंह ने बुन्देलखण्ड के राज्य का लोभ ठुकरा कर स्वतन्त्र रहना अधिक श्रेयस्कर समझकर अकबर के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्द्रजीत और केशव को फिर वीरसिंह के आश्रय में जाना पड़ा क्योंकि त्रिपुर के साथ मिलकर जब रामशाह ने ओरछे पर आक्रमण किया उस समय इन्द्रजीत सिंह ने वीरसिंह की ओर से युद्ध किया था। केशव ने जिस उत्साह से इस युद्ध का सूक्ष्म वर्णन किया है उससे अनुमान होता है कि उन्होंने स्वयं भी इस युद्ध में भाग लिया था।

जहाँगीर के सिंहासन पर बैठने के बाद वीरसिंह का अधिकार-क्षेत्र बढ़ गया और रामशाह ने पुन: एक बार उसे परास्त करने का प्रयास किया। इस समय इन्द्रजीत सिंह वीरसिंह देव के पुत्रों और केशवदास को लेकर रामशाह के पास आ गए थे। केशवदास ने इस समय रामशाह और वीरसिंह में युद्ध न होने की बहुत चेष्टा की पर रामशाह ने रानी कल्याणदे के कहने से केशव का अपमान करके ओरछा से निकाल दिया। इन्द्रजीत ने इस अवसर पर रामशाह का साथ दिया और केशव इसके बाद वीरसिंह के पास जाकर वीरगढ़ रहने लगे और इन्द्रजीत सिंह के साथ उनका सम्पर्क टूट गया।

वीरसिंह के साथ रहकर केशव ने 'वीरसिंह देव चरित' की रचना की। जहाँगीर ने अपने सिंहासन पर बैठने के बाद ही वीरसिंह को भी ओरछे का अधिकार दे दिया था। वीरसिंह ने ओरछा नगर को फिर से बसाकर उसका नाम जहाँगीरपुर रखा।[1] केशव वीरसिंह देव की वीरता से बहुत प्रभावित थे, इसी से उन्होंने उसके युद्धों का बड़े भक्तिभाव से वर्णन किया है। 'वीरसिंह देव चरित' की रचना के बाद संवत् १६६७ में केशव ने विज्ञान गीता की रचना की। इस समय केशव युवावस्था को पार कर वृद्धावस्था के द्वार पर प्रवेश कर रहे थे। रात-दिन के युद्धों से संभवत: उस समय वह थक गए होंगे इसलिए उनका अन्तःकरण लौकिक ऐश्वर्य के प्रति विद्रोह कर रहा होगा। अब वह दर्शन शास्त्र की ओर अधिक प्रवृत्त थे अत: वीरसिंह देव की प्रेरणा पाकर उन्होंने 'विज्ञान गीता' नामक दर्शन ग्रन्थ की रचना की।

अंत में वीरसिंह देव की ही प्रेरणा से उन्होंने वीरसिंह के मित्र और सहायक जहाँगीर का यश वर्णन करके 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' की रचना की। परन्तु इस कार्य में उनका मन नहीं लगा क्योंकि यह केशव की सबसे साधारण रचना है यद्यपि काव्यत्व की दृष्टि से वह उनका सबसे प्रौढ़ काल है। इसके बाद केशव के सम्बन्ध में अन्य किसी भी स्रोत से अभी तक और कुछ पता नहीं चला है। विज्ञान गीता में एक उल्लेख अवश्य मिलता है कि वीरसिंह ने जब प्रसन्न होकर केशव से कुछ माँगने को कहा तो उन्होंने अपने पूर्वजों की वृत्ति और गंगा तट का वास माँगा। वीरसिंह ने

१. वी० दे० च०, छन्द ६२

स्वीकार कर लिया और स्त्री पुत्रादि सहित अभय होकर गंगातट पर निवास करने की अनुमति दे दी।[१] यहाँ पर इस वृत्ति के सम्बन्ध में संदेह होता है कि यह कौन सी वृत्ति थी। रत्नाकर आदि कुछ आलोचकों का अनुमान है कि केशव अपनी जीविका के सम्बन्ध में आश्वस्त नहीं थे इसीलिए उन्होंने उन इक्कीस गाँवों की जागीर माँगी जो उन्हें इन्द्रजीत ने दिए थे। परन्तु केशव ने स्पष्ट रूप से पूर्वजों की वृत्ति देने को कहा है और कविप्रिया में वह पहले ही कह चुके हैं कि उनके पूर्वज कृष्ण दत्त को राजा रुद्र ने पुराण वृत्ति दी थी।[२] इधर केशवदास वीरसिंह की प्रेरणा पर 'वीरसिंह देव चरित' की रचना कर अध्यात्मवाद की ओर आकर्षित हो रहे थे। राजदरबार में रहकर इस प्रकार का अध्ययन तथा अध्यापन दुष्कर था अतः अधिक सम्भव यही जान पड़ता है कि उन्होंने इसी पुराण वृत्ति की ओर संकेत कर गंगा के तट पर जाकर अपने पूर्व पुरुषों के समान पुराणों का अध्ययन और विश्लेषण आदि करने की इच्छा प्रकट की हो और वीरसिंह ने भी उनकी प्रवृत्ति उस ओर देखकर उसे स्वीकार कर लिया हो।

सामाजिक जीवन दर्शन - अन्तस्साक्ष्य तथा बहिस्साक्ष्य

सामाजिक दृष्टि से केशव का समय उसके अधःपतन का समय है। उस समय राजा तथा प्रजा दोनों के विलासोन्मुख होने के कारण उनके नैतिक आदर्श जर्जर होने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण समाज विनाश-मार्ग पर अग्रसर होने लगा। राजवर्ग राजकार्यों की ओर से उदासीन हो गया तथा प्रजा अपने कर्तव्यों की ओर से। वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी तथा देश में अनाचार, व्यभिचार एवं असत्य का वातावरण घनीभूत हो उठा। वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण वर्ग जनता का मूर्धन्य समझा जाता था। उसे जहाँ समाज सबसे अधिक मान प्राप्त था वहाँ उसी का जीवन सबसे अधिक नैतिक बंधनों से आबद्ध था अतः सामाजिक विशृंखलता का सर्वाधिक प्रभाव भी उसी पर पड़ा।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञान गीता' में तत्कालीन सामाजिक अवस्था का अत्यन्त करुण तथा हृदयविदारक चित्र अंकित किया है। रामचन्द्रिका में राम द्वारा राज्यश्री की निन्दा यथार्थ में राम की उदासीन प्रवृत्तियों का परिणाम नहीं है बल्कि तत्कालीन राजाओं की विनाशक प्रवृत्तियों के प्रति स्वयं केशव की खिन्नता है। राजदरबारों से निकट सम्पर्क रहने के कारण केशव ने राजाओं की अवस्था का दर्शन समीप से किया था तथा ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने के कारण उनके गुण-दोषों को परखने का अवसर भी उन्हें निकट से ही मिला था। दोनों प्रकार के वर्णन उनके निजी पर्यवेक्षण के परिणाम हैं। वे सत्य हैं अतः कटु भी हैं।

तत्कालीन राजाओं का वर्णन करते हुए केशवदास कहते हैं कि तत्कालीन

---

१. वी० दे० च०, २१।५०,
२. कविप्रिया, २।१३-१४

राजवर्ग ऐश्वर्य एवं विलासिता में मग्न रहकर राजकार्यों की ओर से उदासीन हो चला था। जो व्यक्ति उनकी चाटुकारी करते थे उन्हीं से वह प्रसन्न होते थे, शुभेच्छुओं की बात उनपर वैसे ही प्रभाव नहीं डालती थी जैसे मोमजामे पर पानी अथवा मस्त हथिनी पर महावत के वचन।

गुरु के वचन अमल अनुकूल। सुनत होत श्रवणन को शूल।
मैन बलित नव बसन सुदेश। भिदित नहीं जल ज्यों उपदेस ॥[1]

अथवा

मित्रनहू को मतो न लेति। प्रतिशब्दक ज्यों उत्तर देति।
पहिले सुनै न शोर सुनन्ति। मातोकरिणी ज्यों न गनंति ॥[2]

विभिन्न वर्ण कर्तव्य-पालन से विमुख हो गए थे। उनमें अविनय, असत्य, दुःशील और दुराचार की भावनाएँ बढ़ गई थीं। वेद और पुराणों में उनका अविश्वास होने लगा था उनकी प्रकृति चंचल तथा इन्द्रिय-तृष्णा प्रबल हो उठी थी—

धर्म वीरता विनयता, सत्य शील आचार।
राज-श्री न गनै कछु, वेद पुराण विचार।

प्रजा सच्चाई और ईमानदारी से धनोपार्जन न कर छल से धनी होना चाहती थी। केशव ने अपनी कविप्रिया में पतिराम नामक एक स्वर्णकार की चर्चा की है। यह राजकीय स्वर्णकार था और केशव से इसका पड़ोसी होने के नाते[3] परिचय था। राजपरिवार के आभूषण बनाने से पर्याप्त आय होने पर भी वह बेईमानी अवश्य करता था और सोना चुरा लेता था। इस कार्य में वह इतना दक्ष था कि लोगों के देखते-देखते चोरी कर लेता था। कायस्थ लोग अपने हाथों में तुला, बाट और कसौटी लिए खड़े रहते थे परन्तु वह इतनी कुशलता से चोरी करता था कि किसी को सन्देह भी न होता। उसकी चतुर स्त्री तुरन्त ही वहाँ से राख हटाने के बहाने से चुराया हुआ सोना उठा ले जाती थी—

तुला तौल करुवान बनि कायथ लिखत अपार।
राख भरत पतिराम पै सोनो हरत सुनार।[4]

उसकी यह चोरी की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई थी कि एक बार राजा इन्द्रजीत ने अन्तःपुर का सोना चोरी होने पर अन्य स्वर्णकारों को दण्ड दिया परन्तु वास्तविक चोर पतिराम इस अन्याय को देखता रहा, परन्तु स्वयं मौन रहा। केशवदास उसे भी कभी-कभी कविता सुनाया करते थे। उन्होंने पतिराम के पास

१. रा० चं०, २३।२०
२. रा० चं०, २३।२१
३. कविप्रिया, पृ० २००
४. कविप्रिया, १२।१६

जाकर कविता के माध्यम से उसको इस चोरी का अपराध स्वीकार करने को प्रेरित किया, परन्तु चोर पतिराम इसके बाद केशव से ही अप्रसन्न रहने लगा—

दियो सोनारन राम रावर को सोनो हगो।
दुःख पायो पतिराम प्रोहित केशव मिश्र सो ॥[1]

ऐसे ही चोर तथा अविचारी लोग धनोपार्जन कर लक्ष्मी के प्रिय बन रहे थे। जो व्यक्ति वास्तव में शूरवीर और साधु स्वभाव के थे, वे अपना जीवन निर्वाह कठिनता और निर्धनता में कर रहे थे क्योंकि—

सूरनि नाकति ज्यों अहि देख। कंटक ज्यों बहु साधुनि श्लेखि।
सुधा सोदरा यद्यपि आप। सब ही ते अति कटुक प्रताप ॥[2]

केशवदास ने रामचंद्रिका के सम्पूर्ण २३वें प्रकाश में राम के द्वारा राज्यश्री की निन्दा कराई है। वास्तव में राम तो केवल माध्यम हैं कवि का मुख्य उद्देश्य ऐश्वर्य में लीन तत्कालीन राव-राजाओं और धनीवर्ग का चित्रण करना ही है।

राज्यश्री-निन्दा प्रसंग में राम जिस प्रकार राजलक्ष्मी की निन्दा करते हैं उससे केशवकालीन राजाओं के स्वभाव के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है। राम कहते हैं कि राजलक्ष्मी से प्रभावित राजा रोगी के समान सदैव मौन रहता है, वह किसी से बात करना नहीं चाहता। यदि विवश होकर उसे कुछ बोलना ही पड़े तो लोकाचार के लिए दो एक शब्द बोल लेता है। वह अपने भाई बन्धुओं से आँखें फेर लेता है और जानकर भी उन्हें पहचानना नहीं चाहता। वह लौकिक विषयों में लीन रहकर परमार्थ की चिन्ता भूल जाता है। उसका किसी की ओर देख लेना ही उसके लिए बहुत बड़ी दया है तथा किसी से बातचीत कर लेना ही बड़ी भारी ममता है। किसी को दर्शन दे देना ही बड़ा भारी दान है और किसी से हँसकर बोलना ही मानो उसका बड़ा भारी सम्मान है वह किसी को यदि 'तुम अपने हो' कह दे तो सुनने वाला अपना अहोभाग्य समझता है। सम्पत्ति से मदांध होकर राजा मद्यपान करता रहता है तथा परस्त्री गमन में ही अपनी सफलता समझता है। उसकी समस्त शूरवीरता युद्धक्षेत्र में शत्रु के सम्मुख न जाकर मृगया में ही सीमित रहती है। उसके उसी शौर्य की प्रशंसा बंदी जन बड़े चाव से करते हैं। जो उसके प्रति चाटुकारी युक्त वचन कहता है वही उसका मंत्री तथा मित्र का पद प्राप्त करता है और जो हित के वचन कहता है वही उसका सबसे बड़ा शत्रु होता है। इससे पता चलता है कि उस समय सम्राट् और राजन्य वर्ग की यही दशा थी। राजा लोग मंत्रिमंडलों के होते हुए भी निरंकुश व्यवहार करते थे। वे जो कुछ एक बार कह देते उसका प्रतिरोध करने का अधिकार किसी को नहीं था। इसीलिए एक साधारण

१. कविप्रिया १२।१३
२. रा० चं० २३।२१

सजा का प्रतिनिधित्व करते हुए स्वयं श्री राम भी सीता त्याग की इच्छा करने पर अपने भाइयों से कहते हैं—

तुम हो बालक बहुधा सब में।
प्रति उत्तर फेरि न देहु हमें।
जु कहैं हम बात सु जाय करो।
मन मध्य न और वचार धरो।[1]

उस समय प्रजा में अनाचार फैल रहा था। लोग उच्छृंखल हो रहे थे तथा अपने शासकों का भय उनके हृदय से निकल गया था। काशी हिन्दुओं का धर्मगढ़ समझा जाता था परन्तु वहाँ सबसे अधिक पाखण्डी ब्राह्मणों का वास था। ये लोग रात्रि के अंधकार में यात्रियों को लूटते,[2] उनके घरों में आग लगा देते और दिन में अपनी प्रभुता को जमाए रखने के लिए कर्मकाण्डों का प्रचार करते थे। माघ की कठोर शीत ऋतु में वे हिम से शीतल जल में स्नान करते, लम्बा तिलक लगाकर मंत्रोच्चारण करते और इस प्रकार स्वयं को पुण्यात्मा घोषित करते। कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जो रात में वारांगनाओं के कोठे पर जाकर मद्यपान करते तथा सूर्य की प्रथम किरणों के साथ ही छूतछात आरम्भ कर जप तथा यज्ञ का उपदेश करने लगते थे—

काम कुतूहल में विलसै निश वारवधू मन मान हरै।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकाने उज्वल अम्बर अंग धरै।
ऐसे तपो तप ऐसे जपो जप ऐसे पढ़ो श्रुति शास्त्र शरै।
ऐसे योग जयो ऐसे यज्ञ भयो बहु लोगनि को उपदेश करै।[3]

ब्राह्मणों की रुचि वेदाध्ययन से उठ गई थी, केवल जीविका चलाने के लिए उन्हें यह धंधा सँभालना पड़ रहा था। उन्हें वेद मंत्रों अथवा शास्त्रों के भेदोपभेद समझने की कोई आकांक्षा नहीं थी। उनका वेदोच्चारण भी शुद्ध नहीं था। जैसे शुक-बालक बिना अर्थ को समझे कण्ठाग्र किया हुआ पाठ पढ़ दे वैसे ही वे ब्राह्मण भी कंठस्थ पाठ पढ़ भर देते थे। मेखला, मृग-छाला और गले में विशाल रुद्राक्ष की माला धारण कर, शिर पर जटाएँ रखना और शरीर पर भस्म धारण कर लेना यही साधु संन्यासियों का लक्षण रह गया था। उनके हृदय की मलीनता पर आवरण डालने के लिए यह वाह्य आडम्बर और भी आवश्यक हो गया था—

वेद भेद कछू न जानत घोष करात कराल।
अर्थ को न समर्थ पाठ प मनोढ़ै शुकबाल।
मेखला मृग चर्म संयुत अछत माल विशाल।
शीश दै बहु बार धारण भस्म अंगन डाल।[4]

---

१. रा० चं०, ३३।४३
२. रा० चं०, २३।३४-३८
३. विज्ञान गीता, पृ० २२
४. विज्ञान गीता, पृ० १२

नगर (दिल्ली) में ऐसे ही लोग अधिक थे जो कभी भी गुरु के उपदेश को ठीक से नहीं सुनते थे और धर्म, कर्म, यज्ञादि विषयों से नितान्त अनभिज्ञ थे। अधिकांश प्रजा स्नान, दान, संयम तथा योग से वंचित रहकर केवल अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तथा इन्द्रियजन्य सुख को ही अपना सर्वस्व तथा ईश्वर की उपासना का मूलमंत्र समझती थी—

कबहूँ न सुन्यो कहूँ गुरु को कह्यो उपदेश।
अज्ञ यज्ञ न भेद जानत धर्म कर्म न लेशु।
स्नान दान सयान संयम योग याग संयोग।
ईशता तनु गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग ॥[1]

इसीलिए जनता का विश्वास ऐसे ब्राह्मणों में से उठ रहा था। उसने इन आडम्बरी ब्राह्मणों की कुचालों से 'तंग आकर' उन्हें दान देना बंद कर दिया था। केशव के काव्य में हमें स्थान-स्थान पर ब्राह्मणों के लोभ और जनता की दान देने के प्रति विरक्ति के दर्शन होते हैं। केशव ने कई स्थानों पर तत्कालीन ब्राह्मण जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए केवल उपयुक्त ब्राह्मणों को ही दान देने का माहात्म्य कहा है—

कृतघ्नी कुबारी परस्त्री विहारी।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी।
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै।
द्विजातीन को आपु ही दान दीजै ॥[2]

कवि कहता है कि श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नर न समझकर विष्णु का साक्षात् अवतार ही समझना चाहिए। उन्हें विधिपूर्वक सपत्नीक दान दक्षिणा देना चाहिए। रामचंद्रिका के २१वें प्रकाश में केशव ने छंद १ से लेकर १३ तक ब्राह्मण को दान की प्रशंसा और छंद १३ से लेकर २० तक सनाढ्य ब्राह्मणों की प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त भी जहाँ-जहाँ उन्हें अवसर मिला है उन्होंने सनाढ्य ब्राह्मणों की भक्ति और दान की महिमा का प्रसंग उपस्थित कर दिया है।[3] केशवदास की बार-बार की इन प्रार्थनाओं तथा आग्रह से स्पष्ट है कि उस समय ब्राह्मणों का मान कम हो रहा था और उन्हें जीविका चलाने के लिए दान के लिए भिक्षाटन सा करना पड़ता था। स्वयं केशवदास भी राजपरिवार के पुरोहितवंश में होते हुए और इन्द्रजीत के मंत्री के समान होते हुए भी अपने सम्बन्ध में बहुत निश्चिन्त नहीं थे क्योंकि एक दिन उन्हें भी अनुरोधपूर्वक कहना पड़ा था—

वृत्ति दई पुरुखानि की, देउ बालकनि आसु।
मोहि आपनो जानि के, गंगा तट देउ बासु।

---

१. विज्ञान गीता, पृ० ११
२. रा० चं०, २६।३४
३. ३४।४५, ३४।५६]

और जब उन्हें यह वृत्ति मिल गई तभी जाकर उनका सब भय दूर हुआ और निश्चिन्त होकर गंगा तट पर निवास कर सके।[1]

उस समय मंदिरों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। जब मंदिर में कोई धनी नहीं आता था उस दिन पुजारी मूर्ति को पलंग से उठाने का भी कष्ट नहीं करते थे। भगवान् के भोले-भाले भक्तों से विविध उपहार लेकर उन्होंने बहुत सा धन एकत्रित कर लिया था और स्वयं नित्य नवीन भोगविलासों में लीन रहते थे—

एक कनौज हुतौ मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी।
मन्दिर कोउ बड़ो जन आवै। अंग भली रचनानि बनावै।।
जा दिन केशव कोऊ न आवै। तादिन पलका ते न उठावै।
भेंटन लै बहुधा धन कीन्हौं। नित्य करै बहु भोग नवीनौ।।[2]

मठधारी समाज का सबसे पापी अंग है। परलोक में जाकर उसके कष्टों की सीमा नहीं रहती। मठधारियों के इन्हीं आचारों के कारण केशव किसी भी ब्राह्मण को सबसे गुरुतर दण्ड यही समझते हैं कि उसे किसी मंदिर का मठधारी बना दिया जाए। इसी से जब राजा राम श्वान से ब्राह्मण के लिए दण्ड निर्धारित करने को कहते हैं तो वह उसे मठधारी ही बनाने की सिफारिश करता है—

मेरो भायो करहु जो, रामचन्द्र हित मंडि।
बीजै द्विज यहि मठपति, और दंड सब छंडि।[3]

उस समय धर्माधिकारी ब्राह्मण भी बड़े पापी हो गये थे। राजा सोचते थे कि उन्होंने धर्माधिकारी नियुक्त करके प्रजा के लिए धर्म का मार्ग खोल दिया है परन्तु वास्तविकता इसके विपरीतथ ी। वे धर्मार्थ निकाले हुए धन में से अधिकांश चुरा लेते थे। ब्राह्मणों को उस धन का केवल दशमांश ही मिल पाता था शेष वे गणिका-गमन के लिए स्वयं बचा लेते थे। भगवान् का गुणानुवाद करने के स्थान पर वे स्वार्थ-साधन के हेतु बंदीजनों की प्रशंसा करते रहते थे—

धर्माधिकार पर एक द्विजाति कीन्हो।
संकल्प द्रव्य बहुधा तेहि चोरि लीन्हो।
बन्दी विनोद गणिकादि विलासकर्ता।
पावै दशांश द्विज दान, अशेषहर्ता।[4]

उस समय पारिवारिक जीवन की मर्यादा भी विशृंखल हो रही थी। पुत्र माता-पिता के अनुशासन में नहीं रहना चाहते थे। पति एक पत्नीव्रत की मर्यादा को त्याग कर वारांगनाओं के प्रति आकृष्ट रहते थे। विधवाएँ अपने धर्म को भूल रही

---

१. विज्ञान गीता, २१।५७।
२. रा० चं०, ३८।१६, २०।
३. रा० चं०, ३४।१५।
४. रा० चं०, ३४।२८।

थीं और सधवाएँ पति की दुर्बलताओं को देखकर उनका अपमान करती थीं । भाई भाई में स्नेह का अभाव हो गया था। अधिकार-लिप्सा से वे आपस में ही लड़ते झगड़ते रहते थे। मुगल सम्राटों के जीवन में नित्य प्रति ऐसी घटनाएँ होती रहती थीं। अकबर और जहाँगीर ने स्वयं अपने भ्राताओं और पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर अधिकार प्राप्त किए थे। इस्लाम धर्म में बहुविवाह की प्रथा को उन्होंने और भी समुन्नत बना दिया था। उनके अंतःपुर में देश भर की सुन्दरियाँ शोभायमान होती थीं और नूरजहाँ जैसी स्त्रियाँ प्रेमी को प्राप्त करने के लिए अपने पति की हत्या भी सहन कर लेती थीं। राजा इन्द्रजीत सिंह के दरबार में भी अनेक वेश्याएँ थीं जिनमें छः को तो केशव ने ही अपने काव्य में अमर कर दिया है। रामशाह तथा वीरसिंह देव के पारस्परिक मनमुटाव का उल्लेख पूर्व पृष्ठों में हो ही चुका है। इस सामाजिक विशृंखलता से खिन्न होकर केशव ने साहित्य के माध्यम से इसका दर्शन कराया है और राम द्वारा उपदेश दिला कर तत्कालीन जनता को इसे समझाने का प्रयास तथा दूर करने की प्रेरणा दी। पुत्र-धर्म का वर्णन करते हुए राम कौशल्या से कहते हैं कि जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है वह नरकगामी होता है।[1] उधर कौशल्या दशरथ का अपमान इसलिए करती है क्योंकि उन्होंने राम को वनवास देकर कैकेयी के सम्मान की रक्षा की है। दशरथ की दुर्बलता है सुन्दरी कैकेयी में आसक्ति। अतएव कौशल्या के हृदय में अपमान की ज्वालाएँ निरन्तर प्रज्वलित हुआ करती हैं जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक भी हैं। उनका मानसिक सन्तुलन वहाँ पूर्णतया बिगड़ जाता है, जब उन्हें यह पता चलता है कि दशरथ की इस दुर्बलता का परिणाम हुआ है उनके एकमात्र पुत्र राम का वनवास। इसलिए राम के वनवास के लिए आज्ञा माँगे जाने पर उनके अंतःकरण का असीम क्रोध और घनीभूत पीड़ा सभी कुछ मुखर हो उठती है :—

> रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु। ने देखि सकैं तिनके उर दाहु ॥
> लगी अब बाप तुम्हारेहि बाय। करैं उल्टी बिधि क्यों कहि जाय ॥[2]

केशव ने अपने समय की दुरवस्था के कारण अनेक स्थलों पर एकपत्नीव्रत की प्रशंसा की है। उस समय पुरुषों के जीवन में अनैतिकता का ज़ोर था। वे एक साथ कई-कई विवाह कर लेते थे। मुगल बादशाहों और देशी राजाओं के अन्तःपुर शत-शत युवती स्त्रियों के नूपुरों से झंकृत रहते थे। राजाओं के अनुकरण पर साधारण प्रजा में भी यह दोष आने लगा था। स्त्रियों का सम्मान और स्वाभिमान कुचल दिया गया था और वे भोग की उपकरण मात्र रह गई थीं। उस समय स्त्री जाति का अपमान किस सीमा तक पहुँच चुका था उसका आभास हमें तुलसीदास की प्रसिद्ध पंक्तियों से भी मिलता है :—

---

१. रा० चं०, ६।६
२. रा० चं०, ६।८

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।[1]

यथार्थ में उस समय अधिकांश जनता की भावना ही ऐसी थी जो तुलसी की वाणी मुखरित हुई है। स्त्रियों को न शास्त्रों का अध्ययन करने की आज्ञा थी और न धर्म पर चलने की क्योंकि धर्म के मार्ग में वे साक्षात् पुरुष को जलाने वाली और विष की बेल समझी जाती थीं। पुरुष अनेक स्त्रियों के रहते हुए भी वेश्यागमन में प्रवृत्त रहता था और स्त्री को पति के साथ उसकी मृत्यु के अनन्तर तो चिता में जलना ही पड़ता था, साथ ही उसके जीवित रहते भी उसका गृहस्थ जीवन अधिकार-रहित और नरक-तुल्य था। उसका कर्तव्य तो बस इतना ही था कि वह पति को देवता मानकर चले, चाहे वह कितना ही पतित अथवा रोगी क्यों न हो :—

नारी तजै न आपनो सपनेहु भरतार।
पंगु मुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरू चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी।[2]

और यदि दुर्भाग्य से विधवा हो जाए तो :—

गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं।
तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं।
सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल जोवहीं।
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनही धरैं।
काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं।
कृच्छ्र उपवास सब इंद्रयन जीतहीं।
पुत्र सिख लीन तन जौंलगि अतीत हीं।[3]

केशव का हृदय स्त्री जाति की इस स्थिति को देखकर विद्रोह कर उठता था इसीलिए उन्होंने निरन्तर एक पत्नीव्रत पर ज़ोर दिया। केशव ने पतिपत्नी में चंद्रमा तथा रात्रि का अक्षय संबंध माना है। उन्होंने 'रामचंद्रिका' तथा अन्य धर्मग्रन्थों को पढ़ने एवं समझने का अधिकार सभी स्त्रियों को दिया। उन्होंने प्रवीण राय को लक्ष्य करके अपने काव्य शास्त्र संबंधी ग्रन्थों की रचना की और उसे अकबर के दरबार में भेजने का बराबर विरोध किया। उनके सभी स्त्री पात्रों में भी स्वाभिमान की पर्याप्त

---

१. रामचरितमानस : टीकाकार हनुमान प्रसाद, पृ० ७३६, चौपाई ३
२. रा० चं०, ६।१६
३. रा० चं०, ६।१८, १९

मात्रा पाई जाती है। राम चरित्र का माहात्म्य कहते हुए केशव कहते हैं :—

यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारी का नर विप्र क्षत्रि वैश्य शूद्र जो कोय ॥[1]

इस प्रकार केशव के ग्रन्थों से हमें तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था का यथेष्ट परिचय मिल जाता है।

जिन राजनीतिक तथा सामाजिक धाराओं के मध्य केशवदास का उदय हुआ वह शासकों के प्रोत्साहन पर इतना अवलंबित नहीं था जितना जनता की प्रवृत्तियों पर। विदेशी शासकों के शासन-काल की अशांति एवं विप्लव के बीच जनता की जो प्रवृत्तियाँ दब गई थीं यह उन्हीं का क्रमिक विकास था।

पठान शासकों में भारत के प्रति कभी ममता का भाव जाग्रत नहीं हुआ। वे अपने कट्टरपन के कारण भारतीय संस्कृति से सदैव दूर-दूर रहे और उनका प्रयास केवल यहाँ की जनता को लूटने-खसोटने की ओर ही रहा। पठान शासकों ने हिन्दू जनता का बलात् धर्मपरिवर्तन कराने के भी अनेक प्रयत्न किए। देश में इस राजनीतिक उथल-पुथल का परिणाम यह हुआ कि जनता इन विदेशी शासकों के अत्याचारों से संत्रस्त हो उठी और मार्ग पाने के अन्धकार में भटकने लगी। उसका विश्वास ईश्वर की सगुण सत्ता से उठ गया क्योंकि उसने देखा कि उसके सामने ही देव मन्दिर लुट गए, उसकी पत्नी और बहिन की मर्यादा लुट गई, बच्चे देखते-देखते मृत्यु के घाट उतार दिए गए पर भगवान् का आसन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। चारों ओर देश में एक विचित्र निराशा का साम्राज्य था। दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के रक्षक शास्त्रों और पुराणों ने जीवन में कर्मकाण्ड का इतना अधिक विस्तार कर दिया था कि उससे जनता को कोई लाभ नहीं होता था और उनसे जीवन भी दुरूह बन गया था। उनमें ब्राह्मणों का इतना अधिक प्रभाव एवं अधिकार था कि शूद्रों के लिए दास वृत्ति के अपमानित जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग शेष नहीं था। इस दुःखी जीवन को बिताने की अपेक्षा उन्होंने धर्म-परिवर्तन अधिक श्रेयस्कर समझा।

देश की इस भयावह स्थिति को देखकर स्वामी रामानन्द ने एक ऐसे भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें सभी वर्ण के व्यक्ति निर्बाध सम्मिलित हो सकते थे। उन्होंने कहा कि व्यक्ति कर्म से ब्राह्मण अथवा शूद्र होता है, जन्म से नहीं। बाद में उनके शिष्य कबीर ने इस पंथ को आगे बढ़ाया और उन्होंने कर्मकाण्डो की तीव्र भर्त्सना कर हिंदू मुसलमान दोनों के अवगुणों को दिखाकर एक मध्यम मार्ग निकाला। कबीर ने कहा कि हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र सब का भगवान् एक ही है। सब एक ज्योति से उत्पन्न हुए हैं फिर कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र ?[2] गुरु नानक ने भी कहा कि ब्राह्मण केवल वही है जो ब्रह्म को पहचाने।[3] इस प्रकार

---

१. रा० चं०, ३९।३८

२. कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०३-५७

३. प्रा० स०, पृ० २३२, प० १ (आग संगली)

समाज में ब्राह्मणों के विपरीत एक तीव्र प्रतिक्रिया जाग्रत हुई और इस समय अनेक संत कवि हुए जिन्होंने देश में घूम-घूम कर अपने विचारों का प्रचार किया। परन्तु इन संत कवियों में प्रायः सभी निम्न वर्ण के अथवा अभारतीय थे। इनमें उच्च शिक्षा का भी अभाव था अतः उच्च वर्णों और शिक्षक वर्ग पर इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। संत कवियों का योगदान केवल इतना ही रहा कि भारत का एक बहुत बड़ा भाग विधर्मी होने से बच गया और उनमें जीवन के प्रति एक आस्था जाग उठी।

संत कवियों के प्रतिपादित मार्ग में सबसे प्रधान दोष यह था कि इनके द्वारा भगवान् अपना रूप और गुण खोकर निर्गुण बन गए। कबीर ने स्पष्ट कहा—'पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार' और 'ना दसरथ घरि औतरि आवा, ना जसवै लै गोद खिलावा।' इन कवियों ने सगुण पक्ष का निराकरण करके जिस कायिक साधना का प्रचार किया वह जटिल और दुरूह थी। इसी से निर्गुण और अव्यक्त को लेकर आर्य धर्म के भीतर कोई भक्ति मार्ग नहीं चल पाया। दूसरे यह शुष्क ज्ञान का मार्ग था जो साधारण लोगों की समझ में नहीं आता था।

इसी समय कुछ कवियों ने देखा कि समाज की मर्यादा डाँवाँडोल हो रही है। साधारण लोगों कीआस्था एक ओर पुरातन वर्णव्यवस्था से उठ रही है, दूसरी ओर गोरखनाथ आदि कुछ सम्प्रदायों ने योग की शिक्षा देकर और कबीरपंथियों ने ज्ञान का मार्ग दिखाकर उनको अनुचित मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। तत्काल उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर एक ऐसे सगुण भक्ति-मार्ग को मान्यता दी जो प्रेम और भक्ति पर आधृत था। उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों की अनिवार्यता उच्च वर्ग के लिए छोड़कर साधारण लोगों के लिए एक सरल मार्ग निकाला जिसमें केवल भगवान् का नाम लेने मात्र से उनका कल्याण हो जाता था। गुरु वल्लभाचार्य के शिष्य सूरदास ने कृष्णाश्रयी शाखा में माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा की। कबीरदास ने कहा था—

पंडित बाद बदन्ते झूठा।
राम कह्याँ दुनिया गति पावै, षांड कह्याँ मुख मीठा।
पावक कह्याँ पावक जे दाझै, जल कहि तृष्णा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूख जै भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई।

परन्तु तुलसी ने इसे अस्वीकार कर भागवत के स्वर-में-स्वर मिलाकर कहा कि नाम सब प्रकार के कल्याण करने वाला है, चाहे उसे कोई भाव से ले या कुभाव से, क्रोध में ले या आलस्य में। अध्यात्म रामायणकार ने भी लिखा कि भगवान् का नाम सुनने या जपने से चाण्डाल भी पुण्यात्मा ब्राह्मण हो जाता है। सूरदास ने भी भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा ऊँचा पद देकर गोपियों द्वारा उद्धव को पराजित करवाया। उद्धव की पराजय ज्ञान पर भक्ति की विजय है। सूरदास ने कहा—

'आयौ हौ निर्गुण उपदेशन भयौ सगुण को चेरौ' और इस प्रकार निर्गुण पर सगुण की महत्ता स्थापित की।

साधारण अशिक्षित जनता भगवान् के इस प्रेममय सगुण रूप की उपासना से प्रसन्न थी और मंथरा की भावनाओं के अनुसार 'कोउ नृप होउ हमहि का हानि, चेरि छाड़ि अब होब की रानी'[१] राजसत्ता के प्रति वह उदासीन थी।

यह सारा साहित्य शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से लिखा जा रहा था तथा काव्य का शास्त्रीय पक्ष इनमें गौण था। साहित्यिकों का एक दूसरा वर्ग भी था जो शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य की रचना कर रहा था। ये कवि हिंदी साहित्य से उतने प्रभावित नहीं थे जितने संस्कृत साहित्य से यद्यपि भक्ति काल में काव्यशास्त्र का वैसा विकसित रूप नहीं मिलता जैसा रीति साहित्य में। कृपाराम आदि कतिपय कवि ही काव्य के इस पक्ष को दृष्टि में रखकर काव्य रचना कर रहे थे। इसी समय भारत के शासन की बागडोर अकबर के हाथों में आई और कुछ वर्षों की मार-काट के बाद देश में अपेक्षाकृत शान्ति स्थापित हो गई। अधिकांश देशी नरेशों ने आत्म-समर्पण कर मुगल सत्ता को स्वीकार कर लिया और देश में ललित कलाओं का विकास होने लगा। अकबर ने जज़िया कर बन्द कर दिया, सती प्रथा का विरोध किया और कृषि-सम्बन्धी सुधार कर साधारण प्रजा का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। अकबर के भवन-निर्माण प्रेम ने भी असंख्य मज़दूरों को जीविका निर्वाह के उपकरण जुटाए। अकबर ने बहुत से हिन्दू घरों में विवाह करके हिन्दुओं की धार्मिक संकीर्णता और विद्रोह भावना को बहुत कुछ कम कर दिया और अपने धर्म के द्वार सब धर्मानुयायियों के लिए मुक्त कर दिए।

अकबर के इस व्यवहार से तत्कालीन ब्राह्मण समाज को बड़ा धक्का लगा। सूरदास और तुलसीदास उनके प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने देखा कि एक ओर तो जीवन की दुरूहता कम होने के कारण ब्राह्मण समाज दुराचार में संलग्न रहने लगा था और भोली जनता को पथभ्रष्ट कर रहा था और दूसरी ओर जनता का विश्वास ब्राह्मण वर्ग की श्रेष्ठता में विचलित हो रहा था। सामाजिक मर्यादा क्षीण हो रही थी। एक ओर तो संत कवि स्त्री को काम-शिखा कहकर उसका बहिष्कार कर रहे थे, दूसरी ओर वे अपने पिता और पति में विश्वास खोकर जादू तंत्र में विश्वास कर पाखंडियों के भुलावे में आ जाती थीं। एक ओर अधिकार-लिप्सा से भाई-भाई परस्पर लड़ रहे थे और दूसरी ओर निम्न वर्ग के व्यक्ति जाग्रत हो उठे थे और उच्च वर्ग वालों की उपेक्षा कर रहे थे। तुलसीदास ने अवसर की गुरुता समझकर लोक संरक्षक का उत्तरदायित्व सँभाला और इन विरोधों में सामंजस्य कर एक सरस मार्ग निकालने का प्रयत्न किया। उन्होंने राम का चरित्र लेकर एक मर्यादा का मार्ग प्रशस्त किया और राक्षसों के रूप में मुगल शासकों के अनाचारों का वर्णन

---

१. मानस, अयोध्या कांड, १८-३

किया[1]। भागवत और महाभारत को लेकर भी एक ऐसे महाकाव्य की रचना हो सकती थी किन्तु माधुर्य की लहरों को भक्त कवि राजनीति में नहीं मिला सके।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जो रूप जनता के समक्ष रखा उसमें राम के जीवन में लौकिक पक्ष का अभाव रहा। कालान्तर में कृष्ण चरित्र से प्रभावित होकर राम भक्ति भावना में भी प्रेम लक्षणा का समावेश हुआ। भक्ति भावना लौकिक पक्ष की ओर झुकी और इस परकीया भाव को प्रोत्साहन मिला। इसी समय हिंदी साहित्य पर सूफी फकीरों का भी प्रभाव पड़ा। सूफी कवियों ने शारीरिक सौन्दर्य वर्णन को आध्यात्मिकता का एक आवश्यक अंग माना। परवर्ती कवियों के हाथों यही अध्यात्म भावना लौकिक सौन्दर्य में परिणत हो गई। सूफियों ने परमात्मा की भावना प्रियतम के रूप में की और परमात्मा को अनन्त सौंदर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त गुणों का सागर माना। शनैः-शनैः सूफी कविता को इश्क मजाजी और इश्क हकीकी का पर्याय समझने लगे और परमात्मा के नाम पर किसी शराबी और चरित्रहीन व्यक्ति को सिद्ध सूफी समझने लगे। फारसी भाषा और सूफियों के प्रभाव के कारण उर्दू की कविता में आरम्भ से ही शृंगारी भावनाओं का आधिक्य रहा। विलासी बादशाहों के दरबार में आश्रय मिल जाने के कारण उसमें शराब, जाम और प्याला आदि का समावेश हुआ।[1]

उर्दू की इस कविता का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा और समय के साथ तुलसी आदि कवियों की मान्यताओं में भी परिवर्तन आया। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम और जगज्जननी सीता को भी माधुर्य भावना से रंजित कर दिया। संस्कृत साहित्य और सूफी साहित्य के सम्मिलित प्रभाव से मर्यादावादी राम भी 'गीतावली' में नगर ललनाओं के साथ हिंडोला झूलने लगे।[2] जानकी जी भी रंग बिरंगे वस्त्र तथा आभूषण धारण कर युवती-समूह के साथ हाथ में बैंत की छड़ी लिए मार्ग खोजने लगीं। होली का अवसर है और स्त्री पुरुष परस्पर अनेक प्रकार की गालियाँ दे रहे हैं। राम अपने भाइयों के साथ उन्हें सुन-सुन कर खूब हँसते हैं।[3] इस प्रकार राम के दो रूप प्रतिष्ठित हुए—लोक रक्षा के लिए रावणादि राक्षसों का संहार करने वाले परब्रह्म परमेश्वर राम और दूसरे मानव दुर्बलताओं से परिपूर्ण राजा राम।

अकबर साहित्य का प्रेमी था अतः उसने यथाशक्ति साहित्यिकों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। ये कवि उर्दू, हिन्दी और फारसी सभी भाषाओं में काव्य रचना कर रहे थे। अकबर ने कुछ संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी करवाया

१. रीतिकालीन कविता और शृंगार रस का विवेचन, रा० प्र० च०, पृ० २६८
२. उत्तरकांड, राम हिंडोला, १८वां पद
३. उत्तरकांड, वसंत विहार, २२वां पद

था। ये दरबारी कवि थे और साधारण प्रजा की इन तक पहुँच नहीं थी इसलिए इनकी कविताओं में हमें जनता का आर्तनाद कहीं नहीं सुनाई पड़ता। प्रजा के सम्पन्न वर्ग से ही इनका परिचय था इसलिए इनके काव्यों में वाक्चातुर्य और शृंगार रस की प्रधानता है। नरहरि, गंग, रहीम और बीरवल आदि इसी प्रकार के कवि थे। इस समय हिंदी के कवि उर्दू और फारसी का ज्ञान प्राप्त कर इन भाषाओं में अपनी रचना करने लगे थे और उर्दू फारसी के विद्वान् हिंदी में। दोनों भाषाओं में सामंजस्य की दृष्टि से यह बहुत ही शुभ बात थी परन्तु इसका एक अशुभ पक्ष भी था जिसकी ओर केशवदास आदि कवियों का ध्यान तुरन्त गया। केशवदास ने वाण, भट्टि और जयदेव के समान कहीं यह नहीं कहा कि मैं अपनी रचना विद्वानों की बुद्धि को परखने के लिए कर रहा हूँ। उन्होंने सदैव यही कहा है कि बालक बालिकाओं को काव्य शिक्षा देने के लिए कर रहा हूँ। जिस प्रकार हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन को देखकर यदि तुलसीदास अपनी संस्कृति की रक्षा करने के लिए राम का मंजुल रूप देशवासियों के सामने न रखते तो भारतीय संस्कृति का क्या रूप बनता, कह सकना कठिन है। उसी प्रकार केशवदास ने जब देखा कि साहित्य का इस प्रगति से हिंदी भाषा का भविष्य अंधकारमय हो सकना सम्भव है तो उन्होंने भाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप व्यवस्थित करने और काव्य-प्रेमियों को काव्य का शास्त्रीय मार्ग दिखाकर उसकी परम्परा को स्थायी बनाने का प्रयत्न किया। उनके पूर्व भी कुछ कवियों ने इस प्रकार के प्रयास किए पर ये सब अत्यन्त क्षीण थे और इनमें वैज्ञानिक विवेचन का अभाव था। कृपाराम के अतिरिक्त रहीम ने बरवै में नायिका भेद लिखा, सूरदास ने पदों में कृष्ण गीतावली और तुलसी ने बरवै में रामायण तथा पदों और कवित्तों में राम-कथा लिखी, बलभद्र ने नखशिख लिखा पर इनमें काव्यांगों का विवेचन नहीं था इसलिए इस गुरुतर कार्य को केशव ने सम्भाला और 'रसिकप्रिया' में रस विवेचन, 'कविप्रिया' में अलंकारों का वर्णन, 'रामचन्द्रिका' में विविध छन्दों को प्रस्तुत कर इस दिशा में स्तुत्य प्रयास किया।

केशवदास स्वयं इन्द्रजीत के दरबारी कवि थे अतः उनका साहित्य एक ऐसा चतुष्पथ है, जहाँ राजमार्ग आकर मिलते हैं जनवीथियाँ नहीं। प्रजा के निर्धन वर्ग से उनका कोई परिचय नहीं है इसलिए उसका मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण केशव के साहित्य में नहीं है। उन्हें देश और काल की उन्हीं धाराओं ने प्रभावित किया है जिनका सम्बन्ध देश के सम्भ्रान्त और शिक्षित वर्ग से है। काव्य शिक्षा और धार्मिक प्रवृत्ति केशव को अपने वंश से उत्तराधिकार स्वरूप मिली थीं। उनके आश्रयदाता मधुकरशाह, रामशाह, इन्द्रजीत और वीरसिंह देव चारों काव्य-प्रेमी, धार्मिक और युद्धप्रिय थे, इसलिए केशव के जीवन और काव्य पर भी इन्हीं का प्रभाव अधिक पड़ा है।

काव्य के क्षेत्र में केशव पर प्रायः हिन्दी साहित्य का कोई प्रभाव नहीं है। वे अधिकांश संस्कृत साहित्य से प्रभावित हैं और उसी की शैली को लेकर आगे बढ़े

है। साहित्यिक दृष्टि से केशव पर काव्य-शास्त्रियों का प्रभाव है जो संस्कृत से प्रेरित होकर हिन्दी में काव्य रचना कर रहे थे। ऐसे ग्रन्थ आज उपलब्ध न होने के कारण निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि केशव पर किन कवियों का प्रभाव पड़ा था परन्तु जैसा कृपाराम ने कहा है कि "और कवियों ने बड़े छंदों के विस्तार में शृंगार का वर्णन किया है पर मैंने सुघरता के विचार से दोहों में वर्णन किया है।"[1] उससे इतना ही अनुमान होता है कि केशव के पूर्व इस प्रकार के साहित्य की एक दीर्घ परम्परा अवश्य रही होगी।

भक्ति के क्षेत्र में केशव उसी विचारधारा से अनुप्राणित थे जिससे तुलसीदास। उन्होंने भी ब्राह्मण जाति के अधःपतन का वर्णन करते हुए उसकी पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। भक्ति के साधनों का वर्णन करते हुए तुलसी के ही समान उन्होंने भी ब्राह्मणों की सेवा पर ज़ोर दिया। गीता में श्रीकृष्ण ने शारीरिक तपस्याओं में ब्राह्मण पूजा की गणना की थी।[2] भागवत में नारद युधिष्ठिर से कहते हैं—"मनुष्यों में ब्राह्मण सुपात्र है क्योंकि वह अपनी तपस्या, विद्या और सन्तोष आदि गुणों से भगवान् के वेद रूप शरीर को धारण करता है।......उसके चरणों की धूलि से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं।"[3] इस प्रकार परम्परा से चला आता हुआ यह अधिकार छोड़ने को न तुलसी तैयार थे और न केशव। परन्तु इतना अवश्य है कि केशव ब्राह्मणों के पाखंड से परिचित होने के कारण प्रत्येक ब्राह्मण को श्रद्धा के योग्य नहीं समझते और शूद्र को भी सम्मानित व्यक्ति समझकर उसका रामचरित्र और 'रामचंद्रिका' पढ़ने का समान अधिकार समझते हैं।

उस समय जनता में जीवन के प्रति वैराग्य की भावना प्रधान थी, केशवदास भी उससे अछूते नहीं थे। उन्होंने भी कबीर, सूर और तुलसी के समान बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था जनित दुःखों का वर्णन 'रामचंद्रिका' में किया पर योग आदि की कठिन उपासना में विश्वास न कर वे गृहस्थ जीवन की मर्यादा में विश्वास रखते थे। कबीरदास तो स्त्री के सबसे बड़े विरोधी थे ही, तुलसीदास ने भी संभवतया आत्म-प्रतारणा से बचने के लिए 'नारि निबिड़ रजनी अंधियारी' कहकर उसका अपमान किया है। केशवदास ने स्त्री का अपमान न कर विषय-वासना का अपमान किया और गृहस्थाश्रम में स्त्री का पूरा सम्मान किया है।

केशव ने राम के उसी रूप को मान्य समझा है जिसका आभास हमें तुलसी की अंतिम कृतियों की ओर होने लगता है। उसके राम पूर्ण परब्रह्म होकर भी एक राजा हैं जो अन्य लौकिक राजाओं के समान ही दुर्बल हैं। केशव राम की दुर्बलताओं पर धार्मिकता का आवरण न डालकर उन्हें स्पष्ट करके बतलाते हैं जिससे यह राम

---

१. हिन्दी सा० का इति०, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १९८
२. गीता, १७. १४
३. श्रीमद्भागवत, ७, १४, ४२

अपने भक्तों के अधिक समीप आ सकें। राम के द्वारा उन्होंने राजनीतिक उद्देश्य की भी पूर्ति की और कथा में वाल्मीकि का अनुसरण कर तत्कालीन राजाओं की जीवन-चर्या का एक सुन्दर चित्र खींचा और साथ ही भरत का आदर्श दिखाकर आश्रयदाता के भाइयों की राज्यलिप्सा पर तीव्र प्रहार भी किया। उन्होंने एक ऐसे राजा का आदर्श रखा जो एक ओर राज्यश्री की निन्दा कर उससे उदासीन है और दूसरी ओर कर्त्तव्य को प्रधान समझकर राज्य को स्वीकार कर प्रजा का पालन भी करता है। वह राज्य वैभव को भोगते हुए भी राजा जनक के समान उससे अनासक्त है।

उर्दू की काव्य-मान्यताओं का भी प्रभाव केशवदास के विचारों पर पड़ा और उन्होंने कृष्ण को परम पुरुष तथा राधा को जगन्नायक की नायिका[1] मानकर नवरसों का समावेश शृंगार रस के अन्तर्गत किया। भक्ति साहित्य में राम काव्यों के माध्यम से यह भावना थोड़ी बहुत पुष्पित पल्लवित होती रही और केशव ने 'रामचंद्रिका' में राम का नखशिख, सीता की दासियों का नखशिख वर्णन कर तथा राम सीता के लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कर शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए अवसर निकाल लिया। इस प्रकार इस काल में शृंगारोन्मुख भक्ति भावना का प्रतिपादन हुआ। कालान्तर में यही भावना 'राधा कन्हाई केवल सुमिरन को बहानो' में जाकर परिणत हो गई। समय की आवश्यकताओं से प्रेरित होकर संत कवियों ने जो वैराग्य, सदाचार, ज्ञान, गुरु-महिमा तथा संसार की असारता के उपदेश दिए थे वे शिथिल पड़ रहे थे। उनमें स्थूल लोकाचार मात्र रह गया था। अन्दर से वे सारहीन हो रहे थे। ये ऐसी उपासना के मार्ग थे जिनमें शरीर को कष्ट होता था और मस्तिष्क को संतुलित रखना पड़ता था अतः ये साधारण गृहस्थों को अधिक समय तक आकर्षित न कर सके। इस समय जनता के इन विचारों का प्रासाद डगमगा रहा था पर अभी टूट कर नहीं गिरा था। केशवदास एक ऐसे सन्धि-स्थल पर खड़े थे जहाँ एक ओर प्राचीन मान्यताएँ जर्जर हो रही थीं और दूसरी ओर नवीन विचारों का उदय हो रहा था। केशवदास ने दोनों के सामंजस्य में कल्याण समझकर पुरातन का खंडन किया और नवीन का स्वागत किया। वे सन्त कवियों से प्रभावित थे परन्तु उनके दुर्बल पक्ष के समर्थक नहीं थे। इसलिए उनके काव्य में हमें तत्कालीन समाज में अनाचारों के प्रति आक्रोश, रामकृत राज्यश्री की निन्दा, भक्ति का सरल मार्ग, एवं ज्ञान-विज्ञान के सरल उपदेश तथा साथ ही राम सीता के संगीत नृत्यादि द्वारा मनोरंजन के चित्र भी मिलते हैं।

किसी भी युग में प्रचलित धाराएँ कवि की चिन्तन शक्ति को प्रेरित करती हैं और वह स्वयं भावी युग का निर्माण करता है। केशव भी तत्कालीन स्थितियों की उपज और भावी साहित्य के निर्माता हैं।

---

१. रसिकप्रिया : केशवदास

केशव के वैयक्तिक संस्कार तथा अभिरुचि

'रामचंन्द्रिका' के आरम्भ में केशवदास ने अपने वंश का परिचय देते हुए कहा है कि उनका जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जिसकी मातृभाषा ही संस्कृत थी। उनके पूर्वज, पितामह, पिता और अग्रज बलभद्र मिश्र सभी संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे।[1] ऐसे ही वातावरण में बालक केशव का लालन-पालन हुआ था। बचपन से ही उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था और वयस्क होते-होते उस पर उनका पूरा अधिकार हो गया था। उनके अग्रज बलभद्र मिश्र राजा मधुकरशाह और रामशाह के दरबार में पुराणों का पाठ कर उनकी व्याख्या किया करते थे अतः केशव को गुरु की खोज में कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं थी। संस्कृत साहित्य के साथ ही केशव के पिता और भाई ने हिंदी साहित्य का भी अध्ययन किया था। उनके पिता काशीनाथ मिश्र ने 'शीघ्र बोध' नामक ज्योतिष ग्रन्थ और भाई बलभद्र मिश्र ने 'नखशिख' नाम से एक अलंकार ग्रन्थ की रचना की थी। उनका छोटा भाई कल्यान भी एक अच्छा भाषा कवि था।[2] इस प्रकार हिंदी साहित्य के अध्ययन का भी एक सुष्ठु वातावरण केशव को घर में ही उपलब्ध था परन्तु निश्चय ही संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए यह वातावरण अधिक अनुकूल था।

केशवदास ने संस्कृत के लक्ष्य और लक्षण दोनों प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने देखा कि हिन्दी साहित्य में लक्ष्य ग्रन्थों का अभाव नहीं है। जायसी का 'पद्मावत', सूर का 'सूरसागर', तुलसी का 'रामचरितमानस' जैसी उत्कृष्ट रचनाएँ उनके पूर्व ही हो चुकी हैं, परन्तु उसमें लक्षण ग्रन्थों का नितान्त अभाव है इसलिए उनकी दृष्टि ललित साहित्य की अपेक्षा काव्यशास्त्रों की ओर अधिक उन्मुख रही।

चंद्रबली पांडेय ने 'महाकवि केशव' नामक ग्रन्थ में कहा है 'केशव' का संस्कृत का ज्ञान अधूरा था इसलिए उन्होंने संस्कृत में कोई काव्य रचना नहीं की। उनका जो विषाद है कि 'भाषा बोलि न जानहि जिनके कुल के दास' वह उनकी नम्रता नहीं बल्कि खेद प्रगट करता है। संभवतः इसका कारण यह था कि बचपन में ही उन्हें पितृसुख से वंचित रहना पड़ा था।[3] परन्तु केशव ने जिस प्रकार अपने ग्रन्थों में

---

१. सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव।
सुकृष्ण दत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडित राव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशीनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध॥
उपज्यो तेहि कुल मंदमति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करि प्रकास॥

रा० च०, १।४

२. केशवदास : ही० ला० दीक्षित पृ० २६
कवि कल्यान के तनयं हुव परमेस्वर इहि नाम

३. महाकवि केशवदास : पृ० ३०

संस्कृत काव्यों का सफल अनुवाद और काव्य शास्त्रों का प्रणयन किया है उससे हम उनके संस्कृत ज्ञान के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं कर सकते। जहाँ तक उनके संस्कृत भाषा में कोई रचना न करने का सम्बन्ध है उनके पिता जो गणेश के समान बुद्धिमान् थे और उनके भाई बलभद्र मिश्र की भी रचनाएँ हमें हिन्दी भाषा में ही मिलती हैं; संस्कृत में नहीं। 'भाषा बोलि न जानहिं जिनके कुल के दास' वाली उक्ति उनकी नम्रता की ही द्योतक है दीनता की नहीं क्योंकि उनकी इस नम्रता के दर्शन हमें अन्यत्र भी होते हैं।[1] इसी प्रकार की उक्तियाँ कबीर, सूर और तुलसी ने भी कही हैं जो उनके विषाद की नहीं, नम्रता की ही परिचायक हैं।

केशवदास ने अपने काव्यों की रचना, मुख्य रूप से 'कविप्रिया' की रचना इन्द्रजीत के दरबार की प्रवीणराय आदि छः वेश्याओं को लक्ष्य करके की है। इसलिए कुछ आलोचकों का केशव के सम्बन्ध में सबसे बड़ा आक्षेप यही है कि वारांगनाओं के मध्य में पले हुए केशव उत्कृष्ट अभिरुचि वाले हो ही नहीं सकते थे। उनके संस्कारों में विलासिता दूध-पानी के समान मिश्रित थी जिसके परिणाम हुए 'रसिक प्रिया' एवं 'कविप्रिया'। परन्तु उनकी रचनाओं का अध्ययन करने से यह आक्षेप निराधार प्रतीत होता है। केशवदास दरबारी वातावरण में पल्लवित अवश्य हुए थे परन्तु उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। उन पर 'कादम्बरी' तथा 'नैषध चरित' के लेखक बाण और हर्ष तथा हनुमन्नाटककार एवं प्रसन्नराघवकार जयदेव का गम्भीर प्रभाव था। इन संस्कृत काव्यकृतियों के अनुशीलन से पता चलता है कि उस समय राजाओं के दरबारों में रहने वाली वेश्याओं का उपयोग शारीरिक क्षुधा निवारण करने के लिए नहीं होता था बल्कि उनसे उन्हें बौद्धिक तृप्ति और मानसिक आनन्द मिला करता था। ये वेश्याएँ कला की सच्ची साधिकाएँ होती थीं और शास्त्रीय नृत्य तथा संगीत का प्रदर्शन किया करती थीं। इन्द्रजीत के दरबार में भी इसी प्रकार की कुछ वेश्याएँ थीं जो नृत्य व संगीत का अभ्यास तथा चर्चा भी करती थीं। उनमें से प्रवीणराय नामक वेश्या नृत्य और संगीत के साथ काव्य चर्चा भी करती थी और अत्यन्त विदुषी थी। इसी से वह इन्द्रजीत को सबसे अधिक प्रिय थी। इन्द्रजीत स्वयं काव्य-रसिक थे अतः उन्होंने केशव से प्रवीणराय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने का अनुरोध किया था।

केशव यदि विलास प्रवृत्ति के होते तो उनके समक्ष 'हनुमन्नाटक' में राम-सीता के विलास का वर्णन, 'भट्टिकाव्य' के राक्षस-राक्षसियों के काम-वर्णन और 'नैषध चरित' के शृंगारपूर्ण दृश्यों के वर्णन मुक्त रूप से खुले पड़े थे। वे इस स्वतंत्रता का उपयोग कहीं भी कर सकते थे परन्तु उन्होंने जहाँ ऐसे अवसर आए भी हैं उन्हें

---

१. इहि विधि केशवदास रस, अनरस कहे विचारि।
वर्णत भूलि परी जहाँ, कवि कुल लेहु सुधारि॥
रसिकप्रिया १६।२४

सफलतापूर्वक बचा दिया है। रामचंद्रिका में सीता की दासियों के वर्णन में कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं हुआ है। वेश्याओं के प्रसंग में भी उन्होंने उनकी उपमा रमा, शारदा और पार्वती आदि से दी है। एक दूसरे स्थल पर वे उनके सौन्दर्य की उपमा रति से न देकर सरस्वती से देते हैं क्योंकि उनके अनुसार नारी-सौन्दर्य की पूर्णता शारीरिक तथा बौद्धिक सौन्दर्य के सामंजस्य में ही है। दूसरी ओर 'नैषधचरित' में हर्ष कवि ने नल का रूप-वर्णन सुनते ही पार्वती और लक्ष्मी को आसक्त दिखाकर देवियों को ही साधारण मानवी धरातल पर उतार दिया है। क्षेमेन्द्र कवि की 'समय मात्रका' एक वेश्या की आत्मकथा के ही रूप में लिखी गई है परन्तु इससे कवि की काव्य शक्ति में कोई दोष नहीं आ जाता।

केशव की रचनाओं में प्रायः प्रबन्धात्मकता का अभाव और चमत्कार दर्शन की प्रवृत्ति लक्षित होती है परन्तु यह प्रदर्शन कहीं भी सप्रयास नहीं है। उन्होंने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसमें इस प्रकार की रचनाओं की अजस्र धारा स्वतः ही प्रवाहित हुई थी। संस्कृत साहित्य में कथा कहने की दो प्रणालियाँ थीं: (क) मुख्य कथा को छोड़ कर काव्य की छटा के साथ कथा का सूत्र पकड़े रहना, और (ख) कथा का सांगोपांग विस्तारपूर्वक वर्णन करना। बाणभट्ट प्रथम प्रणाली के और बाल्मीकि द्वितीय के प्रणेता हैं। केशवदास रामचंद्रिका में कथानक की दृष्टि से बाल्मीकि से प्रभावित और वर्णन के लिए बाण के ऋणी हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कालिदास के संबंध में कहा है "कुमार संभव में कहानी नहीं के बराबर है। इसी प्रकार रघुवंश का हर श्लोक अपने आप में ही समाप्त है। हरेक श्लोक जुदे-जुदे हीरक खण्ड के समान उज्ज्वल और समग्र काव्य एक हीरक हार के समान सुन्दर है। किन्तु नदी के प्रवाह की तरह उसमें अखण्ड कलरव और अविच्छिन्न धारा नहीं है।"[1]

केशवदास के संबंध में भी हम ठीक यही बात कह सकते हैं। रामचंद्रिका में कथानक है पर उसका सूत्र क्षीण है। उसका प्रत्येक छंद स्वतंत्र होते हुए भी पूर्ण प्रबंध का एक भाग है। केशवदास का अध्ययन करते समय हमें कभी यह विस्मरण नहीं करना चाहिए कि वे राजकवि होने के साथ-साथ राजगुरु भी थे। उनके काव्य-ग्रन्थों की रचना बालक-बालिकाओं को शिक्षा देने के लिए हुई है अतः वे एक बार में उतना ही कहते हैं जितना छात्र समझ सके और अपनी शंका का समाधान कर सके। इन्हीं कारणों से उनके काव्यों में प्रबन्धात्मकता का अभाव है, चमत्कार-प्रदर्शन इसका कारण नहीं है।

केशवदास को भक्ति भावना अपने वंश से उत्तराधिकार स्वरूप मिली थी। उनके पूर्वज पुराणों का पाठ और विश्लेषण किया करते थे। उनके बड़े भाई बलभद्र भी मधुकरशाह के दरबार में पुराण पाठ करते थे इसलिए केशव को भी पुराणों का

---

१. कादम्बरी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक ऋषीश्वरनाथ, पृ० २६

अच्छा ज्ञान था। मधुकरशाह स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति के थे और अपने धर्म का पालन पूर्ण निष्ठा से करते थे। मधुकरशाह की ज्येष्ठ रानी गणेश कुँवरि भगवान् राम की अनन्य उपासिका थीं। कहा जाता है कि उन्हें भगवान् राम का इष्ट भी था। उन्होंने भगवान् राम की एक मूर्ति अयोध्या से लाकर ओरछा में स्थापित की थी।[1] रामशाह के संबंध में भी कहा जाता है कि एक बार वे बद्रीनाथ की यात्रा करने गए थे। उनके वहाँ पहुँचने पर मन्दिर के पट स्वयं खुल गए थे तथा दीपक जल उठे थे। केशव के जीवन पर इन धार्मिक विचारों की छाप पड़ी थी। उन्होंने भी राम को इष्ट देव मान लिया था और उन्हीं का गुणगान करते हुए रामचंद्रिका जैसे धार्मिक ग्रन्थ की रचना की। उनके विचारों पर रामानन्द का प्रभाव भी था, इसी से उन्होंने राम की भक्ति पर स्त्री-पुरुष, शूद्र-क्षत्रिय सबका समान अधिकार माना।

केशव ने अपने काव्य-ग्रन्थों में जितना अपना परिचय दिया है उससे अनुमान होता है कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय था। जिस प्रकार तुलसीदास ने अपने आत्मविवेचन के क्षणों में स्वीकार किया है कि तरुणाई आने पर वे विषय-वासना में लिप्त हो कर पथभ्रष्ट हो गए थे उस प्रकार केशव के जीवन में आत्म-प्रतारणा का कोई अवसर नहीं दिखाई देता। वे स्त्री को वासना की दृष्टि से न देखकर सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इसी से वे कहते हैं :—

प्रीति करे नजी नारि सों, परनारी प्रतिकूल।
केशव मन वच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल।[2]

पारिवारिक जीवन की मर्यादा में उनकी पूर्ण आस्था थी तभी तो रामशाह और वीरसिंह दोनों भाइयों को पारस्परिक युद्धों में तत्पर देख उन्हें बड़ा क्लेश होता था। पारस्परिक वैमनस्य को देख उनका सारा अन्तःकरण विचलित हो उठता था। रामशाह को अनुचित मार्ग पर जाते हुए देखकर भी वे छोटे भाई वीरसिंह को समझाते हैं कि बड़े भाई की सेवा करो. युद्ध करने से कोई लाभ नहीं है। अपने जीवन के उत्तर काल में वीरसिंह उनसे कुछ माँगने को कहते हैं तो केशव गंगा तट का वास मांग लेते हैं। उस समय वीरसिंह उनसे यही कहते हैं कि वे निर्भय होकर सपत्नीक और संतति सहित गंगा तट पर निवास करें।[3]

केशव प्रकृति से निष्पक्ष और स्पष्टवादी थे। समस्त 'रामचंद्रिका' में उनकी यह प्रकृति दृष्टिगोचर होती है। अंगद का राम की अधीनता स्वीकार करना, विभीषण का भाई से विश्वासघात करना और भाभी मंदोदरी को अपनी स्त्री बनाना, राम

---

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : गोरेलाल तिवारी, पृ० १८७
२. रसिक प्रिया, दूसरा प्रभाव, छन्द ३
३. विज्ञान गीता, पृ० १२४,१२६

का पतिव्रता सीता को निरपराध त्यागना आदि ऐसे स्थल हैं जिनसे केशव कभी समझौता न कर सके। राम जानते हैं कि उन्होंने निरपराध बालि का वध कर सुग्रीव का पक्ष समर्थन किया है। अंगद वीर हैं इसलिए उनके जीवन में यह बहुत बड़ा कलंक है कि वे पितृघाती राम का साथ देते हैं। केशव अंगद के इस अपराध को क्षमा नहीं कर सके हैं इसीलिए वे रण-क्षेत्र में लव-कुश के द्वारा अंगद का अपमान कराते हैं।[1] सीता त्याग तो राम के जीवन में बहुत ही बड़ा कलंक है। इस संबंध में रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा है कि "लंकाकाण्ड तक अधर्माचारी निष्ठुर रावण ही सीता का परम शत्रु था। उससे छुटकारा मिला, हम आनन्द के लिए प्रस्तुत हुए, तभी कवि ने दिखा दिया कि सीता का वास्तविक शत्रु अधार्मिक रावण नहीं बल्कि धर्मनिष्ठ राम है। जो स्वर्ण तरणी बहुत समय तक प्राणपण से युद्ध करके घोर तूफान से उबरी वह घाट ही के पत्थर से टकराकर दमभर में दो टुकड़े हो गई।"[2] राम आदर्श राजा हैं परन्तु उनका राज्य रामराज्य होते हुए भी उसमें प्रजा का स्वर अरण्य रोदन मात्र है। राम के राज्य में इतना बड़ा अन्याय हो रहा है परन्तु प्रजा मौन है, लक्ष्मण भी राम का विरोध करने का साहस नहीं करते। केशवदास को यह अधर्म सदैव पीड़ित करता है इसलिए वे शांति के प्रतीक भरत से ही कहलाते हैं कि तुमने निष्पाप सीता को त्यागा है इसी कारण तुम्हारी पराजय हुई है। जो निर्दोष को दोष लगाता है उसे यही फल मिलना चाहिए।[3]

दूसरी ओर रामचन्द्रिका में विभीषण का चरित्र है। तुलसीदास ने रामभक्त कहकर विभीषण की प्रशंसा की है और उसी की महत्त्वाकांक्षा तथा विश्वासघात पर आवरण डालकर उसकी यथार्थता को अप्रकट ही रहने दिया है। रावण का सीता-हरण करना नितान्त अनुचित कार्य है। उसके सभी हितैषी भी उसे यही समझाते हैं परन्तु राज्य पाने की कामना से अपने प्राणों को बचाकर कोई विपक्षी दल में मिलने नहीं आता। विभीषण का यह कार्य सर्वथा निन्दनीय है। केशव का स्वाभिमानी हृदय कहता है कि यदि विभीषण को अपने भाई का यह कार्य अनुचित प्रतीत हुआ तो वह उसी समय राम के पास क्यों न आ गया जब सीता का हरण हुआ था। साथ ही वह मन्दोदरी को वैधव्य का वज्राघात सहन करने का भी समय न देकर उसे अपनी महिषी बना लेता है। केशव दाम्पत्य जीवन की पवित्रता में विश्वास करते हैं इसलिए उन्हें विभीषण का यह कार्य सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है।

---

१. रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध, छन्द ६-१०

२. कादम्बरी: रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक ऋषीश्वरनाथ, पृ०२६

३. पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुनै जग गीता।
दोष विहीनहि दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै।

रा० च०, उत्तरार्द्ध, १० ३०८

लवकुश तो उनके इस आक्रोश के माध्यम मात्र हैं। यथार्थ में यह कवि का अपना आक्रोश है जो उनके द्वारा मुखर हुआ है।[1]

केशव ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर सनाढ्य वंश की प्रशंसा और दान की महिमा का वर्णन किया है, इसलिए कुछ विद्वानों का मत है कि केशवदास लोभी और संकीर्ण वृत्ति के ब्राह्मण थे। केशवदास जो इन्द्रजीत के राज्य में राज कर रहे थे और स्वयं एक समृद्ध परिवार के थे उनमें यह लोभ होगा, सहसा विश्वास नहीं होता। प्रयाग में इन्द्रजीत उनसे कुछ माँगने को कहते हैं और वे माँगते हैं केवल उनका कृपाभाव।[2] बीरबल उन्हें कुछ देना चाहते हैं और वे माँगते हैं दरबार में निर्बाध प्रवेश।[3] वीरसिंह प्रसन्न होकर उनसे कुछ लेने को कहते हैं और वे माँगते हैं गंगा तटवास।[4] ये तीनों ही ऐसे अवसर हैं जब केशव यदि लोभी होते तो इच्छानुसार धन वैभव ले सकते थे परन्तु उन्हें इसकी इच्छा नहीं थी। उन्हें स्वयं धन का अभाव नहीं था और अधिक के लिए वे लालायित नहीं थे।

सनाढ्य वंश में उत्पन्न होने के कारण अपनी जाति से केशव को मोह था परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे संकीर्ण हृदय थे। सभी ब्राह्मणों में सनाढ्य ब्राह्मणों को ही श्रेष्ठ समझकर क्यों दान दिया जाए इसी शंका का निवारण वे भरद्वाज ऋषि के द्वारा करवाते हैं। राम भरद्वाज ऋषि से प्रश्न करते हैं कि सभी ब्राह्मणों को छोड़कर सनाढ्य ब्राह्मणों को क्यों अधिक पूजनीय मानना चाहिए। भरद्वाज ऋषि प्राचीन संस्कृत साहित्य से उद्धरण देकर बताते हैं कि महादेव जी ने नारायण से सुनकर सनाढ्यों की श्रेष्ठ उत्पत्ति की कथा उनको सुनाई थी। पवित्र आचरण वाले और वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के चार पुत्रों सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार के मानस से सनाढ्यों की उत्पत्ति हुई है। इसी से वे वन्दनीय हैं और उन्हीं को दान देना चाहिए।[5]

दूसरी ओर केशव ने अन्य ब्राह्मणों का भी एक दृश्य दिखाकर अपने इस मत की पुष्टि की है। उन्होंने अयोग्य ब्राह्मण की निंदा करके तथा पौराणिक साहित्य से

---

१. देव वधू जब हीं हरि ल्यायौ। क्यों तबहि तजि ताहि न आयौ।
(रा० च०, उत्तरार्द्ध, पृ० ३०८)

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी तू पत्नी करी पत्नी मातु समान।।
को जानै कै बार तू कही न ह्वै है माय।
सोई हैं पत्नी करी, सुनु पापिन कै राय।।
(रा० च०, उत्तरार्द्ध, पृ० ३१६)

२. कविप्रिया, छन्द १८, पृ० ११

३. कविप्रिया, छन्द १६, पृ० २२

४. विज्ञान गीता

५. रा० च०, उत्तरार्द्ध, छन्द १५-२०

प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि वह दान देने के योग्य नहीं है। वह पापी होता है और उसे यदि कोई स्पर्शभी कर ले तो उसे चान्द्रायण व्रत करके सचैल स्नान करना चाहिए।[१] कुछ ब्राह्मण ऐसे हैं जो रात्रि वार-वधुओं के साहचर्य में व्यतीत करते हैं और प्रातःकाल होने पर स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर तिलक लगाकर योग यज्ञ का उपदेश करते हैं।[२] उन लोगों को वेदों का कोई ज्ञान नहीं होता और बिना अर्थ समझे हुए शुक-बालों के समान उच्च स्वर में पाठ करते हैं। वे कटि में मृग चर्म, कण्ठ में अक्षत माला, शरीर पर भस्म धारण कर बाह्याडम्बर पूरा रचते हैं परन्तु वेद पुराणों से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं।[३]

केशव नहीं चाहते कि प्रजा जो दान करे वह अपात्र ब्राह्मणों के हाथ पड़कर उनके भोग-विलास में व्यय हो, इसलिए वे सनाढ्य ब्राह्मणों को ही दान देने की शिक्षा देते हैं क्योंकि वे सपरिश्रम वेद पुराणों का अध्ययन कर उनकी मीमांसा करते हैं और श्रोताओं को उचित मार्ग पर अग्रसर करते हैं।

केशव इन्द्रजीत के गुरु, मन्त्री, परामर्शदाता सभी कुछ थे। उनके कारण रामशाह का भी उनमें पूर्ण विश्वास हो गया था। इसीसे उन्होंने संधि का संदेश लेकर केशव को ही वीरसिंह के पास भेजा। वीरसिंह ने भी रामशाह को उनसे ही पत्र लिखवाया था। इन्द्रजीत जब प्रयाग सलीम से मिलने गए तो केशव को अपने साथ लेते गए थे। इससे स्पष्ट पता चलता है कि इन राजाओं की केशव की बुद्धि तथा वाक्नैपुण्य में पूर्ण आस्था थी। प्रवीणराय के कारण इन्द्रजीत पर हुए अर्थ-दण्ड को क्षमा कराने का उत्तरदायित्व भी उन्हीं को सौंपा गया था[४] और उन्होंने अत्यन्त कुशलतापूर्वक बीरबल तथा अकबर को प्रभावित कर इस कार्य को सम्पन्न किया था। इस प्रकार के कार्यों को करते हुए केशव एक अच्छे तार्किक तथा वाक्-निपुण हो गए थे। उनकी 'रामचन्द्रिका' तो जैसे उनके तर्कों का एक अक्षय भंडार ही है।

इस प्रकार केशव के जीवन का—उनकी मनोवृत्तियों एवं अभिरुचियों का उनके परम्परागत संस्कारों तथा चहुँ ओर के वातावरण से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह प्रभाव इतना अधिक गम्भीर था कि उन्होंने युग की धारा को ही एक नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया। उनके काव्य को पढ़-पढ़ कर सहस्रों नवयुवक कवि बन गए और केशव निर्विवाद रूप से शास्त्रीय काव्य के आदि प्रणेता स्वीकार कर लिए गए। इसी से रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि देव ने कहा था—

> केशव से गंग से प्रसिद्ध कविवर से जै।
> कालीह गए न वृथा काल ही बितावही ॥[५]

---

१. रा० च० उत्तरार्द्ध, छन्द २२२-२२५
२. विज्ञान गीता—पृ० ११
३. विज्ञान गीता—पृ० ११
४. शिवसिंह सरोज : शिवसिंह सेंगर
५. वैराग्य शतक देव : देव कवि

चतुर्थ अध्याय

प्रबन्धकाव्य तथा रामचन्द्रिका में प्रबन्धकाव्यत्व

शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार प्रबन्धकाव्य के दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। 'रामचन्द्रिका' की गणना हिंदी महाकाव्यों के अन्तर्गत होती है अतः हम यहाँ केवल महाकाव्य की ही परिभाषा पर विचार करेंगे।

महाकाव्य की कोई एक परिभाषा निश्चित करना अत्यंत कठिन है क्योंकि देश और काल के अनुसार उसकी परिभाषा सदैव परिवर्तित होती रही है। साहित्य के मानदण्डों का निर्माण सदैव साहित्य सृजन के पश्चात् हुआ करता है अतः ज्यों-ज्यों महाकाव्यों की रचना होती रही, महाकाव्य की परिभाषा का स्वरूप भी बदलता गया। यूरोपीय देशों में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अरस्तू ने होमर रचित दो महाकाव्यों—इलियड तथा ओडेसी—का मुख्य रूप से आदर्श मानकर महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किए परन्तु बाद के शास्त्रीय शैली पर लिखे गए महाकाव्यों पर अरस्तू के ये लक्षण लागू नहीं होते। भारत में भी यद्यपि रामायण को आदि महाकाव्य कहा जाता है परन्तु फिर भी दण्डी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ आदि परवर्ती कवियों के काव्य को दृष्टि में रखकर ही निर्धारित किए। इन आचार्यों की परिभाषा के अनुसार शास्त्रीय दृष्टि से रामायण में महाकाव्य के लक्षण पूर्णतया घटित नहीं होते। अतएव प्राचीन परिभाषाएँ सदैव परिवर्तनशील रही हैं।

एक परिभाषा को सारे महाकाव्यों पर घटित होते न देख यूरोप में महाकाव्य के दो रूप मान लिए गए—प्राकृतिक अथवा लोक काव्य और साहित्यिक अथवा अलंकृत महाकाव्य। यूरोपीय विद्वानों ने इसी वर्गीकरण को भारतीय महाकाव्य पर भी लागू करके रामायण आदि काव्यों को लोक काव्य तथा अश्वघोष, कालिदास आदि परवर्ती कवियों के काव्यों को अलंकृत महाकाव्यों के अन्तर्गत रखा।

महाकाव्य के सम्बन्ध में भारतीय मान्यताएँ

भामह—महाकाव्य की परिभाषा हमें सर्वप्रथम भामह के काव्यालंकार में मिलती है। उनके समय तक अलंकृत तथा रूढ़िबद्ध महाकाव्यों की रचना नहीं हुई थी अतः उन्होंने अरस्तू के ही समान महाभारत, रामायण जैसे लोककाव्यों को दृष्टिगत रखते हुए महाकाव्य की परिभाषा की है। उन्होंने महाकाव्य के बाह्य

लक्षणों का विवरण उपस्थित नहीं किया है अतः उनकी परिभाषा संकीर्ण तथा रूढ़िबद्ध नहीं है। भामह के अनुसार—

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थं च सालंकारं सदाश्रयम्।
मंत्रदूतप्रयाणादिन् नायकाभ्युदयं च यत्।
पंचभिःसन्धिभिर्युक्तं नाति व्याख्येयमृद्धिमत्॥[1]

अर्थात् महाकाव्य—

(१) सर्गबद्ध होना चाहिए।
(२) उसमें महत्ता होनी चाहिए।
(३) उसका नायक महान् होना चाहिए तथा उसका अभ्युदय होना चाहिए।
(४) शिष्ट तथा अलंकृत भाषा का प्रयोग होना चाहिए।
(५) उसमें नाटक की सन्धियाँ तथा विभिन्न कार्यावस्थाएँ होनी चाहिएँ।
(६) यथासम्भव अल्प व्याख्या होनी चाहिए।
(७) ऋद्धिमत्ता होनी चाहिए।

दण्डी—भामह के पश्चात् महाकाव्यों में अपेक्षाकृत जटिलता आ जाने के कारण महाकाव्य की परिभाषा में भी अन्तर आ गया और आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में महाकाव्य के उन अंगों को प्रधान बना दिया जो भामह ने गौण ही रखे थे। दण्डी ने भी महाकाव्य को सर्गों के अनुबन्ध से तो बाँधा परन्तु उन्होंने उसके नायक को महान् न होकर चतुर तथा उदात्त होना आवश्यक बताया। इससे महाकाव्य में चमत्कार तथा रसानुभूति को प्रश्रय मिला। भामह ने कहा था कि महाकाव्य में शिष्ट तथा अलंकृत भाषा का प्रयोग होना चाहिए, परन्तु दण्डी ने इसको महाकाव्य का अनिवार्य अंग बनाकर महाकाव्य में चमत्कार की स्थिति को प्रधान लक्षण मान लिया।

दण्डी की परिभाषा अत्यन्त लोकप्रिय हुई और परवर्ती आचार्यों तथा कवियों दोनों ने उसे स्वीकार किया। हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने दण्डी की परिभाषा में ही मान्यताओं का योग कर उसे आगे बढ़ाया। बाद के कवि तो दण्डी के विचारों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने दण्डी की परिभाषा को सामने रखकर ही अपने काव्यों की रचना की, इसीलिए परवर्ती काव्यों में स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति कम तथा उसके बाह्य रूप को संवारने की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। दण्डी ने कहा—

---

१. काव्यालंकार, १-१९-२१

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ।।
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलायत्तंचतुरोदात्तनायकम् ।।
नगरार्णवशैलस्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीड़ामधुपानरतोत्सवैः ।।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणानि नायकाभ्युदयैरपि ।।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ।।
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तरुपेतं लोकरंजनम् ।
काव्यंकल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति ।।[1]

अर्थात् महाकाव्य में आशीर्वचन, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश होना चाहिए । नायक चतुरोदात्त होना चाहिए । उसमें नगर, वन, पर्वत, चन्द्रोदय, उद्यान, सलिल क्रीड़ा, मधुपानोत्सव, विवाह, कुमार जन्म आदि का वर्णन होना चाहिए । उसके सर्ग अति विस्तीर्ण नहीं होने चाहिएँ और विभिन्न सर्गों में भिन्न-भिन्न छंदों का उपयोग होना चाहिए ।

दण्डी ने अपनी परिभाषा में महाकाव्य के जिन तत्त्वों को प्रधानता दी है वे वस्तुतः काव्य के आवश्यक गुण नहीं हैं परन्तु यही परिभाषा आगे चलकर प्रचलित हुई और कवि वर्ग अलंकार तथा वर्णन प्रधान काव्यों की रचना में तत्पर रहने लगा ।

रुद्रट—आचार्य रुद्रट की परिभाषा दण्डी, विश्वनाथ आदि आलंकारिक आचार्यों की परिभाषा से भिन्न है । कहा जा सकता है कि भामह ने जो परिभाषा सूत्रों में दी थी रुद्रट ने उसी को विस्तार से कहा है। वे काव्य में अलंकार को प्रधान नहीं मानते, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने रामायण, महाभारत के अतिरिक्त कुछ अपभ्रंश तथा प्राकृत के काव्यों को दृष्टिगत रखते हुए अपनी परिभाषा निश्चित की होगी । संभव है उन पर पुराणों तथा लोकगाथाओं का प्रभाव पड़ा है।

रुद्रट ने अपनी परिभाषा में नायक तथा प्रतिनायक दोनों को समान महत्त्व दिया है यद्यपि उनके अनुसार विजयश्री नायक को ही प्राप्त होनी चाहिए । उन्होंने महाकाव्य में अवान्तर कथाओं का होना अनिवार्य माना है । रुद्रट के विचारानुसार महाकाव्य में जीवन के विविध पक्षों का सांगोपांग विवेचन होना चाहिए, परन्तु कालान्तर में राजदरबारों से सम्बधिन्त कवियों के लिए जीवन के गहनतम प्रदेशों में

१. काव्यादर्श, १-१४-१६

प्रवेश करना संभव नहीं हुआ अतः उन्हें रुद्रट की यह परिभाषा भी स्वीकृत नहीं हुई।

रुद्रट ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की—

सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि।।
तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कविः सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्ति नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात्।।
पंजरमितिहासादिप्रसिद्धमखिलं तदेकदेशं वा।
परिपूरयेत्स्ववाचा यत्रकविस्ते त्वनुत्पाद्याः।।
तत्र महान्तो येषु च वितवेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।
सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि।।
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः।।
तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च।।
तत्रत्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्।।
विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादि वर्णयेत्समयम्।।
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद्गुणिनम्।।
स्वचरात्तद्दूताद्वा कुतोऽपि वा श्रृण्वतोऽरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम्।।
समन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
तं दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम्।।
अथ नायकप्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रिनदीः।
अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि।।
स्कन्धावारनिवेशं क्रीड़ां यूनां यथायथं तेषु।
रव्यस्तमयं संध्यां संतमसमंथोदयं शशिनः।।
रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपानश्रृंगारान्।
इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात्।।
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरी रोधस्थितं वापि।।
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः।
स्ववधं विशंकमानान्संदेशान्दापयेत्सुभटान्।।

सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः ।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते ।।
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत ।
संधीनऽपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्य संबन्धात् ।[1]

अर्थात् महाकाव्य में निम्न बातें होती हैं—

(१) उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य पद्य कथा ।
(२) अवान्तर कथाएँ ।
(३) सर्ग तथा नाटक की संधियों से युक्त कथा ।
(४) जीवन का सर्वांग चित्रण ।
(५) नायक श्रेष्ठकुलोत्पन्न नीतिज्ञ राजा होना चाहिए और अन्त में उसी की विजय होनी चाहिए ।
(६) नायक के वंश का गुणगान तथा नगर का वर्णन ।
(७) प्रतिनायक और उसके वंश का वर्णन ।
(८) महान् उद्देश्य ।
(९) रसान्विति ।
(१०) अलौकिक तथा अप्राकृत तत्त्व ।

रुद्रट ने महाकाव्य को अलंकारों के बन्धन में न बाँधकर भी उसमें कल्पना एवं प्रतिभा के विकास के लिए उन्मुक्त स्वतन्त्रता दी है । उसमें कहीं कोई बंधन नहीं है केवल जीवन के गम्भीर अध्ययन का सुष्ठु भाग है । रुद्रट ने कल्पना का विशाल क्षेत्र मुक्त करके भी असंयमित कल्पना को वर्ज्य माना है । उन्होंने कहा है कि यद्यपि महाकाव्य में अप्राकृत तत्त्वों का समावेश किया जा सकता है तथापि उसमें मानव को उसका आधार नहीं बनाना चाहिए । मानव शक्ति सीमित होती है अतः ऐसे अवसरों पर देवता, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर आदि की सृष्टि करनी चाहिए ।

रुद्रट द्वारा दिए गए महाकाव्य के लक्षणों और पाश्चात्य वीरकाव्यों के लक्षणों में पर्याप्त समानता है । पाश्चात्य काव्यों में भी नायक के साथ प्रतिनायक का वर्णन, दोनों में युद्ध और अन्त में नायक की विजय को मान्यता दी गई थी । अरस्तू ने भी महाकाव्य में कल्पना के अनियमित विस्तार को श्लाघनीय न बताकर उसमें अमानवी पात्रों की सृष्टि करने का परामर्श दिया है ।

हेमचन्द्र—हेमचन्द्र ने महाकाव्य की अपनी परिभाषा में कोई मौलिक खोज नहीं की है बल्कि दण्डी तथा रुद्रट की परिभाषाओं की विशेषताओं का वर्णन-

---

१. काव्यालंकार, १६-२-१६

मात्र किया है। आचार्य रुद्रट का समय बारहवीं शताब्दी है अतः उस समय तक संस्कृत के अतिरिक्त कुछ अपभ्रंश तथा प्राकृत के महाकाव्य भी लोक-प्रसिद्ध हो चुके थे। रुद्रट ने संस्कृत काव्य और अपभ्रंश काव्य दोनों को सामने रख कर दण्डी तथा रुद्रट की परिभाषाओं की पुनरुक्ति की है।

दण्डी के अनुकरण पर काव्य में अलंकार को प्रधान मानकर हेमचन्द्र ने उसका शब्दवैचित्र्य, अर्थवैचित्र्य तथा उभयवैचित्र्य तीन भागों में वर्गीकरण किया। रुद्रट के समान उन्होंने काव्य का व्यापक दृष्टिकोण तथा युग का सम्पूर्ण चित्रण आवश्यक बताया।

हेमचन्द्र ने अपनी परिभाषा को सूत्रबद्ध करते हुए लिखा है—

पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धंभिन्नान्त्यवृत्तसर्गाश्वाससंध्यवस्कंध कबध्रं सत्संधिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।[1]

इस सूत्र के अनुसार हेमचन्द्र ने प्राकृत और अपभ्रंश के साथ ग्राम्य भाषा में भी महाकाव्यों की स्थिति स्वीकार की है। उनके अनुसार संस्कृत में काव्य सर्गबन्ध प्राकृत में आश्वासक बन्ध, अपभ्रंश में सन्धिबन्ध और ग्राम्यभाषा में अवस्कंधकबन्ध होते हैं। उन्होंने छंद परिवर्तन की परम्परा को स्वीकार किया है परन्तु यह भी कहा है कि कुछ काव्य ऐसे भी हैं जिनमें कवियों ने इस रूढ़ि का उल्लंघन कर काव्य के अंत तक एक ही छंद रखा है, जैसे रावण-विजय, हरविजय, सेतुबन्ध आदि में—प्रायोग्रहणादेव रावण विजय, हरविजय, सेतुबन्धेष्वादितः समाप्तिपर्यन्तमेकमेवछन्दो भवतीति।[2]

हेमचन्द्र की परिभाषा में उस समय तक रचित महाकाव्यों के सम्बन्ध में सूचनाएँ मात्र हैं। उन्होंने उनकी व्याख्या नहीं की है। परवर्ती कवियों को उनके विचारों से कोई नवीन प्रेरणा भी नहीं मिली है।

विश्वनाथ—विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में महाकाव्य की अत्यन्त विशद और स्पष्ट व्याख्या की है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के विचारों का मनन कर अपनी परिभाषा में उनका समाहार किया है यद्यपि दण्डी का उन पर विशेष प्रभाव है। उनके समय तक परवर्ती संस्कृत साहित्य अर्थात् कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष आदि महाकवियों की रचनाएँ हो चुकी थीं और काव्य में कथावस्तु गौण तथा चमत्कार प्रधान होने लगा था। आचार्य विश्वनाथ ने कहा कि महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग अवश्य होने चाहिएँ और सर्गों का नाम प्रसंगानुसार रखा जाना चाहिए। प्राकृत तथा अपभ्रंश के महाकाव्यों के सम्बन्ध में उन्होंने केवल इतना ही कहा कि उनमें सर्ग के स्थान पर आश्वास तथा कुडदक का प्रयोग होता है।

---

१. काव्यानुशासन, ८ वां अध्याय
२. वही

विश्वनाथ कविराज के अनुसार महाकाव्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं यत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ।
रतिहासोद्भवं वृत्तामन्यदा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निदा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।
संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।।
संभोगविप्रलंभौ च मुनि स्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाना नायकस्येतरस्य वा ।।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसज्ञकाः ।।
प्राकृतैर्निर्मितं तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञकाः ।
छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ।।
अपभ्रंशनिबद्धेस्मिनसर्गाः कुडवकाभिधाः ।
तथापभ्रंशयोग्यानि च छंदांसि विविधान्यपि ।।
भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकर्थप्रवणैः पद्यैः सन्धि सामग्रयवर्जितम् ।।[1]

अर्थात्—

(१) महाकाव्य के आरम्भ में आशीर्वचन, मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन स्तुति, दुर्जन निन्दा आदि होना चाहिए ।

(२) न अति लघु और न अति दीर्घ कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिएँ ।

---

१. साहित्यदर्पण, ६-३१५-२८

(३) एक सर्ग में छंद एक ही होना चाहिए किन्तु कुछ महाकाव्य बहुछंदी भी दिखाई पड़ते हैं ।

(४) प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा दे देना चाहिए ।

(५) प्रकृति चित्रण और जीवन के विभिन्न पक्षों का विस्तृत तथा सांगोपांग वर्णन करना चाहिए ।

(६) नायक धीरोदात्त, सद्वंश क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए । एक वंश में उत्पन्न राजा अथवा अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं ।

(७) शृंगार, वीर अथवा शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए ।

विश्वनाथ ने दण्डी की प्रायः सभी बातें स्वीकार कर ली हैं और उनमें महाकाव्य की कुछ विशिष्टताएँ अपनी ओर से जोड़ दी हैं । दण्डी ने महाकाव्य के नायक को चतुर और उदात्त होना पर्याप्त समझा था परन्तु विश्वनाथ ने उसमें वंशगत विशेषता भी जोड़ दी । दण्डी ने अपनी ओर से महाकाव्य में सर्गों की कोई संख्या निश्चित नहीं की थी परन्तु विश्वनाथ ने कम-से-कम आठ सर्गों का होना अनिवार्य बताया । उन्होंने बहुछंदी महाकाव्यों का वर्णन कर एक सर्ग में विभिन्न छंदों का अस्तित्व भी स्वीकार कर लिया । दण्डी ने कहा कि सर्ग अति विस्तीर्ण न हों, विश्वनाथ ने कहा कि इसके साथ ही वह अति लघु भी न हों । दण्डी ने 'रसभावनिरन्तरम्' कहा परन्तु विश्वनाथ ने शृंगार, वीर, शान्त तीनों में से एक रस की प्रधानता स्वीकार की । विश्वनाथ ने प्रकृति वर्णन के अतिरिक्त दण्डी द्वारा गिनाई गई वस्तुओं की तालिका में कुछ वस्तुएँ अपनी ओर से जोड़कर उनकी संख्या बढ़ा दी परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि परवर्ती कवियों ने उस सूची से भिन्न वस्तुओं का वर्णन उपेक्षित कर दिया ।

महाकाव्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य मान्यताएँ—यूरोप में महाकाव्य के सम्बन्ध में सर्वप्रथम अरस्तू का नाम उल्लेखनीय है । अरस्तू ने होमर के इलियड और ओडेसी को आदर्श मानकर महाकाव्य की विशेषताएँ स्थापित कीं । यूरोप में अरस्तू के पश्चात् महाकाव्य के सम्बन्ध में जो विवेचन हुआ वह सोलहवीं शताब्दी के बाद हुआ । अतः केशव की रामचन्द्रिका पर विचार करने के लिए हम यहाँ केवल अरस्तू की ही परिभाषा का अध्ययन करेंगे ।

अरस्तू की महाकाव्य सम्बन्धी विशेषताओं का विवेचन करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि अरस्तू के अनुसार महाकाव्य—

काव्य का एक भेद है,

इसका रूप समाख्यानात्मक होता है,

इसमें उच्चतर चरित्रों का वर्णन होता है,
इसका आकार विपुल होता है,
इसके वस्तु संगठन में घनत्व और गरिमा होती है,
इसमें एक छन्द का ही प्रयोग होता है।[1]

(षट्पदी छन्द)

अरस्तू ने महाकाव्य की एक बड़ी विशिष्टता यह बताई है कि उसमें अपनी सीमा विस्तार करने की अद्भुत क्षमता होती है। महाकाव्य में उसके समाख्यानात्मक रूप के कारण एक ही समय घटित होने वाली अनेक घटनाओं का वर्णन किया जा सकता है। इससे श्रोता का मनोरंजन होता है और विभिन्न उपाख्यानों के कारण कथा एक रस नहीं रहती।

महाकाव्य में अलंकृत भाषा के प्रयोग के लिए अरस्तू ने कहा है कि जहाँ कार्य की गति शिथिल हो जाए और विचार अथवा चरित्र के अभिव्यंजन का अभाव हो, वहाँ भाषा अलंकृत होनी चाहिए अन्यथा अधिक कान्तिमती पदावली चरित्र और विचार की अभिव्यक्ति में बाधा पहुँचाती है।[2]

महाकाव्य में अनेक अवांतर कथाएँ होनी चाहिएँ परन्तु इनका उद्देश्य मुख्य कथा को पुष्ट करना होना चाहिए। विभिन्न उपाख्यानों में अनेक चरितों तथा प्रसंगों की अवतारणा होने से श्रोता को विश्रान्ति प्राप्त होती है। नाटक में स्थानाभाव होने से यह रूप-वैविध्य नहीं मिलता, इसलिए वह महाकाव्य की अपेक्षा कम सफल होता है।

महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक होने पर भी महाकाव्य इतिहास से भिन्न होता है। इतिहास में एक ही काल के विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं का वर्णन होता है परन्तु महाकाव्य में एक व्यक्ति अथवा घटना का वर्णन इस प्रकार होता है जिससे उसके कथानक की शृंखला बनी रहती है। अरस्तू ने उत्कृष्ट महाकाव्यों की ही यह विशेषता मानी है क्योंकि होमर के पूर्व अनेक वृहदाकार महाकाव्यों में एक ही काल के कई व्यक्तियों और घटनाओं का वर्णन होता था।

महाकाव्य में असम्भव घटनाओं के वर्णन के सम्बन्ध में अरस्तू का मत है कि उसमें महाकवि को ऐसी असम्भव घटनाओं का वर्णन करना चाहिए जो देखने में सम्भव प्रतीत हों। ऐसे प्रसंग यथासम्भव कम होने चाहिएँ और उन्हें मूलकथा से पृथक् रखना चाहिए।

महाकाव्य में कवि नायक के जीवन की प्रमुख घटनाएँ संकलित करता है परन्तु

---

१. अरस्तू का काव्य शास्त्र, पृ० १२७
२. अरस्तू का काव्य शास्त्र, अनुवादक डा० नगेन्द्र, पृ० ६३

उसके जीवन में समग्रता लाने के लिए कवि अन्य आवश्यक वस्तुओं और व्यापारों का वर्णन भी करता है जैसे जल-यात्रा के समय उसके पोतों की सूची।

अरस्तू ने नाटक के समान महाकाव्य की भी दो शैलियाँ बताई हैं—सरल तथा जटिल। इलियड की रचना सरल शैली में और ओडेसी की जटिल शैली में हुई है। ओडेसी में घटना-वैविध्य अधिक है अतः वह जटिल है परन्तु इलियड में कार्यान्विति अधिक है इसलिए वह सरल है।

अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का उद्देश्य समाज को आनन्द प्राप्त कराते हुए उसे शिक्षा देना है।

भारत के समान ही यूरोप में भी वीर युग के पश्चात् सामन्त युग का प्रादुर्भाव हुआ और सामन्ती युग के दरबारी कवि अरस्तू द्वारा दिए गए लक्षणों के आधार पर महाकाव्यों की रचना नहीं कर सके। इसी कारण अरस्तू की परिभाषा 'इनीड' तथा उत्तरकालीन महाकाव्यों पर घटित नहीं हो सकी। इस शास्त्रीय शैली का चरम विकास मिल्टन की लेखनी द्वारा हुआ।

बुद्धिजीवी वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण शास्त्रीय महाकाव्यों की सबसे प्रमुख विशेषता यह हुई कि उसमें एक ओर पात्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा और दूसरी ओर अलंकृत वर्णनों की प्रचुरता रहने लगी। बौद्धिक संयम और आध्यात्मिक गम्भीरता के कारण कवि इनमें अप्राकृत तत्त्वों के साथ मनमानी क्रीड़ा नहीं कर सके बल्कि उन्होंने यथाशक्ति अपने युग की यथार्थ सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करने का सचेष्ट प्रयास किया।

भारतीय अलंकृत महाकाव्य—यूरोप में होमर के महाकाव्यों के समान ही रामायण तथा महाभारत को हम सरल शैली के विकसनशील महाकाव्य कह सकते हैं और बाद के संस्कृत महाकाव्यों को अलंकृत महाकाव्य। इन महाकाव्यों की रचना समाज के उच्च वर्ग के लिए अगाध पांडित्य से मंडित कवियों द्वारा हुई थी अतः इनमें से सहज अलंकरण की प्रवृत्ति तिरोहित हो गई।

अलंकृत महाकाव्यों की विशिष्टताओं को स्थूल रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है :—

(१) पात्रों की शारीरिक शक्ति का स्थान बुद्धि बल को मिला। व्यक्तिगत स्वार्थ के बदले समाज और राष्ट्रहित प्रधान हुआ। प्रेम के विविध रूपों का चित्रण होने के कारण कवियों ने शारीरिक सौन्दर्य को महत्त्व दिया।

(२) वैज्ञानिक विश्लेषण प्रधान होने के कारण अविश्वसनीय घटनाओं का अभाव हुआ।

(३) कवियों का पुस्तकीय ज्ञान तथा पांडित्य अगाध था। अतः सरल वर्णनों की अपेक्षा शनैः-शनैः वाग्वैदग्ध्य तथा पांडित्य प्रदर्शन प्रधान हो गया।

(४) इनके कवि सामन्त अथवा दरबारी होने के कारण समृद्ध थे। उनमें जीवन के प्रति मोह था, वितृष्णा नहीं। अतः जीवन का हाहाकार इन काव्यों में नहीं मिलता।

(५) इन महाकाव्यों का प्रचार मौखिक रूप से न होने के कारण इनमें कथावस्तु संयमित और गौण है। समय के साथ कथावस्तु क्षीण से क्षीणतर होती गई और अन्त में वह केवल साधन मात्र रह गई।

(६) इनकी रचना का उद्देश्य स्वांतःसुखाय न रहकर कोई विशेष लक्ष्य बन गया जैसे किसी धर्म का उपदेश देना, राष्ट्र गौरव के प्रति चेतना जागृत करना, महान् आदर्शों का प्रतिपादन करना अथवा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न कर यश व धन प्राप्त करना।

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि यह काव्य समाज के साधारण वर्ग की सम्पत्ति न होकर केवल एक विशिष्ट वर्ग की निधि थे। जनता से न इनका कोई सम्पर्क था और न उसका स्वर इसमें प्रतिध्वनित होता था। राजा, उसके दरबारी अथवा समाज का उच्च पंडित वर्ग इनका श्रवण अथवा अध्ययन कर आनन्द लेता और आलोचना प्रत्यालोचना किया करता था।

इन अलंकृत महाकाव्यों को भी उनके प्रधान तत्त्वों के आधार पर निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) शास्त्रीय महाकाव्य

(२) पौराणिक महाकाव्य

(३) ऐतिहासिक महाकाव्य

(४) कथात्मक महाकाव्य

संस्कृत साहित्य में मुख्य रूप से शास्त्रीय महाकाव्यों की रचना हुई है तथापि उनके मिश्रित रूप भी पाए जाते हैं जैसे शास्त्रीय-पौराणिक महाकाव्य, पौराणिक-ऐतिहासिक महाकाव्य, शास्त्रीय-ऐतिहासिक महाकाव्य इत्यादि। 'रामचन्द्रिका' में शास्त्रीय तथा पौराणिक तत्त्वों का सम्मिलन होने के कारण हम यहाँ महाकाव्य के केवल इन्हीं दो रूपों पर विचार करेंगे।

शास्त्रीय महाकाव्य का विकास तीन चरणों में पूर्ण हो जाता है—रीति मुक्त काव्य, रीतिबद्ध काव्य, एवं शास्त्रकाव्य। इसके विकास के प्रथम सोपान में जिन काव्यों की रचना सर्वप्रथम हुई वे रीति मुक्त शास्त्रीय महाकाव्य थे। काव्य सम्बन्धी कुछ मान्यताएँ रूढ़ हो जाने पर भी ऐसे काव्यों में उनका अक्षरशः पालन नहीं किया गया है बल्कि इन काव्यों को देखकर परवर्ती शास्त्रियों ने कुछ नवीन रूढ़ियों का निर्माण किया। अश्वघोष तथा कालिदास ऐसे काव्यों के प्रवर्त्तक कवि थे।

रीतिमुक्त काव्य—अश्वघोष तथा कालिदास के काव्य अलंकरणहीन काव्य तो नहीं हैं परन्तु यह अलंकरण उनमें स्वाभाविक रूप से आया है, कवियों ने उसे उद्देश्य नहीं बनाया है। अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द तथा कालिदास के रघुवंश आदि महाकाव्यों में उनका कविरूप ही प्रधान है अतः उनमें नैसर्गिक सौंदर्य विद्यमान है। उनके काव्यों में कवि की विद्वत्ता उतराकर नहीं बहती, बल्कि भावों के साथ उसका मणिकांचन संयोग हो गया है। इन काव्यों का उद्देश्य महान् है, भाषा प्रवाहमयी है, वर्णन प्रसंगोचित तथा स्वाभाविक है और वाक्यविन्यास संतुलित है। इनमें कवियों ने महान् चरित्रों की अवतारणा कर उनके जीवन का सम्पूर्ण परन्तु युग-सापेक्ष्य चित्रण किया है। उनमें अवान्तर घटनाओं का अभाव है तथा नाटकीय तत्त्वों का प्राचुर्य है। कालिदास ने रघुवंश में परम्परागत रूढ़ियों की अवहेलना कर एक राजा का वर्णन न कर रघुवंश के अनेक राजाओं का वर्णन किया जिससे प्रभावित होकर आचार्य विश्वनाथ को दण्डी की परिभाषा में सुधार कर स्वीकार करना पड़ा कि महाकाव्य के नायक एक ही वंश के अनेक राजा भी हो सकते हैं।

कालिदास के काव्यों में विशेष रूप से रघुवंश में काव्य अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने रघुवंश के काव्यत्व के सम्बन्ध में कहा है, "ऊपर-ऊपर से रघुवंश एक नहीं अनेक कथानकों का सागर है। परवर्ती कवियों में से किसी को भी इस प्रकार के असंघटित कथानक समूह को महा-काव्य का विधान बनाने का साहस नहीं हुआ, परन्तु फिर भी कालिदास के अद्भुत कौशल से ये कथानक एक दूहरे से ऐसे मिले हुए हैं कि उनमें एक प्रवाह खोजा जा सकता है। भावना और विचार, प्रेम और कर्त्तव्य, गांभीर्य और माधुर्य, भोग और वैराग्य का ऐसा सुसंस्कृत काव्य संस्कृत में फिर नहीं लिखा गया। रघुवंश संस्कृत काव्य परम्परा को अपने सर्वोच्च विन्दु पर ले जाकर विरत होता है। यहाँ से संस्कृत की काव्य परम्परा ढलती वयस का शिकार हो जाती।"[1]

संक्षेप में अश्वघोष और कालिदास दोनों कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों को दृष्टि में रखते हुए भी उनके पालन के लिए महाकाव्यों की रचना नहीं की बल्कि उनको लिखकर नवीन रूढ़ियों का निर्माण करने की ओर परवर्ती साहित्य शास्त्रियों को प्रेरित किया।

रीतिबद्ध काव्य—कालिदास के पश्चात् संस्कृत काव्यों में सामन्त युग का प्रादुर्भाव होने के कारण काव्य पक्ष गौण हो गया और कवियों की दृष्टि वर्णन प्रधान हो गई। अर्थगांभीर्य का ह्रास तथा अलंकार शास्त्र का ज्ञान इस युग की विशेष देन थी। छठी शताब्दी में कालिदास के परवर्ती कवि भारवि से आरम्भ होकर श्री हर्ष के 'नैषध चरित' में इस प्रकार के काव्य का चरम विकास हुआ।

आरम्भ में भारवि और माघ के काव्यों में अर्थगांभीर्य की ओर किंचित्

---

१. आलोचना, वर्ष १, अंक ४, पृ० १३-१४

प्रवृत्ति लक्षित होती है परन्तु उत्तरोत्तर यह प्रवृत्ति कम होती गई और काव्य में अधिकाधिक अलंकार, पांडित्य प्रदर्शन, वाग्वैदग्ध्य, वर्णनों का अनावश्यक विस्तार और कथावस्तु के अप्रधानत्व का महत्त्व बढ़ता गया। इसी समय दण्डी ने 'दशकुमारचरित' और बाण ने 'कादम्बरी' में श्लेष तथा यमक का कौशल दिखाकर साहित्य की इस धारा में अपना योगदान दिया। दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना कर इसी समय काव्य को रीतिबद्ध करने का प्रयत्न भी किया।

भारवि का 'किरातार्जुनीय' व्याकरण के दुरूह नियमों का एक प्रयोग है, परन्तु उसकी उक्तियों-प्रत्युक्तियों में तर्कपूर्ण शैली का विकास और कूट विचारों का कौशल है। उसमें राजनीतिक शिष्टाचारों तथा राजनीति की लाघवता का मनोरम चित्र है। कवि ने उसमें पात्रों के विशिष्ट व्यक्तित्व की रक्षा करने का प्रयत्न किया है किन्तु उसमें कथानक का प्रवाह शिथिल हो गया है। अलंकार आधिक्य के कारण कवि मुख्य कथावस्तु की ओर से उदासीन होकर अनावश्यक वर्णनों के विस्तार में उलझ गया है।

'किरातार्जुनीय' में कवि के दृष्टिकोण में एक बार परिवर्तन आया तो यह उत्तरोत्तर पल्लवित होता गया और माघ का काव्य भारवि को इस प्रतियोगिता में पीछे छोड़ 'शिशुपाल वध' में अपने अलंकार कौशल तथा वर्णनात्मक प्रसंगों के अतिरेक से 'किरातार्जुनीय' की अपेक्षा कहीं अधिक उद्भासित हो उठा। उसमें कालिदास की उपमाओं, भारवि के अर्थ गौरव और नैषध के पदलालित्य तीनों का अद्भुत समाहार हुआ। काव्य की दृष्टि से आलोचकों का माघ के सम्बन्ध में कुछ भी मत हो परन्तु काव्य शास्त्र की दृष्टि से 'शिशुपालवध' सफल महाकाव्य है। साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य की जो विशिष्टताएँ मानी थीं वे 'शिशुपालवध' में प्रायः सभी उपलब्ध हो जाती हैं। 'शिशुपालवध' के विस्तृत वर्णन तथा प्रचुर अलंकार योजना महाकाव्य के आवश्यक उपकरण थे।

माघ की शैली को श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' में और अधिक विस्तार मिला। मुख्य कथा को छोड़कर हर्ष ने स्थान-स्थान पर विस्तृत वर्णनों जैसे चन्द्रोदय, विभिन्न ऋतुओं, जल-क्रीड़ा आदि के लिए अवसर निकाल लिया। ऐसे अवसरों पर कवि की कल्पना का अजस्र स्रोत जैसे प्रवाहित हो उठा है।

इस कवित्रयी के पश्चात् तो काव्य का अवशिष्ट कथा भाग भी गौण हो गया और उनमें व्याकरण, कामशास्त्र, योगशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आदि अनेक शास्त्रों का ज्ञान ही प्रधान हो गया। कवि रत्नाकर कृत 'हरविजय' इस प्रकार के काव्यों का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है। इसमें पचास सर्ग हैं परन्तु तीन चौथाई से अधिक सर्गों में चन्द्रोदय, ऋतु-वर्णन, दूत संवाद आदि अनेक अनावश्यक प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है। यहाँ कथा कवि का साधन है, साध्य नहीं।

जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में शब्द और अर्थ का कोई महत्त्व नहीं होता और संगीत पारखी उसके स्वर के आरोह-अवरोह पर मुग्ध होकर गायक को साधुवाद देते हैं उसी प्रकार इन रीतिबद्ध काव्यों में शब्द और अर्थ की चिन्ता न कर काव्यशास्त्री उसके चमत्कार पर आत्मविस्मृत हो उठते हैं । काव्यशास्त्र से अनभिज्ञ काव्यरसिकों को आनन्द प्रदान करने वाले ये काव्य नहीं हैं ।

शास्त्र काव्य—शास्त्र काव्य रीतिबद्ध काव्यों का ही विकसित रूप है । इस प्रकार के काव्यों का उद्देश्य द्वयार्थक हुआ करता था—कथा के साथ व्याकरण के किसी अंग की शिक्षा देना अथवा एक ही सूत्र में श्लेष की सहायता से अनेक कथा-मालाओं को पिरोना ।

ईसा की छठी शताब्दी में कवि भट्टि ने 'रावण वध' अथवा भट्टि काव्य की रचना की । इसमें कवि ने रामकथा के साथ व्याकरण के नियमों तथा विभिन्न अलंकारों के शिक्षण का प्रयास किया है । इससे एक ओर काव्य-विद्यार्थियों का ज्ञान वर्धन तथा दूसरी ओर काव्य रसिकों का मनोविनोद होता था । अपनी लोकप्रियता के कारण इस काव्य का प्रचार जावा और बाली आदि द्वीपों तक पहुँच गया । इसके अनुकरण पर बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने 'कुमारपालचरित' में संस्कृत व्याकरण के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण का भी शिक्षण उत्तरदायित्व पूरा किया । दिवाकर कवि ने 'लक्षणादर्श' में पाणिनि की सम्पूर्ण 'अष्टाध्यायी' के उदाहरण दिए ।

कतिपय अन्य कवियों ने चमत्कार के प्रति आकर्षित होकर बहुअर्थक काव्यों की रचना की जैसे हरिदत्त सूरि ने 'राघव नैषधीय', चूड़ामणि दीक्षित ने 'राघव यादवपांडवीय' की रचना कर एक साथ दो और तीन कथाएँ कहीं । काव्य का यह रूप आगे चलकर इतना विकृत हुआ कि जैन कवि मेघविजयगणि ने 'सप्तसंधान' में सात कथाएँ और सोमप्रभाचार्य ने 'शतार्थकाव्य' में एक साथ सौ कथाएँ कहीं ।

पौराणिक महाकाव्य—महाकाव्य वस्तुतः पुराणों के ही परिष्कृत और कलात्मक रूप हैं क्योंकि पुराणों में भी काव्य तत्त्व पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । 'श्रीमद्भागवत' पुराण के साथ ही काव्य-ग्रन्थ भी है । पौराणिक महाकाव्यों में पौराणिक आख्यान होते हैं तथा उनमें अवान्तर घटनाओं और घटना-वैविध्य का बाहुल्य रहता है । यह संवाद प्रधान होते हैं और कथा के अन्तर्गत कथा गुम्फित रहती है । इनमें अलौकिक तत्त्वों का आधिक्य तथा किसी धर्म अथवा मत का प्रचार होता है । पौराणिक महाकाव्यों में पुराण और शास्त्रीय महाकाव्य दोनों के तत्त्व रहते हैं ।

महाभारत और रामायण की रचना के पश्चात् पुराण और महाकाव्य दो विभिन्न दिशाओं में अग्रसर हो गए थे परन्तु दसवीं शताब्दी के बाद दोनों की प्रवृत्तियाँ पुनः मिलीं और परिणामस्वरूप चरितकाव्यों की रचना हुई । बारहवीं शताब्दी में देवप्रभसूरि ने पाण्डव चरित, तेरहवीं शताब्दी में जयद्रथ ने हरचरित चिन्तामणि आदि पौराणिक महाकाव्यों की रचना की । यशोधर की जैन कथा को आधार मान

कर अनेक यशोधर चरित भी लिखे गए। संस्कृत की अपेक्षा पौराणिक महाकाव्यों का विकास अपभ्रंश भाषा में अधिक हुआ और इस प्रणाली पर अनेक उत्कृष्ट महाकाव्यों की रचना हुई।

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्यों का इतिहास सरलता से जटिलता की कहानी है। भाषा की प्रांजलता, भावों की प्रौढ़ता, कल्पना की गम्भीरता, और शैली का प्रवाह सब सरल से दुरूह हो गया और काव्य समाज के सीमित शिष्ट वर्ग के उपभोग का उपकरण बन कर रह गया। संस्कृत के शास्त्रीय कवियों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रबन्धकार हर्ष के शब्दों में हम कह सकते हैं कि अत्यन्त लावण्यमयी सुन्दरी जिस प्रकार युवक वर्ग को वशीभूत करती है उसी प्रकार शिशु वर्ग को नहीं। हर्ष जैसे कवियों की काव्यवाणी भी सहृदय विद्वानों को जिस प्रकार अमृत के समान आनन्द देती है उसी प्रकार अरसिकों (काव्य शास्त्र से अनभिज्ञ) को नहीं।[१] साधारण जनसमुदाय से इन काव्यों का कोई सम्बन्ध नहीं था।[२]

'रामचन्द्रिका' के कथानक के सूत्र तथा कवि की मौलिक उद्भावनाएँ

जिस प्रकार तुलसीदास जी ने हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की विदेशी प्रभाव से रक्षा करने के लिए ब्राह्मण-धार्मिक साहित्य का तत्त्व निकाल कर 'रामचरितमानस' के रूप में अपने देशवासियों के समक्ष रखा, उसी प्रकार केशव ने हिन्दी भाषा तथा संस्कृत ललित साहित्य को जीवित रखने के लिए देश को 'रामचन्द्रिका' का उपहार दिया। केशवदास एक ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन करना चाहते थे जिसमें अपने प्राचीन साहित्य की समस्त विशिष्टताओं को रखकर वह अपने संस्कृत साहित्य के प्रति देशवासियों की आस्था बनाए रखें। इसलिए उनके ग्रन्थों की रचना काव्य के उन्हीं जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए हुई है जिनका संस्कृत साहित्य से थोड़ा बहुत परिचय है और जो काव्य शास्त्र का अध्ययन कर कवि बनना चाहते हैं। उस समय तक काव्य का जितना शास्त्रीय अध्ययन हुआ था वह जटिल था और साधारण बालक-बालिकाओं के लिए दुर्बोध था, अतः वह किसी सरल मार्ग का प्रतिपादन करना चाहते थे। उन्होंने 'कविप्रिया' में स्पष्ट कहा है—

> समझैं बाला बालकहु, बर्णन पंच अगाध।
> कविप्रिया केशव करौ, छमियो कवि अपराध॥[३]

'रामचन्द्रिका' में भी वह कथारंभ करने के पूर्व ही कहते हैं—

> रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छन्द।[४]

---

१. नैषध चरित, २२।१५०

२. महाकाव्य सम्बन्धी मान्यताओं के निर्धारण में डा० शम्भूनाथ सिंह की 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' नामक पुस्तक से विशेष सहायता ली गई।

३. कविप्रिया, पृ० सं० २४

४. रा० चं०, १. २१

जहाँ जहाँ उनका उद्देश्य राम रूपी चन्द्र का प्रकाश दिखाना है, वहाँ 'बहु छंद' कहकर कवि ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बहुत से छंदों से परिचय कराना भी उसका अभीष्ट है। छंदों के साथ ही कवि ने संस्कृत का जितना भी ललित साहित्य था उसकी सभी पद्धतियों तथा विशिष्टताओं का रामचन्द्रिका में सन्निवेश कर कथानक का निर्वाह किया है। उनके पूर्व तुलसी पहले ही कह चुके थे 'रामायन सत कोटि अपारा' इसलिए राम कथा उस समय साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति परिचित था। रामकथा की प्रत्येक घटना का वर्णन करना न तो कवि का इप्ट था और न आवश्यक ही था। केशव ने राम कथा के उन्हीं स्थलों को चुना है जिससे कथानक का क्रम भी बना रहे और उनका अभीष्ट भी पूर्ण हो जाए।

केशव ने 'रामचंद्रिका' के आरम्भ में लिखा है कि जिस समय उनका हृदय अशान्त था और वह मुक्ति का उपाय सोच रहे थे उस समय उन्हें वाल्मीकि ने स्वप्न देकर राम-चरित वर्णन करने का उपदेश दिया।[1] उसी समय केशवदास ने रामचन्द्र को अपना इष्ट बनाकर उनका गुणगान करने का निश्चय कर लिया।

'रामचंद्रिका' पर यद्यपि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव है परन्तु उसकी कथा का मूलाधार वाल्मीकिकृत रामायण ही है। संस्कृत साहित्य में राम सम्बन्धी जितने भी काव्य हैं उनमें वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त किसी में भी राम के जीवन का पूर्ण विस्तार नहीं है। प्रत्येक कवि ने अपनी रुचि के अनुसार घटनाओं का संकलन कर रामचरित का गान किया है। केशव का उद्देश्य भी राम के जीवन का पूर्ण चित्र अंकित करना नहीं है अपितु चंद्रिका के सदृश उनके धवल यश का प्रकाश विकीर्ण करना ही है। इसलिए कवि ने सूत्र जोड़ने वाली घटनाओं का वर्णन अत्यन्त क्षिप्रता से किया है। केशव पर जिन राम कृतियों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है उनमें वाल्मीकि रामायण, 'हनुमन्नाटक', 'प्रसन्नराघव' और 'रघुवंश' ही उल्लेखनीय हैं। वाल्मीकि रामायण का प्रभाव 'रामचंद्रिका' के पूर्वार्ध की अपेक्षा उत्तरार्ध के कथानक पर अधिक पड़ा है क्योंकि सीता वनवास का प्रकरण अन्य काव्यों में या तो उपेक्षित है अथवा बहुत संक्षिप्त है। हनुमन्नाटककार ने इस घटना का उल्लेख केवल एक वाक्य में कर दिया है।[2] 'प्रसन्नराघव' नाटक की समाप्ति राम, लक्ष्मण और सीता के अयोध्यापुरी में उतरते ही हो जाती है, वहाँ सीतात्याग का अवसर ही नही आया है। भवभूति के 'उत्तररामचरित' की रचना एक प्रकार से सीतात्याग की ही कथा है परन्तु उसका कथानक वाल्मीकि रामायण से नितान्त भिन्न है। केशव के सीता त्याग का कथानक वाल्मीकि रामायण पर ही आधृत है। सीता का वन में जाकर वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में लव-कुश नामक दो पुत्रों को जन्म देना रामायण में उल्लिखित है। रामायण में वाल्मीकि कुश और लव को रामायण सुनाकर गाने के लिए

---

१. १. ७-१=

२. हनु० ना०, १४. ६०

अयोध्यापुरी भेजते हैं। कुश लव राम के अश्वमेध के अवसर पर रामायण का गान करते हैं। राम अपने पुत्रों को पहचानकर महर्षि वाल्मीकि के पास सीता सहित आने का निमन्त्रण भेजते हैं। ऋषि सीता की पवित्रता की साक्षी देते हैं और सीता अपनी निर्दोषिता का प्रमाण देकर पृथ्वी में समा जाती है। केशव ने इस घटना को कुछ परिवर्तित रूप में लिया है। उन्होंने भी सीता की स्वर्णप्रतिमा के साथ अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख कर उसे थोड़ा विस्तार दे दिया है। बीच में केशव ने राम की सेना और लव-कुश का युद्ध भी जोड़ दिया है। संभवतः इसके दो कारण होंगे—

राम के किशोर पुत्रों का शौर्य प्रदर्शन कर अप्रत्यक्ष रूप से राम की वीरता दिखाना और दूसरे राम-कथा के पात्रों की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालना। 'रामचंद्रिका' में भी वाल्मीकि के समझाने पर राम पुत्रों और सीता को स्वीकार कर लेते हैं पर केशव ने काव्य को सुखांत बनाने के लिए इसके बाद काव्य को समाप्त कर दिया है। अश्वमेध के अश्व के भालपट्ट पर लिखा श्लोक तो केशव ने उसी रूप में वाल्मीकि से ले लिया है। शत्रुघ्न द्वारा शम्बूक वध की घटना भी 'रामचंद्रिका' में रामायण से ही ली गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'रामचंद्रिका' पर रामायण का यथेष्ट प्रभाव है। इसके अतिरिक्त केशव ने अनेक अन्य स्थलों पर वाल्मीकि से सहायता ली है।

'रामचंद्रिका' पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव—'रामचंद्रिका' के कथानक पर मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण की ही छाप है। केशव ने वाल्मीकि की कथा को लेकर उसे अधिकांश स्थलों पर संक्षिप्त कर दिया है। वाल्मीकि ने जिन घटनाओं का वर्णन पूर्ण विस्तार से किया है उन्हें केशव ने या तो संक्षिप्त कर दिया है अथवा उनका उल्लेख मात्र कर दिया है। बीच-बीच में कुछ प्रसंग उन्होंने अन्य ग्रन्थों से ले लिए हैं अथवा निजी कल्पनाओं के आधार पर उसमें मौलिक रूप से जोड़ दिए हैं। कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जो वाल्मीकि ने बहुत संक्षेप में कहे हैं परन्तु केशव ने उन्हें विस्तार दे दिया है।

आरम्भ में वाल्मीकि ने नारद द्वारा राम-कथा कहलवा कर दशरथ और उनके चारों पुत्रों का परिचय करवाया है। परन्तु केशव ने इसे सर्वजन विदित समझ कर एक छंद में यह परिचय दे दिया है।[1] तदनन्तर दोनों में अयोध्या का विस्तृत वर्णन मिलता है। रामायण में यह वर्णन लव-कुश राम को रामायण सुनाते हुए करते हैं और 'रामचंद्रिका' में जब विश्वामित्र नगर प्रवेश करते हैं तो अयोध्या के इस सौन्दर्य को देखते हैं। अयोध्या के इस वर्णन में केशव रामायण से काफी प्रभावित हैं। वाल्मीकि ने अयोध्या के बाग और वृक्षों का उल्लेख किया है—

उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्।[2]

---

१. रा० चं०, पूर्वार्ध, १-२२
२. वा० रा०, बालकांड, ५, १२

परन्तु केशव ने इसे विस्तार से वर्णन किया है।[१] नगर वर्णन में वाल्मीकि ने

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्।[२]

कहकर ध्वजपताकाओं से युक्त उच्चाट्टालिकाओं की ओर संकेत किया है और केशव ने भी,

ऊँचे अवास। बहु ध्वजप्रकाश। शोभा बिलास। सोभै प्रकाश।[३]

ऊँचे-ऊँचे महलों पर ध्वजाओं का वर्णन किया है। रामायण में अयोध्या को इन्द्रपुरी अमरावती के सदृश[४] कहा है और 'रामचंद्रिका' में भी उसे 'देवपुरी सम'[५] कहा गया है। वाल्मीकि ने कहा है कि अयोध्या में चारों वर्णों के लोग बसते थे जो अपने-अपने धर्मानुसार कार्य करते थे।[६] केशव ने भी चारों वर्णों के कार्य बताए हैं।[७] वाल्मीकि ने पशु-पक्षी और नर-नारियों का अलग-अलग वर्णन किया है परन्तु केशव एक पंक्ति में 'पशुपक्षी नारि नर निरखि तलै' इसका उल्लेख कर अन्य विषयों की ओर अग्रसर हो गए हैं। अयोध्या और दशरथ के दरबार वर्णन में केशव ने कुछ स्वतन्त्र वर्णन भी किए हैं। दरबारी होने के कारण उन्हें राजधानी और राजदरबार के ऐश्वर्य का समुचित ज्ञान था। अतः इन वर्णनों पर उनके व्यक्तिगत अनुभवों की भी छाप है।

पुत्र प्राप्ति के हेतु दशरथ के यज्ञ का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है क्योंकि उनकी राम-कथा ही चारों भाईयों के जन्म से आरम्भ होती है।

रामायण और 'रामचंद्रिका' दोनों में प्रतिहार जाकर दशरथ को विश्वामित्र के आगमन की सूचना देता है। रामायण में कहा गया है कि दशरथ विश्वामित्र जी से उसी प्रकार मिलने गए जिस प्रकार इन्द्र ब्रह्मा से मिलने जाते है।

प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणामिव वासवः।[८]

केशव ने भी लिखा है कि विश्वामित्र दूसरे ब्रह्मा प्रतीत होते थे—

आये विश्वामित्र जो जनु दूजो करतार।[९]

यहाँ पर केशव दशरथ के वर्णन में 'कादम्बरी' की शैली से प्रभावित हुए हैं। इसके पश्चात् विश्वामित्र ने बहुत संक्षेप में अपना अभीष्ट बताकर दशरथ से राम को माँग लिया है। विश्वामित्र की इस याचना से दोनों काव्यों में दशरथ का व्यथित

---

१. रा० चं०, पूर्वार्ध, १, ३०-३५
२. वा० रा०, बालकांड, ५, ११
३. रा० चं०, पूर्वार्ध, १. ३७
४. वा० रा०, बालकांड, ५, १५
५. रा० चं०, पूर्वार्ध, १, ४१
६. वा० रा०, बालकांड, ६-१७, १९
७. रा० चं०, पूर्वार्ध, १, ४३
८. वा० रा०, बालकांड, १८, ४२
९. रा० चं०, पूर्वार्ध, २, ७

होना वर्णित है परन्तु 'रामचंद्रिका' के दशरथ का व्यक्तित्व और वेदना दोनों अधिक गम्भीर हैं। वाल्मीकि के दशरथ के समान वह मूर्च्छित न होकर जड़ सदृश हो जाते हैं। वाल्मीकि रामायण—

इति हृदयमनोविदारणं,
मुनिवचनं तदतीव शुश्रुवान्।
नरपतिरगमद्भयं महद्,
व्यथितमनाः प्रचचाल चासनात्।[1]

'रामचंद्रिका'—

यह बात सुनी नृपनाथ जबै। सर से लगे आखर चित्त सबै।
मुख ते कछु बात न जाय कही। अपराध बिना ऋषि देह दही।[2]

राम की बाल्यावस्था, राक्षसों की कठोरता और दशरथ का ससैन्य विश्वामित्र के साथ चलने को तत्पर होना वाल्मीकि ने विस्तृत रूप से वर्णन किया है परन्तु केशव ने उसे संक्षिप्त कर उसका सार दे दिया है—

अति कोमल केशव बालकता। बहु दुस्कर राकसघालकता।
हमहौं चलि हैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चले चतुरंग सबै।[3]

दोनों में दशरथ की अस्वीकृति को सुनकर विश्वामित्र का क्रोध बढ़ जाता है और गुरु वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ अनिच्छापूर्वक राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र को सौंप देते हैं। केशव का यह वर्णन भी वाल्मीकि की अपेक्षा संक्षिप्त है। रामायण में दशरथ वशिष्ठ के समझाने पर राम-लक्ष्मण को स्वस्तिवाचन तथा मंगलाचार कर विदा करते हैं। परन्तु केशव ने दशरथ की व्यथा को अपनी सहृदयता का पुट देकर अत्यन्त हृदयग्राही बना दिया है। वह विश्वामित्र के चरण-स्पर्श कर भवन के अन्दर चले जाते हैं जिससे उनकी वेदना सार्वजनिक बनकर उनकी दुर्बलता का परिचय न दे सके।

रामायण के अनुसार ही 'रामचंद्रिका' में भी विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को ऐसी सिद्धियाँ सिखाते हैं जिनसे नींद, भूख, प्यास सब नष्ट हो जाए—

वा०रा०—

बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येत नरोत्तम॥[4]

'रामचंद्रिका'—

लोभ छोभ मोह गर्व काम कामना हुई।
नींद भूख प्यास त्रास वासना सबै गई।[5]

---

१. वा० रा०, बालकांड, २१, २१
२. रा० चं०, पूर्वार्ध, २, १६
३. रा० च०, पूर्वार्ध, २, १७
४. वा० रा०, बालकांड, २३, १६
५. रा० चं०, पूर्वार्ध, २।२८

स्त्री होने के कारण राम ताड़का का वध करने में संकुचित होते हैं। विश्वामित्र प्राचीन उदाहरण देकर राम को उसका वध करने के लिए प्रेरित करते हैं। वह कहते हैं कि तुम इस अधर्मिणी ताड़का का वध कर डालो क्योंकि सुना जाता है कि पहले विरोचन की पुत्री मंथरा (केशव ने इसका नाम दीर्घजिह्वा दिया है) को जो पृथ्वी का नाश करना चाहती थी, इन्द्र ने मृत्यु के घाट उतार दिया था। भगवान विष्णु ने भी भृगु की पतिव्रता पत्नी और शुक्र की माता को जो इन्द्र का नाश करना चाहती थी, मार डाला था।[1] केशव ने भी इसी अनुकरण पर लिखा है—

सुता विरोचन की हुती दीरघजिह्वा नाम।
सुरनायक सो संहरी परम पापिनी बाम।
परम पापिनी बाम बहुरि उपजी कविमाता।
नारायण सों हतो चक्र चिन्तामणि दाता।
नारायण सों हती सकल द्विज दूषण संयुत।
त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत।[2]

सीता स्वयंवर के वर्णन में केशवदास जयदेव के 'प्रसन्नराघव' से प्रभावित हुए हैं परन्तु जनक का विश्वामित्र से राम लक्ष्मण का परिचय माँगना, विश्वामित्र का दशरथ की प्रशंसा करना, चारों भ्राताओं का विवाह, दान-दहेज, परस्पर शिष्टाचार आदि का वर्णन केशव ने वाल्मीकि से ही लिया है यद्यपि वैवाहिक रीतियों के वर्णन में दोनों कवियों ने भिन्न रीतियों को चुना है। केशव ने राम-परशुराम भेंट का वर्णन वाल्मीकि के समान विवाहोपरान्त बारात के लौटते हुए मार्ग में किया है। वाल्मीकि ने इस अवसर पर कुछ अपशकुनों का भी उल्लेख किया है परन्तु केशव ने यह प्रसंग छोड़ दिया है। राम-परशुराम की भेंट के वर्णन में केशवदास ने इस प्रसंग को 'हनुमन्नाटक' से लिया है।

बारात के लौटने पर अयोध्या का वर्णन दोनों कवियों ने किया है परन्तु वाल्मीकि का यह वर्णन संक्षिप्त है। केशव ने इसे अधिक विस्तार से लिखकर कुछ भाव लव-कुश द्वारा किए हुए अयोध्या वर्णन से भी लिए हैं। विवाह के अवसर पर बारात तथा वधू दर्शन की रुचि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है अतः केशव ने अपनी मौलिक कल्पनाओं के आधार पर स्त्रियों के सौंदर्य और उत्साह का वर्णन भी किया है।

राम के राजतिलक प्रकरण में भी केशवदास वाल्मीकि से ही प्रभावित हैं। दशरथ भरत और शत्रुघ्न को उनके मामा युधाजित के साथ भेज देते हैं और राम लक्ष्मण को घर रोक लेते हैं—

---

१. वा० रा०, बालकांड, २५. १६, २०

२. रा० चं०, पूर्वार्ध, ३. ८

रामचन्द्र लछिमन सहित घर राखे दशरथ।
विदा कियो ननसार को संग शत्रुघ्न भरत्थ।[1]

यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में भी इसी प्रकार मिलता है—

गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा।
आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्॥
मातृश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्न सहितौ ययौ।
गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।[2]

इसके बाद केशव ने राम के राज्याभिषेक और कैकेयी के वरदानों की चर्चा की है। यह प्रसंग बहुत संक्षिप्त है परन्तु केशव यहाँ वाल्मीकि से ही प्रभावित हैं। केशव ने अग्रिम छंदों में कौशल्या के क्रोध और राम के 'नारिधर्म' वर्णन की जो चर्चा की है उसका आधार रामायण ही है। वाल्मीकि ने स्पष्ट लिखा है कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक भरत की अनुपस्थिति में करना चाहते थे क्योंकि वह कैकेयी को वचन दे चुके थे कि उनके बाद राज्य उसके पुत्र को मिलेगा। दशरथ राम को एकांत में बुलाकर कहते हैं—'भरत इस समय अपने मामा के घर है। मेरी इच्छा है कि तुम्हारा अभिषेक उसके आने के पूर्व ही हो जाए।'[3] राम भी अभिषेक का निश्चय सुन कौशल्या और सुमित्रा को ही प्रणाम करने जाते हैं, कैकेयी को नहीं।[4] नगर में राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं परन्तु कैकेयी के भवन में इसकी कोई सूचना नहीं है। मंथरा राम की धात्री से पूछती है, राजमाता कौशल्या लोगों को धन क्यों बाँट रही है? अयोध्यावासियों के अत्यानन्दित होने का क्या कारण है?[5] मंथरा ही जाकर सोती हुई कैकेयी को जगाकर राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनाती है। वाल्मीकि रामायण में कैकेयी एक ऐसा चरित्र है जिससे दशरथ की अतिशय आसक्ति के कारण सभी उदासीन हैं। कौशल्या और सुमित्रा में उसके प्रति सपत्नी-ईर्ष्या है। राम के राज्याभिषेक का अवसर ऐसा है जब कैकेयी में अत्यधिक अनुरक्त दशरथ भी छिपे-छिपे कैकेयी से बिना परामर्श लिए ही राम को राज्य देना चाहते हैं। इस पर राम, लक्ष्मण, कौशल्या, पुरवासी सभी सहमत हैं। कैकेयी कौशल्या और सुमित्रा की अपेक्षा सुन्दर और अल्पवयस की है, अतः दोनों का उस पर ईर्ष्याजन्य आक्रोश है। वाल्मीकि के इसी कथानक को दृष्टि में रखकर केशव की कौशल्या का निम्न आक्षेप समझ में आ जाता है—

---

१. रा० चं०, पूर्वार्ध ६. १
२. वा० रा०, बालकांड, ७७, १८-१९
३. वा० रा०, अयो० कांड, ४, २५
४. वा० रा०, अयो० कांड, ५ ४५
५. वा० रा०, अयो० कांड, ७. ८-९

रहो चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु।
न देखि सकैं तिनके उर दाहु ।
लगी अब बाप तुम्हारे हि बाय।
करै उलटी विधि क्यों कहि जाय।[१]

रामायण में कौशल्या राम से कहती है कि मुझे भी अपने साथ वन ले चलो क्योंकि मैं यहाँ सपत्नियों के मध्य नहीं रह सकती—

'आसां' राम सपत्नीनां वसतुं मध्ये न मे क्षमम्'

उसी प्रकार 'रामचंद्रिका' में कौशल्या कहती हैं—

मोहि चलौ वन संग लिये। पुत्र तुम्हें हम देखि जिये।[२]

दोनों काव्यों में कौशल्या के साथ चलने के लिए अनुरोध करने पर राम माँ कौशल्या को नारी-धर्म का उपदेश करते हैं। दोनों के उपदेशों में भी सादृश्य है। दोनों चौदह वर्ष तक दशरथ के जीवित रहने में भी शंकित हैं। वाल्मीकि के राम इसका केवल संकेत देते हैं—यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यति जीवितम्[३]—परन्तु केशव के राम कौशल्या को इस आशंका के आधार पर विधवा धर्म भी समझा देते हैं।

कौशल्या का आशीर्वाद लेकर राम सीता के भवन में जाते हैं।

वा० रा०—जगाम सीतानिलयं महायशः।
रा० चं०—तब गये जनक तनया निकेत।

वाल्मीकि रामायण और 'रामचंद्रिका' दोनों में राम, सीता तथा लक्ष्मण दोनों को अनेक प्रकार से साथ न चलने को समझाते हैं और दोनों अपने हठ में सफल होकर राम के साथ जाते हैं। भरत का लौटकर निरानन्द अयोध्या को देखना, पिता की मृत्यु का कारण जानकर कौशल्या के समक्ष अनेक शपथें लेना, तथा पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करना, परिवार तथा सेना सहित अग्रज राम से मिलने जाना आदि घटनाएँ दोनों काव्यों में वर्णित हैं। दोनों ही कवियों ने भरत को ससैन्य आते देखकर लक्ष्मण के कोप का भी वर्णन किया है। कौशल्यादि माताएँ भी दोनों ही राम से मिलने भरत के साथ आती हैं।

आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम्[४]

केशव ने भरत के इसी रूप को और अधिक स्पष्ट करके पिता के प्रति उनका क्रोध दिखाया है—

मद्यपान रत तिय जित होई। सन्निपातयुत वातुल जोई।
देखि-देखि जिनको सब भागे। तासु बैन हनि पाप न लागे।[५]

---

१. रा० चं०, ९. ८ २. रा० चं०, ९. १०
३. वा० रा०, अयोध्या कांड, १४-३१
४. वा० रा०, अयोध्या कांड, तृतीय भाग, पृ० १००३, श्लोक ५
५. रा० चं०, १०-३६

केशव के भरत वाल्मीकि के ही समान स्वतन्त्र व्यक्तित्व और स्वाभिमान से युक्त हैं और राम के प्रेमी होकर भी उनका अंधानुकरण करने वाले दास नहीं हैं। वह राम के साथ समानता का व्यवहार कर उनसे अयोध्या लौटने के लिए अनेक प्रकार के तर्क करते हैं और अन्नजल का त्याग कर प्राणान्त करने का सत्याग्रह करने लगते हैं। वाल्मीकि ने इसका वर्णन विस्तार से किया है किन्तु केशव ने केवल इसका सार देकर कहा है कि भरत ने अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करने पर भी राम को सहमत न देख मौन होकर मन्दाकिनी के तट पर शरीर त्याग करने का निश्चय कर लिया—

मौन गही यह बात करि छोड़ों सबै विकल्प।
भरत जाय भागीरथी तीर कर्‌यो संकल्प।[1]

भरत राम की पादुकाएँ लेकर जब नगर में प्रवेश करते हैं तो उन्हें अयोध्या दीन और निरानन्द दिखाई पड़ती है—

वा० रा०—सारथे पश्य विध्वस्ता साऽयोध्या न प्रकाशते।
निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहत स्वरा।[2]

रा० चं०—केशव भरतहि आदि दै सकल नगर के लोग।
बन समान घर-घर बसे विगत सकल संभोग॥[3]

भरत मिलन के पश्चात् राम चित्रकूट को उपयुक्त न समझ आगे बढ़ अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं। वाल्मीकि के समान केशव ने भी इस घटना को प्रधानता दी है।

वा० रा०—सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत॥[4]

रा० चं०—चित्रकूट तब राम जू तज्यो। जाय यज्ञथल अत्रि को भज्यो।
राम लक्ष्मण समेत देखियो। आपनो सफल जनम लेखियो।[5]

रामायण में वाल्मीकि ने कहा है कि मुनि ने अपनी वृद्धा पत्नी अनुसूया को बुलाकर सीता को उनके साथ भेज दिया।[6] केशव ने इस प्रसंग को कुछ संक्षिप्त करके कहा—

पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ।[7]

---

१. रा० चं०, १०. ३८
२. वा० रा०, अयो० कांड, तृ० भाग, पृष्ठ १०८४, श्लोक २४
३. रा० चं०, १०. ४५
४. वा० रा०, तृ० भाग, पृष्ठ ११०७ श्लोक ५
५. रा० चं०, ११.१
६. वा० रा०, तृ० भाग, पृ० ११०८, श्लोक ७-८
७. रा० चं०, ११.३

वाल्मीकि ने अनुसूया की वृद्धावस्था का वर्णन किया है परन्तु यह अत्यन्त संक्षिप्त है, केशव ने इसका वर्णन अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से किया है। अनुसूया ने सीता को अनेक प्रकार के उपदेश दिए थे। वाल्मीकि ने यह उपदेश विस्तारपूर्वक लिखे हैं परन्तु केशव ने इन उपदेशों का वर्णन न कर केवल उनका उल्लेख कर दिया है—'बहु भाँति ताहि उपदेश दये'। केशव ने विराध वध का उल्लेख अत्यन्त संक्षेप में किया है—

विपिन विराध बलिष्ठ देखिये। नृप तनया भयभीत लेखिये॥

नृप तनया को भयभीत लिखकर केशव ने स्पष्ट ही वाल्मीकि रामायण की ओर संकेत किया है। रामायण में कहा गया है कि विराध सीता को अपने अंक में उठाकर राम से धृष्टतापूर्ण वचन कहने लगा। उसके इन अहंकारयुक्त वचनों को सुन कर जानकी भयभीत हो गई और कदली वृक्ष के समान थर-थर काँपने लगी।[1]

विराध वध के पश्चात् दोनों काव्यों में राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम में जाते हैं। परस्पर शिष्टाचार के पश्चात् राम ऋषि से पूछते हैं कि वह अपनी पर्णकुटी कहाँ बनाएँ।

किन्तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम्।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम्।

अर्थात् मुझे कोई ऐसा स्थान बताइए जहाँ जल का कष्ट न हो, जो मनोहर वनों से युक्त हो और जहाँ मैं आश्रम बनाकर एकाग्र हो सुखपूर्वक वास कर सकूँ। 'रामचन्द्रिका' में राम भी इस प्रकार पूछते हैं—

अगस्त ऋषिराज जू वचन एक मेरी सुनो।
प्रशस्त सब भाँति भूतल सुदेश जी में गुनो।
सुनीर तरु खंड मंडित समृद्ध शोभा धरैं।
तहाँ हम निवास की बिमल पर्णशाला करैं।[2]

अगस्त्य ऋषि ने राम को पंचवटी नामक वन में निवास करने का परामर्श दिया। वाल्मीकि ने पंचवटी का केवल संकेत दिया है परन्तु केशव ने यहाँ 'हनुमन्नाटक' से प्रभावित होकर उसका कुछ विस्तृत वर्णन किया है।

'रामचन्द्रिका' के शूर्पणखा प्रसंग पर भी रामायण का प्रभाव स्पष्ट है। एक दिन कामदेव के समान सुन्दर राम को देखकर शूर्पणखा उनके प्रति काम मोहित होकर आसक्त हो जाती है। राम के सौन्दर्य का वर्णन दोनों कवियों ने किया है। राम शूर्पणखा के साथ परिहास करते हैं—

---

१. वा० रा०, च० भाग, पृ० ११, श्लोक १५
२. रा० चं०, ११, १४

वा० रा०—अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।[1]

रा० चं०—तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जानि सवाम।
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि।[2]

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास जाकर कहती है—

रा० चं०—राम सहोदर मो तन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो॥
राजकुमार रमौ संग मेरे। होहिं सबै सुख सम्पति तेरे॥

वा० रा०—अस्य रूपस्य मे युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि।

दोनों में लक्ष्मण उत्तर देते हैं कि मैं तो दास हूँ अतः दासी बनने से क्या लाभ। राम के ही पास जाओ तो स्वामिनी बनी रहोगी। दोनों भाइयों को अपने साथ हास-विलास करते देख शूर्पणखा क्रोधित होकर सीता को भक्षण करने का उपक्रम करने लगती है। उसे ऐसा दुस्साहस करते देख राम का संकेत पाकर लक्ष्मण उसे कर्ण और नासिका विहीन कर देते हैं। रक्त-रंजिता शूर्पणखा का रूप अत्यन्त भयानक हो जाता है।

इस प्रसंग में वाल्मीकि और केशव में केवल एक ही अन्तर है। रामायण में शूर्पणखा राम के पास अपने प्राकृत रूप में ही जाकर प्रणय निवेदन करती है परन्तु 'रामचन्द्रिका' में वह नवयौवना सुन्दरी के रूप में जाती है। यह केशव की अपनी मौलिकता और अन्तर्दृष्टि है क्योंकि वह जानते हैं कि दानवी के भयानक रूप में जाकर वह राम को आकर्षित नहीं कर सकती है।

केशव ने रामायण में वर्णित खरदूषण वध, रावण की मारीच से सहायता माँगना, मारीच का रावण को परदारापहरण के विरुद्ध समझाना, अन्त में रावण के भय से तत्पर हो माया-मृग बनने की कथा का संक्षेप में वर्णन किया है। इसमें सीता के पावक में छाया शरीर रखने की कल्पना वाल्मीकि से स्वतन्त्र है। मारीच की कपट-ध्वनि सुनकर सीता के आदेशानुसार लक्ष्मण के न जाने पर सीता लक्ष्मण को अनेक प्रकार के कठोर तथा अनुचित वचन कहती हैं। वाल्मीकि ने इसका वर्णन बड़े विस्तार से किया है। केशवदास ने उन्हीं बातों को पुनः न कहकर केवल इतना कहा है—

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूँदि बार-बार सीस बीसधा धुनै।[3]

परन्तु इतना स्पष्ट है कि यह लिखते समय केशव के मस्तिष्क में वाल्मीकि

---

१. वा० रा०, अ० का० सर्ग १८, श्लोक ३
२. रा० चं०, ११, ३६
३. वही १२, १८

की सीता के ही वचन थे। सीता-हरण से लेकर जटायु-मृत्यु तक रामायण का कथानक केशव ने संक्षेप से लिखा है। केशव की शबरी के कथानक का आधार भी वाल्मीकि रामायण ही है।

पंपासर का वर्णन दोनों कवियों ने किया है परन्तु केशव का वर्णन वाल्मीकि से भिन्न है। वाल्मीकि ने पंपासर को देख राम को कामोद्दीप्त करने वाले उपकरणों का वर्णन किया है परन्तु केशव अपने वर्णन में बाण से प्रभावित हैं।

रामायण में हनुमान राम-लक्ष्मण का भेद लेने भिक्षुरूप में जाते हैं। केशव ने भी हनुमान को द्विज वेश में ही भेजा है 'द्विजवपु कै श्री हनुमंत आये ।' राम और हनुमान का वार्तालाप रामायण में विस्तृत है केशव ने उसी को संक्षिप्त कर दिया है। राम की ओर से आश्वस्त होकर दोनों महाकाव्यों में सुग्रीव स्वयं लाकर राम को वस्त्राभूषण आदि देते हैं और दोनों में ही राम सातों ताड़ वृक्षों को वेधकर अपनी शक्ति का प्रमाण देते हैं।

'रामचन्द्रिका' का बालि राम से रामायण के आधार पर ही उसे मारने का कारण पूछता है परन्तु वाल्मीकि ने राम का यह कार्य अनेक तर्क-वितर्क देकर उचित प्रमाणित किया है। केशव सम्भवतः इन प्रमाणों से सन्तुष्ट नहीं हुए अतः उन्होंने कृष्णावतार में बदला लेने की बात कही है।

सुग्रीव के भोग-विलास रत हो जाने पर राम क्रोधित होकर लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वह सुग्रीव को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कराएँ क्योंकि उन्होंने जिस मार्ग पर बालि को भेजा है उसी पर सुग्रीव को भी भेज सकते हैं—

कुरुष्व सत्यं मयि वानरेश्वर
प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम् ।
मा वालिनं प्रेत्य गतो यमक्षयं
त्वमद्यपश्येर्मम चोदितैः शरैः ।।[१]

'रामचन्द्रिका' में भी क्रोधित राम लक्ष्मण से कहते हैं—

ताते नृप सुग्रीव पे जैये सत्वर तात ।
कहियो वचन बुझाय कै कुशल न चाहो गात ।
कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि देख्यो ।
करहू न सीता सोध काम वश राम न लेख्यो ।।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख सम्पति जाते ।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते ।[२]

---

१. वा० रा०, कि० का० ३० सर्ग, श्लोक ८४
२. रा० चं० १३. २८

क्रोधित लक्ष्मण को शान्त करने में दोनों काव्यों में तारा ही सफल होती है। सम्पाति के नवीन पक्ष लगने और सीता का पता बताने का पूर्ण विवरण रामायण में है। केशव ने इसी आधार पर केवल इतना कहा है—

सुनि संपाति सपक्ष ह्वै राम चरित सुख पाय।
सीता लंका माँझ है खगपति दई बताय।[1]

रामायण के ही अनुसार हनुमान सूक्ष्म रूप रखकर लंका में प्रवेश करते हैं और लंका नामक राक्षसी का सामना करते हैं। वाल्मीकि के समान केशव ने भी लंका में हनुमान के लंका-सुन्दरियों का गाना-बजाना सुनने का उल्लेख किया है। 'रामचन्द्रिका' का मुद्रिका प्रसंग रामायण से भिन्न है परन्तु रावण का सीता को अनेक प्रकार का लोभ देकर वशीभूत करने के प्रयत्न का वर्णन केशव ने किया है। इसके पश्चात् हनुमान का ब्रह्मपाश में बँधना, विभीषण का हनुमान का वध न करने का परामर्श देना, हनुमान का विभीषण के घर के अतिरिक्त लंका पुरी को जला देने का विवरण रामायण का संक्षिप्त रूप ही है। इसी प्रकार राम-रावण-युद्ध सीता की अग्नि-परीक्षा, सीता-वनवास आदि सभी घटनाओं का आधार वाल्मीकि रामायण है। केशव ने प्रायः उन कथाओं अथवा प्रसंगों को छोड़ दिया है जिनसे कथा का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। शेष कथा को भी यथासम्भव संक्षिप्त कर दिया है। घटनाओं के चयन में केशव ने अन्य स्रोतों से बहुत कम ग्रहण किया है तथा रामायण की ही घटनाएँ लेकर उनमें बीच-बीच में अन्य ग्रन्थों के आधार पर कुछ वर्णनों का समावेश कर दिया है। यह वर्णन कहीं मौलिक हैं और कहीं अनूदित और इसके पश्चात् फिर कवि रामायण के ही कथानक का सूत्र पकड़ लेता है।

'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में पूर्वार्द्ध की अपेक्षा घटना-क्रम शिथिल है। अतः रामायण का प्रभाव भी कम हो गया है परन्तु जहाँ तक घटनाओं का सम्बन्ध है केशव अधिकांश वाल्मीकि के ही ऋणी हैं। उत्तरार्द्ध का स्वान-संन्यासी अभियोग तथा मठधारी निन्दा भी रामायण पर आधृत है। 'रामचन्द्रिका' की वर्णन प्रणाली में केशव पर वाल्मीकि का प्रभाव नगण्य सा ही है, फिर भी संक्षेप में हम 'रामचन्द्रिका' को रामायण का संक्षिप्त रूप मान सकते हैं।

'रामचन्द्रिका' पर 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव—केशव पर सबसे अधिक प्रभाव 'हनुमन्नाटक' के संवादों का पड़ा है। केशव स्वयं एक वाक्पटु राजनीतिज्ञ थे। अतः 'हनुमन्नाटक' में जहाँ कहीं भी पात्रों में वाक्पटुता का आभास मिला है, उन्होंने तुरन्त उसे ग्रहण कर लिया है। रामायण के ही कथानक में जहाँ ऐसे अवसर आए हैं केशव ने नाटक के संवादों का समावेश कर लिया है। इसके अतिरिक्त केशव पर संभवतः हनुमन्नाटककार की क्षिप्र कथा प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है। नाटककार को जिन घटनाओं का वर्णन करना अभीष्ट नहीं है उनका उसने बड़ी शीघ्रता से

---

१. रा० चं०, १३. ३७

उल्लेख मात्र कर दिया है एवं जिन स्थलों पर उसकी रुचि है वहाँ ठहरकर उसने पाठक को उसके सौन्दर्यामृत का पान कराने का प्रयत्न किया है।

'हनुमन्नाटक' में राम जन्म के कारणों से लेकर राम के स्वयंवर भवन में जाने तक के घटना-चक्र को कवि ने केवल चार श्लोकों में वर्णन किया है,[1] तदनन्तर स्वयंवर का वर्णन करने के लिए वह उत्साहपूर्वक ठहर जाता है और विस्तार से उसका वर्णन करता है। इसी प्रकार सीता के वनवास का उल्लेख कवि ने केवल एक वाक्य में किया है—'रिपुवधादानीय निर्वासिता'[2] अर्थात् शत्रु का वध कर सीता को लाकर पुनः निर्वासित कर दिया और कवि लक्ष्मण के विलाप की ओर अग्रसर हो गया है। केशव ने भी इसी प्रकार विश्वामित्र के अयोध्या आगमन के पूर्व का कथानक केवल दो छंदों में कह दिया है—

शुभ सूरज कुल-कलस नृपति दशरथ भये भूपति।
तिन के सुत भये चारि चतुर चित चारु चारु मति।
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत भुव भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव दल-दूषण॥
सरजू सरिता तट नगर बसै वर अवधनाम यशधाम धर।
अघओघ विनाशी सब पुरवासी, अमर लोक मानहुं नगर॥[3]

इसके पश्चात् कवि ने अयोध्या का विस्तृत वर्णन किया है। केशव में सर्वत्र हनुमन्नाटककार की यह प्रवृत्ति लक्षित होती है।

'रामचन्द्रिका' के कथानक में केशव ने दो प्रकार से इस नाटक से सहायता ली है। नाटक के कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका केशव ने अनुवाद कर उन्हें अपने काव्य में ग्रहण कर लिया है तथा कुछ स्थल ऐसे हैं जिनका उन्होंने केवल भाव लिया है और उनमें निजी कल्पनाओं का समन्वय कर उन्हें परिवर्धित रूप दे दिया है।

अनूदित प्रसंग—

राम-परशुराम संवाद में राम परशुराम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि स्त्रियों में वीर-प्रसू जननी केवल आपकी माँ ही हैं क्योंकि आपके भुजा बल से पराजित स्वामी कार्तिकेय के मुख को देखकर भगवती पार्वती भी लोक-लज्जा से विदीर्ण होकर आपकी माँ के प्रति ईर्षालु हो उठी थीं।

स्त्रीषु प्रवीर जननी तवैव,
देवी स्वयं भगवती गिरिजाऽपि यस्यै।
त्वद्दोर्वशीकृत विशाखमुखाव—
लोकव्रीडाविदीर्णहृदया स्पृह्यांबभूव।[4]

---

१. हनु० ना०, १.५.६, ७, ८
२. वही, १४.६०
३. रा० चं०, १.२२, २३
४. हनु० ना०, १.४३

इस श्लोक का अनुवाद केशव ने इस प्रकार किया है—

जब हयो हैहयराज इन बिन क्षत्र छिति मंडल कर्‌यो।
गिरि बेध षटमुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हर्‌यो।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगबन्दिनी।।[१]

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् जब भरत अयोध्यापुरी आते हैं तो मां कैकेयी से जाकर परिवार का कुशल मंगल पूछते हैं—

भरत—मातस्तातः क्व यातः ? सुरपति भुवनं, हा कुतः ?
पुत्रशोकात्, कोऽसौ पुत्रञ्चतुर्णां? त्वमरवजतया यस्य, जातः किमस्य?
प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति ? नृपगिरा, किं तथाऽसौ बभाषे।
मद्वाग्बद्धः, फलं ते किमिह ? तव धराधीशता। हा हतोऽस्मि।।[२]

'हे माता ! हमारे पिता कहाँ गए ? स्वर्ग लोक को ! कैसे ? पुत्र शोक के कारण। चारों पुत्रों में से वह कौन सा पुत्र है ? तुम्हारे अग्रज राम। उनको क्या हुआ ? वह वन को चले गए। यह क्यों ? राजाज्ञा से। राजा ने ऐसी आज्ञा क्यों दी ? मुझ से वचनबद्ध होने के कारण। तुझे इससे क्या फल मिला ? तेरे लिए राज्य। हाय, मैं हत हुआ।'

केशवदास ने इस प्रश्नोत्तर का अत्यंत सुन्दर अनुवाद किया है—

'मातु कहां नृप ? तात गए सुरलोकहिं, क्यों ? सुत शोक लये।
सुत कौनसु ? राम, कहाँ हैं अबै ? वन लच्छमन सीय समेत गये।।
वन काज कहा कहि? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामे भये।
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध बिना सिगरेई हये।[३]

रावण द्वारा सीताहरणार्थ मृगरूप धारण करने की आज्ञा दिए जाने पर मारीच सोचता है कि जब इस समय मृत्यु अवश्यम्भावी है तो राम के हाथों मर कर स्वर्ग जाना पापात्मा रावण के हाथों मृत्यु से श्रेयस्कर है—

रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः।[४]

नाटककार ने यहाँ केवल 'वरं' कहा परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि राम के हाथों मृत्यु क्यों 'वरं' है, केशव ने हरिपुर वास कहकर इसे स्पष्ट कर दिया है—

---

१. रा० चं०, ७.२६
२. हनु० ना०, ३.८
३. रा० चं०, १०.४
४. हनु० ना०, ३.२४

जानि चल्यो मारीच मन, मरन दुहुं बिधि आसु ।
रावन के कर नरक है, हरिकर हरिपुर वासु ॥[1]

'हनुमन्नाटक' में राम को सीता के वियोग में प्रकृति का प्रत्येक उपकरण कष्टदायी प्रतीत होता है । राम कहते हैं—

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते ।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते ॥
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते ।
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते ॥[2]

इस श्लोक का अनुवाद कर केशव ने भी राम के मुख से लक्ष्मण के प्रति इसी प्रकार कहलवाया है—

हिमांशु सूर सो लगे सो बात वज्र सी बहै ।
दिसा लगैं कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै ।
बिसेस कालिराति सों कराल राति मानिये ।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ।[3]

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य के समान सन्तप्त करता है, मलय पवन वज्र-सा चलता है, समस्त दिशाएँ कृशानु सी जलती हैं, चन्दन आदि का लेप देह को जलात: ,है रात्रि कालरात्रि से भी अधिक भयानक प्रतीत होती है । यह सीताका वियोग नहीं है, इसेतो लोक संहारक साक्षात् काल ही समझो ।

मुद्रिका प्रसंग में सीता जी मुद्रिका पाकर उसके माध्यम से हनुमान से प्रश्न करती हैं—

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः सुखं ।
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया ।
एतां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना ।
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान् ।[4]

'हे मुंदरी । लक्ष्मण सहित श्री राम कुशलपूर्वक तो हैं ? हनुमान जी उत्तर देते हैं—स्वामिनि, वे सब सुखी हैं, इस चिन्ता से अपने हृदय को दुखी मत करो । हे जनकनन्दिनि ! रामचन्द्र इस मुद्रिका को नामान्तर से पुकारते हैं । तुम्हारे वियोग के कारण कृशकाय हुए रामचन्द्र जी ने इसे चिरकाल से कंकण का स्थान दे रखा है ।'

इस श्लोक का रूपान्तर केशव ने निम्न छंद में किया है—

कहि कुसल मुद्रिके राम गात । सुभ लक्ष्मण सहित समान तात ।
यह उत्तरु देत नहीं बुद्धिवंत । केहि कारण धौं हनुमंत संत ॥

---

१. रा० चं०, १२. ११
२. हनु० ना०, ५. २६
३. रा० चं०, १२. ४२
४. हनु० ना०, ६. १६

तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होत यदि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन यह कहँ राम ।।[१]

यहाँ पर केशव ने हनुमान के चरित्र में गंभीरता की रक्षा करने के लिए हनुमान से उत्तर सीता के प्रश्न करने पर ही दिलवाया है।

अंगद-रावण-संवाद में रावण अंगद से प्रश्न करता है—

कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः कः साथिकस्त्वेकदा
यातः सप्तसमुद्रलंघनविधावेकोऽह्निको वेद्मि तं।
अस्ति स्वस्ति समन्य तो रघुवरे रुष्टेऽत्र का स्वस्तिमान्
को भूयादनरण्यकस्य मरणातोतो चिताम्बुप्रदः ।।[२]

रावण—'तुम कौन हो ? बालि का पुत्र। कौन बालि ? मैं उसे जानता हूँ वह कुशलपूर्वक तो है ? राम के रुष्ट होने पर किसकी कुशल रह सकती है।'
इसी आधार पर केशव ने निम्न छंद में इसका अनुवाद किया है—

कौन के सुत ? बालि के। वह कौन बालि न जानिये ?
कोख चांपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ।।
है कहाँ वह ? वीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ वान विमान बैठ सिधाइयो।[३]

कस्त्वं वानर रामराजभवने लेख्यार्थसंवाहको।
यातः कुत्र पुरागतः स हनुमन्निर्दग्ध लंकापुरः ।।
बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः।
स व्रीडार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ![४]

अर्थात् तुम कौन हो ? रामचन्द्र का पत्रवाहक। वह हनुमान कहाँ गया जो पहले आया था और जिसने लंकापुरी जलाई थी। राक्षसपुत्र ने उसे बाँधा था। इस प्रकार अपने साथी बंदरों द्वारा लज्जित किया हुआ वह बानर कहां छिप गया है, यह ज्ञात नहीं है।

'रामचन्द्रिका' में इसका अनूदित छंद है—

कौन भाँति रहौ तहाँ तुम, अंगद राज प्रेषक जानिये।
महोदर—लंक लाइ गयो जो वानर कौन नाम बखानिये ।।
मेघनाद जो बांधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
अंगद—लोक लाज दुर्‌यो रहै अति जानिये न कहाँ अबै ।।[५]

१. रा० चं०, १३. ८६, ८७
२. हनु० ना०, ८. १०
३. रा चं०, १६. ६
४. हनु०, ८. ६
५. रा० चं०, १६. ५

अंगद रावण से राम के प्रताप का वर्णन करता है। वह कहता है कि राम के एक साधारण वानर हनुमान का ही इतना प्रताप है तो राम की शक्ति का क्या वर्णन किया जाए—

आदौ वानरशावकः समतरद्दुर्लंघयमम्भोनिधिं।
दुर्भेद्यान्प्रविवेश दैत्यनिवहानसंपेष्य लंकापुरीम्॥
क्षिप्त्वा त्वद्वनरक्षिणौ जनकजां दृष्ट्वा तु भुक्त्वा वनं।
हत्वाऽक्षं प्रदहन्पुरीं च स गतो रामः कथं वर्ण्यते।[1]

राम का क्या वर्णन करें, पहले एक वानर शिशु ही दुर्लध्य सागर को पार कर गया तथा अजेय राक्षसों के दुर्भेद्य महलों में प्रवेश कर लंकापुरी को देखा, अशोक वाटिका के राक्षसों को मारा, जनकसुता जानकी का दर्शन कर वन का भोग किया, अक्ष कुमार को मारा तथा लंकापुरी को भस्म करके चला गया।

केशव ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

श्री रघुनाथ को वानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि गयो जू।
सीय निहारि संहारि के राक्षस शोक अशोकवनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू॥[2]

अंगद क्रोध से कम्पित होता हुआ रावण की ताड़ना कर कहता है।

रे रे राक्षसवंशघातसमरे नाराचचक्राहतं।
रामोत्तुंगपतंगचापयुगले तेजोभिराडम्बरे॥
मन्ये शीर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमंडले पातितं।
गृध्रै रालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति।[3]

अरे राक्षसवंश के घातक! रघुनाथजी के धनुपबाण उठाने पर उनके अतुल शौर्य के समक्ष युद्ध-स्थल में तेरा सब मद नष्ट हो जाएगा। तेरे दसों मस्तकों को लुंठित करेंगे तथा शृंगाल उनका भक्षण और काक उन्हें क्षत-विक्षत करेंगे।

केशव ने निम्न छंद में इसी श्लोक का अनुवाद किया है—

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। अशेष माथे कटि भू परैंगे।
शिखा शिवा स्वान गहै तिहारी। फिरै चहूँ ओर निरै बिहारी॥[4]

युद्धस्थल में राम के समक्ष आने पर नाटक का कुम्भकर्ण कहता है—

नाहं वाली सुबाहुर्न खरत्रिशिरसौ दूषणस्ताटकाऽहं
नाहं सेतुः समुद्रे न च धनुरपियत्र्यम्बकस्यत्याऽऽत्तम्॥

---

१. हनु० ना०, ८, १२
२. रा० चं०, १६, ८
३. हनु० ना०, ८, २०
४. रा० चं०, १६, २१

रे रे रामप्रतापानलकवलमहाकालमूर्तिः किलाहं
वीराणां मौलिशल्यः समरभुविधरः संस्थितः कुम्भकर्णः ।[१]

अर्थात् न मैं बाली हूँ, सुबाहु भी नहीं हूँ, मैं खर और त्रिशिरा भी नहीं हूँ, न दूषण हूँ और न ताड़का । मैं समुद्र का सेतु और शिव का धनुष भी नहीं हूँ जिसको तुमने तोड़ डाला था । तेरे प्रतापरूप अग्नि के भक्षण करने का महाकाल रूप मूर्तिवाला, वीरों में अग्रणी तथा रणभूमि में निर्भय विचरण करने वाला मैं कुम्भकर्ण तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ हूँ ।

केशव ने इसका अनुवाद किया—

न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो । न हौं शम्भुकोदंड सांची बखानो ।
न हौं ताल बाली, खरै, जाहि मारो । न हौं दूषणै सिंधु सूधे निहारो ॥
सुरी आसुरी सुन्दरी भोग कर्णं । महाकाल को काल हौं कुम्भकर्णं ।
सुनो राम संग्राम को तोहि बोलौं । बढ़ो गर्ब लंकाहि आये सु खोलौं ॥[२]

समरभूमि में रावण महोदर से पूछता है 'राम कहाँ है?' महोदर कहता है—

अंके कृत्वोत्तमांगं प्लवंगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु-
र्भूमौ विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्यांग शेषं निधाय ।
बाणं रक्षःकुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः
कोणेनोद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते ।[३]

वानरराज सुग्रीव के अंक में शिर रखकर, अक्षकुमार के घातक हनुमान के अंक में चरणों को रखे हुए, पृथ्वी पर कनक मृग छाला बिछाए राम लेटे हैं । परशुराम द्वारा अर्पित तीक्ष्ण धनुष पर राक्षस कुल घातक वाण को नेत्रों के कोण से देखते हुए तथा विभीषण की ओर कान लगाए उसकी बातें सुन रहे हैं ।

केशव ने मौलिक रूप से रावण की ओर से राम के पास संधि सन्देश भेजा है । दूत आकर राम से भेंट करता है और लौटकर रावण को राम का समाचार सुनाता है । केशव ने उपर्युक्त श्लोक का प्रयोग इसी संदर्भ में किया है ।

भूतल के इन्द्र भूमि पौढे हुते रामचंद्र,
मारिच कनकमृगछालहिं विछाये जू ।
कुम्भहर-कुम्भकर्णनासाहर-गोद सीस,
चरण अकंप अक्ष-अरि उर लाये जू ॥
देवान्तक-नारान्तक-अन्तक त्यों मुसकात,
विभीषण बैन तन कानन रुखाये जू ।

---

१. हनु० ना०, ११, २४
२. रा० चं०, १८, २२, २३
३. ह० ना०, ११, ७

मेघनाद-मकराक्ष-महोदरप्राणहर,
बाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ।।[१]

भाव साम्य वाले प्रसंग—हनुमन्नाटक में राम परशुराम से कहते हैं—

जातः सोऽहं दिनकरकुले क्षत्रियः श्रोत्रियेभ्यो,
विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपारः ।
अस्मिनवंशे कथयतु जनो दुर्यशो व यशो वा,
विप्रेशस्त्रग्रहणगुरुणः साहसिक्याब्दिभेमि ।[२]

अर्थात् मैं सूर्य कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हूँ एवं भगवान् विश्वामित्र से अनेक दिव्यास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की है । संसार मेरे वंश को यशवान कहे अथवा अपयश का कलंक लगाए परन्तु मैं ब्राह्मण के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने का दुस्साहस करने में भयभीत होता हूँ ।

तथा

हरः कंठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः ।
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु सुखं कज्जलं वा जलं वा ।।
सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा ।
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ।।[3]

'हमारे कण्ठ में हार पड़ें अथवा तीक्ष्णधार वाला कुठार, स्त्रियों के नेत्रों में सुख का प्रतीक काजल रहे अथवा अश्रु, हमें सुख मिले अथवा यमराज का मुख देखना पड़े, परन्तु हम लोग किसी भी प्रकार ब्राह्मणों के लिए वीर नहीं हैं ।'

केशव ने इन दोनों श्लोकों के मूल भाव के समन्वय से एक स्वतन्त्र छंद की सृष्टि की है—

कंठ कुठार परै अब हार कि, फूलै असोक कि सोक समूरो ।
कै चितसारि चढै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो ।।
लोक में लोक बड़ो अपलोक, सु केशवदास जु होउ सु होऊ ।
विप्रन के कुल को भृगुनंदन, सूर न सूरज के कुल कोऊ ।।[४]

हनुमन्नाटककार ने लक्ष्मण के मुख से पंचवटी का वर्णन कराया है—

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी,
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ।

१. राम चं०, १६, २०
२. हनु० ना०, १, ४१
३. वही, १, ४४
४. राम चं०, ७, ३३

गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचंचत्पुटी।
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी।[१]

'हे रघुवंशश्रेष्ठ राम ! पाँच वट वृक्षों से युक्त इस पंचवटी में अपनी कुटी बनाइए। यह पंचवटी पथिकों के लिए विश्रामस्थल है। इसका द्वार भाग सुन्दर है तथा भित्ति भी वट वृक्षों द्वारा ही निर्मित है। इसके समीप ही दिव्यामोदप्रदायिनी और भवसागर को पार करने के लिए तरी के समान तथा सामान्य चेष्टाओं द्वारा दुष्प्राप्य कल्लोल करती हुई तरंगमयी गोदावरी नदी है।'

केशव ने इस भाव को लेकर श्लेष की सहायता से पंचवटी का वर्णन किया है—

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरू ज्ञान गटी।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्ति नटी गुम धूर जटी बन पंचवटी॥[२]

भाव के अतिरिक्त केशव ने 'हनुमन्नाटक' के श्लोक में प्रयुक्त 'टी' अक्षर की आवृत्ति को भी बनाए रखने का प्रयास किया है।

कपटमृगवेशी मारीच को मारकर राम पर्णकुटी को लौटते है परन्तु सीता का वहाँ कोई चिह्न नहीं दिखाई देता है। उन्हें न तो बाहर पद-चिह्न दिखाई देते हैं और न कुटी में ही कोई दिखाई देता है। राम कहते हैं कि सीता कहाँ है ? अथवा यह कुटी ही दूसरी है या मैं स्वयं ही बदल गया हूँ। इस प्रकार राम क्षण-भर भी सीता का वियोग न सहन कर सके।

बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न
काचित्किमिदमियम सीता पर्णशाला किमन्या।
अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चेत्-
क्षणमपि नहि सोढा हन्त सीतावियोगम्॥[३]

केशव ने इस श्लोक का भाव लेकर किंचित् परिवर्तित रूप में राम की शंकाओं का वर्णन किया है—

निज देखौं नहीं सुभ गीतहिं सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यौ जहीं॥
कटु बात कछु तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रही।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं॥[४]

---

१. हनु० ना०, ३, २२
२. रा० चं०, ११, १८
३. हनु० नाटक, ५, २
४. रा० चं०, १२, २७

यहाँ केशव ने मानव की अन्तर्प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन करने का प्रयास किया है। राम को अनायास ही स्मरण हो आता है कि कहीं उनकी अनुपस्थिति में सीता ने लक्ष्मण से कोई कठोर वचन तो नहीं कहा। फिर तुरन्त ही विचार उठता है कि इस वन में निशाचरी माया व्याप्त है। अभी एक राक्षस कनक मृग बन चुका है। संभव है अब कोई लक्ष्मण बन आया हो।

किष्किधा पर्वत पर राम सुग्रीव से सीता के आभूषण पाकर लक्ष्मण से कहते हैं—

जानक्याः एव जानामि भूषणानीति नान्यथा।
वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्त्वतः ॥[1]

अर्थात् मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये आभूषण जानकी के ही हैं किसी अन्य के नहीं। वत्स लक्ष्मण, देखो तुम भी इन्हें पहचानते हो।

केशव ने लिखा है—

रघुनाथ जबै पट नूपुर देखे। कहि केशव प्राण समानहि लेखे।
अवलोकन लक्ष्मण के कर दीन्हे। उन आदर सो सिर लाइ कै लीन्हें ॥[2]

नाटक से भाव लेते हुए भी केशव का छन्द अधिक सुन्दर है। इसमें सीता के प्रति राम का अनन्य प्रेम, लक्ष्मण का आभूषण पहचानना तथा सीता के प्रति लक्ष्मण का आदर सभी एक साथ व्यंजित हैं।

रावण सीता का अपहरण कर आकाश मार्ग से ले जा रहा था, उस समय 'हनुमन्नाटक' में सीता राम के लिए करुण पुकार मचाती हुई कहती है—

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर,
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्,
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।[3]

अर्थात् 'हा राम ! हा रमण! हा जगद्वीर ! हा प्राणनाथ ! हा रघुपति ! तुम मेरी उपेक्षा क्यों करते हो ? इस प्रकार बारम्बार विलाप करती हुई विदेहतनया जानकी को रावण आकाश मार्ग से ले गया।'

केशव ने इस आधार को लेकर जो छंद लिखा है उसमें उनकी मनोवैज्ञानिक सूझ का स्पष्ट प्रमाण मिलता है—

---

१. हनु० नाटक, ५, ३८
२. रा० चं०, १२, ६१
३. हनु० ना०, ४, १४

हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर। लंकाधिनाथ बश जानहु मोहि वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण! छुड़ावहु वेगि मोहीं। मार्तंडबंश यश की सब लाज तोहीं॥[१]

यहाँ सीता अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण 'लंकाधिनाथवश' कहना नहीं भूलती जिससे सुनने वाले को उनके अपहरणकर्ता का सूत्र हाथ लग सके। साथ ही लक्ष्मण के प्रति उन्होंने जो कटु वचन कहे थे उसकी भी उन्हें ग्लानि है, इसी से वह लक्ष्मण से भी उस अवसर को विस्मरण कर सूर्य वंश की लाज बचाने का अनुरोध करती हैं।

मारीच का वध करने के पश्चात् राम पर्णकुटी को सीता-विहीन पाकर उसका उत्तरीय लेकर कहते हैं—

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कंठपाशः,
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः,
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्॥[२]

'द्यूत के समय द्रव्य स्वरूप, प्रणयकेलि के समय कण्ठपाश के समान, सुरतान्त पर परिश्रम को हरने वाले व्यंजन के समान, रात्रि के समय शैय्या के समान यह सीता जी का उत्तरीय मुझे सौभाग्य से ही प्राप्त हो गया है।'

केशव ने इसको कुछ परिवर्तन के साथ लिखा है—

पंजर कै खंजरीट नैननको केशोदास केधौं मीन मानस का जल है कि जारु है
अंगको कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई किधौं कोटजीव ही को उरको कि हारु है
बंदन हमारो काम केलि को, कि ताड़वे की ताजनो विचार को,
कै व्यजन विचारु है मान की जमनिका के कंजमुख मूंदिबे को सीता
जू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥[3]

यहाँ हनुमन्नाटककार और केशव के उपमानों में अन्तर यह है कि नाटककार ने उत्तरीय को कामोत्तेजक माना है परन्तु केशव ने राम के दग्ध हृदय को शान्ति-प्रदायक अथवा गत सुखद स्मृतियों का प्रतीक माना है।

'हनुमन्नाटक' में विभीषण रावण को जानकी लौटाने का परामर्श देता हुआ कहता है—

सुवर्णपुंखाः सुभटाः सुतीक्ष्णाः
वज्रोपमा वायुमनः प्रवेगाः।
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥[४]

---

१. रा० चं०, १२, २१
२. हनु० ना०, ५, १
३. रा० चं०, १२, ६२
४. हनु० नाटक, ७, ८

इसी भाव को लेकर केशव ने कुछ विस्तार से लिखा है—

देखे रघुनायक धीर रहै। जैसे तरु पल्लव वायु बहै ॥
जौलौं हरि सिंधु तैरेई तरै। तौलों सिय लै किन पाय परै ॥
जौलौं नल नील न सिंधु तरै। जौलों हनुमत न दृष्टि परै ॥
जौलौं नहिं अंगद लंक ढही। तौलौं प्रभु मानहु बात कही ॥
जौलौं नहिं लक्ष्मण वाण धरैं। जौलौं सुग्रीव न क्रोध करैं।
जौलौं रघुनाथ न सीस हरौ। तौलौं प्रभु मानहु पाइ परौ ॥[१]

केशव के छन्द में विभीषण का चरित्र अधिक स्पष्ट होकर आया है। विभीषण को सीताहरण के प्रति इतना आक्रोश नहीं है जितना वह राम की युद्ध शक्ति से भयभीत है। उसके अन्तर में राज्य की कामना भी है इसलिए वह सरलता से शत्रु पक्ष से जा मिलता है। रावण द्वारा सीता हरण के दुष्कृत्य से रावण का कोई भी शुभेच्छु सहमत नहीं है परन्तु इस प्रकार शत्रु से भयभीत कोई नहीं है।

'हनुमन्नाटक' में राम आहत बालि से कहते हैं—

शुद्धिर्भविष्यति पुरंदरनन्दन त्वं मामेव चेदहह पातकिनं शयानम्।
सौख्यार्थिनं निरपराधिनमाहनिष्यस्यस्मात्पुनर्जनकजाविरहोऽस्तु मा मे ॥[२]

अर्थात् 'हे इन्द्रकुमार ! यदि पापी, नेत्र मूँदे हुए सुख की ही इच्छा करने वाले निरपराधी मुझको तु मारेगा तो मेरी शुद्धि हो जाएगी और फिर मुझको जानकी का विरह भी नहीं होगा।' रामायण में वाल्मीकि ने राम के इस कार्य को उचित बताते हुए अनेक तर्क दिए हैं। परन्तु केशव ने हनुमन्नाटककार के आधार पर राम को दोषी बताकर कहा—

सुनि बासवसुत वल बुद्धि निधान। मैं शरणागत हित हते प्रान।
यह सांटों लै कृष्णावतार। तब ह्वैहो तुम संसार पार ॥[३]

'हनुमन्नाटक' में रावण का प्रतिहार उसके प्रताप का वर्णन करता हुआ कहता है—

ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः ॥
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकुथालापैरलं तुम्बुरो
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः ॥[४]

'हे ब्रह्मन ! यह पठन का समय नहीं है, चुप होकर बाहर बैठो। रे जड़मति बृहस्पति ! यह इन्द्र सभा नहीं है, थोड़ा बोलो। हे नारद ! स्तोत्रों को रहने दो।

---

१. राम चं०, १५, १०, ११, १२
२. हनु० नाटक, ५, ६०
३. राम चं०, १३, ४
४. हनु० नाटक, ८, ४५

हे तुम्बुरू, स्तुति करना बन्द करो । सीता के सिन्दूर-रेखा रूपी भाले से बिद्ध होने के कारण भग्नहृदय लंकेश्वर इस समय स्वस्थ नहीं है ।'

प्रतिहार का यह वचन रावण-अंगद वार्तालाप के मध्य में है। केशव ने इस अवसर को अधिक शिष्ट न समझकर प्रतिहार से उस समय कहलवाया है जब अंगद रावण के दरबार में प्रवेश करता है—

पढौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बैर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे।।
दिनेश जाय दूरि बैठ नारदादि संगही।
न बोलु चंद मंदबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ।।[1]

केशव ने यहाँ रावण की अस्वस्थता का उल्लेख न कर उसके चरित्र में गांभीर्य की भी रक्षा की है। रावण-अंगद वार्तालाप के अन्तर्गत तो अनेक ऐसे छंद हैं जिनका भाव केशवदास ने ग्रहण किया है। केशव ने इस प्रसंग को प्रायः उसी रूप में 'रामचंद्रिका' में स्थान दिया है, जैसा वह 'हनुमन्नाटक' में मिलता है। केशव ने इसमें रावण के वाक्चातुर्य तथा कूटनीतिज्ञता का परिचय देकर संवाद को नाटककार की अपेक्षा अधिक रोचक बना दिया है। रावण राम की शक्ति का अपमान न कर अपना प्रभाव बताकर तथा कूटनीति से अंगद को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करता है।

युद्ध के अवसर पर रावण कुम्भकर्ण को जगाने की जब आज्ञा देता है तो :—

विरम विरम तूर्ण कुम्भकर्णस्य कर्णान्न ।
खलु तव निनादैरेष निद्रा जहाति ।
इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्ष्यमाणा ।
मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ।[2]

"कुम्भकर्ण की कोई प्रेयसी कहती है 'ठहरो-ठहरो, कुम्भकर्ण के कानों में तेरे निनाद करने से उसकी निद्रा नहीं टूटेगी ?' उसके इतना कहते-कहते हाथियों का यूथ कुम्भकर्ण की साँस के साथ मुँह में चला गया।'

निद्रां तथापि न जहौ यदि कुम्भकर्ण
श्री कंठलब्धवरकिन्नरकामिनीनाम् ।
गन्धर्वयक्षसुरसिद्धवरांगनाना-
माकर्ण्य गीतमृतंपरमं विनिद्रः ।[3]

'तब भी कुम्भकर्ण की जो नींद नहीं टूटी वह किन्नर सुन्दरियों, गन्धर्व यक्ष, सुर, सिद्ध वारांगनाओं के मधुर संगीत को सुन कर टूट गई ।'

---

१. रा० चं०, १६, २
२. हनु० ना० ११, १४
३. वही, २१. १५

केशव ने इन दोनों छंदों के भाव को लेकर लिखा :—

राक्षस लाखन साधन कीने। दुंदुभि दीह बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरू वारे। कुन्जर पुंज जगावत हारे।
आइ जहीं पुरनारि सभागी। गावन बीन बजावन लागीं।
जागि उठो तब ही सरदोषी। छुद्र क्षुधा बहु भक्षण पोषी।[1]

हनुमन्नाटककार ने कुम्भकर्ण के मुख में हस्ति यूथ का प्रवेश कराकर उसका दानवी रूप दिखाया है परन्तु केशव ने केवल मत्त हाथियों के उसे जगाने के प्रयत्नों का उल्लेख मात्र किया है। इससे केशव का वर्णन अधिक स्वाभाविक हो गया है और अलौकिक होने से बच गया है।

इस प्रकार केशव ने कहीं शब्दानुवाद करके और कहीं केवल भाव ग्रहण कर के 'हनुमन्नाटक' के बहुत से स्थल प्रसंगों को अपना बना लिया है। केशव की प्रतिभा का संयोग पाकर वह स्थल और अधिक प्रभावपूर्ण हो गए हैं।

'रामचंद्रिका' पर 'प्रसन्नराघव' का प्रभाव—केशवदास की रामचंद्रिका पर 'प्रसन्नराघव' का भी यथेष्ट ऋण है। केशवदास ने यह ऋण दो प्रकार से लिया है। कहीं तो उन्होंने 'प्रसन्नराघव' की उक्तियों को ग्रहण किया है और कहीं पूरा प्रसंग ले लिया है।

प्रसन्नराघवकार जयदेव कहते हैं —

लक्ष्मणस्येव यस्याऽस्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृंगायते मनः।[2]

अर्थात् 'सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के समान मेरा मन भी रामचन्द्र जी के पदारविन्द का भौंरा बन रहा है।' केशव ने इसी आधार पर कहा है —

रामचन्द्र पद पद्मं, वृन्दारक वृन्दाभिवंदनीयम्।
केशवमति भूतनया, लोचनं चञ्चरीकायते॥[3]

सीता स्वयंवर का प्रसंग केशव ने लगभग 'प्रसन्नराघव' से ही लिया है। 'प्रसन्नराघव' के मंजीरक और नूपुरक 'रामचंद्रिका' में सुमति और विमति हो गए हैं। स्वयंवर भवन का वर्णन करते हुए नूपुरक मंजीरक से कहता है —

वयस्य मंजीरक, पश्य पश्य। गजेन्द्रदशनस्निग्धशलाकासहस्रनिर्मितेषु मंचेष्वासीना इमे कुंकुमकृतांगरागा राजानोऽमलस्फटिकप्रासादशिखरासंगिनः कनकसिंहा इव राजन्ते। अमुग्धदुग्धसागरलहरीशिखरावलम्बिनोऽभिनवोद्गच्छन्निशाकरबिम्बप्रतिबिम्बा इव शोभन्ते।[4]

अर्थात्—'मित्र मंजीरक ! देखो हाथी दाँत के बने आसनों पर विराजमान कुंकुमरक्त से राजागण स्वच्छ स्फटिक प्रासाद पर उपविष्ट कनकसिंह के सदृश सुशो-

१. रा० चं०, १८. २-३
२. प्र० रा०, १. १५
३. रा० चं०, १. १९
४. प्र० रा०, पृ० २५

भित हो रहे हैं अथवा यह अनन्त विस्तृत क्षीर सागर तरंग में चन्द्रबिम्ब के समान दीखते हैं।'

मंजीरक उत्तर देता है—

स्वां स्वां दिशं श्रितवतां निवहेन राज्ञां।
मंचावलीवलयमाकलितं विभाति।
सीता स्वयंवर-विलोकन-कौतुकेन।
पुंजीकृताकृति दिशामिव चक्रवालम्।[1]

अपने निर्दिष्ट स्थानों पर बैठा हुआ यह राजसमूह इस प्रकार शोभित हो रहा है, मानो सीता स्वयंवर देखने की उत्कंठा से दिशाएँ समूह बनकर आ गई हों।

इस वार्तालाप के आधार पर केशव ने लिखा है—

शोभित मंचन की अवली गजदन्तमय छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो बसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यां जनु देवसभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई।[2]

मंजीरक कहता है:—

नटति नरकराग्रव्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाकामंञ्चपांञ्चालिकेयम्।
त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिताना-
मतिरभसवती वक्ष्माभृतां चित्तवृत्तिः॥[3]

'हाथी दाँत से बनी हुई मंच रूपी कठपुतलियाँ राजकर्मचारियों द्वारा लगाए गए सूत्रों के सहारे इधर-उधर घुमाई जा रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो हर धनुष उठाने के लिए उत्कण्ठित राजागण की चित्तवृत्ति ही नाच रही हो।'

'प्रसन्नराघव' के इसी सूत्र के आधार पर केशव ने कहा—

नचति मंच-पंचालिका कर संकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्त-वृत्ति सुकुमार[4]

नूपुरक प्रश्न करता है—

वयस्य मंजरीक, कोऽयं सीताकरग्रहवासनावसन्तलक्ष्मीविलसत्पुलकमुकुलजालमंडितं निजभुजसहकारशाखियुगलं विलोकयंस्तिष्ठति।[5]

---

१. प्र० रा०, १. २७
२. रा० चं०, ३. १५
३. प्र० रा०, १. २८
४. रा० चं०, ३. १६
५. प्र० रा०, पृ० २७

अर्थात् 'मित्र मंजीरक, सीता के करग्रह की वासना से रोमांचित अपने भुजा रूपी दो सहकार वृक्षों को कौन देख रहा है ?'

केशव का सुमति कहता है—

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विसाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल।[१]

नूपुरक के उत्तर में 'प्रसन्नराघव' का मंजीरक कहता है—

स एष निजयशःपरिमलप्रमोदितचारणचंचरीकचयकोलाहलमुखरितदिक् चक्रवालक्ष्मापालकुन्तलालंकारो मल्लिकापीडो नाम।[२]

'कुंतल अलंकार पहने हुए यह मल्लिकापीड नाम का राजा है जिसके यशरूपी कुसुमों के परिमल से आमोदित चरण रूपी भ्रमर दिशाओं को उसके यशगान द्वारा मुखरित करते फिरते हैं।'

'रामचंद्रिका' में विमति कहता है—

जेहि यश परिमल मत्त चंचरीक चारण फिरत।
दिशि विदिशन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप ॥[३]

नूपुरक—अयं पुनः कतमो यः किल दूरापसारितकटकप्रकटितधनुर्गुणकिणकषणलेखामण्डले भुजदण्डे विलोकयंस्तिष्ठति।[४]

और अपने प्रतापरूपी सूर्य के उदयगिरितुल्य अपनी दाहिनी भुजा को देखने वाला यह कौन राजा है।

'रामचंद्रिका' का सुमति पूछता है—

निज प्रताप दिनकर करत लोचन कमल विकास।
पान खात मुसुकात मृदु को यह केशवदास ॥[५]

'प्रसन्नराघव' में मंजीरक कहता है—

सोऽयं कुबेरदिगंगनाललाटतटीविलासलम्पटः काश्मीरतिलकः।

'यह कुबेर की दिशा रूपी स्त्री के ललाट का लोभी काश्मीर का राजा है।'

'रामचंद्रिका' में विमति कहता है—

राजराजदिग बाम-भाल-लाल लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जग नाम काश्मीर को तिलक यह ॥[६]

---

१. रा० चं०, ३. १८
२. प्र० रा०, पृ० २७
३. रा० चं०, ३, १९
४. प्र० रा०, पृ० २८
५. रा० चं०, ३, २२
६. वही, ३, २१

'प्रसन्नराघव' में मंजीरक कहता है—

स एष निजप्रतापप्रभापटलपिंजरितमलयाचलनितम्बतटः कांचीमंडनोवीरमाणिक्यनामा नृपतिः।[1]

'अपने प्रताप की प्रभा से मलयाचल अर्थात् दक्षिण दिशारूपी स्त्री के नितम्बों को प्रकाशित करने वाला कांची का अलंकार यह वीरमाणिक्य नामक राजा है।'

'रामचंद्रिका' का सुमति उत्तर देता है—

नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो।
कटिपट सुपट सुबेश, कल कांची शुभ मंडई॥[2]

इस प्रकार मंजीरक तथा नूपुरक का सम्पूर्ण वार्तालाप केशव ने सुमति विमति का वार्तालाप बनाकर 'रामचंद्रिका' में समन्वित कर दिया है।[3]

'रामचंद्रिका' के चतुर्थ प्रकाश में केशवदास ने स्वयंवर भवन में रावण और वाणासुर की भेंट कराई है। इस भेंट का मूलाधार 'प्रसन्नराघव' ही है। वार्तालाप में भी केशव इस नाटक से काफी प्रभावित हैं।

'प्रसन्नराघव' में बाण रावण से कहता है—

यदीदृशं वीरडम्बरं तत्किमारोप्यैव हरकार्मुकं नानीयते सीता।[4]

यदि वीरता का यही आडम्बर है तो शिव धनुष को तोड़कर सीता को क्यों नहीं लाते ?

'रामचंद्रिका' में बाण कहता है—

जुपै जिय जोर, तजौ सब शोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख कोरि॥[5]

'प्रसन्नराघव' का बाण रावण पर व्यंग्य करता है—

बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्।[6]

अर्थात् 'अनेक मुख होना बहु प्रलाप का कारण होता है।'
इसी प्रकार 'रामचंद्रिका' में भी बाण कहता है—

बहुत बदन जाके। विविध वचन ताके।[7]

---

१. प्र० रा०, पृ० २८
२. रा० चं०, ३, २३
३. विशेष विवरण के लिए देखिए डा० हीरालाल दीक्षित का केशवदास, पृ० १२२-२३
४. प्र० रा०, पृ० ४६
५. रा० चं०, ४, ८
६. प्र० रा०, पृ० ४७
७. रा० चं०, ४, १०

'प्रसन्नराघव' में रावण कहता है कि बिना सीता को लिए मैं यहाँ से उस समय तक नहीं जाऊँगा जब तक अपने किसी अनुगामी जन का क्रूरक्रन्दन नहीं सुन लूँगा।

अनाहृत्य हठात् सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः॥

केशव ने भी रावण की इस उक्ति को ग्रहण कर लिया है। रावण कहता है—

अब सिय लिये बिन हौं न टरौं।
कहु जाहुँ न तो लगि नेम धरौं॥
जब लौं न सुनौं अपने जन को।
अति आरत शब्द हते तन को॥[1]

इसी प्रकार रावण और बाणासुर के अन्य कई प्रश्नोत्तर भी केशव ने प्रसन्नराघव से ही ग्रहण किए हैं।[2]

स्वयंवर भवन में जब सबको सीता के विवाह के सम्बन्ध में शंका होने लगी तब एक ऋषि-पत्नी सीता के चित्र के साथ किसी सुन्दर राजकुमार का चित्र बनाकर लाई। केशव ने यह कल्पना 'प्रसन्नराघव' से ली है परन्तु नाटक में यह चित्र त्रिकाल-दर्शिनी सिद्धयोगिनी मैत्रेयी बनाती हैं और 'रामचंद्रिका' में एक ऋषि पत्नी—

जब आनि भई सब को दुचिताई।
कहि केशव काहु पै मेटि न जाई॥
सिय संग लिये ऋषि की तिय आई।
इक राजकुमार महासुखदाई॥[3]

राम लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी में प्रवेश करने पर प्रसन्न-राघवकार ने सूर्योदय का वर्णन किया है। केशव ने भी 'पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उदोत' कहकर सूर्योदय का उल्लेख किया है परन्तु 'रामचंद्रिका' का वर्णन 'प्रसन्नराघव' के सूर्योदय वर्णन से भिन्न है।

विश्वामित्र और जनक के परस्पर परिचय का प्रसंग भी केशव ने 'प्रसन्नराघव' से लिया है। विश्वामित्र राम को राजा जनक का परिचय देते हुए 'प्रसन्नराघव' में कहते हैं—

अंगैरंगीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः।
त्रयी च राज्यलक्ष्मीश्च योग विद्या च दीव्यति॥[4]

---

१. रा० चं०, ४, २१
२. विशेष विवरण के लिए देखिए हीरालाल दीक्षित कृत केशवदास, पृ० १२४—२६
३. रा० चं०, ५, १
४. प्र० रा०, ३, ७

'यह वही जनक हैं जिनमें षडंगों से युक्त वेद विद्या, सातों अंगों से युक्त राजलक्ष्मी और आठों अंगों से युक्त योगविद्या निवास करती हैं।'

'रामचंद्रिका' में विश्वामित्र कहते हैं—

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति बेलि बई है।
दान-कृपान विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है॥
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
बेदत्रयी अरू राज सिरी परिपूरणता शुभ योग मई है॥[१]

जनक विश्वामित्र का परिचय कराते हुए 'प्रसन्नराघव' में कहते हैं—

यः कांचनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥[२]

अर्थात् 'जिसने स्वर्ण की भाँति स्वयं को तपोमय वह्नि में डालकर, वर्णोत्कर्ष प्राप्त किया यह वही योगीश्वर विश्वामित्र हैं।'

'रामचंद्रिका' में जनक कहते हैं—

जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये॥[३]

अपनी प्रशंसा सुनकर जनक 'प्रसन्नराघव' में कहते हैं—

भगवन्, इदमस्मत्प्राचीनेषु शोभते न तु मयि कतिपयग्रामटिकास्वामिनि।

अर्थात् 'यह प्रशंसा हमारे पूर्वजों के लिए उचित है, मैं तो केवल कुछ गाँवों का स्वामी हूँ।'

इसी भाव को लेकर 'रामचंद्रिका' में जनक कहते हैं—

यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै॥
हय को बपुरा सुनिये ऋषिराई।
सब गाउँ छ सातक की ठकुराई।[४]

'प्रसन्नराघव' के विश्वामित्र जनक से कहते हैं—

अवनिमवनिपालाः संघशः पालयन्ता-
मवनिपतियशस्तु त्वां विना नापरस्य।
जनक, कनकगौरीं यत्प्रसूता तनूजां,
जगति दुहितृमंतं भूर्भवन्तं वितेने।[५]

---

१. रा० चं०, ५, १६
२. प्र० रा०, ३, ८
३. रा० चं०, ५, २०
४. रा० चं०, ५, २३
५. प्र० रा०, ३, १३

अर्थात् 'कितने ही राजा पृथ्वी का पालन किया करें, किन्तु अवनिपति होने का गौरव केवल आपको ही प्राप्त है क्योंकि पृथ्वी से कनक के समान सुन्दर कन्या को प्राप्त करना आपका ही काम है।'

विश्वामित्र भी 'रामचंद्रिका' में यही बात कहते हैं—

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई॥
भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषण की भवि भूषण भू-तनते तनया उपजाई।[१]

'प्रसन्नराघव' में जनक विश्वामित्र के लिए कहते हैं—

भगवन्, नूतनभुवननिर्माणनिपुणस्य भगवतः कियतीयमभिनव-वचनचातुरी नाम।[२]

अर्थात् 'हे भगवन्! नूतन भुवन निर्माण करने में निपुण आपकी वचन चातुरी भी नवीन है।'

इस आधार पर 'रामचंद्रिका' में जनक कहते हैं :—

इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर रचिबै को समरत्थ।[३]

प्रसन्नराघव में जनक के राम, लक्ष्मण का परिचय पूछने पर विश्वामित्र कहते हैं :—

तनुश्रिया निर्जितचम्पकोत्पलौ सुवर्णनीलोत्पलकोशकोमलौ।
अहो दृशामुत्सवदानदक्षिणौ सुलक्षणौ लक्ष्मण-लक्ष्मणाग्रजौ।[४]

'चम्पक तथा नीलकमल की कान्ति वाले, सुवर्ण तथा उत्पल के अभ्यन्तर अग्नि के समान कोमल, नेत्रों को आनन्द देने वाले तथा सुलक्षण राम और लक्ष्मण हैं।'

'रामचंद्रिका' में विश्वामित्र ने इसी भाव को सरल रूप में कहा है :—

सुन्दर श्यामल राम सु जानो। गौर सु लक्ष्मण नाम बखानो।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ। सूरज के कुलमंडन दोऊ॥[५]

'प्रसन्नराघव' में जनक कहते हैं :—

जज्ञिवान् दशरथः स हि राजा।
राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम्।

---

१. रा० चं०, ५, २४
२. प्र० रा०, ३, १४
३. रा० चं०, ५, २५
४. प्र० रा० ३. २१
५. रा० चं०, ५. २९

लोकलोचनविगाहनशीलां,
त्वं पुनः कुमुदिनीमिव सीताम् ।[१]

अर्थात् 'राजा दशरथ ने चंद्रमा के समान सुन्दर राम को जन्म दिया तथा संसार के नेत्रों को सुख प्रदान करने वाली कन्या को आपने जन्म दिया है ।'

इसी आधार पर केशव ने भी लिखा :—

राजराज दशरथ तनै जू । रामचन्द्र भुवचन्द्र बने जू ।
त्यों विदेह तुम हूँ अरु सीता । ज्यों चकोर तनया शुभ गीता ।[२]

'प्रसन्नराघव' में विश्वामित्र जनक से कहते हैं :—

अतीव मे कौतुकं वृषभकेतुकार्मुकावलोकने ।[३]

अर्थात् मुझे शिव धनुष देखने की उत्सुकता है । केशव ने इसी भाव को परिवर्तित कर राम की उत्सुकता का निर्देश किया है :—

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो ।[४]

विश्वामित्र-जनक संवाद में इसके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे स्थल हैं जिनका भाव ग्रहण कर केशव ने उन्हें 'रामचंद्रिका' में स्थान दिया है ।[५]

राम के धनुष तोड़ देने के पश्चात् परशुराम धनुष तोड़ने वाले का नाम पूछते हैं । तांड्यायन ऋषि उनको उत्तर देते हैं :—

सुबाहुमारीचपुरः सरा अमी
निशाचराः कौशिकयज्ञघातिनः
वशे स्थिता यस्य ।[६]

'कौशिक यज्ञ को विध्वंस करने वाले सुबाहु, मारीच, आदि राक्षस जिसके वश में' और परशुराम तुरन्त रावण को समझकर तांड्यायन को बीच में ही रोक देते हैं । केशव ने इसी प्रसंग को अधिक नाटकीय रूप में लिखा है :—

महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज ।
तोरयो 'रा' यह कहत ही समुझ्यो रावण राज ।[७]

परशुराम ने अपने कुठार को संबोधन कर जो वचन कहे हैं, उन्हें केशवदास ने 'प्रसन्नराघव' से ही लिया है । दोनों कृतियों में परशुराम की उक्तियों में पर्याप्त भाव साम्य है ।

---

१. प्र० रा०, ३.२९
२. रा० चं०, ५. ३३
३. प्र० रा० पृ० ११५
४. रा० चं०, ५. ३४
५. हीरालाल दीक्षित ; केशवदास, पृ० १२७-३०
६. प्र० रा०, ४.६
७. रा० चं०, ७.४

लक्ष्मण को क्रोधित होते देख परशुराम कहते हैं :—

दारैर्मुक्तकुचांशुकैः परिवृतं प्राचीनमेषां नृपं,
नाहिंसीद्यदसौ कुठारहतकस्तस्यैतदुज्जृम्भितम् ।
यन्नारीकवचान्वयप्रणयिनां क्षत्राधमानामिमा,
दुर्वाचः प्रविशन्ति मे श्रवणयोर्धिक् क्षत्रगोत्रे कृपाम् ।[1]

अर्थात् 'जो नृप स्त्रियों के अंचल तले छिप गए, उन्हें मेरे इस कुठार ने नहीं मारा। आज उन्हीं नारी कवच से रक्षा करने वाले अधम क्षत्रियों की यह कर्णकठोर बातें सुननी पड़ रही हैं, यह उसी कृपा का परिणाम है। आज से क्षत्रिय गोत्र पर मुझे कृपा करने को धिक्कार है।'

केशव के परशुराम भी इसी आशय से लक्ष्मण से कहते हैं :—

लक्ष्मण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई ।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यौ हरई ।
कूर कुठार निहार तजो फल ताको यहै जु हियो जरई ।
आजु ते तोकहं बंधु महा धिक क्षत्रिन पै जु दया करई ।[2]

परशुराम प्रसंग के अतिरिक्त 'प्रसन्नराघव' तथा 'रामचंद्रिका' में अन्य कुछ स्थलों में भी भाव साम्य पाया जाता है। प्रसन्नराघव में वन में जाती हुई सीता के सम्बंध में हंस कहता है :—

अप्युच्चण्डैस्तपनकिरणैस्तापितायां पृथिव्या-
मप्यन्येषां कठिनवपुषां दुर्गममार्गसीम्नि ।
प्रेमार्द्रेण प्रगुणितधृतिश्चेतसा शीतशीतान्,
मेने सीता प्रियतमपदैरङ्कितान्भूमिभागान् ।[3]

अर्थात् 'सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संतप्त भूमि में भी, जहाँ कठोर शरीर-धारियों को भी चलने में कष्ट होता था प्रेमाधिक्य के कारण वही भूमि सीता को शीतल लगती थी। सीता प्रियतम के पदचिह्नों से अंकित भूमिभाग को अत्यंत शीतल समझती थी।'

इस भाव को लेकर केशव ने 'रामचंद्रिका' में कहा :—

धाम को राम समीप महाबल, सीतहिं लागत है अति सीतल ।
ज्यों घन संयुत दामिनि के तन होत है पूषन के कर भूषन ।
मारग की रज तापित है अति, केशव सीतहिं सीतल लागत ।
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि, दैजु चले तेहि से सुख दायनि ।[4]

---

१. प्र० रा०, ४.२६
२. रा० चं०, ७.३६
३. प्रा० रा० ५ २७
४. रा० चं०, ६.३८

'प्रसन्नराघव' में गंगा के प्रश्न करने पर हंस राम के संबंध में कहता है :—

कान्ते नाथ प्रणयमधुरं किंचिदाचंचलेन,
श्रान्ता श्रान्ता जनकतनया वल्कलस्यांचलेन।
चक्रे वोतश्रमजलकण स्निधमुग्धाननश्रीः,
श्रान्तः श्रान्तः स पुनरनया लोचनस्यांचलेन।[1]

'प्रियतम राम ने अपने वल्कल वस्त्र से स्नेहपूर्वक सीता को श्रांत देखकर हवा कर शांत किया तथा स्वेद बिन्दुओं के सूख जाने पर प्रसन्नमुखी सीता अपनी चंचल दृष्टि से राम के श्रम को दूर करती थीं।'

इस अनुकरण पर केशव ने लिखा :—

मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारू दृगंचल सों।[2]

'रामचंद्रिका' का मुद्रिका प्रसंग केशवदास ने 'हनुमन्नाटक' तथा 'प्रसन्नराघव' के सम्मिलित भावों को गूँथ कर बनाया है। 'प्रसन्नराघव' में सीता अशोक वृक्ष से अंगार माँगती हैं तब हनुमान् मुद्रिका को गिराते हैं। केशव के हनुमान ने भी सीता के अशोक वृक्ष से अंगार याचना करने पर मुद्रिका गिराई है।'

'प्रसन्नराघव' की सीता को सन्देह है कि नर और बानर में मैत्री कैसे हो सकती है। वह हनुमान से पूछती हैं—

केन पुनर्नरवानराणामीदृशं सखित्वं निर्मितम्?[3]

रामचंद्रिका में भी सीता को इसी प्रकार का सन्देह होता है—

प्रीति कीह धौं सुनर वानरनि क्यों भई?[4]

इस प्रकार केशव ने अनेक सुन्दर स्थलों को 'प्रसन्नराघव' से चयन कर 'रामचंद्रिका' का शृंगार किया है। उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य स्थल हैं जिनका केशव ने भाव ग्रहण किया है, परन्तु वे विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं।

'रामचंद्रिका' पर 'उत्तर रामचरित' का प्रभाव—'रामचंद्रिका' के लव-कुश-युद्ध पर भवभूति के 'उत्तर रामचरित' का प्रभाव पड़ा है। अधिकांश रामकाव्यकारों ने इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि 'रामचंद्रिका' में वर्णित लव-कुश युद्ध का वर्णन भवभूति के वर्णन से भिन्न है तथापि केशव ने भाव वहीं से लिया है। 'उत्तर रामचरित' में यह युद्ध लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु और लव में हुआ है परन्तु केशव ने इस अवसर पर राम पक्ष के सभी वीर योद्धाओं से युद्ध करा कर उनके दोषों पर लव के माध्यम से एक दृष्टि डाली है।

---

१. प्र० रा०, ५.२८
२. रा० चं० ६. ४४
३. प्र० रा०, पृ० २३८
४. रा० चं०. १३, ७७

'उत्तर रामचरित' में मुनिकुमारों के साथ लव अश्वमेध के अश्व को देखते हैं और घोषणा से उत्तेजित होकर उसे पकड़ लेते हैं।[१] 'रामचंद्रिका' में भी मुनि बालकों के साथ लव भाल पट्ट के लेख को पढ़कर अश्व को बाँध लेते हैं—

दूरिहि ते मुनि बालक धाये। पूजित बाजि विलोकन आये॥
भाल को पट्ट जहीं लव बांच्यो। बांधि तुरंगम जयरस राच्यो॥[२]

'उत्तर रामचरित' में सुमन्त्र के राम की प्रशंसा करने पर लव कहते हैं कि यदि राम ने परशुराम का दमन किया तो इसमें वीरता की कौन-सी बात है। ब्राह्मणों का पराक्रम वचन में होता है। भुजा बल तो क्षत्रियों में ही होता है। परशुराम जी शस्त्र ग्रहण करने वाले ब्राह्मण हैं, तब उनके पराजित होने पर राम की क्या बड़ाई है?

सिद्धा ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्यस्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः॥[३]

अन्यत्र लव कहते हैं—'राम के चरित्र की महिमा को कौन नहीं जानता। वृद्ध रामचन्द्र आलोचनीय चरित्र वाले नहीं। सुन्द की स्त्री को मारकर भी अप्रतिहत यशवाले वे संसार में श्रेष्ठ ही हैं। खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे, अथवा बालि के मारने में जो निपुणता की थी संसार उससे भी परिचित है।'

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते।
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्डयशसो लोके महान्तो हि ते॥
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने।
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः।[४]

'रामचंद्रिका' में केशव ने लव के इस प्रकार के व्यंग्य वचन राम के प्रति न कहलवाकर विभीषण, अंगद आदि वीरों के लिए कहलाए हैं:—

अंगद जो तुम पै बल हो तो। तौ वह सूरज को सुत को तो।
देखत ही जननी जो तिहारी। वा संग सोवति ज्यों वरनारी॥[५]

अन्त में 'उत्तर रामचरित' के ही समान राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं और सम्पूर्ण काव्य सुखांत हो जाता है।

'रामचंद्रिका' पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव—केशव ने 'रामचंद्रिका' में कुछ प्रसंग अध्यात्म रामायण से भी लिए है। अध्यात्म रामायण में जब राम विश्वामित्र के साथ बन जाते हैं तो अहिल्या उन्हें शिला के रूप में दिखाई देती है। राम उनसे

१. उ० रा० च०, पृ० २५४
२. रा० चं०, ३५, १२
३. उ० रा० च०, ५, ३२
४. वही, ५, ३४
५. रा० चं०, ३८, ९

शिला का रहस्य पूछते हैं तब विश्वामित्र इन्द्र का कथानक सुनाते हैं और शिला को स्पर्शकर पवित्र करने को कहते हैं। अहिल्या स्त्री रूप में आकर राम से भक्ति का वरदान माँगती है।[1]

केशव ने इस घटना में थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है। 'रामचंद्रिका' में राम शिला के स्त्री-रूप में परिवर्तित हो जाने के पश्चात् उसका रहस्य पूछते हैं—

बन राम शिला दरशी जब हीं तिय सुन्दर रूप भई तब हा।
पूछी विश्वामित्र सौं रामचंद्र अकुलाइ।
पाहन तें तिय क्यों भई कहिये मोंहि समुझाई॥[2]

अध्यात्म रामायण के ही समान अहिल्या 'रामचंद्रिका' में भी राम से भक्ति वरदान माँगती है। अध्यात्म रामायण में यह प्रसंग बहुत विस्तार से है परन्तु केशव ने केवल उसका उल्लेख किया है—

ते हि अति रूरे रघुपति देखे। सब गुण पूरे तन मन लेखे।
यह बरू माँग्यो दया न काहू। तुम मो मन ते कबहुं न जाहू॥[3]

'रामचंद्रिका' के लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग का आधार अध्यात्म रामायण है। इसमें रावण शक्ति विभीषण पर छोड़ता है और लक्ष्मण उसे बीच में ही रोक लेते हैं। 'रामचंद्रिका' में पहली शक्ति को हनुमान और दूसरी को लक्ष्मण रोकते हैं। अध्यात्म रामायण में विभीषण को राम से अभय प्राप्त समझ लक्ष्मण बीच में आकर विभीषण की शक्ति से रक्षा करते हैं—

इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान्।
विभीषणस्य पुरतः स्थितो कम्प इवाचलः॥
सा शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्ति।
यावा शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति॥[4]

केशव ने इसी भाव को निम्न छंद में इस प्रकार कहा—

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष गई है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूछ लपेटि कै डारि दई है।
दूसरी ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूलि सी ओढ़ि लई है।[5]

अध्यात्म रामायण में लक्ष्मण को मूच्छित देख रावण उनको उठाकर ले जाना

---

१. अ० रा० बा० कां, सर्ग ५, १९-६५
२. रा० चं०, ५, ३-४
३. वही, ५, ६
४. अ० रा०, ६, ७-८
५. रा० चं०, १७, ४०

चाहता है। हनुमान क्रोधित हो उसके मुष्टिका प्रहार करते हैं जिससे रावण रुधिर वमन करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ता है—

आवघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
तेन मुष्टि प्रहारेण जानुभ्यामपतीद्भुवि ॥[1]

इस आधार पर केशव 'रामचंद्रिका' में कहते हैं—

जोर ही लक्ष्मणै लेन लाग्यो जहीं।
मुष्टि छाती हनुमंत मारयौ तहीं॥
आसुही प्राण को नास सो ह्वै गयो।
दंड द्वै तीनि में चेत ताको भयो॥[2]

रावण हनुमान की मुष्टिका से क्रोधित होकर बड़े वेग से वानर दल का संहार करने लगा। अध्यात्म रामायणकार ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। राम हनुमान के कंधे पर चढ़ युद्ध करके इस संहार को रोकते हैं—

आरुह्य जगतांनाथो हनूमन्तं महाबलं।
रथस्कं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः॥[3]

केशव ने इस भाव को लेकर संक्षेप में लिखा—

आयो डर प्राणन, लै धनुवाणन, कपि दल दियो भगाय।
चढि हनुमंत पर, रामचंद्र तब रावण रोक्यो जाय॥[4]

केशव ने 'रामचंद्रिका' में अंगद द्वारा मन्दोदरी के अपमान का वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण प्रसंग उन्होंने अध्यात्म रामायण से लिया है। अध्यात्म रामायण में वेगवान अंगद अन्तःपुर में जाकर शुभलक्षणा मन्दोदरी के केश पकड़ कर घसीट लाए और रावण के सम्मुख ही विलाप करती हुई मन्दोदरी की कंचुकी फाड़ डाली। उसके रत्न समूह टूट गए। रावण के देखते-ही-देखते उसका अधोवस्त्र कटि प्रदेश से हट गया और समस्त आभूषण इधर-उधर बिखर गए। अन्य वानरगण इसी प्रकार रावण की अन्य स्त्रियों को ले आए। मन्दोदरी ने अनेक प्रकार से विलाप किया जिसको सुनकर रावण अपना यज्ञ छोड़कर वानरों पर टूट पड़ा।[5]

केशव ने भी यज्ञ विध्वंस के प्रसंग में इसका वर्णन किया है—

सुआनी गहे केश लंकेश रानी। तमश्री मनो सूर शोभानि सानी।
गहे बांह ऐंचे चहुं ओर ताको। मनो हंस लीन्हे मृणाली लता को॥
छुटी कण्ठमाला लुरैं हार टूटे। खसैं फूल फैलैं लसैं केश छूटे।
फटी कंचुकी किंकनी चारू छूटी। पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी।[6]

---

१. अ० रा० यु० कां०, ६, १३
२. रा० चं० १७, ४१
३. अ० रा० यु० कां०, ६, १६
४. रा० चं० १७, ४२
५. अ० रा० यु० कां०, १०, २४-३४
६. रा० चं० १६.२६,३०

इसमें भी मन्दोदरी का विलाप सुन कर रावण यज्ञ छोड़ देता है—

सुनो लंकरानीन की दीन बानी । तहीं छांडि दीन्हों महामौन मानी ।
उठ्यो सौ गदा लै यदा लंकवासी । गये भाग कै सर्व साखा विलासी ।[१]

इस प्रसंग में केशव ने मन्दोदरी के कंचुकी विहीन उरोजों का भी वर्णन किया है। अध्यात्म रामायणकार ने इस समय मन्दोदरी को पूर्ण नग्नावस्था में दिखाया है परन्तु केशव ने मर्यादा की सीमा उल्लंघन न कर इसको यहीं तक सीमित रहने दिया है। संभवतः इसके तीन कारण रहे होंगे—

१. मन्दोदरी का सौन्दर्य वर्णन कर उसे सुन्दरता में सीता के समकक्ष स्थान देना,

२. रावण का चरित्र अधिक स्पष्ट करना क्योंकि उसने कभी भी सीता के साथ बलात् कोई अनुचित चेष्टा नहीं की। वह सदैव सीता से उसकी पत्नी बनने को सहमत होने का अनुरोध ही करता रहा है।

३. अंगद आदि वानरों के चरित्र को कामी स्तर पर न लाकर केवल प्रतिशोध के लिए मन्दोदरी की दुर्दशा करवाना।

अध्यात्म रामायण में कवि ने राज्याभिषेक के पश्चात् राम के सुखद राज्य का वर्णन किया है। पृथ्वी धनधान्य से परिपूर्ण और वृक्ष फलों से सम्पन्न थे। पुरुष धर्मपरायण थे और स्त्रियाँ पतिव्रता। रामचन्द्र जी सीता के साथ सभी लौकिक सुखों का भोग करते हुए पत्नीव्रत का पालन करते थे।[२] अध्यात्म रामायण में यह वर्णन संक्षेप में हुआ है परन्तु केशवदास ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने प्रजा के प्रत्येक वर्ग की समृद्धि दिखाकर राम राज्य का चित्र खींचा है।

अ० रा०— राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ ।
वसुधा शस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ।। २१
जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः ।
नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ।। २२

अर्थात् 'राम के शासन काल में पृथ्वी धन-धान्य से और वृक्ष फलों से पूर्ण थे। प्रजा धर्मपरायण, स्त्रियाँ पति-भक्त थीं और किसी को भी पुत्र मरण का कष्ट नहीं होता था।

केशव ने 'रामचंद्रिका' में कहा—

अनंता सबै सर्वदा शस्य युक्ता । समुद्रावधिः सप्तईतिर्विमुक्ता ।
सदा वृक्ष फूले फले तत्र साहैं । जिन्हें अल्पधा कल्पसाखी विमोहैं ।।[३]

---

१. रा० च०, १९.३३
२. अ० रा०, उत्तरकांड, २१-३०
३. रा० चं०, २८ १

अध्यात्म रामायणकार ने कहा—'एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षि सर्वदा शुचि' परन्तु केशव ने समस्त प्रजा के ही सामने एकपत्नीव्रत का आदर्श रखा—'सदा एक-पत्नीव्रती भोग भोगी।'[1] अध्यात्म रामायण में कवि ने राम के भोगों का केवल उल्लेख किया है परन्तु केशव ने उससे प्रेरित होकर उनके चौगान आदि खेलों का विस्तार से वर्णन किया है।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में कहा है कि सीता के पूर्व ब्रह्मा ने सीता से आकर राम की प्रशंसा कर उनसे अनुरोध किया कि अब वह ऐसा कार्य करें जिससे राम बैकुण्ठ की तैयारी करें। सीता ने इसे स्वीकार कर लिया और अपने वनवास का मार्ग खोजने लगीं।

राम चले सुनि शूद्र की गीता। पंकज योनि गये जहँ सीता।
देखि लगि पग राम की रानी। पूजि कै बूझति कोमल बानी।

तथा— आजु ते चाल चलौ तुम ऐसे। राम चलैं बयकुंठहि जैसे।[2]

'रामचन्द्रिका' में ब्रह्मा पहले राम से मिलते हैं तदनन्तर सीता से; परन्तु अध्यात्म रामायण में सीता राम को बताती हैं कि देवताओं ने आकर मुझ से एकांत में प्रार्थना करते हुए आपके वैकुण्ठ पधारने के विषय में कहा है—

देवदेवा समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वच:
बहुशोऽर्थयमानास्ते बैकुण्ठागमनं प्रति।[3]

दोनों काव्यों में सीता को अपने निर्वासन के संबंध में पूर्ण ज्ञान है और सीता की सहमति से ही राम उनको वन में भेजते हैं। दोनों में राम अपने भ्राताओं को अपने गुप्त उद्देश्य का कोई संकेत नहीं देते और लक्ष्मण को कठोर आज्ञा देकर सीता को छोड़ आने का आदेश देते हैं—

अ० रा०

त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण।
वक्ष्यसे यदि वा किंचित्तदा मां हतवानसि।[4]

रा० च०

सीतहि लै अब सत्वर जैये। राखि महावन में फिरि ऐये।
लक्ष्मण! जो फिर उत्तर दैहौ। शासन भंग को पातक पैहो॥[5]

---

१. रा० चं०, २८.४
२. वही, ३३.१५, १८
३. अ० रा०, उत्तरकांड, ४.३५,३६
४. वही, उत्तरकांड, ४.५३
५. रा० चं०, ३३.४५

'रामचन्द्रिका' पर शुक्र नीति का प्रभाव—युद्ध में अकंप और धूम्राक्ष आदि की मृत्यु के पश्चात् हताश रावण अपने मन्त्री महोदर से उस समय कर्त्तव्याकर्त्तव्य के संबंध में पूछता है। महोदर उसे राजनीति की शिक्षा देता है। 'रामचन्द्रिका' में महोदर द्वारा दी गई इस शिक्षा पर शुक्रनीति का स्पष्ट प्रभाव है। स्वयं केशवदास ने इसे स्वीकार कर कहा है—

कह्यो शुक्राचार्य सु हौं कहौं जू।[१]

शुक्र नीति में शुक्राचार्य ने राजा के सात्विक, राजस और तामस तीन भेद किए हैं। नृपाचमः उन्होंने तामस के ही अन्तर्गत रखा है परन्तु केशव ने इसी सूत्र को लेकर चौथे प्रकार के राजा की कल्पना कर ली है जो त्रिशंकु के समान हठ करके अपने दोनों लोक नष्ट करते हैं।

राजाओं के वर्गीकरण में केशव ने शुक्रनीति से केवल भाव लिए हैं परन्तु उदाहरण उनके मौलिक हैं। इसी प्रकार केशव ने चार प्रकार के मन्त्रियों का वर्णन किया है। इस वर्गीकरण में भी वह शुक्राचार्य से ही प्रभावित हैं यद्यपि उदाहरण उनके निजी हैं —

केशव कहते हैं—

चारि भाँति मंत्री कहे, चारि भाँति के मंत्र।
मोहि सुनायो शुक्र जू, सोधि सोधि सब तंत्र।[२]

अर्थात् 'राजनीति संबंधी ग्रन्थों का अध्ययन कर शुक्राचार्य का जो मत है वही मैं भी कहता हूँ।'

पुत्रों तथा भ्रातृ-पुत्रों में राज्य का विभाजन करने के अनन्तर राम उनको राजनीति की शिक्षा देते हैं। इस शिक्षा में भी केशव शुक्रनीति से प्रभावित हैं।[3] केशव ने यहाँ शुक्रनीति का शब्दानुवाद न कर विभिन्न श्लोकों से भाव ग्रहण कर उस का सार मात्र दिया है।

उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त कतिपय अन्य काव्यों से भी केशव ने भाव ग्रहण किए हैं। परन्तु यह सम्पूर्ण प्रसंग न होकर स्फुट रूप से हैं।

जहाँ कहीं उन्हें कोई घटना अथवा प्रसंग रुचिकर प्रतीत हुआ उन्होंने तुरन्त ग्रहण कर उसका उपयोग किया है। इस भाव ग्रहण में केशव को कहीं कोई संकोच नहीं हुआ है अपितु कुछ स्थलों पर तो उन्होंने स्वयं ही इसे स्वीकार किया है। कहीं-कहीं केशव ने कुछ भावों को उसी भाषा में ही ग्रहण कर स्वीकार किया है। इससे केशव की महिमा नहीं घटती बल्कि उनका विशाल अध्ययन तथा उद्देश्य अधिक स्पष्ट होकर सामने आता है।

---

१. रा० चं०, १७.२०
२. वही. १७.२४
३. रा० चं०, ३१' २१-३४ तथा शुक्रनीति १.१६१

सूर्य का वर्णन करते हुए 'रामचंद्रिका में' लक्ष्मण कहतेहैं—

जहाँ बारूणी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति शोभा साज ।।[1]

इसी प्रकार की कल्पना अपभ्रंश के कवि नयनंदी के 'सुदर्शन चरित्र' में मिलती है—

बहु पहरेहि सुरू अत्थमियउ, अहवा काइं सीसए।
जो वारुयिहे रतु सो उग्गुवि, कवणु ण कवणु णएए ।।[2]

अर्थात् 'वारुणी—सुरा में अनुरक्त कौन उठकर भी नष्ट नहीं होता ? अतएव सूर्य भी वारुणी—पश्चिम दिशा के अनुराग से उदित होकर अस्त हो गया।'

राम के विवाह के पश्चात् जेंवनार वर्णन में केशव ने सात छंदों में उस अवसर के अनुकूल कुछ गालियाँ कही हैं। लाला भगवानदीनजी के विचार से इनकी रचना केशव ने स्वयं न कर प्रवीणराय से करवाई थी।[3] इनमें केशव का उपनाम नहीं मिलता है अतः संभव है केशव ने इन्हें किसी अन्य ग्रन्थ से ही लिया हो।

'रामचंद्रिका' में सीता की अग्नि-परीक्षा के अवसर पर केशव ने दशरथ तथा ब्रह्मा, शिवादि देवताओं के आने का उल्लेख किया है—

इन्द्र-वरुण-यम-सिद्ध सब धर्म सहित धनपाल।
ब्रह्म रुद्र लै दशरथहिं, आय गये तेहि काल ।।[4]

दशरथ तथा ब्रह्मा आदि देवताओं के आने की यह कल्पना भट्टि काव्य में मिलती है। अग्नि देव सीता की पवित्रता की साक्षी देते हुए राम से कहते हैं कि यदि सीता पवित्र न होती तो तुम्हारे पिता दशरथ, ब्रह्मा और महेश यहाँ कभी न आते।[5]

केशवदास ने 'रामचंद्रिका' में इन्द्रजीत के वरदान के सम्बन्ध में कहा है कि इन्द्रजीत को केवल वही व्यक्ति मार सकता है जिसने बारह वर्ष तक क्षुधा, स्त्री तथा निद्रा पर जय पाई हो—

सोई वाहि हतै कि नर बानर रीछ जो को कोई।
बारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्रा जीते होई ।।[6]

---

१. रा० च०, ५, १४
२. सुदर्शन चरित्र, ५, ८
३. रा० च० पूर्वार्ध, पृ० ८४
४. रा० च० २०, १२
५. भट्टि काव्य २१ सर्ग, १०, ११, १२ उत्तरार्ध
६. रा० च०, १८, ३१

यह कल्पना हमें विश्राम सागर में मिलती है :—

जो त्यागे द्वादस बरस नींद नारि अरू अन्न ।
सो सुत मारि तोहि जग अपर न मारी जन्न ।।

स्वान-संन्यासी प्रसंग में मठपति का स्पर्श करने वाले का सम्पूर्ण पुण्य क्षाण हो जाता है इस कथन को पुष्ट करने के लिए केशव ने कुछ पुराणों की सहायता ली :—

हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः ।
मठपत्यञ्च यः कुर्यात्सर्वधर्मबहिष्कृतः ।। —स्कंद पुराण
पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ।
योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशतिः ।। —पद्म पुराण
अभाज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत् ।।[1] —देवी पुराण

इसके अतिरिक्त 'रामचंद्रिका' के राम नाम माहात्म्य, रामचंद्रिका माहात्म्य, रामविरक्ति वर्णन, जीवोद्धारण यत्न, मथुरा माहात्म्य, द्विज जाति माहात्म्य आदि प्रसंग विभिन्न पुराणों की छाया में लिखे गए हैं । राज्यश्री निन्दा, शैशवावस्था के व्यवहारजनित दुःख, युवावस्था के व्यवहारजनित दुःख, वृद्धावस्थाजनित दुःख का रचना योग वाशिष्ठ के वैराग्य प्रकरण की छाया में हुई है । वसन्त, चन्द्रमा, प्रभात, कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता, जलाशय, जलक्रीड़ा आदि की प्रेरणा केशव को काव्य, कल्पलतावृत्ति तथा अलंकारशेखर से मिली है । 'रामचंद्रिका' में चन्द्रमा सम्बन्धी उक्तियों पर 'नैषध चरित' में नल दमयन्ती द्वारा वर्णित चन्द्र-वर्णन की छाप है ।

इस प्रकार 'रामचंद्रिका' के कथानक पर अनेक काव्यों का प्रभाव लक्षित होता है । सम्पूर्ण कथानक का मूलाधार यद्यपि वाल्मीकि रामायण ही है परन्तु उसमें प्राण प्रतिष्ठा अनेक ग्रन्थों से सामग्री लेकर की गई है । केशव का आदर्श वाल्मीकि है अतः उनके प्रत्येक पात्र पर रामायण के पात्रों का प्रभाव है तथा उनको अधिक स्पष्ट रूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए ही अन्य काव्यों का आधार लिया गया है ।[2]

'रामचंद्रिका' की रचना में कवि ने उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त भी अनेक काव्यों से सहायता ली है परन्तु उनका 'रामचंद्रिका' के कथानक से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है । केशव उन कृतियों से भाव की अपेक्षा 'रामचंद्रिका' को कलात्मक

---

१. देखिये केशव कौमुदी, उत्तरार्द्ध, पृ० २२४-२५

२. केशव ने संस्कृत ग्रन्थों से स्थल चुनते समय शब्दशः अनुवाद के सिद्धान्त का पालन नहीं किया है । उन्होंने विभिन्न भावों को लेकर काव्योचित ढंग से अपनी भाषा में व्यक्त किया है । उन्होंने मूल ग्रन्थों के भावों में अनेक स्थानों पर परिमार्जन भी कर दिया है । भाव यदि प्रसंगोचित है तो केशव ने उसे अनुवाद करने में कोई हानि नहीं समझी है, इसलिए कहीं-कहीं संस्कृत का मूल भी भाव की पुष्टि के लिए रख दिया है ।

रूप देने में अधिक प्रभावित हुए हैं। 'रघुवंश', 'कादम्बरी', 'नैषध चरित', 'भट्टिकाव्य' इत्यादि इसी प्रकार के काव्य हैं। 'रामचंद्रिका' की कथा से इनका सम्बन्ध न होने के कारण इनका उल्लेख अग्रिम अध्याय में किया जाएगा।

'रामचंद्रिका' में कवि की मौलिक उद्भावनाएँ—गत पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि केशव ने 'रामचंद्रिका' का अधिकांश कथानक संस्कृत के किसी-न-किसी काव्य से लिया है। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि इससे कवि की मौलिकता में कोई व्याघात आता है। सूर और तुलसी के ही समान केशव की भी मौलिकता इसमें नहीं है कि वे स्वकल्पित एक मौलिक काव्य की रचना करते अपितु उनकी मौलिकता प्राचीन सामग्री को ही एक नवीन रूप देने में है। इन कवियों का उद्देश्य तत्कालीन संस्कृत तथा भाषा का संस्कार करना था। अतः इनकी मौलिकता प्राचीन संस्कृति में नवीनता का समावेश कर ऐसी संस्कृति की प्रतिष्ठा करना था जो तत्कालीन प्रजा को ग्राह्य हो सके तथा उसके दोषों का परिहार हो सके। केशव का लक्ष्य ऐसी संस्कृति की स्थापना के साथ प्राचीन काव्यों की शैली, विचारों, अलंकार, छंद आदि अंग-उपांगों सहित काव्य-शास्त्र को जनसम्पर्क में भी लाना था। अतः 'रामचंद्रिका' में हमें कवि की प्रतिभा तथा मौलिकता का साक्षात्कार दोनों ही क्षेत्रों में होता है।

प्राचीन कथानक को नवीन कलेवर देने के लिए केशव ने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना के आधार पर कुछ नवीन प्रसंगों का भी समावेश किया है। केशव की मौलिक कल्पनाएँ हमें अधिकांश उन स्थलों पर मिलती हैं, जहाँ वह राम-कथा से सम्बन्धित प्राचीन मान्यताओं का समर्थन नहीं करते और उनकी त्रुटियों की ओर निर्देश करना चाहते हैं। दूसरे राज-दरबार से सम्बन्धित होने के कारण केशव ने राम के परब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी उनके राजरूप का ही वर्णन किया है। केशव ने यह वर्णन राम का दास न बनकर मित्र के नाते किया है। जहाँ वह एक ओर राम के प्रशंसक हैं तो दूसरी ओर आलोचक भी हैं। इसलिए उनके किसी भी पात्र में हमें कहीं भी दीनता का कोई संकेत नहीं मिलता है। राम-कथा के परम्परागत उन स्थलों में जहाँ किसी पात्र में स्वाभिमान का अभाव अथवा दुर्बलता लक्षित होती है, उन्होंने परिवर्तन कर दिया है।

केशव का उद्देश्य तत्कालीन परिस्थितियों का दर्शन कराकर उनमें आवश्यक परिष्कार भी करना था अतः केशव ने 'रामचंद्रिका' में उन सबका भी समन्वय किया है। परिष्कार का यह प्रयास केशव ने दो प्रकार से किया है—(१) उन परिस्थितियों को दिखाकर उनके प्रति विद्रोह का बीज वपन कर, तथा (२) उपदेश देकर प्रत्यक्ष रूप से प्रतिक्रिया उत्पन्न कर। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केशव ने 'रामचंद्रिका' में अनेक नवीन प्रसंगों को स्थान दिया है।

'रामचंद्रिका' के आरम्भ में कवि ने अयोध्या वर्णन के अन्तर्गत सरयू, राजा दशरथ के हाथियों, बाग तथा नगर की शोभा का वर्णन किया है। इस वर्णन की

प्रेरणा केशव को वाल्मीकि रामायण से मिली है परन्तु केशव ने यह वर्णन मौलिक रूप से किया है। राम की नगरी अयोध्या में प्रवाहित होने के कारण सरयू नदी अत्यन्त पवित्र है अतः केशव ने उसकी पवित्रता का ही वर्णन किया है :—

बहु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह।
सब जात स्वर्ग सूकर सदेह ॥[१]

हाथियों के वर्णन में संभवतः केशव के निजी पर्यवेक्षण का प्रभाव पड़ा है। राजदरबार में रहने तथा मुगल दरवार में आने-जाने के कारण वह राजदरबार में हाथियों की उपयोगिता तथा महत्ता जानते थे। 'रामचंद्रिका' के अन्य किसी भी आधार ग्रन्थ में राजकीय हाथियों का वर्णन नहीं मिलता। हाथी ऐश्वर्य के प्रतीक के साथ ही युद्ध का भी अनिवार्य पशु था अतः केशवदास कहते हैं :—

जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बर बारन बार न दल दत्त।
अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन ॥[२]

बाग तथा तड़ाग का वर्णन करने में कवि की मौलिकता अनेक प्रकार से दिखाई देती है। केशव ने इस वर्णन में परम्परागत कामोत्तेजक वस्तुओं का वर्णन न कर उनकी पवित्रता की रक्षा की है। दूसरे, बसंत ऋतु का अवसर न होते हुए भी उपवन वृक्ष-लताओं से पूर्ण तथा तड़ाग जलपूर्ण दिखा अप्रत्यक्ष रूप से दशरथ के राज्य काल में प्रजा की सुख-समृद्धि का संकेत किया है और तीसरे, बाग की वर्णन प्रणाली से हिन्दी काव्य में भी विरोधाभास अलंकार के आधार पर वर्णन करने की नवीन पद्धति आरम्भ की :—

देखो बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
अतितपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगम्बर जानी।
जग यदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै।
पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भ सहित सब सोहै।[३]

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के मिथिलापुरी जाने के प्रसंग में केशव ने एक ब्राह्मण की कल्पना की है जो उन्हें आकर स्वयंवर की कथा सुनाता है। ब्राह्मण अत्यन्त नाटकीय ढंग से स्वयंवर भवन का वर्णन कर उपस्थित सभी राजाओं की धनुप उठाने में असमर्थता बताता है। वही रावण और बाणासुर संवाद सुनाता है। यह सम्पूर्ण कथा वह इतने विस्तार से और रुचिपूर्वक इसलिए कहता है क्योंकि ऋषि-पत्नी ने सीता के साथ जिस राजकुमार का चित्र बनाया, उसकी आकृति में राम से सादृश्य था। वन में ही इस चित्र की वार्ता सुनकर, वाल्मीकि को राम-लक्ष्मण को मिथिलापुरी ले जाने का एक कारण मिल जाता है जो अन्य काव्यों में नहीं है।

---

१. रा० च०, १, २७
२. वही, १, २८
३. वही, १.३४

'रामचन्द्रिका' में केशव ने प्रसन्नराघव के आधार पर स्वयंवर भवन में उपस्थित अनेक राजाओं का वर्णन किया है परन्तु 'प्रसन्नराघव' में जयदेव ने इनका उपहास नहीं किया है। यह केशव की निजी कल्पना है। केशव ने उन राजाओं को हास्यास्पद बताया है जो विवाह के लोभ में अपना शृंगार कर स्वयंवर के लिए आ गए हैं परन्तु उनमें बल व सामर्थ्य नहीं है। केशव उन क्षत्रिय राजाओं को सम्मान के योग्य नहीं समझते जो कायर होकर विलास की कामना रखते हैं। इसीलिए 'रामचन्द्रिका' में विमति कहता है :—

शक्ति करी नहि भक्ति करी अब। सो न नयो तिल शीश नये सब।
देख्यो मैं राजकुमारन के बर। चाप चढ्यो नहीं आप चढ़े खर।[1]

अर्थात् 'राजकुमारों का बल मैंने आज देख लिया। धनुष तो उनसे तिल मात्र भी नहीं हिला, वे स्वयं मूर्ख बन गए।'

इसी प्रसंग में अग्रिम छंद में केशव कहते हैं :—

अरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आंगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आये ह्वै वीर चले बनिता ह्वै।[2]

शंकर का धनुष उठाकर न तो स्वार्थ रूप सीता ही किसी को प्राप्त हुई और न शिवभक्ति ही प्राप्त हुई। जितने वीर आए थे स्त्रियों के समान मुख छिपाकर चले गए।

केशव स्वयं एक वीर सामंत थे जिन्होंने इन्द्रजीत के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया था, अतः राजकुमारों में पौरुष न पाकर उनका वीर-हृदय स्वतः उत्तेजित हो उठा होगा। संभवतः इसी कारण उन्होंने दुर्बल राजाओं का उपहास किया है।

'रामचन्द्रिका' में कुछ प्रसंग कवि ने तत्कालीन लोक रीतियों के आधार पर लिखे हैं। केशव ने उस समय बुन्देलखण्ड में प्रचलित कुछ रीतियों को राम-कथा से सम्बंधित कर दिया है। जिस प्रकार तुलसी ने नहछू आदि के माध्यम से लोकरीतियों का वर्णन किया उसी प्रकार केशव ने भी उनके लिए राम कथा में स्थान निकाल लिया। इनका आधार उस समय प्रचलित लोक-गीत रहे होंगे, पर वर्णन केशव के मौलिक हैं।

मिथिला में जनक जब दशरथ के निवास-स्थान पर पहुँचते हैं उस समय वहाँ—

कहूँ शोभना दुन्दुभि दीह बाजैं। कहूँ भीम झंकार कर्नाल साजैं।
कहूँ सुन्दरी बेनु बीना बजावैं। कहूँ किन्नरी किन्नरी लै सुगावैं।
कहूँ नृत्यकारी नचैं शोभा साजैं। कहूँ भाट बोलैं कहूँ मल्ल गाजैं।
कहूँ भाँड भाँड़यो करैं मान पावैं। कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं।

१. रा० च०, ३. ३३
२. वही, २. ३'

कहूँ बैल भैंसा भिरैं भीम भारे । कहूँ एण एणीन के हेतकारे ।
कहूँ बोक बाँके कहूँ मेष सूरे । कहूँ मत्त दन्ती लरैं लोह पूरे ।।[१]

जेंवनार का वर्णन कर कवि ने कुछ गालियों का भी वर्णन किया है जो प्रायः स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर गाती हैं। संभव है तुलसी के समान केशव ने भी उस समय प्रचलित गालियों को अश्लील समझकर ऐसी गालियों की रचना की है जो अवसरानुकूल होकर भी अश्लील न हों। केशव की इन गालियों में अश्लीलता कहीं भी नहीं आने पाई है, बल्कि उनमें बड़े सुन्दर व्यंग्य हैं। जैसे पृथ्वी और राजा दशरथ का नाता बताते हुए वधू पक्ष की स्त्रियाँ कहती हैं :—

वह रावरे पितु करि पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।
अरु कहत हैं सब रावणादिक रहै ताकहँ ढूँकि कै।
यह लाज मरियत ताहि तुमसों भयो नातो नाथ जू।
अब और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथ जू।[२]

विवाह के अवसर पर बुन्देलखण्ड में पलकाचार की रीति प्रचलित है। वर तथा वधू को पलंग पर बैठा कर वधू की सखियाँ तथा सम्बन्धी इस समय वर से खूब हास-विलास करती हैं। केशव ने राम के विवाह में इस रीति का वर्णन किया है :—

बैठे जराय जरे पलिका पर राम सिया सब को मन मोहैं।
ज्योति समूह रह्यो मढिकै सुर भूलि रहे वपुरो नर कोहैं।
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज मंडल माँझ मनो कमला कमलापति सोहैं।[३]

विवाह में वर तथा वधू के रूप का भी वर्णन होता है। इस वर्णन में वर संसार का सुन्दरतम पुरुष तथा वधू संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानी जाती है। केशव ने तो जिस वर तथा वधू का नखशिख वर्णन किया है वह सौन्दर्य की साकार प्रतिमा ही हैं। केशव का यह वर्णन अत्यन्त क्लिष्ट तथा मौलिक है।

राम केशव के इष्ट देव तथा साक्षात् परब्रह्म हैं, अतः केशव ने काव्य की शास्त्रीय परम्पराओं के अनुसार राम का वर्णन उनके शिख से आरम्भ किया है। राम और सीता का सम्पूर्ण वर्णन भावनाओं से ओत-प्रोत है। सिर पर श्वेत पाग बाँधे हुए वर राम ऐसे प्रतीत होते हैं—

गंगाजल को पाग सिर सोहत श्रीरघुनाथ।
शिव सिर गंगाजल किधौं चन्द्र चन्द्रिका साथ।।[४]

---

१. रा० च०, ६,१२.१३.१४
२. वही, ६.३६
३. वही, ६.४५
४. वही, ६.४६

संभव है केशव ने राम-सीता के नख-शिख का वर्णन उस समय प्रचलित गीतों के विरोध में आदर्श उपस्थित करने के लिए किया हो ।

राम-परशुराम प्रसंग में केशव ने चारों भ्राताओं के रूप में मौलिक रूप से परिवर्तन किया है। रामसाहित्य की प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध उन्होंने चारों भाइयों—विशेष रूप से भरत के चरित्र को बहुत सजीव बना दिया है। प्राचीन राम-काव्यों में जो भरत राम के वनवास का समाचार पाकर माँ का उग्र विरोध करते हैं, समस्त पुरवासियों की इच्छा की अवहेलना कर ससैन्य चित्रकूट जाकर राम को लाने का अथक प्रयास करते हैं और राम के सहमत न होने पर सत्याग्रह करते हैं, वही परशुराम को राम का अपमान करते देख कैसे शांत रहे यह कुछ अविश्वसनीय-सा प्रतीत होता है। भरत के त्याग की उस क्षमता का पूर्वाभास हमें किसी अन्य राम-काव्य में नहीं मिलता। केशव ने अपने पूर्ववर्ती राम-काव्यों की इस दुर्बलता को देखकर इसका निराकरण 'रामचन्द्रिका' में किया। यहाँ राम केवल लक्ष्मण के ही साथ नहीं हैं, बल्कि चारों भाई आकर परशुराम को प्रणाम करते हैं :—

सह भरत लक्ष्मण राम। चहुँ किये आनि प्रणाम ।।
भृगुनन्द आसिष दीन। रण होहु अजय प्रवीण ।।[1]

'रामचन्द्रिका' में भरत परशुराम को राम का अपमान करते देख शांत नहीं रह सके। वे कहते हैं :—

चन्दन हू में, अति तन घसिये, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हेहय मारो, नृप जन संहरे, सो यश ले किन युग-युग जीजै।[2]

परशुराम के अधिक क्रोध करने पर तीनों भाई रोष कर धनुष बाण उठा लेते हैं और राम को उन्हें रोकना पड़ता है :—

लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्रीरघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ।।[3]

भरत और लक्ष्मण के अतिरिक्त यहाँ शत्रुघ्न भी राम की रक्षा में तत्पर हैं। केशव राम-काव्यों में इस उपेक्षित भाई के प्रति भी उदासीन नहीं हैं :—

हौ भृगुनन्द बली जगमाहीं। राम बिदा करिये घरि जाहीं ।।
हौं तुम सों फिर युद्धहि माँड़ों। क्षत्रिय वंश को बैर लै छाड़ौं ।।[4]

रावण पर क्रोध करने वाले राम में जहाँ एक ओर शान्ति का अगाध सागर लहरा रहा है वहाँ उनमें उग्रता की उत्ताल तरंगें भी हैं। परशुराम को किसी प्रकार भी शांत न होते देख वह कहते हैं :—

भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर।[5]

---

१. रा० च०, ७.१७
२. रा० च०, ७.२२
३. वही, ७.२४
४. वही, ७.२८
५. वही, ७.४२

बामदेव का स्वयं आकर राम और परशुराम को समझाने की कल्पना भी केशव की मौलिक है। बात-बात पर पुष्प बरसाने तथा दुन्दुभी बजाने वाले देवताओं में धनुष से सम्बन्धित देवता को लाकर केशव ने उनके देवत्व की मर्यादा ही रखी है।

राम के कौशल्या से विदा लेने के प्रसंग में केशव ने नारिधर्म-वर्णन वाल्मीकि रामायण से लिया है परन्तु विधवा धर्म का वर्णन उनकी मौलिक कल्पना है। राम दशरथ की वृद्धावस्था तथा कौशल्या और कैकेयी के वैमनस्य से परिचित हैं। वह यह भी समझते हैं कि चौदह वर्ष की अवधि दीर्घ है। दशरथ कदाचित् तब तक जीवित न रह सकें और कौशल्या कैकेयी से विरोध के कारण भरत की आज्ञा न मानकर अपने जीवन को अधिक दुरूह न बना लें। अतः वह उनको सात्विक जीवन बिताकर पुत्र भरत की आज्ञा मानने तथा दशरथ की सेवा करने का परामर्श देते हैं। दक्ष-कथा तथा तुलसी का उदाहरण देकर वह पति की कठोरता को विस्मरण कर मन वचन-कर्म से दुःख के इस अवसर पर दशरथ की सेवा करना ही माँ का कर्तव्य समझते हैं।[१]

भरत जब राम के अयोध्या न चलने पर गंगातट पर प्राण-त्याग का संकल्प करते हैं उस समय गंगा स्वयं मानवी रूप धारण कर भरत को प्रबोध करने आती हैं। गंगागमन की यह कल्पना केशव की मौलिक है परन्तु प्रेरणा उन्हें संभवतः भव-भूति से मिली होगी। भवभूति ने भी इसी प्रकार 'उत्तररामचरित' में तमसा, मुरला आदि नदियों का मानवीकरण कर उनमें राम तथा सीता के प्रति सहानुभूति दिखाई है।

राम के राजरूप का वर्णन करते हुए भी उस समय राम के ब्रह्म रूप की मर्यादा का प्रतिपादन करना आवश्यक था। तुलसी ने इसी कारण 'रामचरितमानस' में स्थान-स्थान पर राम के ब्रह्म रूप की चर्चा की है। केशव ने भी अवसर निकाल-कर जहाँ भी संभव हुआ है राम के ब्रह्म रूप को जन-हृदय तक पहुँचाने का प्रयास किया है। गंगा का भरत को राम के ब्रह्म रूप के सम्बन्ध में बताकर उनसे हठ न करने का अनुरोध करना एक ऐसा ही अवसर है।

उठो हठी होहु न काज कीजै। कछु राम को घानि लीजै॥
अदाष तेरी सुत मातु सोहै। सो कौन माया इनकी न मोहै॥[२]

सीताहरण के पूर्व वनवास का समय राम-सीता ने किस प्रकार व्यतीत किया इस ओर प्रायः काव्यकारों की दृष्टि नहीं गई है। केशव ने राम-सीता के राज-रूप का वर्णन किया है अतः 'रामचन्द्रिका' के राम-सीता वन में भी राजोचित जीवन व्यतीत करते हैं। संगीत की शिक्षा राज-परिवार का आवश्यक अंग है इसलिए राम-सीता दोनों संगीत-विज्ञ हैं और सीता अनेक प्रकार के राग सुनाकर राम का मनो-

---

१. रा० च०, ६. १८-२०   २. रा० च०, १०. ४२

रंजन करती हैं। इस वर्णन को केशव ने सीता के संगीत द्वारा राम के मनोरंजन से अधिक वन के जीव-जन्तुओं पर प्रभाव की ओर विशेष दृष्टि रखकर पुनीत भावनाओं से पूर्ण किया है, यही केशव की मौलिकता है। राम और सीता के आन्तरिक तथा बाह्य सौन्दर्य से वन का कण-कण नव-जीवन से आप्लावित हो उठा है—

मुख बासनि बासित कीन तबै। तृण गुल्म लता तरू सैल सबै॥
जलहू थलहू यहि रीति रमैं। वन जीवन जहाँ तहाँ संग भ्रमैं॥[1]

वाल्मीकि रामायण में कवि ने सीता का कोई सूत्र न मिलने पर सागर के तट पर अंगदादि वानरों की निराशा का उल्लेख किया है। केशव ने इस समय अंगद और हनुमान संवाद की योजना की है। अंगद अपने पिता के वध के कारण राम-कार्य के प्रति अधिक उत्साहित नहीं हैं। उनमें सुग्रीव के प्रति भी पूर्ण विश्वास नहीं है। इसी से वह उससे भयभीत हैं। अंगद सुग्रीव से भयभीत होने के कारण किष्किधापुरी न जाकर समुद्र तट पर ही निवास करने का प्रस्ताव रखते हैं। हनुमान उनसे कहते हैं कि राम ने तुम्हें युवराज बनाकर तुम पर जो कृपा की है उससे उऋण क्यों नहीं होते ?

अंगद रक्षा रघुपति कीन्हों। सोध न सीता जल, थल लीन्हों॥
आलस छांडो कृत उर आनौ। होहु कृतघ्नी जनि सिख मानौ॥[2]

हनुमान के कृतघ्नी कहने से अंगद उत्तेजित हो जाते हैं। हनुमान, सुग्रीव आदि के चरित्र में एक बड़ा दोष यह है कि वे विलाप करती हुई सीता की कोई सहायता नहीं करते। अपने प्राणों के मोह से उस समय वे निष्क्रिय ही रहते हैं। केशव की दृष्टि इस ओर गई है। इसलिए 'रामचन्द्रिका' के अंगद कहते हैं—

आरत पुकारत ही राम राम बार बार,
लीन्हों न छंड़ाय तुम सीता अति भीति मानि।
गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि॥[3]

केशव की मौलिकता इस संवाद में अंगद की राम विषयक उदासीनता तथा हनुमान सुग्रीवादि की स्वार्थपरता की ओर दृष्टिपात करने में ही निहित है।

केशव की मौलिकता राम-रावण-युद्ध में निरन्तर लक्षित होती है। इस युद्ध का वर्णन केशव ने परब्रह्म परमात्मा तथा दानव-राजा रावण के मध्य युद्ध की दृष्टि से नहीं किया है बल्कि यह दो वीरों का युद्ध है जो शूरवीर होने के साथ कूटनीतिज्ञ राजा भी हैं। रावण अपनी विशाल वाहिनी के नाश के पश्चात् राम के पास संधि का संदेश लेकर अपने एक दूत को भेजता है परन्तु यह संधि संधि के लिए न होकर रावण की कूटनीति की परिचायक है। रावण मन्दोदरी से स्वयं स्वीकार करता है

१. रा० च०, ११.३०
२. वही, १३.३५
३. वही, १३.३६

कि उसने राम के पास संधि का सन्देश भेजकर उनके साथ छल किया था। वह राम को भयभीत करने के लिए ही शुक्र और बृहस्पति द्वारा दिए यज्ञ के परामर्श का समाचार राम के पास भेजता है। रावण के सन्देश तथा राम के प्रत्युत्तर में दोनों पक्षों की कूटनीति अन्तर्निहित है ।

इस प्रसंग में केशव ने मन्दोदरी के चरित्र में भी मौलिकता का समावेश किया है। मन्दोदरी पत्नी के साथ ही रावण की परामर्शदात्री भी है जो राजनीति के सभी नियमों से परिचित है। वह पग-पग पर रावण को उचित परामर्श देता है, यद्यपि रावण अन्य शुभेच्छुकों के समान उसकी भी अवहेलना ही करता है। रावण को हताश होकर संधि प्रस्ताव भेजने पर उसका वीर रूप जाग्रत हो उठता है और वह स्वयं युद्धक्षेत्र में जाने को तत्पर हो जाती है :—

दशमुख सुख जोजै राम सों हौं लरों यों ।
हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों ॥[1]

केशव ने रावण की वीरता तथा मन्दोदरी के स्त्रीत्व का वर्णन सर्वत्र आदर के साथ किया है ।

लंका-विजय के पश्चात् राम के अयोध्या लौटते समय केशव ने त्रिवेणी का वर्णन किया है। केशव का यह वर्णन मौलिक है । केशव स्वयं इन्द्रजीत के साथ प्रयाग गए थे इसलिए इस प्रसंग में उनका स्वतन्त्र पर्यवेक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। नदी के तट पर चमकते हुए बालुका-कण तथा जल-धार पर प्रवाहित होते हुए दीपकों का प्रतिबिम्ब केशव की अपनी सूझ का परिणाम हैं । त्रिवेणी के इस वर्णन में त्रिवेणी के प्रति केशव की अपार श्रद्धा प्रतिबिम्बित है ।

जल की दुति पीत सितासित सोहै। अति पातक घात करै जग को है ॥
मद एण मलै घसि कुंकम नीको। नृप भारतखंड दियो जनु टीको ॥[2]

'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में केशव ने अधिकांश उन प्रसंगों को रखा है जिनके द्वारा वे तत्कालीन राजाओं की दिनचर्या तथा राजनीति का विवेचन कर सकते थे। अतः इसमें कथानक का प्रवाह शिथिल है परन्तु इसमें भी केशव की मौलिकता सर्वत्र विद्यमान है ।

वन से लौट कर राम गुरु वशिष्ठ से अपने सहयोगियों की प्रशंसा करते हैं। राम उनके प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन सार्वजनिक रूप से करते हैं । यह राम के चरित्र की महत्ता है कि वह किसी की भी सहायता के प्रति अकृतज्ञ नहीं हैं और लंका विजय का पूर्ण श्रेय अपने ऊपर न लेकर उसमें सबको यथोचित भाग देते हैं ।[3]

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में सीता के नखशिख का वर्णन नहीं किया है। संभवतः वह इसे भक्ति की मर्यादा के बाहर समझते थे। परन्तु उन्होंने शुक्र के द्वारा सीता

---

१. रा० च०, १६.२२ २. वही, २०.३०
३. वही, २१.३६-५०

की दासी का रूप वर्णन कराकर सीता के लोकोत्तर सौन्दर्य का परिचय मौलिक रूप से दिया है। दासी का रूप वर्णन करने में उनका उद्देश्य यही प्रमाणित करने का रहा होगा कि जिस महारानी सीता की दासियाँ इतनी लावण्यमयी हैं वह स्वयं कितनी रूपवती होंगी। संस्कृत साहित्य की परम्परानुसार सीता का वर्णन न कर अथवा तुलसीदास के समान अपनी असमर्थता का उल्लेख न कर उन्होंने अपनी सूझ का ही परिचय दिया है।

राम-काव्यों में प्राय: राम के सीता-त्याग के अनुचित कार्य पर किसी कवि ने आक्षेप नहीं किया है। राम के मर्यादा पुरुषोत्तम तथा भगवान् का स्वरूप होने के कारण केशव को उनके दोष मान्य नहीं थे। उन्होंने राम अथवा रामभक्त के किसी भी ऐसे कार्य को संगत नहीं बताया जो लोक-दृष्टि में अक्षम्य है। सीता का गर्भावस्था में त्याग राम के जीवन का ऐसा कलंक है जिसका निवारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसीलिए राम के सीता-त्याग का प्रस्ताव रखते ही उनके आज्ञाकारी तथा प्रिय भाई भरत तथा शत्रुघ्न भी उनकी आलोचना करते हैं। शास्त्रों से उदाहरण देकर भरत कहते हैं :—

तुलसी को मानत प्रिया, गौतम तिय अति अज्ञ ।
सीता को छोड़न कहौ, कैसे कै सर्वज्ञ ॥[1]

भरत का यह आक्रोश और भी स्पष्ट हो जाता है जब लक्ष्मण की पराजय सुनकर भरत राम से कहते है :—

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता ॥
दोषविहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥[2]

राम के अतिरिक्त राम के सहायकों अथवा भक्तों के चरित्र में जो दोष हैं उनका संकेत केशव ने लव-कुश युद्ध में किया है। इस युद्ध की प्रेरणा केशवदास ने यद्यपि 'उत्तररामचरित' तथा 'पद्मपुराण' से ली है परन्तु वर्णन केशव का मौलिक है।

विभीषण से लव कहते हैं—

देव बधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबहि तजि ताहि न आयो ॥
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र सबै कुल छिद्र बतायो ॥[3]

शत्रुघ्न से कहते हैं :—

कौन शत्रु तू हत्यो जू नाम शत्रुहा लियो।[4]

सुग्रीव से कहते हैं :—

सुग्रीव कहा तुमसों रण माँडौं। तोको अति कायर जानि कै छाँड़ौं ॥
बाली सबकाकहं नाच नचाया। तौ ह्याँ रणमंडन मोसन आयो।[5]

---

१. रा० च० ३३.३९
२. वही, ३६.३२
३. वही, ३७.१७
४. वही, ३३.१८
५. वही, ३७.१४

इसी प्रकार केशव ने अन्य वीरों का भी लव-कुश के द्वारा पराभव कराया है।

रणभूमि में विजय प्राप्त कर लवकुश के पास विभिन्न मुकुटों को पहचान तथा हनुमान तथा जामवन्त को बंदी देख केशव ने सीता के शोक का वर्णन किया है। अन्य काव्यों में इस युद्ध का उल्लेख न होने के कारण सीता के लिए ऐसा अवसर नहीं आया है। यहाँ केशव के इस प्रसंग में कवि की मौलिकता के साथ ही उसकी सहृदयता का भी परिचय मिलता है। पति-त्यक्ता स्वाभिमानिनी सीता भी अपने वैधव्य की कल्पना कर व्यथित हो जाती हैं। उनकी घनीभूत पीड़ा शाप बनकर मुखर हो उठती है। आत्मग्लानि से वह कहती हैं :—

> माता सब काकी करी विधवा एकहि बार।
> मोसी और न पापिनी जाये वंश कुठार ॥[1]

इस प्रकार केशव ने 'रामचन्द्रिका' में रामकथा का जो रूप रखा है वह चिरपरिचित होते हुए भी नवीन-सा जान पड़ता है। विभिन्न काव्यों से अनेक भाव ग्रहण करने पर भी 'रामचन्द्रिका' कवि की मौलिक रचना सी प्रतीत होती है। 'रामचन्द्रिका' के रूप में कवि ने हिन्दी जगत् को ऐसी राम-कथा प्रदान की है जिस पर हम तुलसी के 'रामचरितमानस' से स्वतन्त्र होकर विचार कर सकते हैं। 'राम-चरितमानस' का लोकव्यापक प्रचार होने के कारण मानस के पात्र जन-हृदय के इतना समीप तक पहुँच गए कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि राम-कथा के पात्रों का अस्तित्व मानस से पृथक् भी हो सकता है। 'रामचन्द्रिका' के पात्र इसलिए अधिक स्वाभाविक जान पड़ते हैं क्योंकि वह आदर्श लोक से हटकर मानवी धरातल पर चलते हैं। उसकी कथा इसलिए मोहक है क्योंकि उसका महत्त्व साहित्यिक के साथ धार्मिक भी है।

'रामचन्द्रिका' में कविकृत इतने परिवर्तनों के होते हुए भी कहा जा सकता है कि कवि की मौलिकता 'रामचन्द्रिका' के रूप में किसी नवीन कथानक को प्रस्तुत करने में नहीं, बल्कि प्राचीन कथानक को ही मौलिक रूप से क्रमबद्ध करने में है। राजनीति तथा धर्म को उन्होंने कथा में वाल्मीकि तथा तुलसी के ही समान ग्रथित किया है। तथापि उनकी शिक्षा स्वतन्त्र है और राम साहित्य में 'रामचन्द्रिका' का स्वतन्त्र स्थान है।

'रामचन्द्रिका' में प्रकृति-चित्रण

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का प्रकृति-चित्रण संस्कृत साहित्य में वर्णित प्रकृति का प्रतिबिम्ब है। केशव संस्कृत साहित्य के मान्य विद्वान् थे। अतः उनके काव्य में विशेष रूप से संस्कृत-प्रकृति-वर्णना को आद्योपांत देखा जा सकता है। संस्कृत साहित्य के बाद, परन्तु केशव के पूर्व प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य भी पूर्ण विकसित

---

१. रा० च०, ३१.२

हो चुका था अतः जिस समय केशव ने हिन्दी साहित्य में पदार्पण किया उस समय उन्हें उत्तराधिकार स्वरूप एक ऐसी साहित्यिक परम्परा प्राप्त हुई जो भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से पूर्णतया समृद्ध थी। केशव ने अपने विशाल अध्ययन के फलस्वरूप अपने पूर्ववर्ती काव्यों में प्रयुक्त प्रकृति के सभी रूपों का प्रयोग किया है। उनकी 'रामचन्द्रिका' में आदि कवि वाल्मीकि की सरल वर्णना से लेकर बाण और हर्ष की क्लिष्ट कल्पना सभी का यथास्थान प्रयोग मिलता है।

'रामचन्द्रिका' में केशव की प्रकृति सम्बन्धी मान्यताओं का विश्लेषण करने के पूर्व केशव के सम्बन्ध में दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम, केशव कवियों की उस कोटि के अन्तर्गत आते हैं जो काव्य में अलंकार को प्रधान मानते हैं। उन्होंने प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों से आगे बढ़कर वर्णन को भी अलंकार के अन्तर्गत ले लिया। अतः उनके काव्य में जब हम प्रकृति का आलंबनरूप से वर्णन पाते हैं तो वह भी अलंकार का ही एक रूप हो जाता है।

केशव के सम्बन्ध में दूसरी विचारणीय बात यह है कि केशव का लालन-पालन राजधानी (ओड़छा) के समृद्ध वातावरण में हुआ था। उनके जीवन का अधिकांश भाग राजदरबार के अन्दर व्यतीत होता था, अतः उन्हें प्रकृति के मुक्त वातावरण से परिचित होने का न तो अवसर ही था और न ही अवकाश। उनका जीवन प्रकृति के नैसर्गिक वातावरण से दूर था और उनका परिचय यदि थोड़ा बहुत हुआ भी तो प्रकृति के कृत्रिम उपकरणों से जिनका निर्माण नराधीश अपने सुख-वैभव के लिए अपने विशाल प्रासादों में ही करवा लिया करते थे। इसलिए केशव के काव्य में प्रकृति का अधिकांश चित्रण उनके व्यक्तिगत पर्यवेक्षण का परिणाम नहीं है बल्कि वह उनके विस्तृत अध्ययन से निःसृत हुआ है। 'रामचन्द्रिका' के प्रकृति-चित्र पूर्व-काव्यों के अनुसरण पर अंकित हुए हैं, कवि के स्वतन्त्र अनुभवों के आधार पर नहीं।

वातावरण की परवशता होते हुए भी अन्ततोगत्वा केशव कवि थे अतः उन का कवि हृदय प्रायः इन कृत्रिम व्यवधानों के विरुद्ध विद्रोह किया करता था और नगर के बाहर वेतवा के तट पर उनकी भावराशि मुखर हो उठती थी। उसकी पवित्रता से उनका हृदय अभिभूत हो उठता था। इसीलिए नदियों के चित्रण में अधि-कांश उनकी पवित्रता ने ही कवि को आकर्षित किया है, यद्यपि यहाँ भी अध्ययन के कारण उनकी कल्पनाओं ने उनका साथ नहीं छोड़ा है।

'रामचन्द्रिका' में प्राकृतिक सौन्दर्य को देखते समय हमें उसका अध्ययन आधुनिक काव्यों को दृष्टिगत रख कर नहीं करना चाहिए बल्कि केशव के उद्देश्य, उनकी परिस्थितियों तथा मध्य युग की आवश्यकताओं को ही देखकर अध्ययन करने से काव्य तथा कवि दोनो के साथ न्याय हो सकेगा। इस सम्बन्ध में यह भी द्रष्टव्य है कि एक ही काल में एक वर्ग के ही कवियों में भी प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण में

विभिन्नता रही है। सूर ने प्रकृति का उपयोग उपमान रूप में किया है, क्योंकि वह अपने इष्टदेव का सौन्दर्य वर्णन करना चाहते थे, तुलसी ने प्रकृति में ज्ञान और उपदेश की खोज की है और केशव ने अपने व्यापक दृष्टिकोण के कारण उसके विविध रूपों का चित्रण किया क्योंकि वह प्राचीन काव्यों के विविध रूपों से अपने पाठक को परिचित कराना चाहते थे यद्यपि अलंकारवादी होने के कारण उसमें अलंकार और कल्पना का प्राधान्य है। डॉ० किरणकुमारी गुप्ता ने प्रकृति विविध रूपों का स्थूल वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

१. प्रकृति का आलंबन रूप,
२. प्रकृति का उद्दीपन रूप,
३. प्रकृति का अलंकृत रूप,
४. प्रकृति का मानवीकरण,
५. प्रकृति द्वारा नीति और उपदेश, तथा
६. प्रकृति में परम तत्त्व के दर्शन।[1]

इसी वर्गीकरण के आधार पर हम देखेंगे कि 'रामचन्द्रिका' में प्रकृति के ये विविध रूप कहाँ तक मिलते हैं और कवि उनमें कहाँ तक सफल हुआ है।

प्रकृति का आलंबन रूप—मध्य युग में साहित्य के आचार्यों ने काव्य में प्रकृति सम्बन्धी पूर्व परम्पराओं को स्वीकार कर प्रकृति को उद्दीपन के अन्तर्गत मान लिया—

कृपाराम—उद्दीपन के भेद बहु सखी वचन है आदि।
समय साज लों बरनिये कवि कुल की मरजादि ॥[2]

देव—गीत नृत्य उपवन गवन आभूषण बनकेलि।
उद्दीपन शृंगार के विधु बसंत बन केलि ॥[3]

परन्तु केशव ने इस परम्परा के विरुद्ध प्रकृति को आलंबन मान कर कहा—

दंपति जोबन रूप जाति लक्षणयुत सखि जन।
कोकिल कलित बसंत फूलि फलदलि अलि उपबन।
जलयुत जलचर अमल कमल कमला चमलाकर।
चातक मोर सुशब्द तड़ितघन अंबुद अंबर।
शुभ सेज दीप सौगध गृह पानखान परधानि मनि।
नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबनि केशव वरनि।

---

१. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, पृ० ३२-७९
२. हिततरंगिनी, ११
३. भाव विलास : देव

उन्होंने केवल शारीरिक उद्दीपक क्रियाओं को ही उद्दीपन माना है। कवि जब उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन करता है तब प्रकृति साधक न बनकर साध्य बन जाती है। कवि स्वयं प्रकृति का निरीक्षण करता है और पाठक के समक्ष उसका चित्र-सा अंकित कर देता है। इस प्रकार के वर्णनों का आधिक्य वाल्मीकि रामायण अथवा कालिदास की काव्यकृतियों में मिलता है। वर्षा का वर्णन करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं।

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिसन्निकाशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादाः मत्ताः गजेन्द्राः इव संयुगस्थाः।
वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति।[1]

यहाँ आदि कवि का भावुक हृदय प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर उस के रसपान में मग्न है। प्रकृति का दर्शन कर उनके हृदय का सहज उल्लास मानो साकार हो उठा है। केशव ने भी 'रामचन्द्रिका' में इसी प्रकार वर्षा का वर्णन किया है जिसमें उनकी अलंकार मुक्त सहज प्रतिभा विकसित हो उठी है—

देखि राम वरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई। ११
मंद मंद धुनि सो घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकै यों। इन्द्रलोक तिय नाचति हैं ज्यों॥ १२
सोहैं घन स्यामत घोर घने। मोहैं तिनमें बक पाँति भनैं।
संखावलि पी बहुधा जल स्यों। मानो तिनको उगिलै बकस्यों॥ १३
शोभा अति शक्र शरासन में। नाना दुति दोसति है घन में।
रत्नावलि सो दिविद्वार बनो। वर्षागम बांधिय देव मनो॥ १४
घन घोर घने दसहू दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये।
अपराध बिना छिति के तन ताये। तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठ धाये॥ १५
अति घातज बाजत दुन्दुभि मानो। निरघात सबै पबिपात बखानो।
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं। सरजाल बहै जलधार वृथाहीं॥ १६
भट चातक दादुर मोर न बोले। चपला चमकै न फिरै खंग खोले।
दुतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही। धरनो कहँ चन्द्रवधू घरि दीन्हीं॥१७

मेघाच्छन्न आकाश में उड़ती हुई बकपंक्तियों को कितने ही कवियों ने देखा है परन्तु उनमें शंखों की उत्प्रेक्षा करना कवि के मौलिक पर्यवेक्षण का परिचायक है। वर्षा के इस वर्णन में यद्यपि केशव ने अनेक अप्रस्तुत उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है परन्तु यहाँ प्रस्तुत वर्षा का वर्णन ही प्रमुख है और अप्रस्तुत की विद्युत्-छटा में प्रस्तुत का लोप नहीं हुआ है। इस वर्णन में कवि का उद्देश्य न तो राम के भावो को उद्दीप्त

---

१. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड, सर्ग २८, श्लोक-२०,२१

करने की ओर है और न अलंकार द्वारा चमत्कार प्रदर्शन करने की ओर । उसका लक्ष्य वर्षा का वर्णन करना ही है ।

अयोध्या के सरोवर का वर्णन भी कवि ने इसी पद्धति पर किया है—

सुभ सर शोभै । मुनि मन लोभै ॥
सरसिज फूले । अलि रस भूले ॥
जलचर डोलैं । बहु खग बोलैं ॥
बरणि न जाहीं । उर उरझाहीं ॥[१]

यहाँ कवि ने प्रकृति का वर्णन आलंबन रूप में ही किया है, यद्यपि जिन वस्तुओं का उसने वर्णन किया है वह परम्परायुक्त हैं अतः परिगणनात्मक शैली का समावेश हो गया है । पंचवटी के वर्णन में केशव ने इसी शैली का अवलंबन लिया है—

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल कुल कलरव बोलैं ।
अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, बन प्रति नाचति डोलैं ॥
सारी शुक पंडित, गुन गन मंडित, भावनमय अरथ बखानें ।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं ॥[२]

काव्य के व्यापक क्षेत्र में प्रकृति का प्रयोग अनेक रूपों में होता है । उसमें प्रकृति का मंगल पक्ष भी होता है और भयावह रूप भी । श्री हर्ष ने जहाँ प्रकृति में चन्द्रमा के सौन्दर्य के अनेक प्रस्तुत-अप्रस्तुत, मूर्त-अमूर्त उपमानों की योजना की है, वहाँ उसके भयानक रूप का भी वर्णन किया है । 'नैषध चरित' में उदय होते हुए चन्द्रमा के लिए कवि कल्पना करता है—सहस्रबाहु का सिर काटकर परशुराम ने जो दुर्गन्धयुक्त रुधिर पितरों को दिया था, उसी ने पितृलोक में जाकर चन्द्रमा को रंग दिया है । कान-नाक हीन कलंक से युक्त लाल किरणों वाला चन्द्रमा शूर्पणखा के मुख के समान है ।[3]

संध्याकालीन लालिमा को देखकर महापुराणकार पुष्पदंत कवि उत्प्रेक्षा करता है—'सागर तल पर फैली संध्याकालीन लालिमा मानो दिवस-श्री नारी का गर्भपात हो ।'[४] सूर्य के लिए कवि की कल्पना है—'सूर्य ऐसा प्रतीत होता है मानो दिशारूपी निशाचरी के मुख में मांस का ग्रास हो ।'[५]

'हर्षचरित' में बाण ने भी इसी प्रकार की कुछ कल्पनाएँ की हैं । संध्याकालीन लालिमा का दृश्य है—'दिग्वधुओं के फूटे हृदय की रुधिर धार की भाँति

१. राम चन्द्रिका, १—३३
२. वही, ११—१७
३. प्रकृति और काव्य, डा० रघुवंश, प्र० भाग, पृ० ५५६
४. महापुराण, पुष्प दंत : ४-१५-९
५. वही, ४-१६-६

लाल प्रभा बह चली। जिसकी केवल लालिमा शेष है ऐसा तेज का स्वामी धीरे-धीरे दूसरे लोक चला गया। प्रेत के समान लाल संध्या आई और उसकी लालिमा आकाश में फैल गई।'[१] 'कादम्बरी' में विन्ध्याटवी को कवि ने यमपुरी कहा है 'सदा निकट स्थित रहने वाली मृत्यु के कारण भयंकर और महिषों से युक्त होने के कारण वह (विंध्याटवी) मानो प्रेत राज की नगरी है।'[२]

केशव ने भी अपने पूर्व साहित्य की इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रकृति के अमंगलकारी भयावह पक्ष का चित्रण किया है। प्रकृति के प्रेममय स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि इस बात को विस्मरण नहीं कर पाता कि प्रकृति का यही सुन्दर रूप प्राणी विशेष की दृष्टि में अवांछनीय भी हो सकता है। जो सूर्य लक्ष्मण के हृदय का अनुराग बनकर उद्भासित होता है वही कालरूपी कापालिक बन मृत्यु का आह्वान भी करता है। वह मंगल घट भी है और कालरूपी कापालिक का श्रोणित कलित कपाल भी। सूर्योदय के लिए कवि की उत्प्रेक्षाएँ हैं—

अरुण गात अतिपात पद्मिनी-प्राणनाथ भय।
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥
परिपूरण सिंदूरपुर कैधौं मंगल घट।
किधौं शक्र के छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिगभामिनि के भाल को॥[३]

उपर्युक्त छंद में केशव ने सूर्य की उपमा काल रूपी कापालिक के रक्तरंजित कपाल से दी है। इस प्रकार की कल्पनाओं की प्रेरणा केशव को प्राचीन साहित्य से ही उपलब्ध हुई है। इसमें उनका ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है परन्तु उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का पूर्णतया अभाव है। यहाँ उनकी हृदय-जन्य भावुकता का वेग नहीं है बल्कि कवि अपनी कल्पना-शक्ति के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य की घटनाओं का पूर्वाभास करा देता है क्योंकि बाद में इसी सूर्योदय के साथ शक्ति-हत लक्ष्मण के शरीर में पुनः जीवन का संचार होता है और काल रावण के रक्त से रंजित कपाल को लेकर अट्टहास करता है।

काहू को न भयो कहूँ, ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उदोत॥[४]

कह कर कवि ने अपना उद्देश्य पहले ही स्पष्ट कर दिया है।

केशव ने प्रकृति के शान्तरूप का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है परन्तु वह उसके उग्ररूप के कवि नहीं हैं। प्रकृति के इस रूप पर न तो उनकी निजी दृष्टि ही

१. प्रकृति और काव्य, डा० रघुवंश, प्र० भाग पृ० ४८६
२. वही, पृ० ३९२
३. राम चन्द्रिका, ५, १०
४. वही, ५, ८

गई है और न प्राचीन साहित्य में ही वह इस रूप के प्रति आकर्षित हुए हैं। उन्होंने केवल दो स्थानों पर प्रकृति के इस पक्ष का चित्र अंकित किया है परन्तु वह अत्यन्त क्षणस्थायी और अप्रत्यक्ष रूप में हुआ है। सीता को राम के साथ वन जाने को उद्यत देखकर लक्ष्मण वन की भयानकता का वर्णन कर सीता को हतोत्साहित करना चाहते हैं—

बन महँ विकट बिविध दुःख सुनिये।
गिरि गहवर मग अगमहि गुनिये॥
कहुँ अहि हरि, कहुँ निशिचर चरहीं।
कहुँ दव दहन दुसह दुख सहहीं॥[1]

इस छंद से वन की भयानकता का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता और न वन के भयावह रूप का कोई चित्र ही नेत्रों के समक्ष आता है। दूसरा अवसर वह है जब लक्ष्मण सीता को वन में ले जाते हैं। उस समय निर्जन वन ऐसा दिखाई देता था जैसे भूत-पिशाचों का घर हो—

पार भये जबहीं जन दोऊ। भीम बनी जन जन न कोऊ॥
निर्जल निर्जन कानन देख्यो। भूत पिशाचन को घर लेख्यो॥[2]

केशव प्रकृति के आलम्बन रूप के वर्णन में अधिक सफल नहीं हुए हैं। उन्होंने इस प्रकार के कुछ वर्णन किए अवश्य हैं परन्तु उन्हें प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से देखने का अवसर नहीं मिला। इसलिए ऐसे वर्णन अधिकांश परम्परागत हैं और उनमें कवि की परिगणनात्मक प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है। वाटिका वर्णन हो अथवा अटवी वर्णन, वह प्रकृति में प्राणों का संचार न कर केवल उन उपादानों का उल्लेख करते हैं जो काव्यशास्त्रियों ने काव्य में आवश्यक बताए थे, जैसे सरोवर के वर्णन में सरसिज, जलचर और खग आदि की उपस्थिति। वर्षा-वर्णन जैसे सरस 'रामचंद्रिका' में बहुत कम हैं परन्तु इनके आधार पर कहा जा सकता है कि केशव में प्रकृति के सहज उपकरणों को आलंबन बनाकर वर्णन करने की क्षमता थी अवश्य।

प्रकृति का उद्दीपन रूप—मनुष्य की मानसिक स्थिति तथा उसकी शारीरिक चेष्टाओं को उद्दीप्त करने के लिए केशव ने प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन रूप में भी किया है। परन्तु इन स्थलों पर भी कवि की प्रकृति अलंकारोन्मुख होने के कारण तथा स्वतन्त्र पर्यवेक्षण एवं अनुभवों का अभाव होने के कारण प्रकृति की उद्दीपन शक्ति में अधिक वेग नहीं है और उसमें पूर्व-परम्पराओं का ही अधिक प्रभाव है।

ऋषि विश्वामित्र अपने यज्ञ में निशाचर कृत बाधाओं से अत्यन्त त्रस्त होकर राजा दशरथ के पास राम की याचना करते हैं। उनका संदिग्ध मन विश्वास एवं अविश्वास के मध्य दोलायमान है—दशरथ उनकी प्रार्थना स्वीकार करें न करें।

---

१. रामचन्द्रिका, ९-२५
२. वही, ३३-४७

कवि उनकी इस मानसिक अशान्ति को दूर करने तथा दशरथ के विलास-वैभव-प्रभाव का चित्रण करने के लिए प्राकृतिक उपादानों की सहायता लेता है।

प्राकृतिक वैभव को देखकर विश्वामित्र के क्लान्त मन को परिश्रान्ति मिलती है—

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥
राजत रति की सखी सुवेषनि। मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि॥[1]

वृक्ष पल्लवों से युक्त बाटिका तथा कोकिल की कलध्वनि सुनकर विश्वामित्र की शान्त भावनाएँ उद्दीप्त हो उठती हैं और उनके मन का संशय क्षणभर को कोकिल की काकली में विलीन हो जाता है।

भारतीय साहित्य में आदिकाल से ही पत्नी पति की छाया में चलकर सुख प्राप्त करती आई है। यदि पति का आश्रय उसके साथ हो तो वह जीवन के महान् से महान् कष्टों को भी सहज ही पार कर जाती है। तप्त प्रकृति उसे शीतल लगने लगती है और जीवन की विषमता को वह अपनी सरल स्मिति के द्वारा सहन कर लेती है। इसीलिए केशव कहते हैं—

घाम को राम समीप महाबल। सीतहिं लागत है अति सीतल॥
ज्यों घन संयुत दामिनि के तन। होत है पूषन के कर भूषन॥
मारग की रज तापित है अति। केशव सीतहिं सीतल लागति॥
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि। दैजु चले तेहि ते सुख दायनि॥[2]

अपने पति के चरण-कमलों का अनुसरण करने वाली सीता को मार्ग की तप्त रज भी अत्यन्त शीतल प्रतीत होती है। पति की उपस्थिति के कारण कष्टदायिनी प्रकृति भी सीता के अन्तर में आनन्द को ही उद्दीप्त करती है।

संस्कृत साहित्य के अनुकरण पर केशव ने पति-पत्नी में साहचर्य भावना को प्राधान्य दिया है और पत्नी को उसकी अनुगता दासी न मानकर उसकी सहधर्मिणी ही माना है। इसीलिए जिस प्रकार राम की समीपता के कारण सीता को प्रकृति आनन्द प्रदान करती है, उसी प्रकार राम को भी। परस्पर प्रेमाधिक्य के कारण दोनों मार्ग के कष्टों को भूल जाते हैं और दोनों परस्पर एक दूसरे का कष्ट हरने का प्रयत्न करते हैं। तमाल की शीतल छाया में बैठे राम परिश्रान्ता सीता को वल्कल से हवा करते हैं—

कहुँ बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका यक बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहाँ कुस काँस थली।

---

१. रामचन्द्रिका, १-३०
२. वही, ६-३७, ३८

मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को, शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों।[१]

सीता के समीप होने के कारण राम को प्रकृति के वही उपादान अत्यन्त सुखद प्रतीत होते हैं जो उनके विरह में बाद को व्यथित करते हैं। सीता की अनुरागपूर्ण दृष्टि मात्र से समस्त प्रकृति उनमें आनन्द का संचार करने लगती है।

राम के जीवन में उल्लास का एक अवसर आता है जब वह सीता को राज-महिषी बनाकर स्वयं राजसिंहासन पर आरूढ़ होते हैं। वाल्मीकि ने भी इस समय राम सीता की विलास क्रीड़ाओं का चित्रण किया है परन्तु केशव ने इस अवसर पर प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रदर्शन कराकर राम-सीता की प्रसन्नता को और भी अधिक उद्दीप्त किया है।

राम सीता के साथ आसीन हैं, उस समय वसन्त की मादक ऋतु है—

फूली लवंग लवली लतिका विलोल।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल ॥
बोलैं सुहंस शुक कोकिल ककिराज।
मानो बसन्त भट बोलत युद्ध काज ॥[२]

वसन्त ऋतु में परदेश गए हुए प्रेमी जन विरह व्यथा से पीड़ित हो उठते हैं। इस ऋतु में काम-शरों से कौन बच सकता है ?

सोहै पराग चहुं भाग उड़ै सुगन्ध। जाते विदेश विरहीजन होत अन्ध।
पलासमाल त्रिनपत्र विराजमान। मानो बसंत दिय कामहिं अग्निबान ॥[३]

केवल मानव को ही नहीं पशु-पक्षियों को भी यह ऋतु प्रेमोद्दीप्त करती है—

फूले पलास विलस थलो बहु केशवदास प्रकाश न थोरे।
शेष अशेष मुखानल की जनु ज्वाल विशाल चली दिवि ओरे ॥
किंशुकश्री शुकतुंडन की रुचि राचे रसातल में चित चोरे।
चोंचन चापि चहुँदिस डोलत चारु चकोर अंगारन भोरे ॥[४]

प्रकृति के इस मत्त वातावरण को देखकर सीता राम से कहती है—

खिले उर सीन लसे जलजात। जरैं विरही जन जोवत गात।
किधौं मन मीनन को रघुनाथ। पसारि दियो बहु मन्मथ हाथ ॥[५]

इसी प्रसंग में केशवदास ने चन्द्रोदय का विस्तृत वर्णन किया है। चन्द्रमा कामराज

---

१. रामचन्द्रिका, ६-४४
२. वही, ३०, ३३
३. वही, ३०, ३४
४. वही ३०, ३५
५. वही, ३०, ३६

का छत्र होने के कारण कामोद्दीपक है परन्तु विरही जन के लिए अत्यन्त कष्टदायक है —

भूप मनोभव छत्र धरयो ज्यों। सोक वियोगिनी को विदरयौ ज्यों।
देवनदी जल राम कह्यो जू। मानहु फूलि सरोज रह्यो जू।[1]

चन्द्रोदय के इस वर्णन में केशव ने 'नैषध चरित' की शैली का अनुकरण किया है। 'नैषध' में भी नल और दमयन्ती इसी प्रकार चन्द्रोदय और नक्षत्रों के वर्णन में उत्प्रेक्षाओं और सूक्तियों की अवली सी सजा देते हैं।[2] सूर्योदय के लिए नैषधकार की कल्पना है—"देवेन्द्र ने ब्राह्मण रूप में याचना कर वीर कर्ण से दो कुण्डल लिए और उन कुण्डलों को उन्होंने सहर्ष अपनी प्रिय भार्या प्राची को दे दिया। उन दोनों कुण्डलों में से एक तो संध्या समय उदीयमान चन्द्र के रूप में दिखाई पड़ता था और दूसरा अपनी नूतन स्वर्णमयी कान्ति छिटकाता हुआ सूर्य के रूप में अब दिखाई पड़ रहा है।"[3]

इसी आधार पर 'रामचन्द्रिका' में सीता चन्द्रमा के लिए कल्पना करती हैं—

मौतिन को श्रुतिभूषण जानो। भूलि गई रवि की तिय मानो।[4]

केशव यहाँ प्रकृति के उद्दीपक रूप का वर्णन करते-करते कल्पनाओं के जाल में भटक गए हैं। चन्द्रमा ने राम-सीता की प्रेम भावनाओं को जितना उद्दीप्त किया होगा उस से कहीं अधिक यहाँ उनकी कल्पना उद्दीप्त हो उठी है।

सीता राम के साथ वाटिका-विहार के लिए जाती है। प्रकृति के सौन्दर्य पर राम और सीता दोनों मुग्ध हैं। वसन्त ऋतु ने उन पर भी प्रभाव डाला है इसलिए सीता अपने प्रासाद का मुक्त आनन्द लाभ करना चाहती है परन्तु उनकी कल्पना पुनः सजीव हो उठती है। केशव ने उपवन और उसके अन्तर्गत कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता तथा जलाशय का विस्तृत वर्णन किया है। इसी प्रकार के दृश्यों को सम्भवतः केशव ने समीप से देखा था। इस कारण यहाँ उनकी कल्पना का स्रोत निर्बाध प्रवाहित हो उठा है। केशव के पूर्व प्रकृति का इतना विस्तृत वर्णन एक ही स्थान पर किसी अन्य कवि ने नहीं किया। वाटिका वर्णन के कुछ छंद इस प्रकार हैं—

बेल के फूल लसैं अति फूले। भौंर भवैं तिनके रस भूले।।
यौं करबीर करी बन राजें। मन्मथ बाणन की गति साजें।।
स्याम शोण दुति फूल को फूले बहुत पलास।
जरें कामक्वैलामनौ मधुऋतु बात विलास।।
अलि उड़ि धरत मन्जरी जाल। देखि लाज साजति सब बाल।
अलि अलिनी के देखत धाइ। चुम्बत चतुर मालती जाइ।।[5]

---

१. रामचन्द्रिका, ३०, ४३
२. २२वां सर्ग
३. नैषध चरित, २१, ४३
४. राम चन्द्रिका ३०, ४२
५. रामचन्द्रिका, ३२, ६, ८, १०

प्रकृति के इस वर्णन में केशव ने उसके उद्दीपन पक्ष का सुन्दर चित्रण किया है। यद्यपि यहाँ भी केशव ने अलंकारों का प्रयोग किया है, नीति और सूक्तियों का भी उपयोग किया है तथापि इसमें प्रकृति का सहज स्वाभाविक रूप वर्तमान है तथा उससे मानव-मनोवेगों के उद्दीपन में प्रेरणा ही मिलती है। स्वयं राम-सीता पर भी इस वातावरण का अपरिहार्य प्रभाव होता है और दोनों जल क्रीड़ाओं के लिए सरोवर में प्रविष्ट हो जाते हैं—

क्रीड़ा सरवर में नृपति, कीन्ही बहु विधि केलि।
निकले तरुणि समेत जनु, सूरज किरण सकेलि।[१]

उद्दीपन का विरह पक्ष—मानव की मनोदशा में अन्तर हो जाने के पश्चात् प्रकृति के वही उपकरण जो संयोगावस्था में उसे सुखद प्रतीत होते हैं विरहावस्था के कारण पीड़ा-वर्द्धक हो जाते हैं। अपनी मानसिक स्थिति के साथ उसे समस्त प्रकृति विपरीत प्रतीत होने लगती है। सृष्टि के आदिकाल से ही मानव अपनी सुख-दुःख की भावनाओं को प्रकृति में आरोपित करता आया है। आदि कवि वाल्मीकि ने भी रामायण में इसका वर्णन किया है। सीता के वियोग में राम को वन प्रदेश की प्रत्येक वस्तु सीता का स्मरण करा देती है। पक्षियों का कलरव उनके शोक को बढ़ाने लगता है और वसन्त ऋतु उन्हें कामोद्दीप्त बना व्यथित करती है। वह लक्ष्मण से कहते हैं—

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम ॥[२]

'हे लक्ष्मण ! नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से युक्त यह वसन्त ऋतु सीता-विरह-जन्य मेरे शोक को बढ़ा रही है।'

कालिदास के 'मेघदूत' में तो विरही यक्ष शोकाकुल होकर चेतन-अचेतन का हो भेद भूल जाता है और मेघ को मित्र बनाकर अपनी प्रिया के पास संदेश भेजता है। तुलसीदास ने भी 'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी' कहकर राम की विरहोन्मत्त अवस्था का वर्णन किया है। केशव ने जिस प्रकार संयोगावस्था में सीता-राम को प्राकृतिक उपादानों को देखकर आह्लादित होते दिखाया है, उसी प्रकार वियोगावस्था में उसे शोकवर्धक भी बताया है। उन्होंने उद्दीपन की संयोग और विरह दोनों अवस्थाओं का वर्णन समान भाव से किया है। सीता के सौन्दर्य से पराभूत वन के पशु-पक्षियों को उदास समझकर राम उनके उपमेय अंगों को वनपुष्पों के आभूषण पहनाया करते थे परन्तु सीता के वियोग में राम उन्हीं को देखकर सीता की स्मृति से व्याकुल होकर उनसे सहायता की याचना करने लगते हैं। सरिता तट पर चक्रवाक युग्म को देखकर राम कहते हैं—

---

१. रामचन्द्रिका ३२, ३८

२. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकांड, १-२२

अवलोकत है जबहीं जबहीं। दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं।
वह वैर न चित्त कछु धरिये। सिय देहु बताय कृपा करिये।[१]

चकोर को देखकर राम को सीता की मुखछवि का स्मरण हो आता है—

शशि को अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छबि देखि जिये।
कृति चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु बताय सहाय करो॥[२]

कष्टाधिक्य में प्राणी सहायता का याचक बन सर्वप्रथम उसी के पास जाता है जिससे उसे सबसे अधिक उदारता की आशा होती है। नाम के अनुसार गुण की संभावना कर राम अशोक वृक्ष के पास सीता का समाचार पूछने नहीं जाते—अशोक को किसी के शोक की गम्भीरता का क्या अनुमान। चम्पा भ्रमर की याचना कभी पूर्ण नहीं करता, कहीं उनकी भी याचना की उपेक्षा न कर दे। केवड़ा, केतकी, गुलाब आदि मोहक हैं, उनकी सुगन्ध भी मादक है पर अपने तीक्ष्ण काँटों के कारण वे भयंकर भी हैं। इसीलिए राम करुणा वृक्ष के पास जाते हैं। संभव है नाम के अनुसार ही वह करुणामय हो—

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै॥[३]

उपर्युक्त वर्णन में केशव कालिदास की अपेक्षा वाल्मीकि के अधिक समीप हैं। कालिदास के 'मेघदूत' में प्रियावियुक्त यक्ष और रघुवंश में इन्दुमती के विरह में अज की अवस्था उन्माद की सीमा तक पहुँच गई है परन्तु वाल्मीकि में राम सीता की अनुपस्थिति के कारण दुःखी अवश्य हैं किन्तु उनका यह दुःख प्रलाप नहीं है। वह अपने महान् व्यक्तित्व की गरिमा को निरन्तर बनाए हुए हैं। केशवदास ने राम की स्थिति में वाल्मीकि का अनुकरण किया है परन्तु वर्णन में परवर्ती संस्कृत कवियों का इसीलिए उनके वर्णन में 'करुणा' का यमक जितना आकर्षक बना है, राम का विरह उतना नहीं।

सीता के वियोग में राम को प्रकृति के शीतल उपकरण भी दाहक प्रतीत होते हैं। चन्द्रमा सूर्य के समान उष्ण और मलय पवन वज्र सम प्रतीत होती है। दिशाएँ अग्नि के समान जलाती हैं और शीतल लेप शरीर को दग्ध करते हैं। रात्रि उन्हें कालरात्रि से भी अधिक भयानक लगती है। राम लक्ष्मण से कहते हैं—

हिमांशु सूर सी लगे सो बात वज्र सी बहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्यों, विलेप अंग को दहै॥

---

१. रामचन्द्रिका, १२-३९ २. रामचन्द्रिका १२-४०
३. वही, १२-४१

बिसेस कालराति सों कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ॥[१]

केशव का प्रकृति का उपरोक्त वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है। इसमें केशव परम्परागत रूढ़िवादी वर्णन से मुक्त हैं और इस संक्षिप्त परन्तु यथातथ्य वर्णन से राम की घनीभूत पीड़ा मुखर हो उठती है। हर्ष और जयदेव ने इसी विरह को अत्यन्त उपहासास्पद बना दिया है। 'नैषध चरित' के चतुर्थ सर्ग में विरहिणी नायिका अपनी सखी से कहती है—

श्रवणपूरतमालदलांकुरम्, शशिकुरंगमुखे सखि निक्षिप।
किमपि बुन्दिलितः स्थगयत्यमुं, सपदि तेन तदुच्छ्वसिमि क्षणम् ॥

अर्थात् 'कान में पहने हुए तमालांकुर को चन्द्र-मृग के मुख में दे दो जिससे चन्द्रमा को वह कुछ ढक ले जिससे क्षण भर को मैं सांस ले लूँ।'

'प्रसन्न राघव' में जयदेव ने राम का विरह इस प्रकार चित्रित किया है—

राम— सौमित्रे, ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते,
लक्ष्मण—चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति।
राम— वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता
लक्ष्मण—धत्ते कुरंगं यतः,
राम— क्वासि प्रेयसि हा कुरंगनयने चन्द्रानने जानकि ॥

(पुर्नविलोक्य) हन्त, सन्तापेन प्रतारितोऽस्मि। कथमयं गगनतलाधिरोही रोहिणीहृदयनन्दनश्चन्द्रः। (चन्द्रंप्रति)—

रजनिकर, करास्ते बान्धवाः कैरवाणां,
सकलभुवन चेष्टाजागरूका जयन्ति।
कथयसि न कथं तत्कुत्र सा जानकी मे,
त्वमसि मृगसहायः किन्नु नक्तञ्चरोऽसि ? ॥[२]

अर्थात्—'राम— लक्ष्मण, सूर्य तप रहा है, वृक्ष की छाया में आ जाओ।
लक्ष्मण— रात्रि में सूर्य कहाँ रघुश्रेष्ठ। यह तो चन्द्रमा है।
राम— वत्स, यह तुमने कैसे जाना ?
लक्ष्मण— इसने मृग को धारण किया है।
राम— हाँ चन्द्रानने, मृगलोचनी सीता कहाँ हो ? (पुनः देखकर) सन्तापाधिक्य से मैं भ्रमित हुआ। यह तो गगनतल आरोही रोहिणी-नाथ चन्द्र हैं। (चन्द्र से)—

१. रा०चान्द्रका, १२-४२
१. प्रसन्नराघव, ६-१-२

हे रजनीकर, तुम्हारी किरणें कैरवगण की मित्र हैं और सकल संसार की चेष्टाओं को जाग्रत करता हैं। तब तुम क्यों नहीं बताते कि मेरी जानकी कहाँ है तुम मृगों के सहायक हो अथवा रात्रिचर हो ?'

श्री हर्ष और जयदेव दोनों ने ही विरह को कौतुक की वस्तु बना दिया है। 'प्रसन्नराघव' में तो राम को इतनी भी चेतना नहीं रहती कि रात में सूर्य नहीं निकल सकता। उनका विरह एक चेतनाहीन प्रलापी के समान है जो मृग और चन्द्र का नाम सुनते ही सीता का स्मरण करने लगे हैं। प्रकृति का कार्य यहाँ उद्दीपक का न होकर क्रीड़ा का हो गया है। केशव के वर्णन में यद्यपि प्रकृति और मानव के साथ रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सका है परन्तु उसमें कल्पनाओं और भावनाओं का इस प्रकार उपहास भी नहीं किया गया है।

जिस पंपासर की रमणीय शोभा तथा शीतलता से आकर्षित होकर बड़े-बड़े त्यागी भी वहाँ रहने को लालायित हो उठते हैं उसी को देखकर राम उदास हो जाते हैं। लक्ष्मण उन्हें उदास देखकर पंपासर से कहते हैं—

मिलि चक्रिन चंदन बात बहै अति मोहत न्यायन ही मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर पद्धति को॥
प्रतिकूल शुकादिक होंहि सबै जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति को॥[1]

यहाँ लक्ष्मण ने प्रकृति की उद्दीपन शक्ति का एक चित्र खींचा है परन्तु साथ ही एक लौकिक सत्य भी कह दिया है। पिता अपनी पुत्री को और इसी नाते उससे भी अधिक अपने जामाता को दुःखी नहीं देख सकता। लक्ष्मण इसीलिए पम्पासर को उपालंभ दे रहे हैं परन्तु इससे लक्ष्मण की भाई के प्रति सहानुभूति की अपेक्षा काव्य शक्ति ही अधिक व्यंजित होती है। लक्ष्मण की उक्ति में तर्क है पर हृदय-जन्य भावुकता नहीं।

जिस प्रकार संयोगी युग्म को वसन्त ऋतु सबसे अधिक आह्लादकारी होती है उसी प्रकार विरही मन को वर्षा ऋतु सबसे अधिक दुःखद। वर्षा ऋतु में जैसे मेघ की कान्ति मलिन पड़ जाती है उसी प्रकार सीता के बिना राम भी हतप्रभ दिखाई पड़ते हैं। ज्योत्स्नाहीन चन्द्र जिस प्रकार अत्यन्त दीन है उसी प्रकार सीता के बिना राम। वर्षा ऋतु को देखकर राम का रोम-रोम शोकाकुल हो उठता है—

देखि राम वर्षा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई॥[1]

केशव ने वर्षा का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रसंग में दो बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम केशव ने वर्षाकाल में उन उपमानों के तिरोहित होने का उल्लेख किया है जिनको देखकर राम को सीता की स्मृति सजीव बनी रहती थी। दूसरे उन्होंने

---

१. रामचन्द्रिका, १२-५७

१. रामचन्द्रिका, १३-११

वर्षा को युद्ध का प्रतीक माना है क्योंकि वर्षा के अनन्तर भावी आक्रमण की योजना है।

वर्षा ऋतु में राम का शोक अन्य ऋतुओं की अपेक्षा और भी अधिक उद्दीप्त हो उठता है क्योंकि जिन उपमानों को देखकर राम प्राणों को धारण किए हुए थे वर्षा ऋतु के कारण वह भी दुर्लभ हो गए। इसीलिए खिन्नमना राम लक्ष्मण से कहते हैं—

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि किये।।
यहि काल कराल ते शोधि सबै हठि कै बरषा मस दूर किये।
अबधौं बिनु प्राण प्रिया रहिहैं कहि कौन हितु अवलंबि हिये।।[1]

'सीता के वियोग में कलहंस, चन्द्रमा, खंजन और कमलों को देखकर कुछ दिन तक तो किसी प्रकार धैर्य रखा, क्योंकि यह सीता की गति, आनन, लोचन और पैरों के उपमान थे। कठोर काल ने खोज-खोजकर वर्षा के मिस यह सारे उपकरण भी दूर कर दिए। अब मैं सीता के बिना किसका अवलम्ब लेकर जीवन धारण करूँ?'

केशव ने इस वर्णन में परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है और उनकी स्वतन्त्र कल्पना का अभाव है परन्तु फिर भी यह वर्णन अलंकार के अनावश्यक भार से मुक्त होने के कारण काव्य में भार स्वरूप प्रतीत नहीं होता है।

वर्षा काल व्यतीत हो जाने पर शरद् ऋतु के आगमन के साथ ही सीता की शोध के लिए उपयुक्त समय भी आ गया अतः इस ऋतु में राम पुनः आशान्वित हो गए। प्रकृति उन्हें शृंगारपरक दृष्टिगोचर होने लगी और सीता प्राप्ति की आशा बलवती हो उठी। शरद् ऋतु उन्हें एक सुन्दरी के समान सुन्दर प्रतीत होने लगी—

दन्तावलि कुंद समान गनो। चन्द्रानन कुंतल भौंर घनो।
भौंहें धनु खंजन नैन मनो। राजीवनि ज्यों पद पानि भनो।।
हारावली नीरज हीय रमैं। जनु लीन पयोधर अम्बर में।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे। हंसी गति केशव चित्त हरे।।[2]

राम-काव्यकारों ने राम के विरह का वर्णन अत्यन्त उत्साहपूर्वक किया है परन्तु सीता के सम्बन्ध में वे प्रायः मौन ही रहे हैं। केशव ने भी इस विषय पर अधिक नही लिखा है। अशोक वाटिका में बंदिनी सीता अशोक को पुष्पित होते देख विरह से और भी अधिक पीड़ित हो उठती है। अशोक का वृक्ष उन्हें अपने दुःख का उपहास-सा करता जान पड़ता है इसलिए वह अपने प्राणों का अन्त करने के लिए उससे अंगार की याचना करती है—

---

१. रामचन्द्रिका, १३-२२ २. रामचन्द्रिका, १३, २४-२५

देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यौ ॥[१]

केशव ने प्रकृति के उद्दीपन रूप में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है। संयोगपक्ष में उन्होंने राम और सीता दोनों को समान रूप से प्रकृति सौन्दर्य से आनन्दित होते दिखाया है परन्तु वियोग पक्ष में उनकी दृष्टि अपने पूर्ववर्ती साहित्यिकों के समान अधिकांश राम पर ही केन्द्रित रही है। सीता के वियोग की उन्होंने एक आभा मात्र दिखाई है परन्तु उन्हीं दो पंक्तियों में जैसे कवि ने प्रकृति और मानव के मध्य एक अटूट सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। वियोगावस्था में प्रकृति का सौन्दर्य कितना कटु प्रतीत होता है और उसे देखकर मानवी-दुःख कितने वेग से उद्दीप्त हो उठता है इसका सुन्दर परिचय केशव के इस लघु चित्र से मिल जाता है। केशव के संयोगावस्था के वर्णन एवं विरहावस्था में राम का वर्णन अधिकांश परम्परागत है परन्तु केशव का सम्बन्ध प्रकृति के साथ न तो कवि वाल्मीकि जैसा सरल है और न श्री हर्ष के समान कृत्रिम। प्रकृति की उद्दीपन शक्ति के साथ उनका सम्बन्ध इन दोनों के बीच की शृंखला है।

प्रकृति का अलंकार रूप—केशव अलंकारवादी कवि हैं और उन्होंने वर्णन को भी अलंकार मानकर अपने क्षेत्र को अधिक व्यापक बना लिया था। साधारण वर्णन को भी अलंकार का एक रूप मानकर सम्पूर्ण 'रामचंद्रिका' विविध अलंकारों से अलंकृत हो उठती है। 'रामचंद्रिका' अलंकृत शैली में लिखा गया महाकाव्य है अतः उसमें संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त सभी अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। उसमें आदि-काव्य 'रामायण' से लेकर हर्ष के 'नैषध चरित' तक प्रयुक्त होने वाली अलंकृत प्रकृति-चित्रण की सभी शैलियाँ मिल जाती हैं। साथ ही केशव ने समस्त संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित प्राकृतिक स्थलों को भी यथाशक्ति लेने की चेष्टा की है। संस्कृत साहित्य में प्रायः प्रकृति-वर्णन की तीन शैलियाँ हैं—वर्णनात्मक, चित्रात्मक, एवं वैचित्र्यात्मक। केशव ने कहीं इन शैलियों में स्वतन्त्र रूप से वर्णन किए हैं और कहीं मिश्रित रूप से। इसी प्रकार अनेक अलंकारों को भी परस्पर मिला दिया है और यही केशव की मौलिकता है। केशव ने अपनी प्रकृति के स्थल भी दो प्रकार से चुने हैं—कुछ कथा प्रसंग के अनुसार वाल्मीकि रामायण से तथा कुछ परवर्ती संस्कृत काव्यों से। परवर्ती काव्यों के अनुकरण पर केशव ने कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता आदि को 'रामचंद्रिका' का विषय बना लिया है।

केशव ने प्रकृति का चित्रण किसी स्पष्ट रूप को दृष्टि में रखकर नहीं किया है बल्कि संस्कृत साहित्य में प्रकृति-चित्रण के जितने भी रूप संभव थे उन सभी से अपने पाठक को परिचित कराने का प्रयास किया है। इसी से 'रामचंद्रिका' में हमें एक ही वर्णन के प्रसंग में उसके विविध रूपों के दर्शन हो जाते हैं। उनका उद्देश्य प्रकृति

१. राम चन्द्रिका, १३, ६५

के साथ हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर उसका वर्णन करना नहीं है बल्कि विभिन्न वर्णन शैलियों का प्रयोग करना है। इसलिए जब डा० बड़थ्वाल कहते हैं— "प्रकृति के सौन्दर्य से उनका हृदय अभिभूत नहीं होता। वह प्रकृति में मनुष्य के सुख-दुःख के लिए सहानुभूति नहीं पाते, उसमें जीवन का स्पंदन नहीं पाते, परमात्मा के अन्तर्हित स्वरूप को नहीं देखते। उनके लिए फूल निरुद्देश्य फूलते हैं, नदियाँ बेमतलब बहती हैं, वायु निरर्थक चलती है, प्रकृति में वह कोई सौन्दर्य नहीं देखते, वह उन्हें भयानक लगती है, वर्षा काली और बाल रवि कापालिक;" तब केशव के साथ पूर्ण न्याय नहीं होता।

केशव का अधिकांश वर्णन परम्परागत है और प्रायः सभी उपमान किसी न किसी संस्कृत काव्य में मिल जाते हैं। केशव की सहृदयता का निकष उनका मौलिक वर्णन नहीं है बल्कि उन्होंने प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त वर्णन शैलियों तथा उपमानों के सौन्दर्य की रक्षा कहाँ तक की है और उसका रूप कितना उज्ज्वल बनाया है, इसी से उनकी काव्य शक्ति तथा सहृदयता को आँका जा सकता है। 'रामचंद्रिका' के प्रकृति चित्रों में अलंकारों की विवेचना हम इसी दृष्टि से करेंगे।

संस्कृत साहित्य में बाण अलंकारवादी कवि हैं। उनके काव्य में प्रकृति का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। वह प्रकृति वर्णन के अनुपम चित्रकार हैं। रंगों के छायातप दिखाने में उनकी समानता संस्कृत में अन्य कोई कवि नहीं कर सका है अतः केशव बाण से विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं और उनकी वर्णन शैलियों के चित्र 'रामचंद्रिका' में अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक मिलते हैं। बाण ने 'कादम्बरी' में विरोधाभास अलंकार द्वारा विंध्याटवी का वर्णन इस प्रकार किया है 'असंख्य पत्तों वाली होने पर भी वह सप्तपर्णो से शोभित है, क्रूर सत्व होने पर भी मुनिजन सेवित है और पुष्पवती होकर भी पवित्र है।'[1]

केशव ने प्रकृति में इस विरोधाभास से आकर्षित होकर हिन्दी काव्य रसिकों को भी इसका रसास्वादन कराया। अयोध्या की वाटिका का वर्णन करते हुए केशव ने कहा—

> देखो बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
> अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगम्बर जानी॥
> जग यदपि दिगंम्बर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै।
> पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भ सहित सब सोहै॥[2]

केशव ने बाण के विरोध को और अधिक पुष्ट करके पुष्पवती को गर्भवती भी मान लिया है। इसी प्रकार बाण ने 'मातङ्ग-कुलाध्यासिमपि पवित्रम्' कहकर मतंगों का संसर्ग होने पर भी नदी में पवित्रता मानी। परन्तु केशव ने निम्न छंद में सरयू को पवित्र ही नहीं पतितपावनी भी बना दिया—

---

१. कादम्बरी, ५ भा०, प्र-४३ २. रामचन्द्रिका १-३४

अति निपट कुटिल गति यदपि आप। तउ दत्त शुद्ध गति छ्वत आप।
कछु आपुन अध अधगति चलति। फल पतितन कह् ऊरध फलंति।।
मद मत्त यदपि मातंग संग। अति तदपि पतित पावन तरंग।
बहु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह्। सब जात स्वर्ग सूकर सदेह्।।[१]

केशव ने इसी प्रकार विरोधाभास के अन्तर्गत प्रकृति के अन्य चित्र भी अंकित किये हैं परन्तु इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति का कोई निर्दिष्ट चित्र नेत्रों के समक्ष नहीं आता और सरयू की पतितपावनी शक्ति भी विरोध के जाल में उलझ कर रह जाती है। हाँ, बाण के चमत्कार को अवश्य केशव ने सफलतापूर्वक आगे बढ़ा दिया है।

विरोधाभास के बाद बाण ने प्रकृति में परिसंख्या अलंकार का आरोप करके भी कुछ चित्र खींचे हैं, जैसे जाबालि ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चंचलता कदलीदलेषु न मनःसु चक्षुःरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु—रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभंग-विकारो जरया न धनाभिमानेन।'

'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायु-प्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्···शिखंडिनाम् नृत्यपक्षपातः, भुजंगमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।'[२]

'जिस आश्रम में होमाग्नि का धूम ही मलिन था किसी का चरित्र नहीं; शुक पक्षियों का मुख ही रक्तवर्ण था, क्रोध के कारण किसी का मुख रक्त नहीं होता था; कुशाग्र में ही तीक्ष्णता थी, किसी के स्वभाव में नहीं;कदली-पत्र में ही चंचलता थी, किसी के मन में नहीं; कोकिलगण का ही चक्षु राग (रक्त) था, परस्त्री के प्रति किसी का राग (आसक्ति) नहीं।···रामायण सुनकर राम के प्रति अनुराग होता था परन्तु यौवनवश किसी रमणी के प्रति अनुराग नहीं; वार्धक्य वश ही मुख की विकृति होती थी, धन के अहंकार से नहीं।'

'महाभारत में ही शकुनिवध सुना जाता था, आश्रम में नहीं; पुराण शास्त्र में ही वायु प्रलाप हुआ था, किसी घर में (वातव्याधि जन्य प्रलाप) नहीं; वार्धक्य में द्विज (दंत) पतन होता था, आश्रम के द्विजों (ब्राह्मणों) का नहीं ··नृत्य के समय मयूरगण का पक्षपात होता था, नृत्य दर्शन में ऋषियों को पक्षपात की अभिलाषा नहीं थी; सर्पगण का ही भोग (शरीर) था ऋषिगण भोग नहीं करते थे; वानरगण को ही श्रीफल की स्पृहा थी, ऋषिगण को (धनवैभव) नहीं।'

---

१. रामचन्द्रिका. १, २६-२७

२. कादम्बरी, जाबाल्याश्रमवर्णन

केशव ने इस शैली में अयोध्या का वर्णन किया है। वाण के आश्रम वर्णन के समान केशव का उद्देश्य भी अयोध्या की पवित्रता का ही वर्णन करना है—

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में॥
अति चंचल जहं चलदलै विधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो ऋषिराज को अद्भुत नगर निहारि॥[1]

परन्तु इस प्रकार के वर्णनों में श्लेष की प्रधानता रहने के कारण पाठक इनका पूर्ण आनन्द तब तक नहीं प्राप्त कर सकता, जब तक स्वयं उसका अध्ययन और शब्दकोष भी कवि के ही समान विस्तृत न हो। बाण के समान ही केशव ने भी शब्दों का चयन इस प्रकार किया है कि कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ आ जाता है किन्तु इसको समझने में साधारण पाठक को अवश्य कठिनता होती है। इसमें जहाँ कवि ने एक ओर प्रकृति का चित्र अंकित किया है, वहाँ उन्हीं शब्दों से अयोध्या की पवित्रता तथा समृद्धि का भी एक चित्र सामने आ जाता है।

केशव ने मुनि विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के वन जाते समय वन का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने अनेक वृक्षों के साथ पक्षियों का भी उल्लेख किया है। इस प्रसंग में केशव ने कुछ ऐसे वृक्षों और पक्षियों का उल्लेख किया है जो बिहार के जंगलों में नहीं पाए जाते—

तरु तालीस ताल तमाल हिताल मनोहर।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल केर नारियर॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै॥
शुभ राजहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन॥[2]

केशवदास ने 'विचित्र वन' कहकर पहले ही पाठक के इस संशय को दूर कर दिया है। यह उस वन का वर्णन है जो विश्वामित्र जैसे ऋषियों की तपस्या के कारण अत्यन्त पुनीत है और उनके तप के प्रभाव से उस वन में कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं है। डा० रघुवंश के मतानुसार वृक्षों के साथ पक्षियों का उल्लेख मिला देने के कारण इस वर्णन में शास्त्रीय परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया है,[3] परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि केशव ने वर्णन को अलंकार के अन्तर्गत स्वीकार किया है। बाण ने भी इसी पद्धति पर जाबालि ऋषि के आश्रम के वन का वर्णन किया है—

---

१. रामचन्द्रिका, १, ४८-४९ २. रामचन्द्रिका, ३-१
३. प्रकृति और हिन्दी काव्य, पृ० ३९७

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदासन्निहित-कुसुमफलैः ताल-तिलक-तमाल-हिन्ताल-वकुलबहुलैः, एलालताकुलितनारिकेलकलापैः, आलोल-लोध्र-लवली-लवंगपल्लवैः, उसत्-चूत-रेणु-घटलै, अलिकुलझंकार-मुखरसहकारैः उन्मदकोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः, उफुल्लकेत-कीकुसुममंजरीरजःपुंजपिंजरैः, पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतैः—उपसंग्रहीतायलकलबलीलवंगककंन्धूकदलीलकुचचूतपनस तालफलम् अध्ययनमुखर-बटुजनम्, अनवरतश्रवणगृहोतवसट्कारवाचालशुककुलम्, अनेकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, अरण्यकुक्कुटोपभुज्यमानवैश्वदेवबलिपिडम्, आसन्नवापीकलहसपोतभुज्यमाननीवारबलिम्।[1]

समीप ही आश्रम के चारों ओर वन था। वह वन नाना प्रकार के पुष्प और फलों से परिपूर्ण था। ताल, तिलक, तमाल, हिंताल और वकुल आदि अनेक प्रकार के वृक्ष थे। एलायची लता से परिवेष्टित नारिकेल वृक्ष था। भ्रमरगण के झंकार से सुगन्धित आम्रवृक्ष मुखरित हो रहा था, उन्मत्त कोकिलगण मधुर और अस्फुट कोलाहल कर रहे थे। ······आमलक, लवली, लवंग, बेर, कदली, लकुच, आम, कटहल और तालफल संग्रहीत थे। ब्राह्मण बालक वेदध्वनि कर रहे थे, शुकपक्षी मन्त्रोच्चारण कर रहे थे, सारिकाएँ वेदपाठ कर रही थीं, वन कुक्कुट भोजन और हंसशिशु नीवारकण का भोजन कर रहे थे।

यथार्थ में केशव ने बाणकृत वर्णन को ही अपने वन-वर्णन में संक्षिप्त कर दिया है। केशव द्वारा उल्लिखित प्रायः सभी वृक्षों तथा पक्षियों का उल्लेख बाण ने किया है परन्तु केशवदास ने बाण के विपरीत साधारणतया उस वन में उपरोक्त वस्तुओं की उपलब्धि न होने के कारण ही उसे विचित्र वन कह कर हमारे संशय को दूर कर दिया है।

बाण और विशेषरूप से बाण के परवर्ती कवियों ने प्रकृति-चित्रण में उत्प्रेक्षा अलंकार का भी विपुल प्रयोग किया है। बाण के पश्चात् क्रमशः यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। इसमें जहाँ कवियों की स्वतंत्र कल्पना को मुक्त अवसर मिला, वहाँ उनकी सहृदयता के स्थान पर वैचित्र्य का भी समावेश होता गया। कवि सीधे सरल वर्णनों की अपेक्षा क्लिष्ट कल्पनाओं में उलझ गए और उनके पर्यवेक्षण का स्थान अध्ययन ने ले लिया। यद्यपि इस प्रवृत्ति का आरम्भ कालिदास से ही हो जाता है परन्तु वास्तव में इसका विकास बाण से लेकर हर्ष के समय तक चरमावस्था को पहुँच गया। केशव ने सूर्योदय के वर्णन में इन सभी कवियों की कल्पनाओं का समावेश कर लिया है।

अरुणोदय के प्रसंग में बाण ने 'कादम्बरी' में कल्पना की है—'चक्रवाक के हृदय में रहने से लगे हुए अनुराग से मानो लाल हुआ सूर्य मण्डल धीरे-धीरे उदय

१. कादम्बरी, जाबाल्याश्रमवर्णनम, पृष्ठ ११४-११७

होने लगा।' इसी कल्पना के आधार पर केशव ने उत्प्रेक्षा की कि लाल सूर्य ऐसा प्रतीत होता है मानो लक्ष्मण के अनुराग से पूर्ण हो।

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवत चित कुमुदनी त्रसं। चोर चकोर चिता सो लसै।[1]

सुबन्धु ने वासवदत्ता में भगवान् दिनमणि के लिए इस प्रकार कल्पना की—

चक्रवाकहृदयसंक्रामित सन्तापतयेव मन्दिमानमुद्वहन्,
अस्तगिरिमन्दारस्तबक सुन्दरः,
सिन्दूरराजिरंजितसुरराजकुम्भिकुम्भविभ्रमं बिभ्राणः,
वरुणवारविलासिन्यरुणमणिकुण्डलकांतिः,
कालकरवालकृत्तवासरमहिषस्कन्ध चक्राकारः,
मधुरमधुपूर्णकपाल इव गगन-कपालिनः, भगवान् दिनमणिः।[2]

केशव ने भी सूर्योदय के लिए इसी प्रकार की कल्पनाएं कीं—

अरुण गात अतिपात पद्मिनी-प्राणनाथ भय।
मानहुं केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥
परिपूरण सिंदूरपूर कैधों मंगल घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट॥
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधों लसत दिगभामिनि के भाल को॥[3]

सुबन्धु ने सूर्य की तुलना जब मणि कुण्डल से की तो उसके सामने वार-विलासिनी का चित्र आगया परन्तु केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम-काव्य होने के नाते आदर्श उपस्थित करने के लिए दिग्भामिनी की प्रतिष्ठा की है। सूर्य को कालरूपी कापालिक का रक्तपूर्ण कपाल दोनों कवियों ने माना है परन्तु वासवदत्ता के कवि के समान केशव ने महिषवध का दृश्य उपस्थित नहीं किया है।

प्रकृति-सौन्दर्य के साथ वीभत्स रसोत्पादक कल्पनाओं की परिपाटी परम्परागत है। बाण ने हर्षचरित के अस्ताचल को जाते हुए चन्द्रमा की तुलना प्रेत को अर्पित किए जाने वाले पिंड से दी है। नैषधकार ने चन्द्रमा को नाक-कान-हीन रक्त रंजित और कलंकित शूर्पणखा के मुख के समान कहा है।

इस प्रकार के वर्णन द्वारा केशव ने परम्परागत प्रकृति-चित्रण की एक शैली का ही दर्शन कराया है अन्यथा इससे सूर्य के सौन्दर्य का कोई चित्र सामने नहीं आता। इन उक्तियों में कल्पना ही प्रधान है प्रकृति गौण है।

केशव ने इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियों के अतिरिक्त अन्य उत्प्रेक्षाओं द्वारा

१. रामचन्द्रिका, ५, ९
२. सुबन्धु कृत वासवदत्ता, पृष्ठ २९०, जे० के० बालसुब्रह्मण्यम् द्वारा सम्पादित।
३. रामचन्द्रिका, ५, १०

भी प्रकृति का वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में मूल विषय से हटकर प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते समय अनेक कवियों ने उत्प्रेक्षाओं की लड़ियाँ सी सजा दी हैं। इन स्थलों पर कवि का उद्देश्य प्रकृति का यथातथ्य चित्रण न कर विभिन्न कल्पनाओं द्वारा पाठक का मनोरंजन करना ही हुआ करता था। यह वर्णन बहुत विस्तृत हुआ करते थे और कवि के साथ श्रोताओं को भी मूल विषय से न कोई विशेष रुचि थी और न उसके लिए कोई शीघ्रता। अच्छोद सर का वर्णन वाण ने इसी प्रकार अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया है—वह त्रिभुवन लक्ष्मी के मणि दर्पण के समान, भूमिदेव के स्फटिकमय तहखाने के समान, सब सागरों के उद्गम स्थान के समान, दिशाओं के झरने के समान, नभतल के अंशावतार के समान था—यौवन के समान उत्कलिकाओं (उत्कण्ठाओं) से पूर्ण था। मृणाल के कंकन से अलंकृत होने के कारण वह प्रेम से पीड़ित पुरुष के समान था।[1]

ऐसे ही वर्णनों को देखकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वाण के सम्बन्ध में लिखा था— "वाण यद्यपि कथा ही लिखने बैठे थे तथापि श्रद्धा का विपुल गौरव नष्ट कर कथा भाग को कहीं भी नहीं बढ़ा ले गए। उन्होंने संस्कृत भाषा के अनुचरों से घिरे सम्राट् की भाँति आगे बढ़ा दिया है और कथा को पीछे-पीछे प्रच्छन्न भाव से छत्रधर की भाँति छोड़ दिया है। भाषा की राजमर्यादा बढ़ाने के लिए कथा का भी कुछ प्रयोजन है उसी से उसका आश्रय लिया गया है नहीं तो उसकी ओर किसी की भी दृष्टि नहीं है।"[2]

केशव ने भी अपने अनेक चित्रों की अभिव्यंजना में इसी प्रकार अनेक उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है। सूर्य का वर्णन करते हुए वह कहते हैं—

व्योम में मुनि देखिये अति लालश्री मुख साजहीं।
सिंधु में बडवाग्नि की जनु ज्वालमाल बिराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हुई।।[3]

नैषधकार का कथन है—

वद विधुन्तुदमालि मदिरतै-
स्तयजसि किं द्विजराजधिया रिपुम्।
किमु दिवं पुनरेति यदीदृशः।
पतित एष निषेव्य हि वारुणीम्।

अपभ्रंश कवि नयनंदी ने भी सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कहा है—

बहु पहरेंहि सूरू अत्थमियउ, अहवा काहं सीसए।
जो वारुजिहे रत्तु सो उग्गुवि, कवणु ज कवणु णसए।।[4]

---

१. कादम्बरी, पृष्ठ २६२ २६६ २. प्राचीन साहित्य, पृष्ठ ७७-७८
३. राम च०, ५-१२ ४. सुदर्शन चरित्र, ५-८

अर्थात् वारुणी-सुरा में अनुरक्त कौन उठकर भी नष्ट नहीं होता ? अतएव सूर्य भी वारुणी-पश्चिमी दिशा के अरानुग से उदित होकर अस्त हो गया ।

इसी अनुकरण पर केशव ने श्लेषालंकार में सूर्यास्त का वर्णन किया—

जहीं बारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियो भगवन्त, दिन सम्पति शोभा साज ।।[1]

संस्कृत साहित्य में तीन प्रकार के साम्य द्वारा उपमेय में उपमानों का आरोपण किया जाता था—गुण साम्य, क्रिया साम्य तथा शब्द साम्य । प्राकृतिक चित्रों का रूप अंकित करने में भी प्रायः संस्कृत कवियों ने इन तीनों प्रणालियों का प्रयोग किया है । केशव ने रामचन्द्रिका में संस्कृत कवियों के आधार पर तीनों पद्धतियों के अनुसार प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है । बाण ने हर्ष चरित में सूर्यास्त के सम्बन्ध में कहा 'तरुण वानर के मुख के समान लाल, लोकों का नेता सूर्य अस्ताचल के शिखर से शीघ्रतापूर्वक उतर रहा है ।' बाण की इस उक्ति में सूर्य तथा वानर में केवल रक्त वर्ण होने का गुण समान है । वर्ण की इसी समता के कारण कवि ने सूर्य तथा वानर के बीच एक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है । केशव ने भी इसी रूप साम्य के आधार पर कल्पना की—

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर वानर अरुन मुख ।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन ।।[2]

केशव ने यहाँ गुण साम्य के साथ क्रिया का मिश्रित रूप उपस्थित किया है । वानर जैसे वृक्ष को हिलाकर वृक्ष को कुसुमहीन कर दे, उसी प्रकार सूर्य ने गगन को एक झटका सा देकर समस्त तारागण को झाड़ दिया । इस क्रिया साम्य के कारण केशव की उक्ति में बाण की अपेक्षा अधिक स्वाभाविकता तथा सौन्दर्य आ गया है ।

हनुमन्नाटककार ने पंचवटी को शिव के समान मुक्तिदायक समझकर पंचवटी की तुलना शिव से की है । शिव तथा पंचवटी में इस मुक्तिदान-क्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई समता नहीं है तथापि कवि ने पंचवटी में शिव के उपमान का आरोपण किया है ।

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी ।
पांथस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी ।
गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोल चंचत्पुटी ।
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतिक्रिया दुष्कुटी ।।[3]

केशव ने भी इसी क्रिया-साम्य के आधार पर पंचवटी तथा शिव में एक समानता मान ली—

---

१. राम च०, ५-१४ २. राम च०, ५-१३
३. हनुमन्नाटक, ३-२२

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु छटी हूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥[1]

ऐसे वर्णनों में कवि का उद्देश्य प्रकृति का कोई संश्लिष्ट चित्र अंकित करने का नहीं होता। पाठक केवल कवि की कल्पना तथा अलंकार प्रयोग की सामर्थ्य से प्रभावित होता है तथा प्रकृति के प्रति उसका कोई विशेष अनुराग नहीं होता। संस्कृत में प्रकृति वर्णन का यह एक रूप था जिसका अनुसरण करने में केशव मूल कवि से भी अधिक सफल हुए हैं। शिव की कल्पना के साथ कवि का 'टी' अक्षर का प्रयोग भी दर्शनीय है।

संस्कृत कवियों में वाण ने विशेष रूप से केवल शब्द साम्य के आधार पर भी प्रकृति के अनेक चित्र अंकित किये हैं। इस प्रकार के वर्णनों के उपमेय तथा उपमान के मध्य शब्द समता के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रकृति के प्रति कवि के अनुराग का कोई आभास नहीं मिलता केवल उसकी कल्पनाओं की धारा अप्रतिहत प्रवाहित होती रहती है। वाणकृत विंध्याटवी का वर्णन देखिए—

'चन्द्रमूर्तिरिव सततवृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृगबालव्यजनोपशोभिता समदगजघटापरिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसंगता मृगपतिसेविता च, जानकीवप्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरागुरुतिलकभूषिता च...।'[2]

अर्थात् विंध्याटवी चन्द्रमा के समान भल्लूक से पूर्ण तथा मृग का आश्रय है, राज स्थिति के सामने चमर-मृग के लाल व्यजन से शोभित है और मदमत्त गजघटा उसकी रक्षा करती है। बन पार्वती के समान स्थाणु के साथ और मृगपति सेवित है, सीता के समान कुशादि से युक्त और निशाचरों से आक्रान्त है। —अर्जुन की ध्वजा के समान वानराक्रान्त है।

केशव ने इसी प्रकार दंडन वन तथा पंचवटी के वर्णन में शब्द साम्य दिखाया है—

शोभत दंडक की रुचि बनी। भांतिन भांतिन सुन्दर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भयो जहँ बसै॥
बेर भयानक सी अति लगै। अर्क समूह जहाँ जगमगै॥
नैनन को बहु रूपन ग्रसे। श्रीहरि की जनु मूरत लसै॥
पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो॥
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर औ तिलकावलि रूरी॥

---

१. राम चन्द्रिका, ११-१८
२. कादम्बरी, पूर्व भाग, विन्ध्याटवी वर्णनम्।

राजति है यह ज्यौं कुल कन्या। धाइ बिराजति है संग धन्या ।।
केलि थली जनु श्री गिरिजा की। शोभ धरे सितकंठ प्रभा की ।।[१]

बाण के कुश वानर आदि शब्दों के समान 'रामचंद्रिका' के 'श्रीफल', 'अर्क', 'धाइ', 'अर्जुन', 'भीम' आदि शब्द श्लिष्ट हैं तथा इनका उपयोग सादृश्यमूलक अलंकारों के लिए किया गया है परन्तु इनमें केवल शब्द सौन्दर्य होने के कारण अभीष्ट वस्तु का चित्र अंकित नहीं होता।

उपरोक्त अलंकारों के अतिरिक्त केशव ने कहीं शुद्ध श्लेष तथा कहीं विभिन्न अलंकार समन्वित श्लेष की सहायता से भी कतिपय प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है जैसे तड़ाग वर्णन कवि ने श्लेषालंकार में इस प्रकार किया—

ते न नगरि न नागरी, प्रतिपद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जइं-प्रगट पयोधर पीन ।।

सन्देह समन्वित श्लेष के उदाहरण स्वरूप 'रामचंद्रिका' का वर्षा कालिका रूपक उपस्थित किया जा सकता है।

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करि सुख मुख सुखमा ससि की,
नैन अमल कमल दल दलित निकाई है ।।
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ,
जू की कालिका कि वर्षा हरखि हिय आई है ।।[२]

श्लेष से पुष्ट रूपक का उदाहरण शरद् ऋतु के वर्णन में देखा जा सकता है। कवि ने शरद् ऋतु की कल्पना एक सुजाति सुन्दरी के रूप में की है—

दन्तावलि कुंद समान गनो। चन्द्रानन कुंतल भौंर घनो ।।
भौहैं धनु खंजन नैन मनो। राजीवनि ज्यों पद पानि भनो ।।
हारावलि नीरज हीय रमैं। जनु लीन पयोधर अम्बर मैं ।।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे। हंसी गति केशव चित्त हरे ।।[३]

प्रकृति का अलंकृत वर्णन करने के अतिरिक्त केशव ने अन्य वर्णनों के प्रसंग में भी प्राकृतिक उपकरणों का प्रयोग किया है। जब केशव मानव रूप-वर्णन में, अथवा किसी भाव की व्यंजना में कहीं से अपने उपमान नहीं खोज पाते तो वह निश्शंक

१. राम चन्द्रिका, ११, १९-२२
२. ,, ,, १३-१९
३. ,, ,, १३-२४-२५

प्रकृति की सहायता ले लेते हैं। जिस प्रकार केशव ने उपमेय रूप में प्रकृति का वर्णन पूर्व परम्पराओं के अनुसार किया है उसी प्रकार उसका उपमान रूप भी परम्परागत ही है। 'रामचंद्रिका' के यह उपमान परम्परायुक्त हैं परन्तु उनका प्रयोग केशव का मौलिक है और यहीं कवि की प्रतिभा का सौन्दर्य है।

वन में माताएँ राम से मिलने के लिए इस प्रकार दौड़ती हैं जिस प्रकार गाएँ अपने बछड़ों से मिलने के लिए दौड़ती हैं—

मातु सबै मिलिबे कहँ आई। ज्यों सुत को सुरभि सुलवाई॥

संतान के प्रति माँ की ममता के साथ ही बछड़े से मिलने के लिए गाय की तत्परता का भाव भी केशव के इस उपमालंकार में अत्यन्त कुशलतापूर्वक समन्वित किया गया है। यहाँ भाव की व्यंजना उत्कर्ष तथा अलंकार का निर्वाह सफल हुआ है। सम्भवतः यह केशव का निजी निरीक्षण था। इसी प्रकार सीता की वियोगिनी मूर्ति का चित्रण करने के लिए केशव ने पंक से निकाली हुई मृणाली की उपमा दी है।

घरे एक बेणी मिली मैल सारी, मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥[1]

वियोगिनी सीता की प्रेरणा यद्यपि केशव को कालिदास की शकुन्तला से मिलती परन्तु 'रामचंद्रिका' की सीता का चित्र अधिक मर्मस्पर्शी है। जब से वियुक्त मुरझाई कमलिनी से उपमा देकर ही कवि ने जैसे राम से वियुक्त हीन सीता की पीड़ा को सजीव बना दिया है।

केशव ने नखशिख के वर्णन में प्रकृति का द्विमुखी प्रयोग किया है—उन्होंने मानवी सौन्दर्य की तुलना प्राकृतिक सौन्दर्य से की है तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलना में मानवी सौन्दर्य को उत्कृष्ट भी बताया है। सीता की दासियों की मधुर वाणी कवि को पुष्प वर्षा-सी प्रतीत होती है—

मृदु मुसुकानि लता मन हरैं। बोलत बोल फूल से झरैं॥[2]

दूसरी ओर कवि मानवी सौन्दर्य की तुलना में प्रकृति का अपकर्ष दिखाते हुए कहता है—

गगन चन्द्र ते अति बड़ो तिय-मुख-चन्द्र विचारु।
दई विचारि विरंचि चित कला चौगुनो चारु॥[3]

आकाशविहारी चन्द्र से तिय-मुख-चन्द्र को श्रेष्ठ जानकर ही ब्रह्मा ने उसको चन्द्रमा की अपेक्षा चौगुनी कलाएँ दी हैं।

---

१. राम चन्द्रिका, १५-५३ २. राम चन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, ३१-१७
३. राम चन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, ३१-२१

इसी प्रकार केशव सीता के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए पहले उसे चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी बताते हैं, तदन्तर 'सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो' कहकर कमल को मुख का उपमान बनाते हैं—परन्तु सीता के सौन्दर्य के समक्ष उन्हें यह दोनों ही उपमान उचित नहीं प्रतीत हुए। इसलिए कहा—

एकै कहै अमल कमल मुख सीताजू को,
एकै कहैं चन्द्र सम आनन्द को कन्द री।।
होय जो कमल तो रयनि में न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होति दुति मद री।।
बासर ही कमल रजनि ही में चन्द्रमुख,
बासर हू रजनि बिराजै जगबंद री।।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चन्द्र,
ताते मुख मुखै सखि कमलै न चद री।।[१]

कमल रात्रि में संकुचित हो जाता है और चन्द्रमा दिन में मंदद्युति परन्तु सीता का मुख तो दिवा रात्रि प्रफुल्ल रहता है अतः वह अनुपमेय है। इसमें कवि ने अतिरेक तथा अनन्वय अलंकार का बड़ा सुन्दर मिश्रण किया है।

केशव के इस प्रकार के वर्णनों को देखकर कुछ आलोचकों का विचार है कि केशव में सहृदयता का नितान्त अभाव था इसीलिए उन्हें न कमल में कोई सौन्दर्य दिखाई देता है और न चन्द्रमा में। केशव के सम्बन्ध में हम पहले ही कह चुके हैं कि उन्हें प्रकृति का कवि मानना भूल है, उन्होंने केवल पूर्व प्रचलित वर्णन प्रणालियों से ही भाषा जगत् को अवगत कराया है। संस्कृत में प्रकृति का अपकर्ष दिखा मानवी सौन्दर्य की उत्कृष्टता दिखाने की भावना मुख्य रूप से हर्ष के 'नैषध चरित' में लक्षित होती है। नल-मुख का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि कहता है—शरद् का पूर्ण चन्द्र तो नल-मुख का दास होने का भी अधिकारी नहीं था।'[२]

केशव ने केवल प्रकृति का अपकर्ष दिखाया है हर्ष के समान उसका तिरस्कार नहीं किया है।

'रामचन्द्रिका' के प्रकृति सम्बन्धी समस्त अलंकृत वर्णन उपरोक्त किसी न किसी वर्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं तथा उनमें संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त प्रायः सभी प्रकार के अलंकृत वर्णनों का प्रतिबिम्ब उपलब्ध हो जाता है। केशव के ऐसे वर्णनों में वाण की विशेष छाया इसलिए दृष्टिगोचर होती है क्योंकि वह व्यापक प्रकृति के चित्रकार हैं और उनकी प्रकृति वर्णन में प्रकृति चित्रांकन की प्रायः सभी शैलियाँ मिल-जुल कर सामने आती हैं। केशव ने वाण की समस्त शैलियों तथा उनके पर-

१. राम चं०, ६, ४२
२. नैषध चरित, १, २०

वर्ती सभी कवियों की शैलियों का दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की है। उनके विस्तृत प्रकृति वर्णन पृथक्-पृथक् संक्षिप्त चित्रों में सामने आते हैं तथा प्रकृति के विविध रूप वैचित्र्य की सुन्दर कल्पनाओं से प्रत्यक्ष हो उठते हैं। अलंकारवादी होने के कारण केशव में विभिन्न कल्पनाओं के प्रति आग्रह है परन्तु उनकी अधिकांश कल्पनाएँ कहीं-न-कहीं संस्कृत काव्यों में मिल जाती हैं। यदि कवि का अभीष्ट भाषा कवियों के हाथों में प्राचीन काव्य विधि को समर्पित करना न होता तो संभव है कि केशव के काव्य की चित्रात्मकता कहीं अधिक बढ़ जाती और उनके द्वारा हिन्दी काव्य को किसी नवीन काव्य की उपलब्धि होती।

प्रकृति का मानवीकरण—"अनादि काल से ही प्रकृति से सहवास रहने के कारण मानव अपना कष्ट निवेदन और भावाभिव्यंजन प्रकृति से करता रहा है, और अपने उत्कट प्रेम के फलस्वरूप प्रकृति में प्रतिस्पंदन का अनुभव करता रहा है।"[1] प्राचीन काल से ही कवियों ने प्रकृति में मानव आकार तथा रूप की कल्पना कर उसे सचेतन प्राणी माना है। मानव अपने समान ही उसमें अनेक भावनाओं को आरोपित करके उसे अपने सुख-दुख का साथी बना लेता है तथा उसके सुख-दुख में स्वयं भाग लेने को तत्पर रहता है। प्रकृति में मानवीकरण की यह भावना वैदिक काल से ही चली आ रही है तभी तो आर्यों ने अग्नि, वरुण, सूर्य आदि में देवत्व की कल्पना की थी। प्राचीन लोक-कथाओं में भी पशु पक्षी सरिता और सागर मानवी भाषा में बोल कर मानव के साथ अपने विचारों का आदान-प्रदान करते आए हैं।

आदि कवि वाल्मीकि ने 'सीतेव शोक संतप्ता मही वाष्पं विमुंचति' कहकर सीता के दुःख के साथ पृथ्वी का अश्रुविमोचन करवा कर सहानुभूति प्रगट कराई है। 'मेघदूत' में तो यक्ष ने मेघ को मित्र बनाकर उसे पूर्ण मानव ही बना दिया है। भवभूति तथा प्रसन्नराघवकार ने सागर सरिताओं से मानवी भाषा में वार्तालाप करा कर मानव के सुख-दुःख के साथ सहानुभूति दर्शाई है। नैषध चरित में हंस ने नल तथा दमयन्ती के मध्य दौत्य कार्य किया है। केशव ने भी प्रकृति में मानवी भावनाओं का आरोपण किया है। यह आरोपण दो प्रकार का है—जड़ प्रकृति में मानवी रूप की कल्पना तथा प्रकृति की चेतन सत्ता में मानवी रूप की कल्पना।

राम-परशुराम के विवाद के अनन्तर परशुराम राम को प्रसन्न मन होकर आशीर्वाद देते हैं। समस्त प्रकृति प्रसन्न हो जाती है और अपनी प्रसन्नता इस प्रकार प्रकट करती है—

> अति अमल भये रवि, गगन बढ़ी छबि, देवन मंगल गाये।
> सुरपुर सब हरषे, पुहुपन बरषे, दुंदुभि दीह बजाये।[2]

---

१. डा० किरण कुमारी गुप्ता : हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, पृष्ठ ६७

२. राम चं०, ७, ५१

भरत जिस समय अयोध्या में प्रवेश करते हैं समस्त प्रकृति राम के वन गमन तथा दशरथ की मृत्यु से उदास है। चारों ओर शोक का साम्राज्य छाया हुआ है और प्रकृति को सशोक देखकर भरत को किसी अनिष्ट का पूर्वाभास होने लगता है—

आनि भरत्थ पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव ससोकी॥
भाट नहीं विरदावली साजैं। कुंजर गाजं न दुंदभि बाजं॥
राज सभा न विलोकिय कोऊ। सोक गहे तब सुंदर दोऊ॥
मन्दिर मातु विलोकि अकेली। ज्यों बिन वृक्ष विराजति बेला॥[१]

यहाँ कवि ने जहाँ एक ओर राम और दशरथ के बिना जड़ तथा चेतन को शोक मग्न दिखाया है वहाँ वृक्ष रूपी पति से हीन विधवा लता-नारी की कल्पना कर इस मानवीकरण को और भी धिक प्रभावशाली बना दिया है।

भरत की विशाल वाहिनी से आकाश को आच्छादित करती हुई धूल उड़ने लगी। राम और भरत के रविवंशी होने के कारण कवि ने रवि में उनके पूर्वज की कल्पना कर ली। पृथ्वी ने यह सोचा कि राम-भरत के परस्पर युद्ध से सूर्य को दुख होगा अतः उनकी दृष्टि से दोनों भाइयों को ओझल करने के लिए जैसे धूल का पर्दा डाल दिया—

अपने कुल को कलह क्यों देखहि रवि भगवन्त।
यहै जानि अन्तर कियो मानो महि अनन्त॥[२]

वन में माताएँ राम से मिलने जाती हैं। राम पिता का कुशल समाचार पूछते हैं। वैधव्य के कठोर आघात में पीड़ित माताएँ करुण स्वर में बिलख उठती हैं इस करुण दृश्य को देखकर चेतन अचेतन सम्पूर्ण प्रकृति रो उठती है। सम्पूर्ण वातावरण करुणामय हो उठता है—

आंसुन सों सब पर्वत धोये। जड़ जंगम को सब जीवहु रोये॥[३]

राम के अयोध्या वापिस चलने के लिए अस्वीकार करने पर भरत मन्दाकिनी के तट पर जाकर प्राण त्याग का संकल्प करते हैं तो मन्दाकिनी व्याकुल हो जाती है। भरत के निश्चय को अटल देख वह स्वयं नारी वेश धारण कर भरत को समझाने आती है—

भागीरथी रूप अनूप कारी। चन्द्राननी लोचन कंज धारी।
बाणी बखानी सुख तत्त्व सोध्यो। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो॥[४]

---

१. राम च० १०,१-२
२. राम च० १०,२२
३. राम च० १०-३१
४. राम च० १०-३१

राम सीता के विरह में दुःखी हैं। इस शोक में उन्होंने अपने चारों ओर फैली विशाल प्रकृति को भी सम्मिलित कर लिया है। वह प्रकृति से मित्र के समान ही अपना दुःख निवेदन कर सहायता की याचना करते हैं। कवि ने प्रकृति के कण-कण में चेतन सत्ता का आरोप कर दिया है, उसने प्रत्येक पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लता को मानवी भाषा समझने की सामर्थ्य दे दी है इसी से राम कभी चकवा, चकई के पास जाकर दुःख सुनाते हैं और कभी करुणा नामक वृक्ष के पास जाकर।[1]

सरिता इक केशव सोभ रई। अवलोकि तहाँ चकवा चकई।
उरमें सिय प्रीति समाय रही। तिन सों रघुनायक बात कही ॥३८

इसी प्रकार लक्ष्मण पम्पासर से राम की व्यथा बता कर राम को दुःखी न करने का अनुरोध करते हैं।[2]

हनुमान जब लंका नगरी में प्रवेश करते हैं उस समय लंका अपने सम्राट् रावण की रक्षा करने का प्रयत्न करती है। वह स्त्री का रूप धारण कर हनुमान का मार्ग रोकती है—

जब ही चले हनुमंत तजि शंका। मग रोकि रही तिय ह्वै लंका।[3]

उपरोक्त उद्धरणों में केशव ने प्रकृति के जड़ भाग को जीवन प्रदान कर उस का मानवीकरण किया है। इसके अतिरिक्त कतिपय स्थलों पर कवि ने पशु-पक्षियों में मानवी भावों का आरोपण किया है। 'रामचन्द्रिका' में जटायु, हनुमान, सुग्रीव, बालि आदि वानर तथा गरुड आदि पक्षी ऐसे ही जीव हैं। केशव ने इन्हें पक्षी और वानर माना है यक्ष अथवा गन्धर्व नहीं। सीता हनुमान से इसी आशंका से पूछती हैं कि नर तथा वानर में मैत्री कैसे हुई है। जटायु पक्षी हो कर भी सीता का करुण क्रन्दन सुन रावण से युद्ध करता है। गरुड़ नागपाश को काटकर राम से आज्ञा लेने का अनुरोध करता है और वानरों की कथा से तो सम्पूर्ण किष्किंधा कांड तथा सुन्दर काण्ड भरा पड़ा है।

इन पक्षियों तथा वानरों का बाह्य रूप ही अमानवीय है परन्तु उनकी भाषा, विचार, कर्म, भावनाएँ सब मानवी ही हैं। वह मनुष्य के साथ सदैव मनुष्य के समान ही व्यवहार करते हैं। प्राचीन लोक-गाथाओं, जातक कथाओं, नीति कथाओं में भी इसी प्रकार पशु-पक्षी मानवी भाषा में वार्तालाप किया करते थे।

'रामचन्द्रिका' में यद्यपि प्रकृति को मानवी मानकर उसका आधुनिक युग के समान स्वतन्त्र वर्णन नहीं हुआ है तथापि इन भावनाओं का आरोपण उसमें स्थल-स्थल पर मिल जाता है।

---

१. राम च० १२,४१ २. राम च० १२-५०
३. राम च० १३.४१

प्रकृति का उपदेशात्मक रूप—आदिकाल से मानव ने प्रकृति को शक्ति, दृढ़ता और ज्ञान का प्रतीक मानकर उससे उपदेश ग्रहण किया है। मनुष्य की चंचल प्रवृतियों की अपेक्षा प्रकृति में कहीं अधिक स्थायित्व तथा वेग है इसीलिए वायु गति की, पर्वत अचलता का और पृथ्वी क्षमा का प्रतीक है। मनुष्य ने सदैव उससे प्रेरणा प्राप्त कर जीवन को महान् बनाने की चेष्टा की है।

मनुष्य को उपदेश देती हुई प्रकृति का यह रूप सर्वप्रथम 'श्रीमद्भागवत' में दृष्टिगोचर होता है। दशम स्कंध में भागवतकार ने वर्षा का वर्णन इस प्रकार किया है—

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथा धोक्षजचेतसः।[1]

अर्थात् जिस प्रकार वर्षा की अनवरत धारा से पर्वतसमूह विचलित नहीं होते उसी प्रकार भगवान् में मन लगाने वाले भक्त अनेक संकट पड़ने पर भी व्यथित नहीं होते।

'श्रीमद्भागवत' से तुलसी अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्हें प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व उपदेश देता जान पड़ता है। प्रकृति उनकी गुरु है, आदर्श है। तुलसी का उद्देश्य समाज सुधार है अतः उनकी व्यंजना सर्वत्र उपदेशात्मक है—मेघों के बीच विद्युत् चमकती है—खल की प्रीति जिस प्रकार स्थिर नहीं रहती। बादल नम्र होकर पृथ्वी पर बरसते हैं—बुद्धिमान् विद्या प्राप्त कर नम्र होते हैं। वर्षा का आघात पर्वत सह लेता है—दुष्ट के वचन सज्जन उसी प्रकार सह लेते हैं। क्षुद्र नदी थोड़ा जल पाकर ही इतराने लगती है—उसी प्रकार नीच थोड़ा धन पाकर इतराने लगता है। इत्यादि।

तुलसी के समान केशव का उद्देश्य भी सामाजिक था यद्यपि यह समाज के सीमित वर्ग के लिए ही था। हम पहले कह चुके कि 'रामचन्द्रिका' में पौराणिक तत्त्व भी मिलते हैं और यह काव्य अलंकृत तथा पौराणिक काव्यों का सम्मिलित रूप है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में प्रकृति वर्णन के प्रसंग में इस पौराणिक पद्धति को भी अपनाया है इसलिए उसमें भी यत्र-तत्र प्रकृति मानव की नीति की शिक्षा सी देती प्रतीत होती है।

प्रकृति के शिव पक्ष के साथ उसका अशिव पक्ष भी है जिसको देख मानव स्वयं को उससे श्रेष्ठ समझता है अथवा जिसको देख वह निकृष्ट मानव से उसकी तुलना करता है। तुलसी ने इन दोनों रूपों में प्रकृति का वर्णन किया है। मेघों की नम्रता देख जहाँ मानव उससे प्रभावित होता है वहाँ क्षुद्र नदी के अहंकार को देख खिन्न भी होता है। ऐसे अवसर पर उदारमना मानव उसे शिक्षा देता सा प्रतीत

---

१. भागवत, २०.१५

होता है। केशव ने इन दोनों रूपों में प्रकृति का उपयोग किया है। कहीं प्रकृति मानव की शिक्षक है और कहीं वह प्रकृति का उपदेष्टा। कवि को गज-मुक्ता ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सन्त मनुष्यों के रसाल मन हों—

गज मोतिन की माला विशाल। मन मानहु संतन के रसाल ॥[1]

मलयाचल की सुगंधी से समस्त संस्कृत साहित्य सुरभित है। उसका सौरभ मानव को शीतलता तथा शांति का संदेश देता आया है। सीता की सखी अपनी स्वाभाविक सुगन्ध के कारण कवि को मलयागिरि पर निवास करने वाली देवी सी प्रतीत होती है—

सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलयाचल की ॥[2]

सीता जी का मुख चन्द्रमा से अधिक सुन्दर है क्योंकि चन्द्रमा पूर्णिमा के अतिरिक्त उसी प्रकार क्षीण होता रहता है जिस प्रकार उथले जलाशय का जल। यहाँ कवि ने अपनी प्रतिभा से एक साथ दो प्राकृतिक उपकरणों का अपकर्ष दिखा कर मानव की महत्ता का प्रतिपादन किया है—

पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो छन छन छिन होत छीलर के जल सो।[3]

वर्षा ऋतु का वर्णन केशव ने इस प्रकार किया है—

अभिसारि निसो समझौ परनारी। सत मारगमेटन की अधिकारी ॥
मति लोभ महामद मोह छई है। द्विजराज सुमित्र प्रदोष मई है ॥[4]

जिस प्रकार परकीया स्त्रियां स्वधर्म को त्याग देती हैं उसी प्रकार वर्षा ने अच्छे मार्गों को मिटा दिया है। अथवा जिस प्रकार लोभ मद इत्यादि दुष्भावनाओं से युक्त मनुप्य ब्राह्मण तथा अपने मित्रों का अपकार करता है उसी प्रकार वर्षा ने चन्द्रमा और सूर्य आदि को अंधकार में रख उनका अपकार किया है।

उपरोक्त छंद में केशव ने श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हुए भी नीति का सफल प्रयोग किया है। आगे वर्षा के गाढ़ अंधकार को देखकर कवि कहता है—

बरनत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥[5]

वर्षा के सघन अंधकार में उसी प्रकार कुछ दिखाई नहीं पड़ता जिस प्रकार दुष्ट व्यक्ति की सेवा कर कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती।

कवि शरद् ऋतु से भी उपदेश ग्रहण करता है—

श्री नारद की दरसै मति सी। लोपै तम ताप अकीरति सी ॥
मानौ पति देवन की रति सी। सन्मारग की समझौ गति सी ॥[6]

१. राम चन्द्रिका, ६-५६
२. राम चन्द्रिका, ६-६२
३. राम चन्द्रिका, ६.४१
४. राम चन्द्रिका, १३.२०
५. राम चन्द्रिका, १३.२१
६. राम चन्द्रिका, १३.२६

जिस प्रकार नारद के परामर्श से अज्ञान रूपी अन्धकार तथा विलाप का नाश हो जाता है उसी प्रकार शरद् ऋतु में वर्षा-जन्य अंधकार, ताप तथा अकर्मण्यता का नाश हो जाता है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री व्यक्ति को उचित मार्ग की ओर प्रेरित करती है उसी प्रकार शरद् ऋतु भी पथिक को उचित मार्ग प्रदर्शन करती है ।

वर्षा और शरद् के उपदेशात्मक वर्णनों में केशव स्पष्टतया 'श्रीमद्भागत' से प्रभावित दिखाई देते हैं। इन दोनों कालों में कवियों ने वर्षा तथा शरद् से नीति की शिक्षा तथा उपदेश ग्रहण किये हैं।

हनुमान की लगाई हुई आग सम्पूर्ण लंका को जला रही है। अग्नि की उत्ताल ज्वालाओं से पीड़ित होकर पशु-पक्षी इधर उधर भागने लगे। कवि भागते हुए पशु-पक्षीयों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है—

> बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
> छुद्र ज्यौं विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥[1]

जिस प्रकार कष्ट पड़ने पर नीच मनुष्य निर्लज्ज होकर मित्रों को छोड़कर भागने लगते हैं उसी प्रकार आग लगने पर पशु-पक्षी लंका को छोड़ भागने लगे।

समुद्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यह सागर किसी सन्त के हृदय के समान है। जिस प्रकार सागर में हरि का वास है उसी प्रकार सन्त के हृदय में भी—

> सन्त हिया कि बसैं हरि सन्तत शोभ अनन्त कहे कवि को है।[2]

यह सागर किसी खल के समान है क्योंकि जिस प्रकार खल हृदय लोभ, क्षोभ, क्रोध, मोह आदि कुत्सित भावनाओं से परिपूर्ण रहता है उसी प्रकार सागर भयंकर तिमिंगल, मच्छादि के समूह से पूर्ण रहता है। जिस प्रकार महापातकी धनवान व्यक्ति के पास कोई सहायता लेने नहीं जाता उसी प्रकार जल युक्त होकर भी कोई सागर के पास जल लेने नहीं जाता—

> जाल काल करालमाल तिमिंगलादिक सों बसै।
> उर लोभ छोभ विमोह कोह सकाम ज्यों खल को लसै।
> बहु सम्पदा युत जानिये अति पातकी सम लेखिये।
> काउ मांगनो अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिये ॥[3]

सारिकादि सखियाँ प्रभाती गाकर राम को जगाती हैं। सूर्योदय होने पर नक्षत्रों के तेज को मंद होते देख वह कहती हैं—

> गगन उदित रवि अनन्त, शुक्रादिक जोतिवंत,
> छन छन छबि छीन होत, लीन पीन तारे ।

१. राम चन्द्रिका, १४.५   २. राम चन्द्रिका, १४.४१
३. राम चन्द्रिका, १४.४२

मानहु परदेश देश, ब्रह्मदोष के प्रवेश,
ठौर ठौर ते बिलात जात भूप भारे ॥[1]

शुक्रादिक नक्षत्रों का लोप होना ऐसा प्रतीत होता है जैसे ब्रह्म हत्या के पातक से देश अथवा परदेश में स्थित बड़े-बड़े राजा लुप्त हो जाते हैं।

आकाश में अरुणोदय को देखकर केवल दो एक नक्षत्र रह गए हैं जैसे कलि-काल आने पर दो एक सन्त दिशान्तरों में रह जाते हैं। बिना रात्रि के चन्द्रमा दीन दीखता है जैसे प्रवीन स्त्री रहित कोई पुरुष। सूर्य के भय से निशाचरों के समान अंधकार का नाश हो गया है—

अरुण तरणि के विलास, एक दोय उडु अकास,
कलि के से सन्त ईश, दिशन अन्त राखैं।
दीखत आनंदकन्द निशि बिनु दुति हीन चन्द,
ज्यों प्रवीन युवति हीन, पुरुष दीन भाखैं॥
निशिचरचय के विलास, हास होत हैं निरास,
सूर के प्रकास त्रास, नासत तम भारे।[2]

कवि बाग का वर्णन कर रहा है। बाग में कोयल कोमल स्वर से इस प्रकार बोल रही है मानों ज्ञानियों के ज्ञान कपाट को कुंजी से खोल रही हो—

कोयल कोकिल के कुल बोलत। ज्ञान कपाटे कुची जनु खोलत॥[3]

उपरोक्त प्रसंगों में यद्यपि केशव ने प्रकृति का ही वर्णन किया है परन्तु उन का केन्द्र उपदेश भावना ही है। केशव ने प्रकृति के सुन्दर और असुन्दर दोनों रूपों से उपदेश ग्रहण किया है। इन उद्धरणों में उपदेश की प्रधानता रहते हुए भी प्रकृति के प्रति उनका अनुराग है। इनमें अलंकारों के प्रति भी कवि का विशेष आग्रह नहीं है और वह हिन्दी काव्य प्रेमी का 'श्रीमद्‌भागवत' की प्रकृति वर्णना प्रणाली का परिचय बड़ी कुशलतापूर्वक देने में समर्थ हो सका है।

प्रकृति में परम सत्ता के दर्शन—प्रकृति के मानवीकरण में कवि प्रकृति में मानवी चेतना का प्रतिबिंब देखता है परन्तु कभी यह समस्त प्रकृति में परमसत्ता की छाया देख कर उसे परम शक्ति द्वारा संचालित भी देखता है। गीता में कृष्ण स्वयं कहते हैं—

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्
मरीचिमरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशि: ॥[4]

'आदित्यों में मैं विष्णु हूँ, ज्योतियों में जगमगाता सूर्य हूँ, वायु में मरीचि हूँ और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।' मध्य काल के भक्त कवियों ने सकल संसार को परम सत्ता के

---

१. राम चन्द्रिका, ३०, १८
२. राम चन्द्रिका, ३०.२०
३. राम चन्द्रिका, ३२, ३
४. गीता, १०.१०.२१

सौन्दर्य से पूर्ण माना। उसकी दृष्टि वक्र होते ही समस्त पृथ्वी कांप उठती थी और प्रसन्न होने पर वसुधा का कण-कण खिल उठता था। 'रामचन्द्रिका' में यद्यपि यह भावना सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त नहीं है परन्तु कहीं-कहीं उसकी झलक मिल जाती है। कथारंभ करते ही केशव ने सम्पूर्ण विश्व को राम की परम सत्ता से प्रतिभासित होते हुए कहा है—

जगत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छंद
रामचंद्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छंद ॥[1]

राम के भ्रू-विलास से समस्त प्रकृति का संचालन होता है। जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं प्रकृति कोमल रूप धारण कर लेती है। उनकी शक्ति से जलहीन सरोवरों में जल आ जाता है और मुरझाई लताएँ लहलहा उठती हैं—

तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत केशोदास,
पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहो।
तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखि कै रहे,
ते बाग फूलि फूलि क समूल सूल खंड ही।
चित्त चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत,
हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं।
जहीं जहीं बिराम लेत राम जू तहीं तहीं,
अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं।[2]

नीरव और निर्जन दण्डकारण्य वन राम-सीता के प्रविष्ट होते ही उपवन के समान सुन्दर हो जाता है—

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे कोकिल कुल कुलरव बोलैं
अति मत्त मयूरि, पिय रस पूरी, वन प्रति नाचति डोलैं
सारो शुक पंडित, गुन गन मंडित, भावनमय अरथ बखानैं
देखे रघुनायक सीय सहायक, मनहुँ मदन रति मधु जानैं।[3]

पृथ्वी के नियंता के रूप में राम स्वयं अपनी शक्ति का वर्णन इस प्रकार करते हैं। प्रथम अवसर पर परशुराम को सचेत करते हुए कहते हैं—

नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते घर डारौं
सप्त सिंधु मिलि जाहि होइ सबही तम भारो ॥[4]

---

१. रा० च०, १.२१
२. राम च०, ९.३६
३. राम च०, ११.१७
४. राम च०, ७.४२

और दूसरे अवसर पर लक्ष्मण को शक्ति लगने पर कहते हैं—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउं इन्द्र अब।
विद्याधरन अविध करौं बिन सिद्धि सिद्धि सब।
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥[१]

केशव ने परब्रह्म परमात्मा के निगुर्ण रूप को न मान उसके सगुण रूप को ही प्रश्रय दिया है। इसलए उनका राम 'नैनां की कोठरी' में बंद न होकर सम्पूर्ण सृष्टि व्याप्त है। समस्त प्रकृति में उसकी छाया और उसमें समस्त प्रकृति सृजन एवं संहारक शक्ति निहित है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'रामचन्द्रिका' में प्रकृति के प्रायः सभी रूपों का वर्णन विस्तार अथवा संक्षेप में मिल जाता है। केशव के समय तक प्रकृति वर्णन की जितनी भी प्रणालियाँ प्रचलित थीं उन्होंने उन सब को 'रामचन्द्रिका' रूपी सूत्र में एक साथ पिरोकर रख दिया है। संस्कृत साहित्य में सबसे अधिक पद्धतियों में प्रकृति वर्णन करने वाले कवि वाण ही थे परन्तु केशव ने उनसे भी आगे बढ़ कर 'रामचन्द्रिका' में उनकी तथा परवर्ती सभी कवियों की शैलियों को समन्वित कर 'रामचन्द्रिका' के रूप में एक नवीन प्रयोग किया। काव्य रीतियों के अतिरिक्त केशव ने उसमें पौराणिक रीतियों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है।

अधिकांश राम कवियों ने प्रकृति का वर्णन बहुत कम किया है, विशेष-रूप से भक्त कवियों को तो इस क्षेत्र में बहुत ही कम अवकाश मिला है। राम के पर्याप्त समय तक वन में रहने के कारण वन-प्रकृति की ओर कवियों की दृष्टि गई है परन्तु नगर-प्रकृति का चित्र बहुत कम कवियों ने खींचा है। केशव ने राम भक्त कवियों के अनुकरण पर वन-प्रकृति तथा अन्य कवियों के अनुकरण पर नगर प्रकृति का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रसंग में उन्होंने कृत्रिम उपकरण जैसे कृत्रिम सरिता, कृत्रिम पर्वत आदि भी सम्मिलित कर लिए हैं। संस्कृत में 'क्रीड़ा शैल' के नाम से कृत्रिम पर्वत का वर्णन बहुत हो चुका था।

यह सच है कि केशव ने स्वतंत्र रूप से पक्षियों के कलरव, पुष्पों की मुसकान, निर्झरों के गान तथा वर्षा की रिमझिम का गान नहीं सुना है परन्तु अन्य काव्यों में प्रकृति के इन मनोरम हृदयों को देखकर उनका मन मयूर अवश्य नृत्य कर उठा है। केशव का प्रकृति चित्रण उनके स्वतंत्र निरीक्षण का परिणाम नहीं, बल्कि अगाध ज्ञान तथा असीम अध्ययन का ही फल है। वह प्रकृति के नहीं, प्रकृति के वर्णना के कवि हैं और इसमें वह पूर्ण सफल हैं।

---

१. राम च०, १७.४६

'रामचन्द्रिका' में चरित्र-चित्रण

राम कथा सम्बन्धी विपुल साहित्य रचना को देखकर यह संदेह नहीं रह जाता कि केशव के पूर्व राम-कथा का इतना प्रचार हो चुका था कि कथानक में तारतम्य न रहने पर भी पाठक अथवा श्रोता उसके विश्रृंखल सूत्रों को स्वयं जोड सकता था। विभिन्न कवियों के हाथों राम कथा इतनी विस्तृत हो चुकी थी कि उस के सभी अंशों को एक ही काव्य में एकत्रित करना असंभव हो गया था। इसलिए कवि अपनी रुचि के अनुसार ही प्रसंगों की उपेक्षा करते थे अथवा उनको विस्तार या संक्षेप में वर्णन करते थे, परन्तु इससे मूल कथा अथवा उसके पात्रों की मूल विशेषताओं में कोई अन्तर नहीं आता था। जब तक भारतीय जनता ने राम को विष्णु अथवा परब्रह्म का अवतार स्वीकार नहीं किया था तब तक उसके विश्वास को स्थायित्व देने के लिए भक्त कवि राम तथा रावण के जन्म कारणों की अनेक कथाएँ कहते रहे परन्तु जब सम्पूर्ण जनता ने एक स्वर से राम को परब्रह्म का रूप स्वीकार कर लिया तब इसकी भी आवश्यकता नहीं रह गई थी। अतः 'रामचन्द्रिका' में राम कथा के कतिपय प्रसंगों तथा अवान्तर कथाओं का अभाव मिलता है।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' के पात्रों की विशेषताएँ अनेक पूर्ववर्ती राम-काव्यों से चुनी हैं। उन्होंने यद्यपि अपने मूल कथानक को 'वाल्मीकि रामायण' से ही लिया है परन्तु पात्रों के चरित्र चित्रण में वह अन्य काव्यों से भी प्रभावित हुए हैं। स्पष्ट ही उन पर 'रामचरितमानस' के पात्रों का कोई प्रभाव नहीं है। अधिकांश आलोचकों का मत है कि केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम कथा के पात्रों का विकृत रूप प्रस्तुत किया है तथा अपनी शृंगारी मनोवृत्तियों को उन पर आरोपित कर राम और सीता को रीतिकालीन नायक तथा नायिका बना दिया है परन्तु 'रामचन्द्रिका' के आधार ग्रंथों का अध्ययन करने से यह मत भ्रामक सिद्ध होता है। केशव के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा होने का मुख्य कारण यही है कि आलोचकों ने केशव का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से न कर तुलसी की तुलना में किया है। 'रामचरितमानस' पौराणिक महाकाव्य है और उसकी रचना का उद्देश्य भिन्न है इसलिए उन्हीं ग्रंथों का आधार लेने पर भी 'मानस' तथा रामचन्द्रिका' के पात्रों का विकास विभिन्न दिशाओं में हुआ है। तुलसी में आदर्श भावना का आधिक्य है अतः उनके पात्र यथार्थ से ऊपर आदर्श पात्र हैं परन्तु केशव के पात्र अपनी पूर्व विशेषताओं के कारण यथार्थ लोक के वासी हैं। केशव ने अपने पूर्ववर्ती राम काव्यों के पात्रों को ही 'रामचन्द्रिका' के पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया है इसलिए हम 'रामचन्द्रिका' के पात्रों के साथ उसके आधार ग्रन्थों के पात्रों की विशेषताओं का साथ-साथ विवेचन करते चलेंगे।

राम—पुराणों तथा 'अध्यात्म रामायण' के अनुकरण पर 'रामचन्द्रिका' के राम परब्रह्म परमात्मा के साक्षात् रूप हैं जिन्होंने धरा को रावण आदि राक्षसों से मुक्त करने के लिये लोक में मानव का रूप धारण किया है परन्तु उन्होंने राज परि-

वार में जन्म लिया है अतः उनके समस्त कार्यों में राजकीय मर्यादा है। केशव के बहुत पूर्व वाल्मीकि राम का बड़ा ही विशाल चित्र अंकित कर चुके थे। 'रामचन्द्रिका' के राम का विकास मुख्य रूप से 'वाल्मीकि रामायण', 'हनुमन्नाटक', 'अध्यात्म रामायण' तथा 'प्रसन्नराघव' की छाया में हुआ है।

रामायण में दशरथ अपनी प्रतिज्ञानुसार भरत को राज्य देने को बाध्य हैं परन्तु राम में अतिशय प्रीति होने के कारण वह राम को राज्य देना स्वीकार करते हैं। उस समय भरत अपने मातामह के घर हैं। वाल्मीकि ने जिस राम का चित्रण किया है वह महापुरुष राम हैं भगवान् विष्णु नहीं, अतः उनके चरित्र में महानता के साथ दुर्बलताएं भी हैं। राम इस युवराज पद को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं और भरत की अनुपस्थिति से उन्हें कोई विषाद नहीं होता यद्यपि वह कैकेयी से कौशल्या के समान ही स्नेह करते हैं। इस राज-परिवार में नवयुवती तथा दशरथ के विशेष प्रेम की अधिकारिणी होने के कारण कैकेयी के प्रति कौशल्या में सपत्नी-जन्य ईर्षा है। राम पिता दशरथ की इस दुर्वलता तथा माँ कौशल्या के दुःख से भली-भाँति परिचित हैं। राम के चरित्र का विकास इसी वातावरण में हुआ है और 'रामचन्द्रिका' में इन्हीं राम का चित्र अंकित हुआ है।

'रामचन्द्रिका' में राम कौशल्या को वन जाने के पूर्व पुत्र-धर्म, नारी-धर्म तथा विधवा-धर्म का उपदेश देते हैं। इसका कारण हमें उपरोक्त पृष्ठभूमि का अध्ययन करने से स्पष्ट समझ में आ जाता है। कौशल्या पुत्र भरत से उदासीन है और दशरथ से क्रुद्ध, इसलिए वह राम से साथ चलने का अनुरोध करती है। राम माँ की भावी वेदना की कल्पना कर ही उन्हें उपदेश देकर कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करना चाहते हैं। राम अपने प्रति दशरथ के असीम स्नेह से भी पूर्णतया परिचित हैं अतः उन्हें आशंका है कि इस महान् दुःख को वृद्ध दशरथ अधिक समय तक सहन न कर सकेंगे। केशव ने नारी-धर्म की प्रेरणा वाल्मीकि से लेकर विधवा-धर्म मौलिक रूप से जोड़ दिया है। यहाँ राम की उपदेशक वृत्ति का नहीं, माँ तथा पिता के प्रति स्नेह का ही परिचय मिलता है।

'रामचन्द्रिका' के राम स्वभाव से उग्र हैं। केशव ने राम-परशुराम संवाद के अवसर पर लक्ष्मण को विशेष प्रधानता नहीं दी अतः लक्ष्मण की उक्तियों को भी उन्होंने राम से ही कहलाया है। आरम्भ में राम परशुराम से विनीत व्यवहार करते परन्तु गुरुनिंदा सुनने पर उनका क्रोध उग्र रूप धारण कर लेता है और वह परशुराम को सचेत करते हुए कहते हैं—

> भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं।
> नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं॥
> सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते धर डारौं।
> सप्त सिंधु मिलो जाहीं होइ सबही तम भारो॥

अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर ॥[1]

राम की सहायता लेते समय सुग्रीव ने राम को वचन दिया था कि वह सीता की शोध में राम की सहायता करेगा परन्तु भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण सुग्रीव अपने वचनों को भूल गया। वर्षा काल भी बीत गया परन्तु उसे अपनी प्रतिज्ञा स्मरण न आई। राम स्वार्थान्ध तथा कामी सुग्रीव की उदासीनता से क्रुद्ध हो जाते हैं तथा छोटे भाई लक्ष्मण को आदेश देते हैं—

ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात
कहियो वचन बुझाय के कुशल न चाहो गात।
कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीता सोध कामबश राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख-सम्पत्ति जाते।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते।[2]

सीता के विरह से दुःखी राम जब लक्ष्मण को शक्ति लगने के कारण मूर्च्छित देखते हैं तो उनका दुःख शतगुने वेग से बढ़ जाता है। विभीषण उनको बताते हैं कि यदि लक्ष्मण को सूर्योदय के पूर्व औषधि न मिली तो उनकी मूर्च्छा चिर-निद्रा में परिणत हो जाएगी। राम का शोक क्रोध में परिणत हो जाता है और वह समस्त सृष्टि को नष्ट करने के लिए तत्पर हो जाते हैं—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल ॥[3]

'रामचन्द्रिका' के राम का क्रोधी स्वभाव केशव की देन नहीं है बल्कि यह स्वभाव उनको परम्परा से प्राप्त है। 'वाल्मीकि रामायण' में राम परशुराम पर इसी प्रकार क्रोध करते हैं। वह वाण हाथ में लेकर कहते हैं, यह वाण अब बिना किसी लक्ष्य पर जाए निषंग में वापस नहीं जा सकता अतः इससे मैं आपकी गति अथवा तपोबल द्वारा अर्जित लोकों को नष्ट कर दूँगा—

इमां पादगतिं राम तपोबलसमार्जितान्।
लोकानप्रतिमान् वा ते हनिष्यामि यदिच्छसि ॥[4]

---

१. राम च०, ७.४२ २. वही, १३.२८
३. वही, १९.४६ ४. वाल्मीकि रामायण, बाल कांड, ७६वां सर्ग, श्लोक ७

'अध्यात्म रामायण' के राम भी परशुराम से इसी प्रकार कहते हैं—

उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मवचो मम।
लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥
लोकान्यादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया।
अयं लोकः परो वाथ त्वया गन्तुं न शक्यते ॥[1]

हनुमन्नाटक के राम क्रोध और तिरस्कार से मूर्च्छित होकर परशुराम से कहते हैं—

पुरोजन्मा नाद्यप्रभृति मम रामः स्वयमहं न पुत्रः पौत्रो वा
रघुकुलभुवां च क्षितिभुजाम्।
अवीरं वीरं वा कलयतु जनो मामयमयं मया बद्धो दुष्टो-
द्विजदमनदीक्षापरिकरः ।[2]

'अर्थात् आज से परशुराम मेरे लिए ब्राह्मण नहीं और ब्राह्मण के तिरस्कार करने से मैं रघुवंशियों का पुत्र अथवा पौत्र नहीं। भूलोक के मनुष्य अथवा देवता मुझको वीर जानें या कायर परन्तु मैं इस दुष्ट ब्राह्मण के दमन करने की दीक्षा में बद्धपरिकर हो गया हूँ।'

'हनुमन्नाटक' के राम क्रोधावेश में अपने संयम को भी खो बैठते हैं और परशुराम को 'दुष्ट ब्राह्मण' कहने लगते हैं।

सुग्रीव की प्रतिज्ञा विस्मरण के कारण राम के क्रोध का वर्णन वाल्मीकि ने विस्तार से किया है। क्रुद्ध राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि तुम जाकर सुग्रीव से इस प्रकार कहना—

न च संकुचितः पन्था येन बालि हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः।
एक एव रणे बालि शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥[3]

(जिस मार्ग पर बालि गया है वह अभी बंद नही हो गया है। बालि को तो मैंने अकेला ही मारा था, किन्तु प्रतिज्ञाच्युत होने के कारण सुग्रीव को मैं सकुटुम्ब यमालय भेज दूँगा।)

'अध्यात्म रामायण' में राम सुग्रीव पर क्रोध तो करते हैं परन्तु बाद में लक्ष्मण से कहते हैं कि सुग्रीव को मारना मत, केवल डरा कर ले आना।

---

१. अध्यात्म रामायण, बाल कांड, ७. १७-१८
२. हनुमन्नाटक, प्रथम अंक, श्लोक, ४६
३. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड, ३०, ८१-८२

हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम् ।
बालि यथा हतो मेऽद्यसुग्रोवोऽपि तथा भवेत्.।।[१]

परन्तु 'अध्यात्म रामायण' में राम से अधिक क्रोधी लक्ष्मण हैं जिनके क्रोध को दबाने के लिए राम को समय-समय पर शांत होना पड़ा है ।

लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर 'रामायण' के राम क्रोध करते हैं परन्तु उनका समस्त क्रोध रावण पर है, संसार पर नहीं । उस समय राम अवतार नहीं थे, अतः सृष्टि और प्रकृति पर उनका नियंत्रण नहीं था । बाद में जब वह प्रकृति के नियन्ता हो गए तो किसी भी समय अपने भृकुटि विलास से सृष्टि को नष्ट कर देने की क्षमता उनमें आ गई । इसलिए 'अध्यात्म रामायण' में समुद्र पर क्रुद्ध राम कहते हैं—

पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ।
इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ।[२]

(समस्त प्राणी राम के बाण का पराक्रम देखें । मैं इसी समय नदी-पति समुद्र को भस्म किए डालता हूँ ।)

राम के ऐसा कहते ही पृथ्वी हिलने लगी और आकाश तथा दिशाओं में अंधकार छा गया ।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने राम के जिस उग्र स्वभाव का चित्र अंकित किय है वह राम के चरित्र का क्रमागत विकास है । राम आरम्भ से अदीन थे और अवसरानुकूल उनके क्रोधी रूप के भी दर्शन आदि काव्य से ही होते आए हैं । 'रामचन्द्रिका' के राम का क्रोध अध्यात्म रामायण के राम के समान है जो पूर्ण ब्रह्म का अवतार हैं परन्तु अवसर आने पर उनका क्रोध मानव के ही समान उद्दीप्त हो उठता है ।

राम के चरित्र की दूसरी विशेषता है उनमें शृंगारिक भावनाओं का प्राधान्य । राम के चरित्र में शृंगार-भावनाओं को समझने के पूर्व दो बातें स्मरणीय हैं—प्रथम राम राजा हैं जहाँ भौतिक ऐश्वर्य उनका अनुचर है, दूसरे इस प्रकार की शृंगार प्रधान बातें संस्कृत साहित्य में हेय दृष्टि से नहीं देखी जाती थीं इसलिए अध्यात्म रामायण जैसे पुराण ग्रन्थों में भी राम में यह प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में लक्षित होती है । केशव ने एक पत्नीव्रत तथा पातिव्रत्य की महिमा मानी है परन्तु पत्नी को उन्होंने पति के कार्यों की सहायिका माना है । पति-पत्नी को केशव ने परस्पर दुःख-सुख का साथी मानकर उनके जीवन को कृत्रिम व्यवधानों से बोझिल नहीं बनाया है इसीलिए उनके जीवन में शृंगार की प्रधानता है परन्तु पत्नी के साथ ।

---

१. अध्यात्म रामायण, किष्किंधा कांड, ५.१०

२. वही, युद्ध कांड ३.६५

वैभवशाली राजा राम का रूप भी केशव ने पुरातन ग्रन्थों से लेकर, परन्तु उनके जीवन से अमर्यादित अंशों को निकालकर 'रामचन्द्रिका' में अंकित किया है।

वन-प्रदेश में पैदल चलते-चलते राम तड़ाग अथवा नदी-तट पर तमाल की छाँह में विश्राम करते हैं। राजसुता जानकी इस प्रकार के परिश्रम से अनभ्यस्त हैं अतः राम उनकी परिश्रान्ति को दूर करने के लिए वल्कल वस्त्र से उन्हें हवा करते हैं—

मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को, शुभ वाकल अंचल सो।
श्रम तेउ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सो।[१]

राम के जीवन का यह चित्र केशव ने 'हनुमन्नाटक' से लिया है। हनुमन्नाटक में राम-सीता के जीवन का चित्र अत्यंत असंयमित है और उसमें राम के कार्य-कलापों को देखकर तुलसी के मर्यादाबद्ध राम की कल्पना भी करना कठिन हो जाता है। 'रामचन्द्रिका' के राम के चरित्र का अधिक विवेचन करने के पूर्व 'हनुमन्नाटक' के दो एक दृश्यों में राम का चरित्र देखकर हम उसे अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।

विवाह के पश्चात् राम, सीता और लक्ष्मण के साथ गुरुजनों को प्रणाम कर काम शरों से विद्ध होकर अति कठिनता से तीन प्रहर बिता कर सीता को ले अश्वों का ताड़न करने लगे।[२]

इस अवसर पर नाटककार ने राम-सीता की प्रणय-केलियों का विस्तृत वर्णन किया है। द्वितीय अंक को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी नाटक का अंश न होकर किसी काम-शास्त्र का ग्रन्थ है।

राम कहते हैं कि मुझको अपना वनवास तथा भरत का राज्य स्वीकार करना इतना खेद नहीं देता जितना कमलनेत्री जानकी का पैदल पृथ्वी पर चलना कष्ट देता है।[३]

सीता के पूछने पर कि अब कितनी दूर और चलना है राम व्याकुल होकर अश्रुपात करने लगते हैं—

गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।[४]

राम सीता को थकित जान पूछते हैं—"तुम आरम्भ से ही कृशोदरी हो, कुचभार से विनम्र हो, घर में क्रीड़ार्थ परिश्रम को भी नहीं सह सकती थी और दोलाविधि में भी थक जाती थी। अब इस भयंकर वन में कैसे चल सकोगी?[५]

---

१. राम चन्द्रिका, ६.४४
२. हनुमन्नाटक २.१
३. वही, ३.६
४. वही, ३.१३
५. वही, ३.१४

प्रसन्नराघवकार जयदेव ने भी थकी हुई सीता को राम के हवा करने तथा सीता की स्मिति से राम की क्लान्ति दूर होने का उल्लेख किया है।[१] जयदेव ने राम के थक जाने पर सीता को भी सेवा करते हुए देखा है।

सीता राम को थका जान उनके हाथ से धनुष ले नवीन पत्रों के व्यजन से राम को हवा करती थीं—

श्रान्त कान्तं नवकिसलयैः सानुजं वीजयन्ती।
जाता सीता समुचितविधिप्रक्रियावैजयन्ती॥[२]

केशव ने हनुमन्नाटककार तथा जयदेव के सम्मिलित दृष्टिकोण को लेकर ही राम के सीता-विषयक सम्बन्ध को निर्धारित किया है। 'रामचन्द्रिका' को काव्य के साथ धर्मग्रन्थ बनाने के उद्देश्य से केशव ने इन काव्यों के अश्लील अंशों को छोड़ दिया है। उन्होंने केवल उन्हीं प्रसंगों को लिया है जिनसे राम-सीता में परस्पर प्रीति तथा सहयोग की भावना प्रतिबिंबित होती है। इसीलिए वन के कठिन तथा एकाकी जीवन को सुगम तथा सरस बनाने के लिए दोनों परस्पर एक दूसरे का कष्ट निवारण तथा मनोरंजन करते हैं।

सीता की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् अग्निदेव स्वयं सीता के निष्कलंक चरित्र की साक्षी देकर राम से उन्हें स्वीकार करने का निवेदन करते हैं। उस समय राम उन्हें हँसकर अंक से लगाकर स्वीकार कर लेते हैं—

श्रीरामचंद्र हंसि अंक लगाई लीन्हों।
संसार साक्षि शुभ पावक आनि दीन्हो।
देवानि दुन्दुभि बजाई सुगीत गाये।
त्रैलोक लोचन चकोरनि चित भाये।[3]

विद्वानों ने 'रामचन्द्रिका' के इस प्रसंग को लेकर केशव की कड़ी आलोचना की है। केशव ने यह प्रसंग अध्यात्म रामायण से लिया है। अध्यात्म रामायण पुराण ग्रन्थ है जिसमें हम किसी भी अश्लील भावना की कल्पना नहीं कर सकते। अध्यात्म रामायणकार ने लिखा है—

स्वांके समावेश्य सदानपायिनी।
श्रियं त्रिलोकजननीं श्रियः पतिः।[४]

(अग्निदेव का वचन सुन प्रसन्नवदना जानकी को ग्रहण कर लक्ष्मी-पति राम ने कभी विलग न होने वाली जगज्जननी जानकी को अंक में बैठा लिया) उस समय

---

१. प्रसन्नराघव, ५.२८
२. वही, ५.२९
३. राम चन्द्रिका, २०.१४
४. अध्यात्म रामायण, युद्ध कांड, १३.२३

इन्द्रादि अनेक देवता, राक्षस, वानर और पिता दशरथ सभी वहाँ उपस्थित थे। इसी प्रकार लंका से लौटते समय

आरुरोह् ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ।
अंके निधाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ॥[1]

(इसके पश्चात् राम सकुचाती हुई जानकी को अंक में लेकर उत्तम विमान में आरूढ़ हुए)।

अनेक गुरुजनों तथा सहयोगियों के समक्ष उस प्रकार सीता को निस्संकोच अंक में बैठा लेने से सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समय अध्यात्म रामायणकार उसमें कोई दोष नहीं समझता था और भगवान् के भक्त भी इसे सीता के प्रति राम की अतिशय प्रीति ही समझते थे।

केशव को राम के 'हंसि अंक लगाई लीन्हों' की प्रेरणा अध्यात्म रामायण से ही मिली है और संस्कृत काव्यों से प्रेरित होने के कारण ही सम्भवतः केशव को राम के इस कार्य में कोई दोष नहीं प्रतीत हुआ।

राज्यारूढ़ होने के पश्चात् राम अपने राज्य की शासन-व्यवस्था करते हैं। अवकाश के क्षणों में वह चौगान आदि भी खेलते हैं—

एक काल अति रूप निधान। खेलन को निकरे चौगान ॥[2]

और सीता के साथ वाटिका की सैर करने भी जाते हैं। डा० हीरालाल दीक्षित ने राम के सम्बन्ध में लिखा है "राज्याभिषेक के बाद तो केशव के राम बिल्कुल केशव के समकालीन शृंगारिक मनोवृत्ति रखने वाले राजा-महाराजाओं के रूप में दिखाई पड़ते हैं। कभी चौगान खेलने जाते हैं तो कभी सीता के साथ वाटिका की सैर करने; कभी रनिवास की स्त्रियों के साथ जाकर जल-क्रीड़ा करते हैं, तो कभी दरबार में बैठकर नाच-गाने का आनन्द लेते हैं; कहीं राजश्री के साथ जा रहे हैं तो कहीं प्रीति का हाथ पकड़े हुए, कभी उन्हें सारिका जगाती है तो कभी शुक के साथ छिपे हुए वह रनिवास की स्त्रियों के रूप-रस का पान करते और बड़े चाव से शुक के मुख से सीता की दासियों का नखशिख सुनते हैं।[3]

केशव को रामचरित्र के इस चित्रण में अनेक काव्यों से प्रेरणा मिली है। अध्यात्म रामायणकार ने राम के विलासी राज-रूप का केवल संकेत दिया है, उसका विस्तार से वर्णन नहीं किया—'लक्ष्मीपति भगवान राम सीता, भाइयों तथा मंत्रियों सहित संसारी पुरुषों के समान आचरण करने लगे। उन्होंने अनासक्त होकर भी अपनी प्रिया के साथ नाना प्रकार के भोगों को भोगा'[4]

१. अध्यात्म रामायण, युद्ध, कांड १३.४८
२. रामचन्द्रिका, २९.१
३. केशवदास, पृष्ठ १४१
४. अध्यात्म रामायण, उत्तर कांड, ४.१४

वाल्मीकि रामायण के राम सीता को लेकर अशोक वाटिका में जाते हैं। उस समृद्धिशाली वाटिका में सुन्दर फूलों से भूषित आसन पर सीता को समीप बैठा राम स्वच्छ मैरेय नामक मदिरा पिलाते हैं। उस समय राम नृत्य-गान आदि में मग्न आनन्द लाभ करते रहे। अप्सराएँ, नागिनें, किन्नरी व चतुर एवं रूपवती स्त्रियाँ मद पीकर मस्त हो गईं। नाचने-गाने में निपुण स्त्रियाँ राम के सम्मुख नाचने लगीं। इस प्रकार मन को प्रसन्न करने वाली एवं विभिन्न शृंगारों से सज्जित उन स्त्रियों का गान व नृत्य श्री राम जानका के साथ उत्तम आसन पर बैठे देखते रहे। धर्मात्मा राम पूर्वार्द्ध तक राजकार्य कर दिन का शेष भाग रनिवास में जाकर व्यतीत करते थे।[1]

बंदीजनों द्वारा स्तुति गान होने पर राम के जागने के प्रसंग में भी केशव वाल्मीकि से प्रभावित हैं।[2]

केशव ने राजा राम का जो चित्र अंकित किया है वह उनके समकालीन राजाओं की शृंगारिक मनोवृत्ति नहीं बल्कि मूल प्रेरणा केशव को वाल्मीकि से मिली है। राम की जल क्रीड़ा आदि का वर्णन केशव ने सम्भवतः 'कादम्बरी' की छाया में किया है। राजसत्ता स्वीकार कर वैरागी का जीवन राम के चरित्र को अस्वाभाविक बना देता अतः केशव ने राम के रूप में ऐसे राजा का आदर्श रखा है जो राजसी ऐश्वर्य को भोग कर भी उससे अनासक्त रहे। स्वयं तुलसी भी राम के विरक्त जीवन के प्रति अधिक समय तक आकर्षित न रह सके और 'गीतावली' में उनके राम फाग खेलने तथा हिंडोला झूलने लगे।

'रामचन्द्रिका' के राम वाल्मीकि के अनुकरण पर भरत के व्यवहार के प्रति अधिक आश्वस्त नहीं हैं। उन्हें सन्देह है कि भरत राज्य पाकर कहीं अहंकार के वशीभूत हो उनके प्रियजनों के साथ दुर्व्यवहार न करें। उनका यह संदेह पूर्ण मनोवैज्ञानिक है क्योंकि राजलक्ष्मी किसको पथभ्रष्ट नहीं करती। वह सीता को अपने वनगमन का समाचार सुनाने के बाद कहते हैं कि तुम अपनी रुचि के अनुसार चाहे माताओं की सेवा करने यहीं रहो अथवा पिता जनक के पास चली जाओ—

तुम जननि सेव कहँ रहहु बाम। कै जाहु आजु ही जनक धाम।

लक्ष्मण को भी वह यही शिक्षा देते हैं कि भरत यदि कुछ दुर्व्यवहार भी करें तो मौन भाव से सहन कर लेना—

आय भरत्थ कहाँ धौं करैं जिय भाय गुनौ।
जो दुख देयं तो लै उर गौं यह सीख सुनौ।[3]

---

१. वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, ४२.१-२८
२. ३७वां सर्ग (उत्तर कांड)
३. रामचन्द्रिका, ६.२७

भरत के समान स्नेही भ्राता पर संदेह करना राम की दुर्बलता है। परन्तु अपनी इसी दुर्बलता के कारण राम का चरित्र अधिक मानवीय है। वह अपनी उदारता के कारण सीता को किसी कार्य के लिए विवश नहीं करते, भाई लक्ष्मण के क्रोधी स्वभाव को जानकर वह भरत से व्यर्थ विवाद बढ़ाने को मना करते हैं। 'वाल्मीकि रामायण' के राम भी सीता से कहते हैं 'तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा सुनना नहीं चाहता।' वह भरत की प्रतिक्रिया को जानने के लिए अयोध्या में स्वयं प्रविष्ट होने के पूर्व हनुमान को भेजते हैं। तुलसी के राम भरत पर विश्वास करते हैं—'भरतहिं होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाई।' परन्तु यह तुलसी का आदर्शवाद है जिसके कारण उनके राम मानवी दुर्बलताओं से परे रहकर जनसाधारण को आकर्षित करते हैं।

केशव की मनोवृति के अनुसार 'रामचन्द्रिका' के सभी पात्रों के समान राम वाक्पटु और कूटनीतिज्ञ हैं। 'रामचन्द्रिका' में आद्योपान्त राम का यह वाक्-कौशल दृष्टिगोचर होता है। अपने इसी वाक्-कौशल के द्वारा वह परिस्थिति को अनुकूल बना लेते हैं। राम के तीनों भाई जब क्रोध कर धनुप पर बाण चढ़ा लेते हैं उस समय राम तुरन्त परशुराम के पौरुष की प्रशंसा कर उनका क्रोध शीतल कर देते हैं—

जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्यो।
गिरि बेध षटमुख जीति तारकनन्द को जब ज्यों हर्यो।[१]

भरतादि भाइयों के रोष के कारण जब परशुराम की उत्तेजना शांत नहीं होती तो राम भी क्रुद्ध हो जाते हैं। वह जानते हैं कि जब तक परशुराम से अधिक क्रोध का प्रदर्शन नहीं किया जाएगा तब तक उनका शान्त होना असम्भव है अतः वह परशुराम से कहते हैं—

भृगुनन्द सम्भारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर।[२]

लक्ष्मण को अपने रणपांडित्य का अहंकार न हो इसलिए राम युद्धक्षेत्र में लक्ष्मण की सहायता उस समय तक नहीं करते जब तक लक्ष्मण रावण के युद्ध-कौशल के समक्ष स्वयं को परास्त अनुभव कर राम से सहायता की याचना नहीं करते। लक्ष्मण को दुःखी जानकर ही राम उन्हें आश्वासन देकर रावण का वध करते हैं।[३]

'रामचन्द्रिका' के राम अपने किसी भक्त में अहंकार को सहन नहीं कर सकते, स्वयं अपने स्वभाव में भी नहीं। इसलिए जहाँ वह एक ओर अंगद के अहंकार को लव-कुश द्वारा तथा लक्ष्मण के अहंकार को रावण का पौरुष दिखाकर नष्ट करवाते हैं, वहाँ स्वयं भी अहंकारहीन होकर बालिवध का अपराध स्वीकार कर लेते हैं। वह अपने इस कार्य को संगत नहीं समझते अतः बालि से विनीत भाव से अपना अपराध स्वीकार कर लेते हैं—

---

१. रामचन्द्रिका, ७.२६ २. वही, ७.४२
३. वही, १९।५०-५१

सुनि वासवसुत बल बुद्धि निधान। मैं शरणागत हित हते प्रान।
यहाँ सांटो लै कृष्णावतार। तब ह्वै ही तुम संसार पार॥[१]

राम का चरित्र तुलसी के राम से नितान्त भिन्न है। उसका विकास 'रामायण', 'अध्यात्म रामायण' तथा 'हनुमन्नाटक' की छाया में हुआ है इसलिए उसमें कवि आदर्श की अपेक्षा यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख है। 'रामचन्द्रिका' के राम एक भूचारी नृप हैं जो अपने श्रेष्ठ व्यवहार तथा उच्च भावनाओं के कारण साधारण राजाओं की अपेक्षा महान् हैं। वह परब्रह्म का स्वरूप हैं परन्तु मानवी गुण-अवगुणों के कारण अधिक अनुकरणीय हैं तथा जीवन को लोक के मध्य रहकर ही उन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं।

सीता—केशव ने पत्नी के जिस आदश को मान्यता दी है वह एक अनुगता दासी का नहीं है बल्कि पति के समकक्ष ही उसका स्थान है। वह उसके दुख-सुख की संगिनी और अपने परामर्श द्वारा उसका हित चिंतन करने वाली है इसलिए 'रामचन्द्रिका' में हम सीता को राम की यथार्थ जीवन-संगिनी के रूप में देखते हैं।

'रामचन्द्रिका' में सीता से हमारा प्रत्यक्ष परिचय उस समय होता है जब राम उन्हें अपने वनवास का दुःखद समाचार सुनाते हैं। धीर-स्वभावा सीता इस समाचार को सुन कर तनिक भी विचलित नहीं होती अपितु तत्काल अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेती है। वह न किसी को उलाहना देती है और न किसी पर आक्षेप लगाती है। राम को कर्त्तव्यच्युत होने को भी वह प्रेरित नहीं करती बल्कि 'विपत्ति माँझ नारिये' कहकर स्वयं उनके साथ वनवास के लिए तत्पर हो जाती है। वह राम की अनन्य प्रेमिका है अतः लक्ष्मण के समझाने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राम से विलग वह अपने क्षण भर जीवन की भी कल्पना नहीं कर सकती। वह वन के घोर कष्ट सहने को तैयार है परन्तु राम के बिना अयोध्या अथवा जनकपुरी का समस्त वैभव उसे नीरस प्रतीत होता है। इससे वह लक्ष्मण से कहती है—

केसौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास,
दुःख को निवास विष मुखहू गह्यो परै।
वायु को वहन दिन दावा को दहन,
बड़ो बाड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यो परै।
जीरन जनमजात जोर जुर घोर परिपूरन,
प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुवीर
को बिरह बीर! मो सों न सह्यो परै।[२]

---

१. रामचन्द्रिका, १३,४
२. वही, ६,२६

सीता के पत्नीत्व का उल्लेख करते हुए डॉ० हीरालाल दीक्षित ने कहा है कि केशव सीता के आदर्श पत्नीत्व की रक्षा नहीं कर सके हैं । वनमार्ग में जाती हुई मानस में तुलसी की सीता राम के चरणचिह्नों को बचाती हुई चलती है—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरहि चरण मग सभीता ।

परन्तु इसके प्रतिकूल केशव की सीता सूर्य के ताप से तप्त भूमि के कष्ट से बचने के लिए राम के पदचिह्नों पर ही पैर रखती हुई चलती है ।[1]

श्रीयुत कृष्ण शंकर शुक्ल ने भी 'रामचन्द्रिका' में सीता के इस चित्र को देख कर कहा है कि 'सीता का चित्र कुछ-कुछ राधा के पास पहुँच गया है। केशव की सीता तुलसी की सीता से बहुत कुछ भिन्न हो गई है ।'[2]

'रामचन्द्रिका' के पात्रों का मूल्यांकन करते समय यह स्मरणीय है कि उनके प्रति जो कुछ अन्याय हुआ है वह इसी कारण कि उनकी तुलना सदैव मानस के पात्रों से की गई है । 'रामचन्द्रिका' की सीता भी मानस की सीता से भिन्न है और दोनों कवियों का दृष्टिकोण भी भिन्न है । केशव की सीता राम की समीपता से बल प्राप्त करती है । राम जैसा पति साथ हो तो सीता को किस का भय हो सकता है ? पति के चरणों का अनुगमन करने के कारण ही उन्हें वनमार्ग की तप्त रज भी शीतल प्रतीत होती है । तुलसी की सीता के समान वह सभीत होकर वन नहीं जा रही है वल्कि राम के साहचर्य के कारण उनके लिए धूप शीतल हो गई है, तप्त रज का ताप नष्ट हो गया है और उनके चरण-कमलों का अनुकरण कर यात्रा सुखद हो गई है—

घाम को राम समीप महाबल । सीतहिं लागत है अति सीतल ।।
ज्यों धन संयुत दामिनी के तन । होत है पूषन के कर भूषन ।।
मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहि सीतल लागति ।।
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि । दैजु चले तेहि ते सुख दायनि ।।[3]

वनगमन से पूर्व सीता क्षुधा, तृषा, दावाग्नि, बड़वाग्नि आदि सहर्ष सहन करने की जो बात कहती है, कवि ने इन छंदों में उसी की पुष्टि की है । सीता प्रसन्नवदन हो मार्ग के कष्टों की चिन्ता न कर राम के साथ चलती जाती है, उनके मुख-कमल पर श्रमसीकर झिलमिलाने लगते हैं । परन्तु उन्हें इसकी कोई चिंता नहीं । भक्त-वत्सल राम सीता की इस असीम प्रीति को देख भाव-विह्वल हो उठते हैं । बीच में कहीं-कहीं तमाल की सुखद छाया देख वह क्षण भर विश्राम करने को ठहर जाते हैं। वल्कल से हवा कर वह सीता की क्लान्ति दूर करने का प्रयास करते हैं । राम के

१. केशवदास, पृष्ठ १४१-४२
२.. केशव की काव्य कला, पृष्ठ ७६
३. रामचन्द्रिका, ९।३७-३८

अतिशय प्रेम से सीता का रोम-रोम कृतज्ञ हो जाता है और उनके नेत्रों में जल भर आता है—

श्री रघुवर के इष्ट, अश्रुबलित सीता नयन।[१]

भयंकर वन में सीता राम के प्रेम का पाथेय लेकर ही तो जा रही है फिर उन्हें चिंता क्यों न हो ?

केशव ने राम सीता के उस परस्पर प्रेम का आदर्श 'प्रसन्नराघव' से लिया है। प्रसन्नराघवकार ने भी चण्डतम सूर्य किरणों से तप्त भूमि को प्रियतम के पद्-चिह्नों से अंकित होने के कारण प्रेमार्द्र सीता के लिए शीतल बना दिया है—

प्रेमार्द्रेण प्रगुणितधृतिश्चेतसा शीतशीतान्।
मेने सीता प्रियतमपदैरंकितान्भूमिभागान्॥[२]

राम कान्ता को श्रांत जान वल्कल से हवा करते हैं और सीता की स्मिति से उनकी समस्त चिंता दूर हो जाती है—

कान्तेनाथ प्रणयमधुरं किंचिदाचंचलेन।
श्रांता कांता जनकतनया वल्कलस्यांचलेन।[३]

प्रसन्नराघवकार ने आगे चलकर यह भी कहा है कि सीता भी राम को क्लांत जान उनके हाथ से धनुष ले नवीन पत्रों के व्यजन से हवा करती थी। परन्तु केशव ने शौर्यशाली राम को थकित दिखाना संभवतः उचित नहीं समझा। वह क्षण भर विश्राम करने रुकते हैं तो सीता के लिए, अपने लिए नहीं।

सीता जहाँ राम से अतिशय प्रीति करती है वहाँ उनकी माताओं और भ्राताओं का भी खूब सम्मान करती है। वन में जब भरत सपरिवार राम से मिलने आते हैं उस समय सीता पुत्रों के प्रति माताओं की आतुरता को समझती है अतः वह राम माताओं का चरण स्पर्श करती है परन्तु राम लक्ष्मण के पश्चात्। वन में सीता को न भरत के प्रति आक्रोश है और न कैकेयी के। वह समान भाव से सबका सम्मान करती है—

मातनि कंठ उठाय लगाये। प्रान मनो मृत देहनि पाये॥
आय मिली तब सीय सभागी। देवर सासुन के पग लागी॥[४]

स्नेही पिता का स्वर्गवास, विधवा माताओं की वेदना और भाई भरत के त्याग की स्मृति से यदा-कदा राम का चिंतित अथवा उदास रहना स्वाभाविक था। सीता राम की इस पीड़ा को मन ही मन समझती थी अतएव वह भी यथाशक्ति प्रयास करती थी कि राम का मनोरंजन कर उन्हें चिन्तामुक्त करें। केशव ने इसी

१. रामचन्द्रिका, ६,४५
२. प्रसन्नराघव, ५,२७
३. वही, ५,२८
४. रामचन्द्रिका, १०,२६

कारण वन में सीता के गान-वाद्य का उल्लेख किया है। वह राम का गुणगान भी करती है—

जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना, बहु गुन लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै विविध बजावै गुन गीता ॥[1]

केशव ने सीता की सेवा का वर्णन वाल्मीकि की छाया में किया है यद्यपि वाल्मीकि ने केवल संकेत दिया है, गान वादन का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। संगीत द्वारा राम के कष्ट निवारण करने का सीता का प्रयास केशव की मौलिक कल्पना है, सम्भवतः इसलिए क्योंकि वह राम को अनेक शास्त्रों के साथ संगीत-शास्त्री भी जानते थे और सीता तो संगीतकोविदा थीं ही।

केशव जिस प्रकार राम को भूचारी नृप के रूप में देखते हुए भी उनकी अलौकिक सत्ता में विश्वास करते थे, उसी प्रकार सीता को भी वह रामपत्नी के साथ ही जगन्माता भी मानते थे। कवि की यह भावना अत्यंत स्पष्ट हो उठती है जब हम देखते हैं कि उसने कहीं भी सीता के शारीरिक आकर्षण का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं किया। सीता के चित्र में कहीं तनिक सी भी अश्लीलता न आ जाए इस कारण केशव ने उनके सौन्दर्य की अप्रत्यक्ष व्यंजना की है। स्त्री स्त्री के रूप से उतना प्रभावित नहीं होती जितना पुरुष, इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भली भाँति जानते हुए भी कवि ने कभी ग्राम-वधुओं द्वारा सीता के रूप की प्रशंसा कराई है और कभी शूर्पणखा के द्वारा। सीता की प्रतिद्वंद्विनी होकर भी शूर्पणखा जिस प्रकार सीता के सम्बन्ध में सोचती है, उससे कवि के मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण और सीता का अप्रतिम भाव दोनों ही स्पष्ट हो जाते हैं। सीता का यह चित्र कवि की पवित्र भावनाओं का ही प्रतीक है, उसकी शृंगारिक मनोवृत्तियों का नहीं—

मय को सुता धौं को है, मोहनी है, मोहै मन, आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये।
देहदुति दामिनी हू नेह काम कामिनी हूँ, एक लोक ऊपर पुलोमना बिचारिये।
भाग पर कमला, सुहाग पर विमला हूँ, बानी पर बानी केसोदास सुख कारिये।
सात दीप सात लोक सातहु रसातल की तीयन के गोत सबै सीता पर वारिये।[2]

सीता के निष्कलंक देवी चरित्र में केवल एक ही स्थान पर कालिमा है, जब लक्ष्मण को वह राम की सहायता से विमुख जान कठोर वचन कहती हैं। इसका परिणाम उन्हें जीवन-पर्यन्त भोगना पड़ा है परन्तु इससे सीता में दोष की अपेक्षा

---

२. रामचन्द्रिका, ११,२७   २. वही, १,२५

उनका पतिप्रेम ही अधिक व्यंजित होता है। पति कष्ट में पड़ा सहायता की पुकार कर रहा हो और वैधव्य अपना विशाल मुँह खोले जब सामने खड़ा हो तो कोई भी पत्नी मानसिक संतुलन को कैसे बनाए रख सकती है—सीता जैसी श्रेष्ठ नारी भी नहीं। सीता की श्रेष्ठता उनकी इन्हीं मानवी अनुभूतियों के कारण है, पाषाणवत् व्यवहार करने में नहीं। वह लक्ष्मण को जो कठोर वचन कहती हैं वह उन्हें राम की सहायतार्थ प्रेरित करने के लिए ही हैं किसी दुष्कामना से नहीं। इस अवसर पर वाल्मीकि ने विस्तार से सीता की कटूक्तियों का वर्णन किया है परन्तु केशव ने केवल संकेत मात्र दिया है—

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूँदि बार बार सीस बीसधा धुनै ॥[1]

सीता के चरित्र में इस मानवी दुर्बलता से परिचय कराने के लिए इतना तो यथेष्ट भी है। इतने से ही सीता का व्यक्तित्व स्पष्टतर और पति के लिए उनका अगाध प्रेम स्वतः व्यंजित हो जाता है। यदि उन्हें लक्ष्मण पर यथार्थ में संदेह होता तो वह अपनी दैवी शक्ति से उन्हें तत्काल शाप दे सकती थीं पर वह केवल अपशब्द कहकर उन्हें जाने के लिए प्रेरित ही करना चाहती हैं, तभी तो रावण के हाथों पड़ कर जब वह करुण क्रन्दन करती हैं तो राम के साथ ही लक्ष्मण को भी स्मरण करती हैं। उन्हें लक्ष्मण के प्रति अपने व्यवहार से स्वयं ग्लानि है इसलिए लक्ष्मण को पुकार कर वह कहती हैं कि सूर्यवंश की लज्जा उसी के हाथ में है। पुत्र कह कर अनजाने ही वह अपने व्यवहार के लिए क्षमा भी माँग लेती हैं। उनका जितना विश्वास राम में है उतना ही लक्ष्मण में भी है, केवल परिस्थिति के कारण उनका विवेक विचलित हो गया था अन्यथा तो वह यही कहती हैं—

हा पुत्र लक्ष्मण ! छुड़ावहु बेगि मोही।
मार्तंडवंश यश की सब लाज तोंही।[2]

सीता की यही दुर्बलता उनकी उच्चता की प्रतीक है जिससे उनका जीवन लोक मानव के अधिक समीप आ जाता है।

केशव ने सीता के विरही जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं कहा है परन्तु जो संक्षिप्त उल्लेख किया है उससे पति से वियुक्त वियोगिनी सीता का चित्र अत्यन्त सुन्दर बना है। पति से दूर रहकर सीता को सांसारिक वैभव के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह गया है। रावण का विपुल ऐश्वर्य उन्हें तनिक भी विचलित न कर सका। अपने वियुक्त जीवन को वह भोगविलास से दूर रख राम नाम जप कर ही व्यतीत करती है—

---

१. रामचन्द्रिका, १२,१८
२. वही, १२,२१

धरे एक बेणी मिली मैल सारी। मृणाली मनो पंक ते काढ़ि डारि।
सदा राम नामै ररै दीन बानी। चहुँ ओर हैं राकसी दुखदानी।[1]

वाल्मीकि और अध्यात्म रामायणकार के अनुकरण पर केवल केशव ने सीता के क्षत्रिय रूप को ही अधिक प्रधानता दी है। रावण के बलप्रयोग की आशंका से सीता भयभीत तो है परन्तु फिर भी उन्होंने अपने क्षात्र रूप को नहीं छोड़ा है। 'अध्यात्म रामायण' में रावण को काम-संतप्त देख सीता भयभीत होती हैं परन्तु फिर धैर्य धारण कर क्रोधयुक्त वचन कहती हैं—

मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा।[2]

'अर्थात् मेरे साथ कौन बलात्कार कर सकता है, क्या सिंह-पत्नी के साथ खरहा कभी बल प्रयोग कर सकता है?'

इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' में रावण के अनेक प्रलोभन देने पर सीता क्रोधित होकर कहती हैं—

तृन बिच देइ बोली सिय गंभीर बानी।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी॥
दशरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यो मूल नासै॥[3]

वह गम्भीर और निर्भय हैं तथा उनका यही गांभीर्य हनुमान के साथ वार्तालाप में भी लक्षित होता है। हनुमान को अकस्मात् देख उनका दुःखी मन शंकित हो उठता है, कहीं वह रावण का कोई गुप्तचर न हो। परन्तु रावण की विशाल नगरी में एकाकी सीता अपनी धीरता तथा निर्भयता से हनुमान से बात करती हैं। पूर्णरूपेण आश्वस्त होने के लिए वह राम के कुछ गुप्त भेद भी पूछती हैं—'कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ।' हनुमान के परिचय देने पर भी वह उस पर पूर्ण विश्वास नहीं करतीं बल्कि तर्कपूर्वक प्रश्न करती हैं—

मोहि परतीत यहि भाँति नहीं आवई
प्रीति कहि धौं सुनर बानरनि क्यों भई।[4]

केशव ने कहीं-कहीं सीता को राम से भी ऊँचा स्थान दिया है। ब्रह्मा जब राम से बैकुण्ठवास का निवेदन करने आते हैं तो राम उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देते। निरुपाय ब्रह्मा सीता की सेवा में उपस्थित होकर कहते हैं—

उत्तर मोहि दियो सुनि सीता। जाकी न जानि परै जिय गीता॥
माँगत हौं बरु मोकहं दीजै। चित्त मे और विचार न कीजै॥
आजु ते चाल चलो तुम ऐसे। राम चलैं वयकुंठहि जैसे॥[5]

---

१. रामचद्रिका, १३।५३
२. अध्यात्म रामायण, अरण्य कांड, ७।४८
३. रामचन्द्रिका, १३।६१-६४
४. वही, १३।७७
५. वही, उत्तरार्द्ध, ३३।१७-१८

जगज्जननी सीता ब्रह्मा की आतुरता देख उन्हें आश्वासन दे देती हैं और ऐसी चाल में तत्पर हो जाती हैं जिससे राम बैकुण्ठ चलने की तैयारी करें।

सीता की इस महत्ता को स्वयं राम भी स्वीकार करते हैं इसी से वह सीता से कहते हैं—

निर्गुण ते मैं सगुण भो, सुनु सुन्दरि तव हेत।
और कछू माँगौ सुमुखि, रुचै जु तुम्हरे हेत।[1]

जो सीता राम के लिये, लोक के लिये अपना सर्वस्व त्यागने को तत्पर हैं उन्हीं त्यागमयी और निष्पाप सीता को जब राम लोकापवाद से बचने के लिए त्याग देते तो सीता का अहंकार जाग उठता है। अपमान से आहत सीता का अन्तःकरण राम के प्रति विद्रोह कर उठता है। राम को यदि उन पर इतना भी विश्वास नहीं था तो अग्नि-परीक्षा का क्या मूल्य था, दूसरे यदि राम लोक-कल्याण के हेतु उन्हें त्यागना भी चाहते थे तो कपटपूर्वक क्यों? केशव ने राम को इस कठोरता के लिए कभी क्षमा नहीं किया है, इससे उनकी सीता में भी राम के प्रति आक्रोश है। वाल्मीकि ऋषि के सीता से परिचय पूछने पर वह उनसे राम का कोई उल्लेख नहीं करतीं, केवल 'दशरत्थपुत्रकलत्र' ही कहकर रह जाती हैं। निर्दोष सीता को यह भी ज्ञात नहीं है कि उनके किस दोष के कारण पति ने त्यागा है। उनका यह आक्रोश चरम सीमा पर पहुँच जाता है जब वह अपने पुत्रों को भी उनके पिता का नाम नहीं बतातीं। पिता के नाम से भी अपरिचित जब लव-कुश दोनों राम-सेना को पराजित कर लौटते हैं तो सीता का राम के प्रति प्रेम पुनः बलवान हो उठता है। वह पुत्रों को अपशब्द कहती हैं तो कुश उत्तर देता है—

राम पिता कब मोहि सुनायो।[2]

परन्तु सीता का नारी-हृदय राम के इस अन्याय पर भी उन्हीं के प्रति आसक्त है। अपने इसी पातिव्रत्य की अतुल शक्ति के बल पर ही वह सम्पूर्ण राम-सेना को जीवन-दान देती हैं। घर आकर सुत सहित सासुन के पग लगकर एक बार फिर परिवार में सुख का अजस्र स्रोत प्रवाहित कर देती हैं। राम के उनको पुनः स्वीकार कर लेने पर उनके मन का कलुष धुल जाता है और वह राम के कार्यों को आगे बढ़ाने में पुनः तत्पर हो जाती हैं।

केशव ने सीता के जीवन का जो चित्र अंकित किया है वह एक शृंगारी नायिका का नहीं है बल्कि पति की वास्तविक सहधर्मिणी का है जो पति के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानती है। वह एक क्षत्राणी रानी है जिसमें क्षत्रियोचित दर्प, वीरता और क्षमा सभी उदात्त गुणों का समन्वय है।

---

१. रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध ३३।२२
२. वही, उत्तरार्द्ध ३१।५

रावण—केशव ने जिस प्रकार राम के रूप में महाकाव्य के उपयुक्त नायक की कल्पना की है, उसी प्रकार रावण के रूप में प्रतिनायक की भी कल्पना की है। रावण में राम का प्रतिद्वन्द्वी होने की पूर्ण क्षमता है और वह एक योग्य प्रतिनायक है। वह उच्च कुलोत्पन्न, वीर और विद्वान् है, परन्तु उद्धत स्वभाव होने के कारण खली है। केशव ने उसके ऐश्वर्य का वर्णन अत्यन्त उदारतापूर्वक किया है और उसका पराभव केवल नायक के ही हाथों से करवाया है।

रावण वाक्पटु और नीति-कुशल है। रामचंद्रिका में उसके दर्शन सर्वप्रथम तब होते हैं जब वह सीता के स्वयंवर में जनकपुरी आता है। अनेक विशिष्ट व्यक्तियों से पूर्ण सभा-भवन में प्रविष्ट होते ही रावण बड़े विश्वासपूर्वक सुमति से कहता है—

शंभुकोदंड दै । राजपुत्री कितै ।
टुक द्वै तीन कै । जाहूँ लंकाहि लै ।[1]

अपने बाहुबल पर उसे पूर्ण विश्वास है, इसी से सभा में वह किसी की ओर ध्यान नहीं देता। जिस रावण के पराक्रमी भुजदंडों ने वज्र का गर्व तोड़ डाला, जिन्होंने इन्द्र को जीत लिया, वरुण के अखंड-पाश को तोड़ डाला, चन्द्रमा ने जिनकी वंदना की, जिन्होंने निमिषमात्र में काल-दंड को भी खंडित कर डाला उनके लिए शिव-धनुष तो कमलनाल के समान कोमल था।[2]

रावण के धनुष तोड़ने की सामर्थ्य में राजसभा में किसी को भी संदेह नहीं है। उसकी वीरता विश्वविश्रुत है तभी तो विमति सिर धुनकर कहता है—

रावण बाण महाबली जानत सब संसार ।
जो दोऊ धन करषिहैं ताको काह बिचार ।[3]

परन्तु वीरता के साथ रावण उद्धत है, उसमें विनय का अभाव है। वह बिना धनुष तोड़े ही सीता का पाणिग्रहण करना चाहता है, कम-से-कम एक बार सीता-दर्शन की लालसा तो है ही, जिससे उसे देखने के बाद वह निश्चय कर सके कि इस राजसुता के लिए इतना परिश्रम करना उचित भी है अथवा नहीं।

राजसभा तिनुका कर लेखौं । देखि कै राजसुता धनु देखौं ।[4]

रावण आत्मप्रशंसक भी है। संसार उसके शौर्य से परिचित है, परन्तु फिर भी वह आत्मप्रशंसा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता। वह कहता है कि जब मैंने पिनाक को उसके स्वामी शंकर और उनके वास-स्थान कैलाश सहित हाथों पर उठा लिया तब अकेले इस पिनाक की क्या शक्ति है—

---

१. रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, ४।४
२. वही, पूर्वार्द्ध, ४।६
३. वही, पूर्वार्द्ध ४।१८
४. वही, पूर्वार्द्ध ४।२०

आयुध सघन सर्व मंगला समेत शर्ब। पर्वत उठाय गति कीन्हीं
है कमल की।[१]

रावण धनुष उठाने में पूर्ण समर्थ है और तत्पर भी है, इसी से कवि उसे सभा-भवन से बाहर भेजने के लिए कोई कारण खोजता है। वह इस विशाल जन-समुदाय के समक्ष उसकी पराजय भी दिखाना नहीं चाहता और सीता पर उसका अधिकार भी उसे अभीष्ट नहीं है। रावण जैसे महान् व्यक्ति की पराजय कवि केवल नायक राम के हाथों ही करवाना अधिक उपयुक्त समझता है। रावण अपने किसी प्रिय व्यक्ति की आर्त-पुकार सुन सभा के बाहर चला जाता है और इस प्रकार परि-स्थिति की विषमता बच जाती है। वह सीता के दर्शन भी नहीं कर पाता है, अन्यथा सीता में उसकी आसक्ति का श्रीगणेश यहीं से हो जाता और रावण आरंभ से ही राम का प्रतिद्वन्द्वी हो जाता।

रावण वैभवमयी लंकापुरी का राजा है। उसका वैभव अमरपुरी के वैभव को मात करता है। शत्रु उसके ऐश्वर्य को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उसके व्यक्तित्व में भोग-विलास और शौर्य का अपूर्व समन्वय है। हनुमान जब सीता की खोज करते हुए रावण के प्रासाद में जाते हैं तो देखते हैं कि रावण शयनकक्ष में निद्रासीन है और अनेक सुन्दरी बालाएँ विभिन्न प्रकार से उसकी सेवा कर रही हैं—

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावैं।
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी लै पढ़ावैं। नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं।[२]

रावण के प्रताप की एक झलक हमें उस समय दिखाई देती है जब अंगद रावण के दरबार में प्रविष्ट होते हैं। इन्द्रपुरी के देवगण राजसभा में बैठे सेवा-कार्य में रत हैं। प्रतिहार उन्हें कर्त्तव्यपालन से विमुख देख कठोर शब्दों में कहता है—

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही, न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संगही।
न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं।[३]

रावण के प्रतिहार को जब इन श्रेष्ठ देवगणों को अपशब्द कहने और आज्ञा देने का अधिकार है तो रावण के पराक्रम का अनुमान सहज ही हो सकता है। रावण स्वयं अपने सम्बन्ध में कहता है—

सका मेघमाला शिखी पाककारी।
करै कोतवाली महादंड धारी।
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके।[४]

---

१. रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध ४।२३ २. वही, पूर्वार्द्ध १३।५०
३. वही, पूर्वार्द्ध १६।२ ४. वही, पूर्वार्द्ध १६।२३

रावण कूटनीतिज्ञ और वाक्कुशल राजा है। उसका विचार है कि सीता को प्राप्त करने का केवल एक ही उपाय है कूटनीति। सीता की कृपा का अधिकारी होने के लिए वह राम की निंदा करता है, उनकी निर्धनता का उल्लेख कर अपने विशाल वैभव का लोभ देता है और परस्त्री में राम की आसक्ति बताकर अपनी पटरानी बनाने का आश्वासन देता है। पति की परस्त्री में आसक्ति किसी भी पत्नी के लिए बहुत बड़ा आघात है। इसलिए रावण इसी अमोघ अस्त्र का प्रयोग करता है। यह बात दूसरा है कि सीता के अडिग पातिव्रत्य के समक्ष उसके सभी अस्त्र निष्फल हो जाते हैं—

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न मुंडीनहो को सदा है।
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी।[१]

इसी प्रकार वह अंगद के साथ भी भेदनीति से काम लेता है। अंगद को वीर और नीति-कुशल समझ वह उसे अपने दल में मिलाना चाहता है। अंगद को राम से विमुख करने के लिए वह उसे पिता का प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करता है और अपनी सैन्यशक्ति से उसकी सहायता की प्रतिज्ञा करता है—

तोसे सपूतहि जाय कै वालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संगलै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतै बपु मारे।[२]

व्यक्ति की दुर्बलता को तुरन्त समझने की शक्ति रावण में खूब है। उसकी बुद्धि अत्यंत प्रखर है, परन्तु वह सोचने में बड़ी शीघ्रता से काम लेता है, इसीलिए प्रायः धोखा खा जाता है। सीता और अंगद पर इसी कारण उसकी तर्क-शक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

रावण राम के पास संधि-प्रस्ताव भेजता है, परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य छलपूर्वक परशुराम का कुठार ले लेना है जिससे राम पर से शिव की कृपा का वरद-हस्त उठ जाए। वह मंदोदरी के सम्मुख अपनी इस कूटनीति को स्वीकार कर लेता है—

छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै।[३]

परन्तु राम की दूरदर्शिता के सामने उसकी एक नहीं चलती और उसका प्रयास निष्फल हो जाता है।

---

१. रामचन्द्रिका, १३।५८
२. वही, १६।१५
३. वही, १६।२३

वाक्-पंडित के साथ ही रावण युद्ध-पंडित भी है। युद्धक्षेत्र में राम दल के सभी श्रेष्ठ योद्धा उससे हार मान लेते हैं। वीर-शिरोमणि लक्ष्मण भी रावण के युद्ध-कौशल के सामने परास्त हैं। वह दीन होकर राम से रावण को मारने की प्रार्थना करते हैं—

ठाढो रण गाजत केहूँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्री रघुनन्दन मुनि जन बंदन दुष्ट निकंदन सुख दायक।
अब टरै न टारौ मरै न मारौ हौं हठि हारो धरि सायक।
रावणहिं न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक।[1]

रावण जैसे योग्य योद्धा को देख लक्ष्मण तन मन से लज्जित हो जाते हैं। उनका दर्प चूर हो जाता है। रावण की समता केवल राम से ही है और उन्हीं के हाथों उसका वध भी होता है।

अभिमानी और उद्धत होते हुए भी रावण का व्यक्तित्व प्रशंसनीय है। उसमें जहाँ दानवी कठोरता है वहाँ मानवी कोमलता भी है। रावण की यह कोमलता केवल एक ही बार दिखाई पड़ती है जब उसके प्रिय पुत्र मेघनाथ का वध हो जाता है। पुत्र की मृत्यु होते ही पिता रावण का हृदय विचलित हो उठता है। जिस प्रकार लक्ष्मण के शोक में राम निष्प्राण हो जाते हैं उसी प्रकार मेघनाथ के बिना रावण विकल हो जाता है। मृत-पुत्र के मस्तक को हाथ में लेते समय उसका सारा संयम नष्ट हो जाता है और वह करुण विलाप करने लगता है—

देख्यो सिर अंजुलि में जबहिं। हाहा करि भूमि पर्यो तबही।

× × ×

रोवै दसकंठ विलाप करै। कोऊ न कहूँ तन धीर धरै।[2]

पुत्र की मृत्यु से उसके भी प्राण चलने की तैयारी करने लगते हैं और वह निराश होकर कहता है—

आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल,
चन्द अनंदमय त्रास जग को हरौं।
गान किन्नर करौ नृत्य गंधर्व कुल यक्ष
विधि लक्ष उर, यक्षकर्दम धरौं।
ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहूँ लोक के राज को
जाय अभिषेक इन्द्रहि करौं।
आजु सिय राम दै, लंक कुल दूषणहिं,
यक्ष को जाय सर्वज्ञ विप्रहु वरौ।[3]

---

१. रामचन्द्रिका, १६।५०
२. वहीं, १६।१-२
३. वही, ११।३

दशरथ के पुत्र-दुःख से रावण का पुत्र-दुःख कुछ कम करुण नहीं है। दशरथ भी पिता थे और रावण भी, परन्तु राम का प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण अधिकांश कवियों ने रावण के इस दुःख की ओर दृष्टिपात नहीं किया है। केशव की सूक्ष्म दृष्टि रावण के जीवन के इस अंश पर भी पड़ी है और इससे रावण का चरित्र साधारण से कहीं ऊँचा उठ गया है।

'वाल्मीकि रामायण' में हनुमान रावण से प्रभावित होकर कहते हैं—'इसका कैसा अपूर्व रूप है, कैसा धैर्य है, कैसी क्ति है, कैसी कांति और सर्वांग में कैसे सुन्दर लक्षण हैं। यदि यह अधर्मशील न होता तो इन्द्र भी इसके आश्रय में आकर रहता।'

'रामचन्द्रिका' के रावण के सम्बन्ध में भी हम ठीक यही बात कह सकते हैं। केशव ने रावण का जो चित्र अंकित किया है उससे वह किसी भी महाकाव्य का स्वतंत्र नायक होने की क्षमता रखता है। उसका पराभव परस्त्री-हरण के ही कारण हुआ है, परन्तु राम लक्ष्मण के शूर्पणखा को विरूपीकरण करने के अनुचित कर्म की ओर किसी की दृष्टि नहीं गई है। राम को भगवान् का अवतार मानने के कारण ही रावण का चरित्र दब गया है वैसे किसी भी गुण में राम से कम नहीं है। राम को केवल उनकी उदारता तथा रावण को अपनी उद्धतता के कारण ही क्रमशः नायक और प्रतिनायक का स्थान मिला है और इसी कारण राम-रावण-युद्ध की समता करने वाला युद्ध भारतीय-साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। केशव ने यद्यपि रावण के जीवन के अस्फुट अंश-मात्र ही दिए हैं परन्तु उतने से ही वह महाकाव्य का सफल प्रतिनायक है।

मन्दोदरी—महाकाव्यों में नायक के साथ प्रतिनायक को प्रायः सभी कवियों ने महत्त्व दिया है परन्तु नायिका की तुलना में प्रतिनायिका का चित्रण बहुत कम कवियों ने किया है। केशव की 'रामचन्द्रिका' में हम सीता के चरित्र से जितना प्रभावित होते हैं, मन्दोदरी के चरित्र से उससे कम प्रभावित नहीं होते। मन्दोदरी की परीक्षा सीता से कहीं अधिक कठोर है क्योंकि सीता को अपने पातिव्रत्य के साथ राम के एक पत्नीव्रत पर भी अभिमान है परन्तु मन्दोदरी अपने पति की सीता में निरन्तर आसक्ति देखते हुए भी अपने पातिव्रत्य को अखण्ड रखती है, यों भी रावण अनेक स्त्रियों का स्वामी है।

सीता के समान ही मन्दोदरी पति की सच्ची सहधर्मिणी है। वह गृहस्थ के बाहर राजकार्यों में भी रावण की परामर्शदात्री है और सदैव उसी का हितचिंतन करती रहती है। वह पति के परस्त्री-हरण के दुष्कर्म से अत्यन्त कुण्ठित है। उसका हृदय अपमान से दग्ध है अतएव वह पति से रुष्ट है। उसका यह रोष तब प्रकट होता है जब राम के सेतुबंधन का समाचार सुन रावण एक परामर्शदात्री सभा का आयोजन करता है। प्रहस्त, कुम्भकर्ण आदि के साथ मन्दोदरी भी इसमें सम्मिलित होतीहै

और रावण के सीता-हरण की आलोचना करती है । वह कहती है कि सीता को लाकर तुमने लंका में मृत्यु का बीज बो दिया है। अब राम-लक्ष्मण से युद्ध करना चाहते हो, यदि इतनी ही शक्ति-सामर्थ्य थी तो स्वयंवर में धनुष तोड़कर अथवा लक्ष्मण की धनुरेखा पार कर सीता को क्यों नहीं लाए ?

राम की बाम जो आनी चोराय सो लंका में मीचु की बेलि बई जू,
क्यों रण जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेख न लांघ गई जू,
बीस बिसे बलवंत हुते जु हुती दृग केशव रूप रई जू,
तोरि सरासन संकर को पिय सिय स्वयंवर क्यों न लई जु ।[1]

सीता के वापस करने की बात को लेकर मन्दोदरी रावण को प्रत्येक उपयुक्त अवसर पर समझाती है, परन्तु कभी कलह नहीं करती और न ही विभीषण के समान धोखा देती है। उसका प्रयास सदैव यही रहा है कि रावण सीता को वापस कर युद्ध समाप्त कर दे और इस प्रकार निरर्थक जनसंहार होने से बच जाए। राम के पराक्रम की कथाएँ उसने भी सुनी हैं जिससे उसे उनकी अलौकिक शक्ति का विश्वास हो जाता है।

मन्दोदरी नीतिशास्त्र से पूर्णतया परिचित है। वह विदुषी है और राजनीति की चालों को भली भाँति समझती है। कुम्भकर्ण पर रावण को रुष्ट होते देख वह तुरन्त परिस्थिति की गम्भीरता समझ लेती है। विभीषण के समान ही यदि कुम्भकर्ण भी अपमान आहत हो शत्रुपक्ष से मिल जाए तो पति का सर्वनाश और भी शीघ्र हो जाएगा, इस आशंका से प्रेरित हो रावण को समझाती है—

देव ! कुम्भकरण को समान जानिये न आन ।
इन्द्र, चंद्र, विष्णु, रुद्र, ब्रह्म, को हरै गुमान ।
राम-काज को कहै जो, मानिये सो प्रेमपालि ।
कै चली न, को चलै न काल की कुचाल, चाल ।[2]

समय प्रतिकूल होने पर कौन निजहित-साधक चाल नहीं चलता, इसी बात को वह शास्त्रों से उदाहरण देकर पुष्ट करती है। वह कहती है कि देव-दानवों के युद्ध में विष्णु प्रतिकूल समय देखकर भाग गए, जिन परशुराम को देख क्षत्रिय राजा नारी-वेष बनाकर भाग जाते थे वही राम के सामने अपने अस्त्र समर्पित कर चले गए । बालि राम से नहीं बचा इसलिए काल के मुख में चला गया, अतः प्रतिकूल अवसर देख निजहित-साधक चाल कौन नहीं चलता ?[3]

रावण को अपने तर्क से प्रभावित देख वह उसे उसके श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल में जन्म का स्मरण कराती है जिससे रावण अपने कार्य को अनुपयुक्त समझ राम से सन्धि कर ले। कुम्भकरण-सा देवर, इन्द्रजीत-सा पुत्र और रावण-सा पराक्रमी स्वामी

१. रामचन्द्रिका, १५।६
२. वही, १८।१४
३. वही, १८।१५

पाकर मन्दोदरी को किसी का भय नहीं है, वह केवल पति के पाप-कर्म से भयभीत है और इसलिए रावण के भविष्य के प्रति आशंकित है। उसका विश्वास है कि यदि रावण सीता को लौटा दे तो राम जैसी कितनी भी शक्तियाँ रावण को जीत नहीं सकतीं। उसका उद्योग केवल परस्त्री-हरण के कारण ही विफल हो रहा है, इसलिए वह रावण से यही अनुरोध करती है कि—

सादर जूझ्यो सुत हितकारी। को गहि है लंका गढ़ भारी।
सीतहि दैके रिपुहि संहारौ। मोहित है विक्रम बल भारौ।[१]

उसका प्रिय पुत्र युद्ध में जूझ गया है और पति पुत्र-वियोग के कारण निराश है। ऐसे समय अपने हृदय पर पत्थर रख वह पुत्रशोक को महत्त्व न देकर रावण को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती है।

रावण को राम के पास संधि का संदेश भेजते देख उसका वीर-रूप जाग्रत हो उठता है। उस समय संधि को वह रावण की कायरता समझती है इसलिए स्वयं युद्ध-क्षेत्र में जाने को वह उद्यत हो जाती है—

दसमुख सुख जीजै राम सो हौं लरो यों;
हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों।[२]

'हनुमन्नाटक' में भी रावण को हतोत्साह देख मन्दोदरी युद्ध की आज्ञा माँगती है—

देवाज्ञां देहि योद्धुं समरमवतराम्यस्मि सुक्षत्रिया यत्।[३]

पत्नी से इस प्रकार प्रेरित हो रावण शतगुने उत्साह से यज्ञ करने में लग गया यद्यपि विभीषण के देश-द्रोह ने उसकी योजना को विफल कर दिया।

मंदोदरी में हास-परिहास की प्रवृत्ति का भी अभाव नहीं है। अंगद जब चित्र-शाला में उसको पकड़ने के लिए घुसता है तब उस दुःख के अवसर पर भी मंदोदरी अंगद को खूब छकाती है। वह उसी दिशा में छिप जाती है जिसको अंगद छोड़ता जाता है। यदि देवकन्या भयभीत होकर मंदोदरी का पता न बता देती तो अंगद को उसका पाना कठिन ही था।[४] मंदोदरी की प्रखर प्रतिभा के सामने स्वयं को अपमानित अनुभव कर अंगद उस पर प्रहार कर उसे कंचुकी रहित कर देता है। रावण पत्नी के इस अपमान को देख क्रोध से तिलमिला उठता है और यज्ञ छोड़ युद्ध-क्षेत्र में राम से भिड़ जाता है।

---

१. रामचन्द्रिका, १९।५
२. वही, १९।२२
३. हनु० ना०, अंक १४, पृ० १९८
४. रामचन्द्रिका, २९।३८

युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए रावण की इहलौकिक जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और मंदोदरी को मिलता है कुलिश-कठोर-वैधव्य का अभिशाप।

मंदोदरी रावण के वीर-रूप की उपासिका है। सीता-हरण के कारण उसे खेद है परन्तु इससे रावण के प्रति उसकी भक्ति में कोई अभाव नहीं आता। रावण भी उसकी प्रतिभा से प्रभावित और प्रीति से मुग्ध है इसी से प्रत्येक कार्य में उसका परामर्श और सहायता लेता है।

इस प्रकार केशव ने 'रामचन्द्रिका' में मंदोदरी के चरित्र को निखार कर रख दिया है। सीता को हम राज्य-कार्यों में राम की सहायता करते नहीं देखते परन्तु मंदोदरी को राजनीति के क्षेत्र में उतारकर केशव ने उसमें उन गुणों की स्थापना भी की है जो सीता में नहीं थे। केशव ने अंगद द्वारा मंदोदरी के कंचुकी रहित उरोजों की वशीकरण-शक्ति का उल्लेख कर उसके अप्रतिम रूप का भी अप्रत्यक्ष रूप से संकेत कर दिया है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने नायिका के साथ ही प्रतिनायिका को भी महत्त्व देकर हिन्दी महाकाव्य को एक नया मोड़ दिया है, एक नवीन-पथ का प्रदर्शन किया है।

भरत—परम्परागत धारणाओं के अनुसार राम के भ्राताओं में लक्ष्मण अपनी कर्मनिष्ठता तथा उग्र स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु केशव ने इस धारणा का खंडन कर 'रामचन्द्रिका' में भरत को अधिक प्राधान्य दिया है। दशरथ की प्रतिज्ञानुसार भरत राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं परन्तु राम में अधिक प्रीति होने के कारण दशरथ राम को राज्य देने का निश्चय करते हैं। राम के वनगमन पर भी भरत ही राज्य-संचालन करते हैं यद्यपि वह राम के प्रतिनिधि ही बनकर करते हैं।

दूसरी ओर राम-कथा में लंकेश रावण का भ्राता विभीषण है जिसके अन्तर में सर्वदा राज्य प्राप्त करने की दुर्दमनीय लालसा लहरें लिया करती है। वह रावण की शक्ति के सम्मुख सिर उठाने का साहस नहीं कर सकता, इसलिए अवसर आते ही शत्रु पक्ष से मिलकर भ्रातृ-द्रोह तथा देश-द्रोह दोनों से नहीं चूकता। विभीषण रावण का भ्राता है परन्तु राम का कृपाभाजन भी है अतएव अधिकांश राम-कवियों ने विभीषण के कुकर्मों पर आवरण डालकर उसे श्रेष्ठ राम-भक्त के रूप में घोषित किया है। केशव ने जहाँ एक ओर विभीषण के दोषों की ओर दृष्टिपात किया है वहाँ दूसरी ओर उसकी तुलना में भरत के चरित्र को रखकर भ्रातृ-प्रेम और देश-प्रेम का अनूठा आदर्श भी उपस्थित किया है।

भ्रातृ-प्रेम हो अथवा देश-प्रेम, केशव ने अंध-भक्ति में विश्वास नहीं किया है। वह अच्छाई के प्रशंसक और बुराई के आलोचक हैं परन्तु निर्माणात्मक ढंग पर। आलोचना के प्रवाह में वह विनाश नहीं चाहते, निर्माण ही चाहते हैं, इसलिए उन्होंने विभीषण की विनाशात्मक प्रवृत्ति की कठोर आलोचना की है और भरत की निर्माणात्मक प्रवृत्ति की प्रशंसा। भरत राम की आलोचना करते हैं भलाई के लिए,

विभीषण रावण की आलोचना करता है स्वयं राज्याधिरूढ़ होने के लिए। अतः भरत का आदर्श अनुकरणीय है और विभीषण का त्याज्य।

निर्माण के लिए संयम और शील जितना आवश्यक है, क्रोध और शौर्य भी उतना ही आवश्यक है, इसलिए भरत में केशव ने दोनों का समन्वय दिखाया है। वह जिस भाई राम के लिए अयोध्या का विशाल राज्य तृणवत् त्याग सकते हैं, परशुराम के विश्वविश्रुत क्रोध का सामना कर सकते हैं, उन्हीं राम को अनुचित मार्ग पर अग्रसर होते देख वह उनकी भी आलोचना कर सकते हैं, जन्मदात्री कैकेयी को भी लांछित कर सकते हैं।

राम-परशुराम-संवाद के अवसर पर भरत के परम्परागत मौन को तोड़ कर केशव ने उन्हें भी लक्ष्मण के समान मुखर बना दिया है। राम धनुष तोड़कर सीता का पाणिग्रहण करके लाये हैं, नव-विवाहिता वधू सीता उनके साथ हैं, ऐसे अवसर पर परशुराम को व्यर्थ विघ्न डालते देख भरत को क्रोध आ जाता है। परशुराम को भाई राम का अपमान करते देख शांत-स्वभाव भरत भी आत्माधिकार छोड़ बैठते हैं और क्रोधित होकर कहते हैं—

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ, बड़पन रखिये, जा हित तूं सब जग जस पावै।
चंदन हू में, अति तन घसिये, आगि उठै यह गुनि सब लीजै,
हैहय मारौ, नृप जन संहरे, सो यश लै किन युग-युग जीजै।[1]

परशुराम के फिर भी रोष करने पर वह भी लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ धनुष पर बाण चढ़ा लेते हैं। भरत क्षत्रिय राजकुमार हैं और उनका यह व्यवहार क्षत्रियोचित ही है।

डा० हीरालाल दीक्षित के कथनानुसार वाल्मीकि तथा तुलसी के राम को भरत की साधुता पर अखंड विश्वास है, किन्तु केशव के राम को भरत के चरित्र पर विश्वास नहीं है।[2] केशव ने भरत पर राम का यह अविश्वास वाल्मीकि की छाया में चित्रित किया है और दीक्षित जी सम्भवतः भूल गये हैं कि वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर इसका संकेत दिया है। 'वाल्मीकि रामायण' में भरत राम के अत्यन्त प्रिय हैं परन्तु फिर भी भरत पर उन्हें पूर्ण विश्वास नहीं है। वनगमन से पूर्व राम सीता से कहते हैं—"तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।" प्रथम रात्रि वन में व्यतीत करते हुए राम लक्ष्मण से कहते हैं—'भरत राज्य पाकर मन में प्रसन्न होंगे इसमें संदेह नहीं।' अयोध्या लौटते समय राम भरत की प्रतिक्रिया जानने के लिए पहले हनुमान को नगर में भेजते हैं—'सब बातें सुनकर भरत के मुख का भाव कैसा होता है, यह अच्छी तरह देखना।'

---

१. रामचन्द्रिका, ७।२२

२. केशवदास, : पृ० १४३

वाल्मीकि के ही समान केशव ने भी राम और भरत का आदर्श और यथार्थ समन्वित रूप प्रस्तुत किया है, तुलसी के समान केवल आदर्श रूप नहीं। लक्ष्मण के उग्र-स्वभाव को समझकर ही 'रामचन्द्रिका' के राम उसको भरत द्वारा दिए जाने वाले कष्टों को मौनभाव से सहन करने की शिक्षा देते हैं। सम्पदा पाकर मानव-वृत्ति परिवर्तित होने में क्या देर लगती है, अतः राम का यह संदेह मानव-संदेह ही है कि राज्य पाकर भरत कदाचित् अन्याय न करने लगें। वह लक्ष्मण से यही कहते हैं—

धाम रहो तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ।
मातन के सुनि तात ! सुदीरघ दुख हरौ।
आय भरत्थ कहाँ धौं करैं जिय भाय गुनौं
जो दुख देय तो लै उर गौं वह सीख सुनौ।[1]

भरत जब कैकेयी से पिता की मृत्यु और राम वनगमन का समाचार सुनते हैं तो उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। वह कौशल्या के पास जाकर अपनी निर्दोषिता की शपथ लेते हैं और पिता की प्रेत-क्रिया करके राम को लेने वन चल देते हैं। राम को वन में देख उनका हृदय भर आता है और वह उनसे वापस चलने का अनुरोध करने लगते हैं—

घर को चलिये अब श्री रघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई।
यह बात कहो जल सौं गल भीनो। उठ सादर पाँव परै तब तीनो।[2]

भाई का प्रेमी और राज्य से निर्लिप्त भरत महान् अन्याय कैसे सहन कर सकता है कि वह भोगविलास का जीवन बिताए और अग्रज राम जंगलों में भटकते रहें। राम जब उनके किसी तर्क से अयोध्या चलने को तैयार नहीं होते तो भरत सत्याग्रह का अस्त्र अपनाते हैं। वह मंदाकिनी के तट पर शरीर-त्याग का निश्चय लेकर बैठ जाते हैं—

ताहि मेटि हठ कै रजिहौं जौ। गंग तीर तन को तजिहौं तौ।[3]

'वाल्मीकि रामायण' के भरत भी इसी प्रकार राम के अयोध्या चलने की बात अस्वीकार करने पर अन्न-जल त्याग मरण का निश्चय करते हैं।

स्वयं मंदाकिनी आकर जब भरत को राम के परब्रह्म होने और कैकेयी के निर्दोष होने का विश्वास दिलाती है और राम अपनी पादुका दे देते हैं तभी भरत कुछ आश्वस्त होते हैं, परन्तु फिर भी राम के प्रतिनिधि ही बनकर राज्य करना स्वीकार करते हैं। राम को वनोचित वस्त्रों में देख वह स्वयं भी राजसी वैभव को त्याग देते हैं और नंदीग्राम में तपस्वी का जीवन बिताते हैं—

---

१. रामचन्द्रिका, ९।२७
२. वही १०।३३
३. वही १०।३७

गये ते नंदीपुर बास कीन्हों। सबंधु श्री रामहिं चित्त दीन्हों।[१]

वनवास की अवधि समाप्त होने पर राम हनुमान को भरत की मानसिक प्रतिक्रिया का अध्ययन करने नंदीग्राम भेजते हैं। हनुमान भरत का जो स्वरूप देखते हैं वह भ्रातृ-स्नेह का अद्वितीय उदाहरण है। नंदीग्राम में भरत—

हनुमंत विलोके भरत सशोके अंग सकल मलधारी।
बलका पहरे तन सोस जटागन हैं फल मूल अहारी।
बहु मन्त्रीनगन में राज्यकाज में सब सुख सौं हित तोरे।
रघुनाथ पादुकनि, मन वच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरे।[२]

रामचन्द्र के आगमन का समाचार सुन निष्प्राण भरत उसी प्रकार जीवनमय हो उठते हैं जिस प्रकार अंगार खाने के बाद अचेत चकोर चन्द्रमा को देखकर पुनः सचेत हो उठता है—

जैसे चकोर लीलै अंगार। तेहि भूलि जात सिगरी संभार।
जी उठत उवत ज्यों उदधिनन्द। त्यों भरत भये सुनि रामचंद।[३]

राम के स्नेही यही भरत जब देखते हैं कि राम निर्दोष सीता को केवल जन-प्रवाद के भय से निर्वासित कर रहे हैं तो उनका अंतर राम के प्रति विद्रोह कर उठता है। केशव ने राम के इस दोष के प्रति विद्रोह-भावनाएँ यद्यपि लक्ष्मण और शत्रुघ्न में भी दिखाई हैं पर भरत का रूप सबसे अधिक उग्र है। वह राम से जितना अधिक प्रेम करते है उतने ही शक्तिशाली शब्दों में विरोध भी करते हैं। अधर्म, अधर्म है चाहे उसका कर्ता राम ही क्यों न हो। वह राम से निर्भय होकर इसका उत्तर माँगते हैं—

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग तीता।

राम को निष्प्रभ देख तीनों भाई व्यथित हो जाते हैं परन्तु उनमें से भरत ही साहस कर उनकी उदासीनता का कारण पूछते हैं। कारण जानकर वह राम को समझाते हुए कहते हैं कि सीता पवित्र हैं और उनको त्यागना अनुचित है। खल लोग तो उन्हें वैसे ही निंदित कहते हैं जैसे पाखंडी वेद-निंदा करते हैं—

सदा शुद्ध अति जानकी, निंदत यों खल जाल।
जैसे श्रुतिहि सुभावही पाखंडी सब काल।[४]

फिर अन्य दृष्टान्त देकर कहते हैं—

यमनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़ि है कपिलाहि?
विरहीन का दुख देत, क्यों हर डारि चन्द्रकलाहि!

---

१. रामचन्द्रिका, १०।४४
२. वहीं, २१।२२
३. वही, २१।२५
४. वहीं, ३३।३०

यह है असत्य जु, होहिगो अपवाद सत्य सु नाथ ?
प्रभु छोड़ि शुद्ध सुधाहि पीवत विषहि अपने हाथ।[१]

इतने पर भी भरत जब राम को अडिग देखते हैं तो वह सीता की गर्भावस्था की ओर संकेत करते हैं। वह कहते हैं कि गर्भवती स्त्री का त्याग तो प्रत्येक अवस्था में वेद-विरुद्ध और वर्जित है—

जग की गुरु अरु गुर्बिणी छाँडत वेद विरुद्ध।[२]

जब राम किसी प्रकार मानते नहीं दिखाई देते, तो भरत का हृदय रो उठता है। पिता और माता के कार्यों पर पहले से ही उन्हें खेद था, राम पर अवश्य पूर्ण विश्वास था, परन्तु अब राम जैसे धर्मात्मा भी अन्याय करने लगे तो भरत-सा भाग्यहीन और कौन होगा—

वा माता वैसे पिता तुम सौ भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय।[३]

तुलसी और अहिल्या पवित्र हैं परन्तु सीता त्याज्य यह भरत की बुद्धि किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकती; इसलिए वह राम से इसका कारण जानना चाहते हैं—

तुलसी को मानत प्रिया, गौतम तिय अति अज्ञ।
सीता को छोड़न कहौ, कैसे कै सर्वज्ञ।[४]

भरत और शत्रुघ्न के सम्मिलित प्रयास से भी जब राम नहीं माने तो दोनों व्याकुल होकर वहाँ से चले गए, संभवतः सीता-त्याग का दृश्य वह अपनी आँखों से नहीं देख सकते थे—

और होइ तो जानिये, प्रभु सौ कहा बसाय।
यह विचारि कै शत्रुहा, भरत गये अकुलाय।[५]

लक्ष्मण और शत्रुघ्न को समर में परास्त देख राम विचलित हो उठते हैं। सीता-त्याग के सम्बन्ध में भरत का रोष एक बार फिर मुखर हो उठता है। वह इस सब पराजय का कारण ही सीता को अकारण दुःख पहुँचाना समझते हैं इसलिए कहते हैं कि लक्ष्मण तो सीता-त्याग के बाद से ही अपना जीवन त्यागना चाहते थे, उसको आज उपयुक्त अवसर मिल गया। शत्रुघ्न ने भी लज्जित होकर शरीर छोड़ दिया—

छोड़न चाहत ते तबते तन। पाय निमित्त कर्‌यो मन पावन।
भाइ तज्यौ तन सोदर लाजनि। पूत भये तजि पाप समाजनि।[६]

---

१. रामचन्द्रिका, ३३।३३
२. वही, ३३।३४
३. वही, ३३।३५
४. वही, ३३।३६
५. वही, ३३।४४
६. वही, ३६।३१

भरत स्वयं भी इस पाप-अपवाद से बचने के लिए उस समर-तीर्थ में चले जाते हैं—

हों तेहि तीरथ जाय परौंगो। संगति दोष अशेष हरौंगो।[1]

केशव ने भरत के चरित्र को विशेष रूप से चित्रित किया है। यह भरत स्वतन्त्र-बुद्धि हैं और उनके विचार संयमित हैं। वह धार्मिक-प्रवृत्ति और अधर्म के विरोधी हैं। क्षत्रिय राजा होने के कारण उनके व्यक्तित्व में ओज और शौर्य का प्राधान्य है। वह बुद्धिमान और स्नेहशील हैं तथा राम के योग्य भाई हैं। उनका चरित्र आदि से अन्त तक दोषरहित है, अपने प्रभु राम के वह सच्चे सेवक और मित्र हैं। उनके चारित्रिक गुणों की तुलना में विभीषण का मलिन-चरित्र और भी स्पष्ट हो उठता है।

विभीषण—विभीषण राम का मित्र है, केवल इसी कारण केशव ने उसके चरित्र की वास्तविकताओं पर आवरण नहीं पड़ा रहने दिया है। अनुचित कार्य के लिए जब वह राम को ही क्षमा नहीं कर सके और सीता-त्याग का विरोध सभी भाइयों और हनुमान आदि मित्रों से करवाया तो विभीषण का अपराध तो बहुत बड़ा था। वह भ्रातृ-द्रोही, परिवार-द्रोही और देश-द्रोही सभी कुछ है। इसी से उसका नाम आज तक देशद्रोही का पर्याय बना हुआ है।

विभीषण रावण का छोटा भाई है परन्तु रावण को लंका का अधिनायक देख उसका समस्त अन्तःकरण ईर्ष्या से तप्त है। रावण को अपदस्थ कर किसी भी समय लंका का राज्य प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य है और वह इसी अवसर की खोज में रहता है, रावणकृत अपमान तो केवल एक बहाना है। जहाँ भरत हाथ आए हुए राज्य को भाई के लिए छोड़ देते हैं वहाँ विभीषण राज्य के लिए भाई को सपरिवार मृत्यु के घाट उतरवा देते हैं।

रावण ने सीता-हरण का गुरु अपराध किया है और उसके इस कार्य की निन्दा भाइयों, मन्त्रियों, मित्रों, पत्नी सभी ने की है। सभी ने यथाशक्ति उसे समझाने की चेष्टा की है परन्तु न मानने पर किसी ने द्रोह नहीं किया है, बल्कि अपने प्राण देकर उसके मान की रक्षा की है। रावण के कारण उन्होंने भी राम को शत्रु समझा और इसी भाव से उनसे भरपूर प्रतिशोध लिया। इसके विपरीत विभीषण को प्राणों का मोह था, उसमें राज्य करने की अदम्य लालसा थी, अतएव राम के सेतुबंधन का समाचार सुनते ही वह उनसे जा मिलता है।

रावण राम का विरोध करने के लिए एक परामर्शदात्री सभा बुलाता है। सभी सदस्य उसे सीता को लौटाने की प्रेरणा देते हैं परन्तु अपने भाई बन्धुओं का अपमान कर शत्रुपक्ष की प्रशंसा नहीं करते। विभीषण कहता है—

को है अतिकाय जो देखि सकै। को कुंभ निकुंभ वृथा जो बकै।
को है इन्द्रजीत जो भीर सहै। को कुम्भकरन्न हथ्यार गहै।[2]

---

१. राम चन्द्रिका, ३६।३३
२. वही, १५।६

"जौलौं रघुनाथ न सीस हरौ। तौलौं प्रभु मानहु पाइ परौ।" कहकर वह रावण का भी तीव्र अपमान करता है परन्तु जब रावण क्रोधावेश में उसके पद-प्रहार करता है तो इसी को बहाना बनाकर राम की सेवा में चला जाता है।

विभीषण के चरित्र का सबसे बड़ा कलंक यह है कि यदि वह रावण के कार्य से सहमत नहीं था तो सीताहरण के समय ही उसने उसे क्यों नहीं त्यागा। केशव ने इस बात को अनेक स्थानों पर प्रधानता दी है। विभीषण के राम के पास आने पर जामवन्त कहता है—

रावण क्यों न तज्यौ तब ही इन। सीय हरी जब ही वह निर्घृन।[१]

लव भी विभीषण से यही कहता है—

देव वधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबही तजि ताहि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र सबै कुल छिद्र बतायो।[२]

विभीषण के राज्य के प्रति लोभ को शव ने अत्यन्त विदग्धतापूर्ण कई संकेत दिए हैं। उसने राम को सहायता का वचन ही राम के उसको लंका का सिंहासन प्राप्त कराने के आश्वासन देने के पश्चात् दिया है। रामदल के सभी व्यक्ति विभीषण को लंका का अधिनायक घोषित कर देते हैं और विभीषण भाई के राज्यकाल में ही अपना जयकार सुन हर्ष से फूला नहीं समाता।

रावण अंगद से पूछता है—"लंक नायक को ?" अंगद विभीषण का नाम बताता है। रावण पूछता है—"मोहि जीवत होहि क्यों ?" रावण के जीवन-काल में ही विभीषण ने स्वयं को लंका का स्वामी मान लिया है।

अंगद रावण के मुकुट लेकर आते हैं और राम उन्हें विभीषण के मस्तक पर पहना देते हैं—

राम विभीषण के शिरसि, भूषित कियो बनाइ।[३]

भाई के जीवित रहते ही विभीषण उसके मुकुट धारण कर राजा बन बैठते हैं। राज्य प्राप्त करने की यह लालसा और भी स्पष्ट हो उठती है जब इन्द्रजीत यज्ञ करने जाता है। राम इन्द्रजीत की मृत्यु का रहस्य पूछते हैं और विभीषण निःसंकोच इन्द्रजीत को कामाक्षा देवी के वरदान का रहस्य बता देते हैं।[४]

सोई वाहि हतै कि नर बानर रीछ जो को कोई।
बारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्रा, जीते होई॥[५]

विभीषण ही यज्ञ करते हुए रावण का गुप्त स्थान राम दल को दिखाकर उसका यज्ञ विध्वंस करा देते हैं जिससे रावण की पराजय हो जाती है। राम स्वयं विभीषण के इस ऋण को स्वीकार करते हुए वशिष्ठ जी से कहते हैं—

---

१. रा० चं०, १५।१६ २. वही, ३७।१७
३. वही, १७।१ ४. वही, १८।३१
५. वही, २१।३६

दई मीचु इन्द्रजति की बताय।
अरु मन्त्र जपत रावण दिखाय ।[१]

राम अपने स्वार्थ के कारण विभीषण के भ्रातृ-द्रोह को गुण बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं परन्तु उसका वास्तविक रूप केशव ने लव के शब्दों में दिखलाया है—

सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुवंशिन पाप लगावत हैं।
धिक तो कहँ तूँ अजहूँ जु जियै। खल जाय हलाहल क्यों न पिये ।[२]

विभीषण के साथ रहने के कारण रघुवंशी राम के चरित्र पर भी कालिमा लग जाती है और अप्रत्यक्ष रूप से वह देश-द्रोही के प्रेरक बन जाते हैं।

केशव ने अन्य चरित्रों के ही समान यद्यपि विभीषण का चरित्र भी बहुत विस्तार से वर्णित नहीं किया है परन्तु स्फुट छन्दो में उन्होंने उसके जीवन की यथार्थता को निस्संदेह हिन्दी-जगत् के सन्मुख रखने का प्रयत्न किया है।

तुलसी ने दानव-नगरी में विभीषण को राम का अतिशय प्रेमी बनाकर उनके दोषों को छिपा दिया परन्तु तुलसी के पूर्व अध्यात्म रामायणकार विभीषण की द्रोही प्रवृत्तियों के कुछ संकेत दे चुके थे।

मेघनाद रणभूमि में विभीषण को देखकर कहता है—

इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ।[३]

अर्थात् तुम इस लंकापुरी में ही उत्पन्न हुए हो और इसी में रहकर इतने वयस्क हुए हो। मेरे पिता के सगे भाई हो किन्तु अब तुमने स्वजनों को त्याग कर शत्रुओं का दासत्व स्वीकार किया है।

रावण के होम का धुआँ उठते देख विभीषण व्याकुल हो जाता है। रावण यदि यज्ञ पूरा कर अजेय हो गया तो विभीषण के समस्त स्वप्न धूलि-धूसरित हो जाएँगे यह सोच वह भयभीत हो राम से कहता है—

पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्त्तुं समारभत्।
यदि होमः समाप्तः स्यात्तदजेयो भविष्यति ।[४]

केशव ने विभीषण के देशद्रोह और भ्रातृद्रोह का स्पष्टीकरण यद्यपि 'अध्यात्म रामायण' की ही छाया में किया है परन्तु 'रामचन्द्रिका' में यह 'अध्यात्म रामायण' की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। मेघनाद और रावण विभीषण के सम्बन्धी हैं अतः यदि

---

१. राम च०, २१।३६
२. वही, ३८।२६
३. अध्यात्म रामायण, युद्ध कांड, ६।२३
४. वही, युद्ध कांड, १०।१४

विभीषण की आलोचना करते हैं तो वह इतनी प्रभावपूर्ण नहीं हो पाती जितनी लव की आलोचना होती है।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में केशव ने विभीषण के द्रोह का दर्शन कराकर और उसकी तुलना में भरत के चरित्र को प्राधान्य देकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। भरत राम के सच्चे उपासक हैं परन्तु विभीषण स्वार्थान्ध होकर राम की शरण लेता है। भरत निर्लोभ हैं और राम के लिए प्राण भी त्यागने को तत्पर हैं, विभीषण साकार लोभ है और अपने स्वार्थ के कारण सारे भाइयों और उनके परिवार के प्राण ले लेता है। भरत राम की अनुपस्थिति में उनकी पादुकाएँ रखकर राज्य संचालन करते हैं, विभीषण रावण के जीवन-काल में ही मुकुट धारण कर लेता है। भरत सीता-त्याग की आलोचना करते हैं पर छलपूर्वक शत्रु से नहीं मिल जाते, विभीषण सीता-हरण की नहीं, रावण की आलोचना करता है और शत्रु से मिल जाता है। दोनों के चरित्रों में यही वैषम्य दिखाना केशव का अभीष्ट है और वह इसमें पूर्णतया सफल हुए हैं।

रामचंद्रिका का अंगीरस

महाकाव्य की परिभाषा देते समय रस-प्रवाह के सम्बन्ध में दण्डी ने 'रस-भाव निरन्तरम्' कहकर महाकाव्य में निरन्तर रस-प्रवाह को आवश्यक माना है। यह रस वीर, शांत, करुण, शृंगार आदि नव-रसों में से कोई भी हो सकता है। रुद्रट ने भी 'सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि' कह कर दण्डी के ही मत का समर्थन किया, परन्तु विश्वनाथ ने महाकाव्य में शृंगार, वीर तथा शांत में से किसी एक रस की प्रधानता को महत्त्व दिया—

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।[1]

सम्भव है विश्वनाथ के समय वर्तमान अधिकांश महाकाव्यों में इन्हीं रसों की प्रधानता रही हो जिन्हें देखकर उन्होंने इसी लक्षण को नियमबद्ध कर दिया हो।

केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' में विश्वनाथ के मत का अनुगमन करते हुए, परन्तु उसका पूर्णतया पालन न कर 'रामचन्द्रिका' में वीर, शृंगार तथा शांत तीनों रसों की व्यञ्जना एक साथ करने का प्रयास किया है। 'रामचन्द्रिका' में वीर, शान्त तथा शृंगार रस की संयुक्त अभिव्यक्ति हुई है। साहित्यदर्पणकार ने रसात्मक वाक्य को वास्तविक काव्य माना है। केशव भी रसहीन काव्य को उसी प्रकार निरर्थक मानते हैं जिस प्रकार दृष्टिहीन सुन्दर नेत्र—

ज्यों बिन दीठन शोभिजै, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल।[2]

---

१. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ
२. रसिकप्रिया, १।१६

काव्य में रस की अनिवार्यता मान कर केशव ने नव रसों में शृंगार को प्रधान रस माना है। उनके अनुसार हास्य, करुण आदि आठों रसों की अपेक्षा शृंगार रस ही श्रेष्ठ है, वही उनका नायक है—

नवहु रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि, नायक है सिंगार।[1]

परन्तु केशवदास ने शृंगार रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए भी उसे 'रामचन्द्रिका' का अंगीरस नहीं बनाया है। उन्होंने जहाँ कहीं 'रामचन्द्रिका' में शृंगार रस का वर्णन किया है वहाँ पर शृंगार रस भक्तिपरक है तथा उसमें ऐन्द्रियिकता का आविर्भाव नहीं हो पाया है। 'रामचन्द्रिका' का प्रधान रस है वीर। केशव के सम्बन्ध में हम पूर्व पृष्ठों में कह चुके हैं कि वह स्वयं एक वीर योद्धा थे तथा उन्होंने अनेक युद्धों में भाग लिया था। उनके आश्रयदाताओं के अनुपम शौर्य ने तत्कालीन मुगल सम्राटों के दाँत खट्टे कर दिए थे। 'रामचन्द्रिका' की रचना के समय केशव युवा थे और युवक योद्धा का तप्त लहू उनकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा था। उनकी वीरता का प्रभाव 'रामचन्द्रिका' के प्रत्येक पात्र पर प्रतिबिम्बित होता हुआ दिखाई देता है। वीरत्व ने 'रामचन्द्रिका' के किसी भी पात्र का घोर कष्टों के बीच भी साथ नहीं छोड़ा है। 'रामचन्द्रिका' के नायक राम के शौर्य की तुलना तो सम्पूर्ण विश्व में ही नहीं है। महाकाव्य का अंगीरस निर्धारित करने के लिए उसमें निम्न तत्त्वों का होना आवश्यक है—

(क) काव्य में आदि से अन्त तक उसकी निरन्तर व्याप्ति होनी चाहिए,
(ख) नायक के व्यक्तित्व में उसका प्रमुख स्थान होना चाहिए,
(ग) अन्य रस उसके पोषक रस होने चाहिएँ, तथा
(घ) फल प्राप्ति में अंगीरस को सहायक होना चाहिए।

'रामचन्द्रिका' का प्रधान रस वीर है तथा उसकी व्याप्ति भी काव्य में आदि से अन्त तक हुई है। उसमें वीर के सहकारी रूपों में विशेष रूप से शान्त तथा शृंगार रसों का ऐसा मणि-कांचन संयोग हुआ है कि उसकी छटा देखते ही बनती है। काव्यारंभ में केशव ने अयोध्यापुरी के स्वर्गीय सौन्दर्य का वर्णन किया है। इस वर्णन से ही हमें केशव की प्रवृत्ति का पूर्वाभास मिलने लगता है। कवि कहता है—

पण्डित अति सिगरी पुरी मनहु गिरागति गूढ़।
सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़।
मोहति मूढ़ अमूढ़ देव संग अदिति ज्यों सोहैं।
सब शृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै।

---

१. रसिकप्रिया, १.१६

सबै सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मण्डित।
मनो शची विधि रची विविध विधि वर्णत पंडित।[१]

यहाँ केशव ने वर्णन यद्यपि राम-नगरी अयोध्या का किया है परन्तु इस नगरी में तीनों प्रकार के गुण पाये जाते हैं। इसमें सरस्वती की उपासना कर साहित्य का मनन करने वाले शांत स्वभाव पण्डित बसते हैं, दुर्गा का विकराल स्वरूप दिखाने वाले वीर योद्धाओं की भी निवास भूमि यही है तथा रति एवं कामदेव के समान भोग-विलास में रत रहने वाले स्वरूपवान व्यक्तियों की क्रीड़ास्थली भी यही है। इसलिए यहाँ निवास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र में भी इन तीनों गुणों का समन्वय है।

'रामचन्द्रिका' का प्रत्येक पात्र यद्यपि वीर तथा शृंगार की भावनाओं से परिपूर्ण है तथापि उसके जीवन में वीर रस का प्राधान्य है। शृंगार रस उसके इसी रूप का उत्कर्षवर्धक है, अतः सर्वप्रथम हम यह देखेंगे कि 'रामचन्द्रिका' में वीर रस की व्याप्ति किन स्थलों पर हुई है।

वृद्धावस्था के कारण जर्जर तथा दुर्बल दशरथ से जब विश्वामित्र राम लक्ष्मण की याचना करते हैं तब उस ढलती आयु में भी दशरथ का वीर रूप जाग्रत हो उठता है। दुष्ट राक्षसों से युद्ध करने में वह इस आयु में एक बार भी संकोच नहीं करते तथा विश्वामित्र से तत्काल कहते हैं—

अति कोमल केशव बालकता। बहु दुस्कर राकस घालकता।
हम हौं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै।[२]

रावण और वाणासुर का तो पूरा संवाद ही वीर रस का उदाहरण है। रावण तथा वाणासुर दोनों ही अनुपम वीर हैं जिनका शौर्य जगविख्यात है। रावण वीरोचित उत्साह से परिपूर्ण वाणी में कहता है—

बज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यौ है,
सुपर्व सर्व भागे लै-लै अंगना।
खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु चंदन की,
चन्द्रिका सों कीन्हीं चंद बंदना।
दंडक में कीन्हा कालदण्ड हू का मान,
खंड माना कीन्हीं काल ही का कालखंड खंडना
केशव कोदंड ऐसो खंडे अब मेरे
भुजदंडन की बड़ी है महिमा।[३]

इसी प्रकार रावण के उत्तर से वीर रस की व्यंजना होती है—

---

१. रामचन्द्रिका, १।४७
२. वही, २।१७
३. वही, ४।६

लै अपने भुजदंड अखंड करौ छिति मंडल छत्र प्रभा सी।
जानै को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसासी।[1]

परशुराम का वीर-रूप देखकर सभा भवन में आतंक छा जाता है। केशव का यह वर्णन वीर रस का अत्यंत सुन्दर उदाहरण है। परशुराम के आते ही मस्त हाथी अमत्त हो गए तथा शूरवीर योद्धा अस्त्र-शस्त्र फेंककर अपने-अपने प्राणों को लेकर भाग गए—

मत्त दंत्ति अमन्त ह्वै गए देखि-देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं।
डारि-डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तन त्रान एकहिं नारि भेषन सज्जहीं।[2]

'रामचन्द्रिका' के पूर्ववर्ती कवियों ने प्राय: भरत को अत्यन्त शान्त स्वभाव का व्यक्ति चित्रित किया है, परन्तु केशव ने परम्परा का उल्लंघन कर भरत को स्वाभिमान से पूर्ण तथा वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है। जो भरत अग्रज राम के सम्मुख अनुचर के समान सदैव शान्त तथा विनीत बने रहते थे, वही परशुराम को राम का अपमान करते देख राम के भी पूर्व क्रोधित हो उठते हैं—

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो, बड़पन रखिये, जा हित तूँ सब जग जस पावै।
चंदन हू में, अति तर घसिये, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारो, नृप जन संहरे, सो यश लै किन युग-युग जीजै।[3]

शान्तिदायक चन्दन की लकड़ी को भी जब अधिक घिसा जाता है तो उससे अग्नि की लपटें निकलने लगती हैं, तब यदि शान्त स्वभाव भरत क्रोधित हो उठें तो क्या आश्चर्य है ?

'रामचन्द्रिका' के परशुराम तो साक्षात् वीर रस ही प्रतीत होते हैं—

रघुवीर को यह देखिए रस वीर सात्विक धर्म स्यों।[4]

युद्ध-क्षेत्र में शक्ति लग जाने पर लक्ष्मण मोहित होकर भूमिशायी हो जाते हैं। प्राणप्रिय अनुज को मृत्यु के समीप जान राम जैसे संयमी व्यक्ति का धैर्य भी विचलित हो जाता है परन्तु विपत्ति के इस अवसर पर भी राम का रूप एक वीर योद्धा का है जो अपने भुजबल से संसार को हिलाने की क्षमता रखता है।

इन्हीं वीर-शिरोमणि राम के समक्ष कुम्भकर्ण के वीर-रस सने वचनों को कहलाकर केशव ने वीर-रस का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

---

१. रा० चं०, ४।१२
२. वही, ७।२
३. वही, ७।२२
४. वही, ७।१५

न हौं ताड़का, हौं सुबाहु न मानो। न हौं शंभु को दंड साँचो बखानो।
न हौं ताल बाली, खरै जाहि मारो। न हौं दूषणै सिंधु सूधे निहारो।
सुरी आसुरी सुन्दरी भोग कर्णौ। महाकाल को काल हौं कुंभकर्णौ।
सुनौ राम संग्राम को ताहि बोलौं। बढो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं।[१]

अर्थात् मुझे ताड़का और सुबाहु न समझना, मैं शिव-धनुष भी नहीं हूँ जिसे तुमने सहज ही तोड़ डाला। मैं सप्त ताल, खर और बालि भी नहीं हूँ, जिन्हें तुमने मार लिया। मैं खर दूषण तथा सिंधु नहीं हूँ जिन्हें तुमने बाँध लिया बल्कि मैं महाकाल का काल कुम्भकर्ण हूँ और समर के लिए तुम्हें चेतावनी देता हूँ।

लव-कुश बालक हैं परन्तु फिर भी उनके व्यक्तित्व में वीर-रस का अथाह सागर लहरा रहा है। लव के मूर्च्छित हो जाने से व्याकुल माँ को आश्वासन देता हुआ कुश वीर-भाव से भरकर कहता है—

रिपुहि मार संहारि दल यमते लेहूँ छंडाय।
लवहि मिलै हो देखिहौ माता तेरे पाय।[२]

यदि शत्रु स्वयं यमराज है तो उसको भी मार कर मैं भाई को छुड़ा लूँगा। बालक कुश यमराज से भी सामना करने का साहस रखता है। कुश का हठ बालोत्साह मात्र ही नहीं है बल्कि यथार्थ है क्योंकि दूसरे ही क्षण वह युद्ध-क्षेत्र में राम-दल के अनेक वीर पुंगवों का अभिमान निमिष भर में नष्ट कर देता है। उसका शौर्य देखकर लक्ष्मण भी विमूढ़ रह जाते हैं। समर क्षेत्र में वह लक्ष्मण को ललकार कर कहता है—

न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत। विलोकि तुम्हें रण होऊँ न भीत।
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ।[३]

इसके अतिरिक्त वीर-रस का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण मन्दोदरी की उक्ति में मिलता है। वह रावण पर अत्यन्त क्रुद्ध है। पर-स्त्री का हरण कर रावण ने उसका बहुत बड़ा अपमान किया है परन्तु फिर भी वह उसका पति है। पति को उचित मार्ग पर अग्रसर करना उसका कर्त्तव्य है अतः उसे निराश देखकर वह उत्साहपूर्वक कहती है—

दसमुख सुख जीजै राम सो हौं लरौं यों।
हरि हर सब हारै देवि दुर्गा लरी ज्यों।[४]

---

१. रा० चं०, १८।२२-२३
२. वही, ३५।२६
३. वही, ३६।२७
४. वही, १६।२२

वीर-रस की धारा के साथ-साथ 'रामचन्द्रिका' में आद्योपान्त शृंगार-रस की धारा भी प्रवाहित होती है। 'रामचन्द्रिका' का प्रत्येक पात्र जहाँ वीर भावों से ओत-प्रोत है वहाँ उसके जीवन में ऐश्वर्य तथा शृंगार भावनाओं का भी अभाव नहीं है। अतः 'रामचन्द्रिका' में आदि से अन्त तक वीर-रस के साथ शृंगार-रस की अभिव्यक्ति भी हुई है, जो सर्वत्र मर्यादित है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने राजाओं तथा राज-दरबारों के भोग-विलासमय जीवन का वर्णन किया है परन्तु उनका वर्णन सदैव शिष्ट रहा है तथा उन्होंने कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया है। केशवदास ने इस काव्य द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि रीति निरूपण तथा शृंगार का वर्णन करते हुए भी मर्यादा का निर्वाह किया जा सकता है। केशवदास ने राजा दशरथ के दरबार का वर्णन किया है। उनकी नगरी इन्द्रपुरी के समान वैभवमयी है तथा उनके दरबार में आने वाले व्यक्ति मूर्तिमान भोग-विलास हैं।

आवत जात राज के लोगा। मूरति धारी मानहु भोगा ॥[1]

विश्वामित्र जिस समय अयोध्या में प्रवेश करते हैं उस समय वसंत ऋतु न होने पर भी उन्हें वसंत ऋतु जैसा आनन्द प्राप्त होता है। कोकिल उन्हें रति की सखी तथा काम का सन्देश सुनाती हुई-सी प्रतीत होती है—

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजनि रति की सखि सुवेषनि। मनहुँ बहसि मनमथ संदेशनि।[2]

देवलोक को लज्जित करने वाले दशरथ के दरबार में आगन्तुकों का वैभव देखकर विश्वामित्र मोहित से रह जाते हैं—

देखि के सभा। विप्र मोहियो प्रभा।
राजमंडली लसै। देव लोक को हँसै।[3]

केशव ने राजा जनक को योगी के साथ राजवंत भी कहा है। जनक लौकिक ऐश्वर्य के मध्य रहकर उससे अनासक्त हैं परन्तु उनका जीवन भोगी राजा का ही है—

जन राजवन्त। जग योगवन्त।[4]

चारों राजकुमार वधू सहित जब अयोध्यापुरी में आते हैं, नगर की सुन्दरी नर्तकियाँ उनका स्वागत अपनी नृत्य कला के प्रदर्शन द्वारा करती हैं—

बाजै बहु बाजैं, तारनि साजैं, सुनि सुर लाजैं, दुख भाजैं।
नाचैं नवनारी, सुमन सिचारी, गति मनुहारी सुख साजैं।

---

१. रा० चं०, २।१
२. वही, १।३०
३. वही, २।४
४. वही, ५।२१

बीनानि बजावें, गीतनि गावें, मुनिन रिझावें मन भावें।
भूषन पट दीजै, सब रस भीजै, देखत जीजै छवि छवें।[१]

भरत वन में राम से मिलने जा रहे हैं परन्तु उनके साथ जो विशाल वाहिनी है उससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह राम से युद्ध करने जा रहे हों। राम के विरह में उदासीन भरत को हमने मानस में 'साकेत-संत' के रूप में ही देखा है। अस्तु, हम उनके वीर तथा ऐश्वर्य से युक्त शृंगारी राजकुमार की कल्पना ही नहीं करते। भरत भी राम के ही समान उसी वैभवशाली पिता के प्रिय पुत्र हैं और साथ ही युवराज भी हैं। केशव ने भरत के तीनों ही रूपों का चित्रण किया है। वह वन में जाते हैं तो युवराज की पूर्ण मर्यादा से जाते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि वह राम को अपने साथ लौटा लायेंगे अतः कवि ने यहाँ उनके भावी संत-रूप की कल्पना नहीं की है। वन जाते हुए भरत का चित्र ऐश्वर्य से युक्त राजकुमार का ही चित्र है—

गजराजन ऊपर पाखर सोहैं। अनि सुन्दर ससि सिरोमन मोहैं।
मनि घूंघुर घंटन के रव बाजें। तडितायुत मानहुं बारिद गाजें।[२]

रावण का प्रासाद तो साक्षात् शृंगार ही है। वहाँ तो शृंगार का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मणिखचित शैया पर निद्रासीन रावण सोते-सोते भी तरुणी स्त्रियों का गान-वादन सुनता रहता है।

तत्र हरि रावन सोचत देख्यो। मनिमय पलिका को छवि लेख्यो।
तहं तरुणी बहु भाँतिन भावें। बिच-बिच आवज बीण बजावें।[३]

वीर रस के प्रतीक धनुष बाण हाथ में लिए तथा युद्धक्षेत्र में अंगद लक्ष्मण जैसे वीरों का मान मर्दन करने वाले लव कुश अपने वीर देश में कामदेव का रूप भी प्रतीत होते हैं—

धनु बाण लिये मुनि बालक आये।
जनु मन्मथ के द्वय रूप सोहाये।[४]

शृंगार रस की सबसे विस्तृत योजना केशव ने सीता की दासियों के वर्णन में की है। परम्परा से ऐसे स्थलों पर अश्लीलता का अक्षय भण्डार प्राप्त होने पर भी केशव ने इसमें मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। प्रत्येक अंग का पृथक्-पृथक् वर्णन करने पर भी केशव ने समस्त वर्णन संयत ही रखा है यद्यपि वह चाहते तो इस अवसर पर इच्छानुसार स्वतन्त्रता से काम ले सकते थे—

कंटक अटकत फटि फटि जात
उड़ि उड़ि बसन जात बश बात[१]

---

१. रा० चं०, ८।१६
२. वही, १०।१७
३. वही, १३।४८
४. वही, ३७।४७

तऊ न तिनके, तन लखि परे,
मणि गण अंग-अंग प्रति धरे।[१]

अंगद मन्दोदरी के केश खींचते हुए उसे चित्रशाला से बाहर ले आए थे। केशव ने उस समय मन्दोदरी के कंचुकी रहित उरोजों का वर्णन किया है—

बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं,
किधौं साचेहू श्री फलै सोम साजैं।
किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे,
वशी कर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।[२]

केशव का यह वर्णन अश्लीलता की सीमा का किंचित् अतिक्रमण कर गया है परन्तु सीता की तुलना में मन्दोदरी के सौंदर्य की अभिव्यक्ति करने के लिए यह अत्यावश्यक था, फिर भी केशव ने अध्यात्म रामायणकार की स्वतन्त्रता का उपयोग नहीं किया है। इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में वीर रस के साथ शृंगार रस के उदाहरण सर्वत्र मिल जाते हैं।

अंगीरस के निर्धारण की कसौटी है—नायक के जीवन में उस रस का प्रधान होना। राम के व्यक्तित्व में हमें वीर तथा शृंगार दोनों ही भावनाओं का पूर्ण विकास मिलता है। उनके जीवन में ये दोनों भावनाएँ परस्पर इतनी मिल गई हैं कि राम को उन दोनों के सामजंस्य के बिना देखा ही नहीं जा सकता। राम का परिचय ही हमें ऐसे कोमल कमल-पाणि के रूप में मिलता है जो कोमल होकर भी भ्रूनिक्षेप मात्र से विश्व का संहार कर सकता है। राम के कोमल शरीर को देखकर राजा जनक को संदेह होता है—

बिनायक एकहू पै आवै ना पिनाक ताहि
कोमल कमल पाणि राम कैसे ल्यावई।[३]

परन्तु यह कमलपाणि राम विश्व के सर्वश्रेष्ठ वीर हैं। उनका शौर्य निर्बलों में भी वीर भाव जाग्रत करने वाला है, उससे दर्शकों में भी वीर रस का प्रादुर्भाव होता है। उनके कर-पल्लव का स्पर्श पाते ही पिनाक जैसा कठोर धनुष भी निमिष मात्र में टूक-टूक हो जाता है—

रामचन्द्र कटि सो पटु बाँध्यो। लीलैव हर को धनु साँध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सों छ्वै। फूल मूल जिनि टूक कर्‌यो द्वै।[४]

परशुराम के युद्ध के लिए प्रेरित करने पर वह वीरोचित उत्साह तथा विश्वास से कहते हैं—

---

१. राम चं०, ३१।४०
२. वही, १९।३१
३. वही, ५।३६
४. वही, ५।४१

सुनि सकल लोग गुरु जामदग्नि। तप विशिष अनेकन कीजु अग्नि।
सब विशिप छांड़ि सहि हौं अखंड। हर धनुष कर्‍यो जिन खंड-खंड।[1]

खर दूषण अपनी विराट् वाहिनी सजाकर राम से युद्ध करने के लिए आते हैं परन्तु राम जैसे वीर योद्धा के लिए उसका क्या मूल्य ? वह क्षण भर में चौदह हजार राक्षसों को यमालय भेज देते हैं—

सर एक अनेक ते दूर किये। रवि के कर ज्यों तमपुंज पिये।[2]
खरदूषन सौं युद्ध बड़ भयो अनन्त अपार।
सहस चतुर्दस राछसन मारत लगी न बार।[3]

इसके वाद राम के जीवन में वीरता प्रदर्शन का अवसर उस समय आता है जब उन्हें बालि जैसे विश्वविश्रुत वीर से लोहा लेना पड़ता है। राम एवं बालि युद्ध शौर्य प्रदर्शन का अत्यन्त उपयुक्त अवसर है परन्तु केशव ने इसका वर्णन बहुत संक्षेप में किया है। पाठक के अन्तर में वीर रस का स्थायी प्रभाव हो इसके पूर्व ही युद्ध समाप्त हो जाता है तथापि जिन चुने हुए शब्दों से कवि ने यह वर्णन किया है, वह वीर रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं—

रवि पुत्र बालि सों होत युद्ध। रघुनाथ भये मन माहं क्रुद्ध॥
सर एक हन्यो उर मित्र काम। तब भूमि गिर्‍यो कहि राम राम॥
कछु चेत भये ते बलनिधान। रघुनाथ बिलोके हाथ बान॥
सुभ जटा सिर स्याम गात। वनमाल हिये उर विप्र लात॥[4]

यहाँ कवि ने बालि के शौर्य की संक्षिप्त परन्तु अत्यंत सुन्दर व्यंजना की है। राम-बाण से बिद्ध हो जाने पर भी वीर बालि तत्काल सचेत होकर उठ बैठता है।

'रामचन्द्रिका' का राम-रावण युद्ध वीर रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह वाक् तथा शस्त्र युद्ध दोनों का सम्मिलित रूप है यद्यपि केशव ने इस युद्ध का वर्णन भी बहुत विस्तार से नहीं किया है। लक्ष्मण के विचलित होने पर राम वीरोचित उत्साह से कहते हैं—

जेहि शर मधु-मद मरदि महा मुर मर्दन कीनो।
मारयो कर्कस नरक शंख हति सख हू लीनो।
निष्कटंक सुर कटक कर्‍यो कैटभ वपु खंड्यो।
खरदूषण त्रिजिटा कबन्ध तरु खंड विहंड्यो।
कुंभकरण जेहि संहर्‍यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दशकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं।[5]

---

१. राम चं०, ७।४०
२. वही, १२।१
३. वही, १२।३
४. वही, १३।२
५. वही, १६।५१

केशव ने वीर रस का वर्णन यहाँ केवल राम की उक्ति में ही सीमित नहीं कर दिया है अपितु राम तुरंत ही एक प्राणहर बाण छोड़ते हैं, जो रावण के दशों मस्तक काट कर पुनः तूणीर में आ जाता है—

रघुपति पढ्यो आसु ही असुहर बुद्धि निधान।
दस सिर दसहु दिसन को बलि दै आयो बान।[1]

केशव ने जिस प्रकार राम का योद्धा रूप दिखाकर वीर रस की अभिव्यंजना की है उसी प्रकार उन्हें लौकिक सुखों में तल्लीन दिखाकर शृंगार रस की अभिव्यक्ति भी की है। परन्तु जैसा हम पूर्व पृष्ठों में कह चुके हैं यह वर्णन सर्वत्र मर्यादित है तथा इसमें वासना का आविर्भाव नहीं है। केशव ने राम को स्वरूपवान तथा 'रतिनायक' माना है। उनके अतुल सौंदर्य को देखकर शूर्पणखा का युवती-मन तत्काल मोहित हो जाता है और वह उनसे प्रणय याचना करने लगती है—

यक दिन रघुनायक, सीय सहायक रतिनायक अनुहारि।
सुभ गोदावरी तट, बिमल पंचवट, बैठे हुते मुरारि।
छवि देखत ही मन, मदन मथ्यो तन सूर्पणखा तेहि काल।
अति सुन्दर तनु करि, कछु धीरज धरि, बोली वचन रसाल।[2]

इन रतिनायक राम के जीवन में केशव ने शृंगार रस के संयोग तथा विप्रलंभ दोनों पक्षों का वर्णन अत्यंत सहृदयतापूर्वक किया है। पत्नी के समीप रहने पर भी राम सांसारिक सुखों का उपयोग भी करते हैं तथा उसके विरह में साधारण व्यक्ति के समान व्याकुल भी हो जाते हैं। संयोग शृंगार के उद्दीपन रूप में केशव राम की सेज का वर्णन कर रहे हैं—

चंपक दल दुति के गेंडुए। मनहु रूप के रूपक उए।
कुसुम गुलावन की गलसुई। बरणि न जायं न नैन छुई॥[3]

परन्तु जैसे ही राम उस रमणीय शैया पर जाकर लेटते हैं, केशव को तत्काल उनका ईश रूप स्मरण हो आता है और वह इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देते हैं—

जिनके न रूप न रेख। ते पौढ़ियो नरवेष।
निशि नाशियो तेहि बार। बहु बंदि बोलत द्वार।[4]

केशव ने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों में उद्दीपन रूप में ऋतु तथा नखशिख का वर्णन किया है। घमासान युद्ध तथा भीषण मानसिक क्लेश के अनन्तर सीता को प्राप्त कर राम अयोध्यापुरी आकर राजसिंहासन प्राप्त करते हैं।

१. रामचन्द्रिका, १९।५२
२. वही, ११।३२
३. वही, ३०।१४
४. वही, ३०।१६

युगल दम्पति के जीवन में एक बार पुनः प्रसन्नता का अवसर आया है । केशव इस अवसर को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए वसंत ऋतु का वर्णन करते हैं । राम पत्नी सीता को लेकर इस सुन्दर ऋतु का आनन्द लाभ करने के लिए प्रासाद के अग्र-भाग में जाकर बैठ जाते हैं । केशव ने इस समय बसंत ऋतु का विस्तृत वर्णन किया है।[1] इसके बाद प्राचीदिशा में निशिनाथ का उदय होता है। सीता और सीतानाथ राम दोनों पूर्णिमा के मोहक चन्द्र का सौंदर्यपान करने में तल्लीन हैं—

प्राची दिसि ताही समय, प्रगट भयो निशिनाथ।
बरनत ताहि बिलोकि कै, सीता सीतानाथ।[2]

वसंत ऋतु के मादक सौन्दर्य से प्रेरित होकर राम रति समान सीता को लेकर वाटिका-विहार के लिए चले जाते हैं—

आई जान बसंत ऋतु बनहिं बिलोकत राम।
धरणीधर सीता सहित, रति समेत जनु काम।[3]

कामोद्दीपक वसंत ऋतु ने राम को भी प्रभावित किया है और उस समय वह राज-कार्य अथवा परलोक की चिन्ता न कर शुक द्वारा सीता की दासियों का नखशिख सुनते हैं, सरोवर में जल-क्रीड़ाएँ करती हुई युवतियों की तन-शोभा निहारते हैं—

नीरधि ते निकसी तिय जवै। सोहति हैं बिन भूषण तबै।
चन्दन चित्र कपोलन नहीं। पंकज केशर सोहत तहीं।
मोतिन की बिथुरी शुभ छूटैं। हैं उरझी उरजातन लटैं।
हास सिगार लता मनु बने। भेंटत कल्पलता हित घने।[4]

'रामचंद्रिका' का ३१वाँ तथा ३२वाँ प्रकाश शृंगार-रस के अन्तर्गत उद्दीपन रूप में नखशिख तथा ऋतु-वर्णन का अत्युत्तम उदाहरण है। इसके पूर्व केशव ने ११वें प्रकाश में भी राम-सीता वनवास समय के कुछ चित्र अंकित किए हैं परन्तु, वे बहुत संक्षिप्त हैं। सीता गान-वाद्य द्वारा राम का मनोरंजन करती हैं परन्तु राम वन-पशुओं के साथ क्रीड़ाएँ करते हैं।[5] संभव है इसकी संक्षिप्तता का कारण यह रहा हो कि राज-वैभव के मध्य पलने वाले केशव जिस सूक्ष्मता से राजा राम का वर्णन कर सकते थे उतनी से वनवासी राम का नहीं अतएव उन्होंने जानबूझ कर ही यह वर्णन संक्षेप में किया हो।

---

१. देखिये रा० चं० में वसन्त वर्णन, ३०वाँ प्रकाश
२. रामचन्द्रिका, ३०।४०
३. वही, ३०।४७
४. वही, ३२।३९-४०
५. वही, ११।२७

प्रिय का सामीप्य जितना सुखद होता है, उसका वियोग उतना ही दुःखद। 'रामचंद्रिका' में राम-सीता का वियोग दो बार होता है—रावण द्वारा सीताहरण के पश्चात् तथा लोकापवाद के कारण राम द्वारा सीता-त्याग के पश्चात्। प्रथम वियोग में जितनी करुणा है द्वितीय में उतनी नहीं क्योंकि द्वितीय वियोग-काल में राम की कर्त्तव्य-भावना तथा सीता का आक्रोश अधिक प्रबल हो गए हैं। दूसरी बार सीता के वियोग के लिए राम स्वयं उत्तरदायी हैं अतः इसमें शारीरिक ताप की अपेक्षा मानसिक ताप अधिक है। दूसरे, उस समय तक प्रौढ़ता प्राप्त कर लेने के कारण राम और सीता ने इस दुःख को अपने ही तक सीमित रखा है, वन अथवा नगर वीथियों ने उनका क्रन्दन नहीं सुना है। केशव ने प्रथम वियोग का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से किया है एवं दूसरे का एक-दो स्थलों पर केवल संकेत मात्र दिया है।

'रामचन्द्रिका' में राम की वियोग-दशा के वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं। उनमें प्रिय-वियोग की मार्मिक व्यंजना हुई है। सीता के वियोग में राम को हिमांशु सूर सी लगती है तथा वायु वज्र के समान। लेपनादि विरहोपचार अंगों को दाहक प्रतीत होते हैं—

हिमांशु सूर सी लगै, सो बात बज्र सी बहै।
दिशा जगैं कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै।
विसेस कालराति सों कराल राति मानिये।
वियोग सिय को न काल लोकहार जानिये।[1]

सीता की विरह-व्यथा का वर्णन हनुमान इस प्रकार करते हैं—

प्रति अंगन के संग ही दिन नासै।
निशि सों मिली बाढ़ति दीह उसासैं।
निशि ने कछु नींद न आवति जानौं।
रवि की छवि ज्यों अधरात बखानौं।[2]

शृंगार के विरह पक्ष में भी उद्दीपन के रूप में केशव ने ऋतु तथा नखशिख का वर्णन किया है। सीता के विरह में वर्षा राम को दुःखदायी प्रतीत होती है। चहुँ ओर घोर अंधकार होने के कारण प्रकृति से सीता के अंगों के सभी उपमान लुप्त हो गए हैं। अतः राम की व्यथा और भी बढ़ गई है—

देखि राम बरषा ऋतु आई। रोम-रोम बहुधा दुःखदाई।
आस-पास तम की छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न आई।[3]

प्रिया-विरह के कारण राम की दशा उन्मत्त के समान हो जाती है। चकवा-चकई तथा चकोर आदि को देख उन्हें सीता का स्मरण हो आता है। प्रकृति के इन

१. रामचन्द्रिका, १२।४२
२. वही, १४।२८
३. वही, १३।११

उपमानों से उनके समक्ष सीता का सौंदर्य मूर्तिमान हो उठता है। दुःखावेश के कारण वह इन्हीं पक्षियों से सीता का पता पूछने लगते हैं—

अवलोकत है जबहीं जबहीं। दुःख होत तुम्हें तबही तबहीं।
वह बैर न चित्त कछु धारिये। सिय देहु बताय कृपा करिये।
शशि को अवलोकन दूरि किये। जिनके मुख की छवि देखि जिये।
कृति चित्त चकोर कछूक धरौ। सिय देहूँ बताय सहाय करौ।[१]

दूसरी ओर विरह-व्यथा के कारण सीता का बुद्धि-विपर्यय हो जाता है। वह अशोक वृक्ष के नवीन पल्लवों से शृंगार की याचना करती है :—

देखि-देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहिं आग तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यौ।[२]

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामचन्द्रिका के नायक राम के जीवन में किस प्रकार वीर के साथ शृंगार-रस का सागर लहरा रहा है। अब हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि रामचन्द्रिका में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रस वीर-रस के पोषक कहाँ तक हैं तथा उनका रामचन्द्रिका में क्या स्थान है?

वीर तथा शृंगार रसों के अतिरिक्त रामचन्द्रिका में केशव ने अन्य सात रसों की भी यथास्थान व्यंजना की है परन्तु रामचन्द्रिका में वह विशेष रूप से वीर रस के ही कवि हैं, अन्य रस गौण हैं। जहाँ कहीं हास्य, करुण, रौद्र आदि सातों रसों का वर्णन हुआ है, वहाँ वह वीर रस को पुष्ट करते हैं। रौद्र-रस वीर-रस का सहायक रस है। रामचन्द्रिका में वीर-रस की प्रधानता होने के कारण उसमें रौद्र-रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। अपने गुरु महादेव के पुनीत धनुष को एक नरशिशु द्वारा नष्ट हुआ जान परशुराम को अत्यन्त क्रोध होता है। क्रोध के कारण वह अति उग्र रूप धारण कर कहते हैं—

बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन वाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भारत में भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं।[३]

राम के शान्तिपूर्ण वचनों जब परशुराम किसी प्रकार शान्त होते नहीं प्रतीत होते तो राम भी क्रोधावेश में उग्र रूप धारण कर लेते हैं। वह परशुराम को सचेत करते हुए कहते हैं कि मैं चाहूँ तो विश्व में अभी प्रलय का दृश्य उपस्थित कर सकता हूँ। तुम्हारी अमर ज्योति को क्षण भर में बुझा सकता हूँ। मैं धनुष पर बाण संधान करता हूँ अतः तुम भी अपना कुठार सँभाल लो—

---

१. रामचन्द्रिका १२।३९-४०
२. वही, १३।६५
३. वही, ७।१२

भगन कियो भव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते घर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होइ सबही तम भारौं।
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर।[1]

कौशल्या क्षत्राणी महिषी हैं। उनका व्यक्तित्व सदैव स्वाभिमान से परिपूर्ण है, कभी दीन वचन कहना उन्होंने नहीं सीखा। राम उनके पास वनवास यात्रा के लिए शुभाशीष लेने जाते हैं परन्तु कैकेयी के अत्याचार तथा दशरथ के पक्षपात को स्मरण कर उनका क्षत्रिय रूप जाग उठता है। उनका असीम क्रोध इस प्रकार व्यक्त होता है—

रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु।
न देखि सकैं जिनके उर दाहु॥
लगो अब बाप तुम्हारेहि बाय।
करैं उलटी बिधि क्यों कहि जाय॥[2]

लक्ष्मण शक्ति का अवसर राम के जीवन का अत्यन्त करुण अवसर है परन्तु विभीषण से यह सुनकर कि यदि सूर्योदय तक लक्ष्मण को औषधि न मिली तो सूर्योदय होते ही उनकी मूर्च्छा चिरमूर्च्छा में परिणत हो जाएगी, राम क्रोधित हो जाते हैं। वह शोक भूल कर उग्र वाणी में कहते हैं—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं, गंधर्व सर्व पसु॥
बलित ऊबेर कुबेर बलिहिं गहि देउं इन्द्र अब।
विद्या धरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासिदिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥[3]

पुत्र-पौत्रादि आत्मीय स्वजन तथा शुभेच्छु मित्रों की मृत्यु के कारण दुखी रावण जब समर-क्षेत्र में राम को देखता है, उसका अपमान-आहत हृदय क्रोध से फुंकार उठता है। युद्ध करता हुआ क्रुद्ध रावण प्रलयंकारी शंकर-सा प्रतीत होता है—

राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यौ।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल स्यों मढ़्यौ॥

---

१. रामचन्द्रिका, ७।४२
२. वही, ९।८
३. वही, १७।४९

शैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋक्ष बानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे।।[१]

रौद्र-रस के समान भयानक-रस भी वीर-रस का सहायक रस है। परशुराम के क्रोध से संसार में जो आतंक छा जाता है, जनक उसका अत्यन्त मनोरम चित्र अंकित करते हैं। परशुराम की वक्र दृष्टि को देखकर प्रकृति भी विचलित हो जाती है, चन्द्रमा भय से श्वेत पड़ जाता है तथा अग्नि का तेज तिरोहित हो जाता है। तीनों लोकों के प्राणी भय से उनकी वंदना करने लगते हैं—

शुद्ध सलाक समान लसो अति रोषमयी दृग दीठि तिहारी।
होत भये तब सूर सुधा धर पावक शुभ्र सुधा रंगधारी।।
केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृगजानि।
संध्या सी तिहुं लोक के किहिनि उपासि आनि।।[२]

इसी प्रकार परशुराम के सभा-भवन में आते ही आतंक छा जाता है। चेतन-अचेतन सभी भयाकुल हो जाते हैं। मस्त हाथियों का मद उतर जाता है, दुन्दुभी-ध्वनि बन्द हो जाती तथा क्षत्रिय शूरवीर प्राणों की रक्षा करने के लिए अस्त्र-शस्त्र फेंककर भागने लगते हैं। कतिपय वीर भयाधिक्य के कारण तन-त्रान काट कर नारी वेश धारण कर लेते हैं—

मत्त दंत्ति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं।।
डारि-डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तन त्रान एकहि नारि भेषन सज्जहीं।[३]

भरत को चित्रकूट में ससैन्य देख सम्पूर्ण वन में भय व्याप्त हो जाता है। नगाड़ों की ध्वनि तथा हाथियों की चिघाड़ से वन के नर, वानर, किन्नर सभी भयभीत हो जाते हैं। भयाकुल होकर वह अपने बच्चों को मृग-शावकों के समान उठा कर छिप जाते हैं तथा वनवासी तपस्वी गिरि-कन्दराओं में चले जाते हैं। समस्त पृथ्वी तथा पर्वत हिल उठते हैं—

सब सारस हंस भये खग खेचर वारिद ज्यों बहु वान गाजे।
बन के नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृग नायक भाजे।।
तजि सिद्ध समाधिन केशव दीरघ दौरि दरीन में आसन साजे।
सब भूतल, भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुंदुभि बाजे।।[४]

---

१. रामचन्द्रिका, १६।३९
२. वही, ५।२६-२७
३. वही, ७।२
४. वही, १०।१४

अंगद आदि वानरों के लंका में उत्पात करने पर सर्वत्र एक अस्तव्यस्तता फैल जाती है। वह मस्त हस्तियों को मुक्त कर देते हैं, अश्वों को बन्धनहीन कर देते हैं तथा पिंजड़ों से पक्षियों को छोड़ देते हैं। नगर उनके उपद्रवों से भयभीत हो जाता है और चारों ओर भय का साम्राज्य छा जाता है। इन उत्पातों से प्रासादवासिनी स्त्रियाँ भी भयभीत होकर इधर-उधर छिपने लगती हैं—

भगी देखि कै शंकि लंकेश-बाला।
दुरि दौरि मंदोदरी चित्र-शाला ।।[1]

युद्धक्षेत्र में रावण के विकराल रूप को देखकर वानर सेना में हलचल मच जाती है। वानर भयभीत होकर चेतनाहीन से हो गए एवं युद्ध के प्रति हतोत्साह हो गए।

बानन साथ बिंधे सब बानर। जाय परे मलयाचल की घट।
सूरज मंडल में इक रोवत। एक अकाश नदी मुख धोवत ।।
एक गये यमलोक सहे दुख। एक कहैं भव भूतन सों सुख।
एक ते सागर मांज परे मरि। एक गये बड़वानल में जरि ।।[2]

उपरोक्त सभी अवतरणों में भयानक-रस वीर-रस का पोषक रस है। अप्रत्यक्ष रूप से कहीं परशुराम के शौर्य की व्यंजना होती है और कहीं राम के शौर्य की, कहीं विश्वामित्र के पराक्रम का आभास मिलता है और कहीं रावण के।

वीभत्स-रस का निरूपण 'रामचन्द्रिका' में बहुत कम हुआ है। जिन दो-एक स्थलों पर ऐसे प्रसंग आए भी हैं वहाँ उनसे वीर रस की ही पुष्टि हुई है। युद्ध के प्रसंग में बीभत्स रस का चित्रण करना अपेक्षाकृत सहज होता है क्योंकि वहाँ रक्त, अस्थियाँ, मज्जा, छिन्न-भिन्न मानव तथा पशु अंगों का अभाव नहीं रहता। 'रामचन्द्रिका' में ऐसे वर्णन केशव की सचेष्ट क्रिया का परिणाम नहीं हैं बल्कि युद्ध के बीच में स्वाभाविक रूप से ही आ गए हैं। लव-कुश-युद्ध में जामवंत तथा हनुमान जब अपना शौर्य प्रदर्शन करने के लिए प्रवेश करते है उस समय वह देखते हैं कि चारों ओर रक्त की नदियाँ बह रही हैं जिसके बीच अनेक मृत शरीर स्नान कर रहे हैं—

पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभिजें सुठि शूर।
बेलि ठलि चले गिरीशनि पेलि श्रोणित पूर ।।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारू चर्म विशाल।
चक्क सौं रथ चक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल ।।२।।

१. रामचन्द्रिका, १६।२६
२. वही, १६।४०-४१

केकरे कर बाहु मनि, गयंद शुण्ड भुजंग।
चीर चौंर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग॥
बालुका बहु भाँति हैं मणिमाल जाल प्रकाश।
पेरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास॥३॥[1]

अद्भुत-रस सदैव ही वीर-रस का सहकारी रस नहीं होता परन्तु 'रामचंद्रिका' में जिन स्थलों पर अद्भुत रस का प्रतिपादन हुआ है वहाँ वह वीर-रस को ही पुष्ट कर रहा है।

सभा-स्थल में दशमुख रावण तथा सहस्रबाहु बाग को देखकर सभी नर-नारी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उनकी भयंकर आकृतियाँ तथा असाधारण वेश देख सभी विस्मित तथा भयभीत हो गए—

नर नारि सबै। भयभीत नबै।
अचरज्जु यहै। सब देखि कहै॥
हैं राकस दश शीश को दैयत बाहु हज़ार।
कियो सबन के चित्त रस अद्भुत भय संचार॥[2]

यहाँ अद्भुत तथा भयानक रस दोनों का सम्मिलित निरूपण हुआ है।

भरद्वाज ऋषि के आश्रम में विरोधी बातों का वर्णन कर कवि ने अद्भुत-रस का निरूपण किया है। मृग बाघनियों का स्तन पान करते हैं, सुरभि बाघ-शिशु का मुँह प्रेमपूर्वक चाटती है, सिंह हाथी के दाँतों पर आसीन हैं, मोर सर्प फनों पर नृत्य करते हैं और बन्दर अन्ध तपस्वियों का मार्ग प्रदर्शन करते हैं—

'केशोदास' मृगज बछेरू चोषें बाघननि,
चाटत सुरभि बाघबालक बदन है।
सिंह की सदा ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है॥
फणी के फणन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि,
शिव को समाज कैंधो ऋषि को सदन है॥[3]

लव-कुश युद्ध प्रसंग में राम युद्ध-क्षेत्र में आते हैं तो उन्हें रण की विकटता देख अत्यन्त आश्चर्य होता है। पर्वत के सदृश अचल तथा महान् राजा रणभूमि में मरणासन्न हो गए हैं। कुश की असि से छिन्न मस्तक हो जाने पर भी उनके कबंध भूमि में नहीं गिरे हैं—

---

१. रामचन्द्रिका, ३७।२-३
२. वही, ४।२-२
३. वही, २०।४०

भैर से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रण भूधर भूप न टारे टरै इभ कोट अरे कै॥
रोष सों खग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खायें मरे नग परै कै॥[1]

केशव प्रधान रूप से हास्य तथा करुण रसों के कवि नहीं हैं अपितु इनका निरूपण यत्र-तत्र प्रसंगवश ही हो गया है। 'रामचन्द्रिका' में करुण रस का प्रतिपादन दो-एक स्थलों पर मार्मिक हो गया है परन्तु हास्य रस का चित्रण तो 'रामचन्द्रिका' में बहुत ही साधारण है। परशुराम का परीक्षा का अभिप्राय समझ राम हँसकर धनुष पर बाण संधान करते हैं। देवगण राम की इस लीला को देख आनन्दित होते हैं—

नारायण को धनु बाण लियो। ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो।

परन्तु हास्य का वातावरण प्रस्तुत हो सके, इसके पूर्व ही त्रिलोक काँप उठते हैं और हास्य के साथ भयानक रस का चित्र तैयार हो जाता है—

रघुनाथ कह्यौ अब काहि हनों। त्रय लोक कंप्यो भय मानि घनों।
दिग्देव दहे बहु बाते बहे। भूकंप भये गिरिराज ढहे।
आकाश विमान अमान छये। हा-हा सब ही यह शब्द रये।[2]

भयानक रस के साथ होने के कारण यहाँ हास्य वीर रस को पुष्ट कर रहा है।

'रामचन्द्रिका' में हास्य रस का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण शूर्पणखा प्रसंग में मिलता है। यदि लक्ष्मण शूर्पणखा को विरूप न करते तो यह शुद्ध हास्य का अवसर स्थायी आनंद का देने वाला होता, तथापि दोनों भाई शूर्पणखा के साथ हास-परिहास कर हास्य रस का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जानि सबाम॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि॥[3]

दूसरी ओर लक्ष्मण के पास जाने पर वह उससे परिहास कर राम के पास वापस भेज देते हैं—

वै प्रभु हौं जन जानि सदाई। दासि भये महँ कौनि बड़ाई॥
जो भजिये प्रभु तौ प्रभुताई। दासि भये उपहास सदाई॥[4]

परन्तु हास्य के अवसर पर शूर्पणखा को श्रुति नासिका हीन कर रक्त की धारा बहाकर इसका संबंध वीभत्स रस से स्थापित कर दिया गया है—

---

१. रामचन्द्रिका, ३८।१६
२. वही, ७।४८
३. वही, ११।३६
४. वही, ११।३८

शोन छिंछि छूटत बदन भीम भई तेहि काल ।
मानो कृत्या कुटिल युत पावक ज्वाल कराल ।[1]

'रामचन्द्रिका' में हास्य रस का एक उदाहरण उस समय मिलता है जब मंदोदरी के प्रासाद में मंदोदरी तथा उसकी सखियाँ अंगद को मूर्ख बनाती हैं। अंगद चित्रों को यथार्थ स्त्रियाँ समझकर जब पकड़ते हैं उस समय अवसर गम्भीर होते हुए भी हास्य का एक हल्का वातावरण प्रस्तुत हो जाता है—

गहे दौरि जाको तजै ता दिसा को ।
तजै जा दिसा को भाजै बाम ताको ।।
भले कै निहारी सबै चित्र सारी ।
लहै सुन्दरी क्यों दरी को बिहारी ।।
तजै देखि कै चित्र की श्रेष्ठ कन्या ।
हँसि एक ताको तहीं देवकन्या ।।
तहीं हास सों देवकन्या दिखाई ।
गहि शंक कै लंकरानी बताई ।।[2]

'रामचन्द्रिका' में शुद्ध हास्य का विकास अत्यल्प हुआ है एवं उन अल्प स्थलों पर भी केशव इसमें बहुत अधिक सफल नहीं हुए हैं। नीचे अब हम 'रामचन्द्रिका' से करुण रस के कुछ उदाहरण देंगे।

राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के हाथों में सौंपते ही दशरथ का पितृ-हृदय रो उठता है। आयु तथा राजकीय मर्यादा के कारण, दशरथ को साधारण व्यक्तियों के समान क्रन्दन करना शोभा नहीं देता। केशव ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक उनकी मर्यादा की रक्षा करते हुए इस करुण स्थिति का अंकन किया है—

राम चलन नृप के युग लोचन । बारि भरित भये बारिद रोचन ।।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं । केशव उठि गये भीतर भौनहिं ।।[3]

लक्ष्मण-शक्ति पर राम की वेदना अगाध है, असीम है। केशव ने इसका वर्णन पर्याप्त आत्मीयता से किया है तथा इसकी अभिव्यक्ति अत्यंत मर्मस्पर्शी है। करुण रस के ऐसे उदाहरण केशव की सहृदयता के ही परिचायक हैं—

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो । नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो ।।
बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोको । मो कहं प्राण चले तजि रोको ।।
हौं सुमरो गुण केतिक तेरे । सोदर पुत्र सहायक मेरे ।।
लोचन बन तुही धनु मेरे । तू बल विक्रम बारक हेरे ।।

---

१. रामचन्द्रिका, ११।४१
२. वही, १६।२८
३. वही, २।२७

तू बिन हौं पल प्रान न राखौं । सच कहौं कछु झूँठ न भाखौं ।।
मोहिं रही इतनी मन शंका । देन न पाई विभीषण लंका ।।
बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ । नातरू होत है मो मुख कारो ।।[1]

रामाज्ञा पाकर लक्ष्मण सीता को निर्जन वन में छोड़ने जा रहे हैं । सीता अपने परित्याग से अनभिज्ञ हैं तथा भयावह वन को देखकर भयभीत । इस प्रसंग का वर्णन केशव ने संक्षेप में परन्तु अत्यंत करुण शब्दों में किया है । समस्त 'रामचन्द्रिका' में करुण रस का यह सर्वोत्तम उदाहरण है जहाँ केशव की सहृदयता पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है—

सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति, सीता जू के बैन ।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भर आयो नैन ।
विलोकि लक्ष्मणै भई विदहजा विदेह सी ।
गिरी अचेत ह्वै मनो घने बनै तड़ीत सी ।
करी जु छाँह एक हाथ एक बात बास सों ।
सिच्यो सरीर बीर नैन नीर ही प्रकाश सों ।[2]

उपरोक्त करुण प्रसंगों में करुणा की प्रधानता होते हुए भी दशरथ, राम तथा लक्ष्मण तीनों पात्रों के व्यक्तित्व में स्वाभिमान, कर्म, कर्त्तव्य तथा वीरभावना ही अधिक बलवती हैं ।

शांत रस का स्थायी भाव है निर्वेद अथवा उदासीन एवं उसका फल मुक्ति की प्राप्ति । शांत रस विशेष रूप से दर्शन ग्रन्थों में मिलता है जहाँ संबद्ध व्यक्ति को सांसारिक वस्तुओं के प्रति कोई मोह नहीं होता । 'रामचन्द्रिका' में राम जहाँ वीर नायक हैं तथा उनके जीवन में शृंगार भावनाओं का पूर्ण विकास है वहाँ उनमें शांति भाव भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । अतुल बलशाली प्रतिनायक रावण की मृत्यु तथा चौदह वर्ष वनवास के पश्चात् राम को राज्यफल प्राप्त होता है परन्तु राम इस राज्य के प्रति पूर्णतया उदासीन हैं । उन्हें राज्य के प्रति कोई आकर्षण नहीं है । अयोध्या का समृद्ध राज्य तथा लौकिक दृष्टि से सभी सुख उपलब्ध होने पर भी राम उदासीन हैं, उनका मुख निरानन्द है । ऋषि गण जब अयोध्या में राजा राम का दर्शन करते हैं उस समय वह उन्हें शोकाकुल ही पाते हैं । वे राम से पूछते हैं—

मारे अरि पारे हितू कौन हेत रघुनन्द ।
निरानन्द से देखिए यद्यपि परमानन्द ।[3]

---

१. रामचन्द्रिका, १७।४३-४६
२. वही, ३३।५२
३. वही, २३।११

विपुल वैभव को प्राप्त करने के बाद भी उदासीन राम अगस्त्य ऋषि को सम्बोधन कर कहते हैं—

जग मांझ है दुख जाल। सुख है कहा यदि काल ।।
तहँ राज है दुख मूल। सब पाप को अनुकूल ।।
अब ताहि लै ऋषिराम। कहि को न नरकहि जाय ।।[1]

अर्थात् इस राजलक्ष्मी ने शेषनाग से बातें बनाना तथा चारों ओर चंचल दृष्टि से देखना एवं अप्सरा से पर-पुरुष-गमन का दुर्गुण सीखा है—

शेष दई बहुजिह्वता बहुलोचनता चारु ।
अप्सरान ते सीखियो अपर पुरुष संचारु ।[2]

दृढ़ रज्जु से बाँधने पर भी राजलक्ष्मी शीघ्र विलीन हो जाती है। प्रीति करने पर भी यह स्थायी नहीं रहती। राजधर्म में कुशल, धन सम्पन्न तथा सुन्दर राजा को वह लक्ष्मी ऐसे ही त्याग देती है, जैसे कोमल, सुन्दर करहाटक से युक्त तथा सुन्दर कमल को भ्रमरी—

दृढ़ गुन बाँधे हू बहु भाँति। को जानै केहिं भाँति विलानि ।।
गज घोटक भट कोटिन अरैं। खंग लता पंजर हू परैं ।।
अपनाइति कीन्हें बहु भांति। को जानै कित ह्वै भजि जाति ।।
धर्म-कोश मण्डित सुभ देस। तजति भ्रमरि ज्यों कमल नरेस ।।[3]

राजलक्ष्मी की अस्थिरता के कारण उदासीन राम संसार के प्रति भी विरक्त हैं। उन्हें संसार अनेक प्रकार के कष्टों का आगार प्रतीत होता है—

सुमति महा मुनि सुनिये। जग महँ सुक्ख न गुनिये ।।
मरणहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्म न भजहीं ।।[4]

इसके बाद कवि ने राम के माध्यम से बचपन के व्यवहारजनित दुःख, युवावस्था के व्यवहारजनित दुःख तथा वृद्धावस्थाजनित कष्टों का वर्णन किया है। सांसारिक तृष्णा नदी नर-देहधारियों को नहीं बड़े-बड़े देवताओं को भी डुबाने वाली है। इसलिए मन को सम्बोधन कर राम कहते हैं—

पैरत पाप पयोनिधि में नर मूढ़ मनोज जहाज चढ़ोई।
खेल तऊ न तजै जड़ नीव जऊ बड़वानल] क्रोध डढ़ोई ।

---

१. रामचन्द्रिका, २३।१२-१३
२. वही, २३।२५
३. वही, २३।२६-२७
४. वही, २४।५

झूठ तरंगनि में उरझै सु इते पद लोभ-प्रवाह बढ़ोई।
बूढ़त है तेहि ते उबरै कह केशव काहे न पाठ पढ़ोई।[१]

'रामचद्रिका' के २३वें तथा २४वें प्रकाश में इस प्रकार के अनेक छंद हैं जिनमें कवि ने राम की विरक्ति की व्यंजना कर शांत रस का प्रतिपादन किया है। वशिष्ठ जी योगी का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि मुक्ति का सच्चा अधिकारी वही है जिसके हृदय में योग का प्रकाश प्रतिभासित होता है परन्तु बाहर से शरीर भोगों में आसक्त दिखाई पड़ता है—

कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन यों तनु है।
मनु हाथ हदा जिनके, तिनको बन ही घरु है, घरु ही बनु है।[२]

यही केशव का अपना आदर्श भी है। राम आदर्श राज्य के संस्थापक हैं, वह बाहर से ही राजवैभव में लिप्त प्रतीत होते हैं परन्तु उनका अन्तःकरण सदैव परहित कामना में व्यस्त रहता है। वे जिस तत्परता से युद्धक्षेत्र में शस्त्रों का संचालन करते हैं, पत्नी सीता के साथ दाम्पत्य जीवन का सुखोपभोग करते हैं, उसी तत्परता से राजलक्ष्मी का त्याग कर देते हैं। उनका जीवन वीर, शृंगार तथा शम तीनों भावों से समान रूप से परिपूर्ण है।

'रामचन्द्रिका' के अन्य आदर्श पात्र भी केशव के इसी आदर्श के पोषक हैं। परशुराम को राम ने भगवान् कहकर सम्बोधन किया है।[3] भगवान् वह व्यक्ति कहलाता है, जिसमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, विराग तथा ज्ञान ये छः शक्तियाँ हों।[४] परशुराम के व्यक्तित्व में वीरता, जीवन में ऐश्वर्य, तथा स्वभाव में विराग सभी एक साथ उपस्थित हैं। केशव का आदर्श यथार्थ में राजा जनक का आदर्श है जो विदेह होकर भी राजा हैं। वे राजवंत भी हैं और योगवंत भी। मिथिला के वे कुशल संचालक नरेश हैं एवं राजा होकर भी ऐश्वर्य के प्रति अनासक्त। इन दो विरोधी गुणों की स्थिति किस प्रकार संभव हो सकती है, यही समझाने के लिए केशव लक्ष्मण के द्वारा जिज्ञासा करवाते हैं—

जन राजवंत। जग योगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत।[५]

राम इसका समाधान करते हैं—

न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तम तेज भगै।
भवभूषण भूषित होल नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहु थलहु परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जाति जगै।[६]

---

१. रामचन्द्रिका, २३।२२
२. वही, २५।३६
३. भगवन्त सों जानिये कबहुँ न कीन्हें शक्ति। ७।२५
४. केशव कौमुदी, पूर्वार्द्ध, पृ० ११०
५. रा० चं०, ५।२१
६. रा० चं०, ५।२२

अपने इन्हीं विचारों का पोषण राम अपने पुत्रों तथा भ्रातृ-पुत्रों को उपदेश देते समय करते हैं। राम का परामर्श यही है कि राजश्री के वश स्वयं न होकर उसे ही वश में करना चाहिए—

राम श्री वश कैसेहूँ, होहु न उर अवदात।
जैसे-तैसे आपुवश ताकहँ कीजै तात।[1]

भरत के चरित्र में वीर तथा शृंगार रसों के उदाहरण हम पहले दे चुके हैं। भारतीय साहित्य के इतिहास में राज्य के प्रति अलोभ के लिये भरत अद्वितीय उदाहरण हैं। उनका जीवन शान्त रस का साक्षात् प्रतिरूप है। अयोध्या के विशाल साम्राज्य को तृणवत् त्याग नंदी ग्राम में तपस्वी-जीवन बिताते हुए राज्य-संचालन करने का आदर्श भरत के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य में तो क्या संभवतः विश्व साहित्य में भी दुर्लभ होगा।

हनुमंत बिलोके भरत सशोके अंग सकल मलधारी।
बलका पहरे तन सीस जटागन हैं फल मूल अहारी।
बहु मन्त्रिनगन में राज्यकाज में सब सुख सों हित तोरें।
रघुनाथ पादुकनि, मन वच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरें।[2]

'रामचन्द्रिका' के पाठ का माहात्म्य बताते हुए केशव ने 'रामचन्द्रिका' की रचना का उद्देश्य स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि राम की इस 'चन्द्रिका' को जो पढ़ेगा, सुनेगा अथवा समझेगा उसे अंत में मोक्ष की प्राप्ति होगी। इस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए केशव ने तपस्या का मार्ग नहीं दिखाया है बल्कि जनक के समान जो सब प्रकार के भोगों को भोगता हुआ राम का भक्त होगा, वही मुक्ति पद का अधिकारी होगा—

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय।
विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय।
लहै सुमुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचन्द्र-चन्द्रिका हि।[3]

'रामचन्द्रिका' के उद्देश्यों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह काव्य शान्त-रस-प्रधान काव्य होगा, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। काव्य के नायक राम मोक्ष के दाता हैं, प्रार्थी नहीं। अतः शान्त-रस 'रामचन्द्रिका' का प्रधान रस नहीं है।

---

१. रामचन्द्रिका, ३९।३६
२. वही, २१।२२
३. वही, ३९।३९

राम के जीवन में शान्त रस के वर्तमान रहने पर भी उनका वीर रस ही प्रधान है। काव्य शास्त्रों के आधार पर वीर के चार रूप होते हैं—युद्ध-वीर, धर्म-वीर, कर्म-वीर तथा दान-वीर। राम के चरित्र में ये चारों ही रूप सम्यक् रूपेण घटित होते हैं। रावणादि राक्षसों पर जय पाकर वे युद्ध-वीर, पुत्र-धर्म तथा आर्य-धर्म का पालन करने के कारण धर्म-वीर, प्रजा-संतोष के लिए, पत्नि-त्याग कर कर्म-वीर तथा राज्य को उदारतापूर्वक पुत्रों एवं भ्रातृ-पुत्रों में बाँट कर वे दान-वीर हैं।

राम के चरित्र में वीरत्व की प्रधानता होने तथा अन्य पात्रों में भी वीर भावनाओं के बाहुल्य के कारण 'रामचन्द्रिका' का अंगी-रस वीर है। आधिकारिक कथा की दृष्टि से भी इसका प्रधान रस वीर ही है क्योंकि नायक राम असीम साहस तथा वीरता का प्रदर्शन करने के अनन्तर राज्य-फल को प्राप्त करते हैं परन्तु अन्त में इसी राज्य को स्वेच्छा से त्यागने से कारण काव्य का मुख्य लक्ष्य बदल जाता है। यदि हम 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध से राजश्री-निंदा, दान-वर्णन, ब्राह्मणों की उत्पत्ति आदि के प्रसंग, जो काव्य की आधिकारिक कथा से असंबद्ध हैं निकाल दें तो 'रामचन्द्रिका' का अंगीरस वीर है। पिछले उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'रामचन्द्रिका' में शेष रस वीर रस के पोषक रस हैं, प्रधान नहीं। किन्तु 'रामचन्द्रिका' को यदि कथानक की दृष्टि से न देख, प्रभाव की दृष्टि से देखा जाए तो उसमें शान्त रस की प्रधानता है।

काव्य मान्यताओं में केशव आचार्य विश्वनाथ से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर तथा शान्त में से एक को काव्य का अंगीरस तथा शेष को उसका अंग माना है। 'रामचन्द्रिका' इस दृष्टि से वीर रस के महाकाव्यों के अन्तर्गत आती है। उसमें सभी रसों की योजना होने पर भी वीर उसका अंगीरस है तथा शेष रस उसके अंग। काव्य का पर्यवसान शान्त रस में होने के कारण हम 'रामचन्द्रिका' को शान्त रस पर्यवसायी वीर रस काव्य मान सकते हैं।

देश-काल

कवि का अपने देश तथा कालगत परिस्थितियों से प्रभावित होना अवश्यंभावी है। उसके काव्य में अप्रयास ही तत्कालीन अनेक बातों का प्रतिबिम्ब झलकने लगता है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में जिस राम-कथा का वर्णन किया है उसका विकास त्रेता युग में हुआ है परन्तु कवि ने अपने अनुभवों तथा रुचि के अनुकूल अनेक समकालीन तत्त्वों का समावेश त्रेतायुगीन कथानक में कर दिया है यद्यपि ऐसा करते समय उनके काव्य में कतिपय स्थलों पर काल-विरोध तथा देश-विरोध दोष भी आ गए हैं।

जिस समय विश्वामित्र अयोध्या में प्रविष्ट हुए थे उस समय केशव ने परम्परागत काव्य-रीतियों से आबद्ध होकर अयोध्यापुरी की वाटिका का वर्णन इस

प्रकार किया है जैसे वे वसन्त ऋतु का वर्णन कर रहे हों । वसंत ऋतु में प्रकृति अपनी पूर्ण शोभा से सम्पन्न होती है अतः केशव विश्वामित्र का आगमन उसी समय करवाना चाहते थे जब प्रकृति अपने पूर्ण वैभव पर हो—

देखि बाग अनुराग उपज्जिय । बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय ।
राजति रति की सखी सुवेषनि । मनहु कहति मनमथ सँदेशनि ।।[1]

कोकिल की कलध्वनि—विशेषरूप से उसके द्वारा दिया गया काम का संदेश प्रेमी जनों को वसंत की मोहक ऋतु में ही अधिक कर्णगोचर होता है । संभव है केशव को इस प्रकार का वर्णन करते समय तपस्वी-श्रेष्ठ विश्वामित्र की यौगिक भक्ति का प्रभाव दिखाना अभीष्ट रहा हो इसी से उनका आगमन होते ही चहुँ ओर बसंतश्री सुशोभित होने लगी हो ।

इसी प्रकार वन का वर्णन करते समय केशव ने एला, लवंग, पुंगीफल तथा राजहंस का उल्लेख बिहार के वनों में किया है । बिहार के वनों में इनका होना भौगोलिक दृष्टि से असंभव है परन्तु वन-वर्णन के अन्तर्गत विभिन्न वृक्षों तथा क्षियों का वर्णन होना चाहिए इसीलिए केशव ने इनका वर्णन कर दिया है—

तरु तालीस ताल तमाल हिंताल मनोहर ।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल केर नारियर ।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै ।
सारी शुककुल कलित चित कोकिल अलि मोहै ।
शुक राजहंस कलहंस नाचत मत्त मयूर-गन ।
अतिप्रफुलित सदा रहै केशवदास विचित्रवन ।।

यद्यपि यहाँ केशव ने 'विचित्र वन' कहकर इस प्रश्न का समाधान स्वयं ही कर दिया है परन्तु इस प्रकार प्राकृतिक असत्यों का वर्णन करना काव्य की स्वाभाविकता को न्यून कर देता है ।

राम भरद्वाज ऋषि से सनाढ्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं—

कहौ भरद्वाज सनाढ्य को हैं । भये कहाँ ते सब मध्य सोहैं ।।[2]

परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि त्रेता युग में राम के समय ब्राह्मणों के सनाढ्य, कान्यकुब्ज आदि उपभेद हो चुके थे अथवा नहीं । केशव ने अपने काल में इस सत्य के वर्तमान रहने के कारण इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है ।

अवतारों के क्रम में पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत रामावतार को कृष्णावतार के पूर्व माना गया है अतः राम के समय में कृष्णकालीन वस्तुओं का वर्णन करना

१. रामचन्द्रिका, १।३०
२. वही, २१।१५

समयोचित नहीं है। राम दंडक-वन का वर्णन करते हुए वन की समता पांडवों से करते हैं। शब्द-साम्य की दृष्टि से तो यह कल्पना उपयुक्त ही नहीं, अति सुन्दर भी है परन्तु पांडवों के उस समय तक अस्तित्व में न आने के कारण यह अधिक तर्क-संगत नहीं है—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन-भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिर औ तिलकावली रूरी ।।[१]

राम (अप्रत्यक्ष रूप से केशव) पूर्णतया भूल जाते हैं कि पांडवों का जन्म होने में अभी सहस्रों वर्षों का विलंब है। इसी प्रकार हनुमान राम को सीता का संदेश देते हुए कहते हैं—

श्री नृसिंह प्रहलाद की वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसुही झूँठी ह्वै है नाथ ।।[२]

रामावतार में नृसिंह तथा प्रह्लाद के कथानक के साथ भगवान् का कोई सम्बन्ध नहीं था। यह घटना पुराणों में रामावतार के एक युग के पश्चात् घटित हुई है परन्तु केशव को कदाचित् इस पौराणिक सत्य का स्मरण न रहा इसी से यह भूल हो गई है अथवा सम्भव है उन्होंने राम-सीता को त्रिकालदर्शी मानने के कारण ऐसी कल्पनाएँ जानबूझ कर ही कीं हों।

राजा-राम वर्णन के अन्तर्गत केशव ने राम के चौगान खेलने का वर्णन किया है—

एक काल अतिरूप निधान। खेलन को निकरे चौगान।
हाथ धनुष शर मन्मथ रूप। संग पयादे सोदर भूप ।।[3]

परन्तु चौगान शब्द फारसी भाषा का है और त्रेता युग में इस खेल का सर्वथा अभाव था। केशव ने अज्ञात रूप से राजा राम में तत्कालीन नरेशों की कल्पना कर उन्हें भी चौगान खेलने में संलग्न दिखा दिया है।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में राम-राज्य का वर्णन करते हुए दीपावली पर द्यूत-क्रीड़ा तथा फाग के अवसर पर निर्लज्जता का उल्लेख किया है—

फागुहि निलज लोग देखिए। जुवा दिवसि को लेखिए ।।[४]

दीवाली अथवा अन्य किसी भी अवसर पर आदि राम काव्य में द्यूत-क्रीड़ा का कोई उल्लेख नहीं है। इसका सर्वप्रथम संकेत हमें 'महाभारत' में मिलता है जब द्वापर युग का आगमन हो चुकता है। फाग के अवसर पर निर्लज्ज चेष्टाओं का प्रादु-

---

१. रामचन्द्रिका, ११।२१
२. वही, १४।३०
३. वही, २६।१
४. वही, २८।१०

र्भाव भी हिन्दू समाज में कृष्ण-लीलाओं के विकास के अनन्तर हुआ था परन्तु केशव ने इनका समावेश कृष्ण के जन्म से भी पूर्व कर दिया है।

राम को लोकापवाद के कारण सीता त्याग का निश्चय करते देख भरत कहते हैं कि यवनादि के अपवाद लगने से क्या ब्राह्मण गऊ का त्याग कर देता है—

यमनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़ि है कपिलाहि ?
विरहीन का दुख देत, क्यों हर डारि चन्द्र कलाहि ?[१]

राम के समय तक भारत में यवनों का प्रवेश नहीं हुआ था अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल दोष है। इसी प्रकार भरत आगे कहते हैं—

दूषत जैन सदा शुभ गंगा। छोड़हुगे वह तुंग तरंगा ॥
मायहि निंदित हैं सब योगी। क्यों तजि हैं सब भूपति भोगी ॥[२]

राम के समय जैन मत प्रचलित नहीं था, अतएव जैनमतावलंबियों का गंगा की निंदा करने का उदाहरण देना उचित नहीं हुआ है।

ग्वारसि निंदत हैं मठधारी। भावति है हरिभक्त न भारी ॥
निंदत हैं तव नामहि बामी। का कहिये तुम अंतरयामी ॥[3]

राम के समय में जगन्नाथ जी नहीं थे परन्तु केशव के समय इन सत्यों के वर्तमान रहने के कारण ये उपमाएँ स्वाभाविक ही हुई हैं।

केशवकालीन समाज तथा राजनैतिक स्थितियों के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि केशव ने 'रामचन्द्रिका' में तत्कालीन समाज तथा राजनीति के विशुद्ध चित्र अंकित किए हैं। कवि जिस देश तथा काल में जन्म लेता है उसका उस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है, केशव भी इस प्रभाव से अस्पर्श्य नहीं थे। यह सत्य है कि काव्य इतिहास नहीं होता, उसमें बहुमुखी कल्पनाओं का समावेश होता है अतः काव्यसत्य में कल्पना का अंश स्वतः ही समन्वित रहता है। 'रामचंद्रिका' के वर्णनों में भी कल्पना का प्राचुर्य है परन्तु यत्र-तत्र जहाँ कवि ने ऐतिहासिक तथा कालगत सत्यों की अवहेलना कर कल्पनाएँ की हैं वहीं देश दोष अथवा काल दोष आ गए हैं।

देशकाल संबंधी दोष प्रायः सभी कवियों के काव्य में यदाकदा मिल जाते हैं क्योंकि देशकाल के बंधनों में कवि इतना आबद्ध रहता है कि उससे विमुक्त रह कर कवि की कल्पना ही नहीं की जा सकती। तुलसी ने त्रेतायुगीन विभीषण के निवासस्थान में तुलसी का विरवा लगवा दिया है तथा डा० बलदेव मिश्र ने साकेत संत में भरत को गांधीजी के अहिंसावाद का प्रतिपालक बना दिया है। उन्होंने भरत के जीवन में महात्मा बुद्ध तथा बापू के अहिंसात्मक आदर्शों को उतार दिया है। इस प्रकार के

१. रामचन्द्रिका, ३३।३३
२. वही, ३३।३७
३. वही, ३३।३८

काल्पनिक प्रसंग कवि अपने काव्यों में कभी लोकरंजन एवं कभी लोकसुधार के लिए प्रस्तुत करता है परन्तु अपने युग का प्रतिनिधित्व वह अवश्य करता है। 'रामचंद्रिका' में भी अपने युग से प्रभावित होकर केशव ने तत्कालीन समाज के अनेक चित्र अंकित किए हैं तथा अनेक नवीन कल्पनाएँ की हैं जहाँ कभी-कभी देश अथवा काल दोष आ गए हैं। स्वातंत्र्य प्राप्त होने पर भी कवि के लिए यथासंभव ऐसे दोषों का परिहार ही काव्य में अधिक वांछनीय है यद्यपि यह बात दूसरी है कि काव्य में देश तथा काल दोनों प्रकार के दोषों से पाठक को अवगत कराना भी केशव का एक सचेष्ट प्रयास रहा हो।

उद्देश्य

महाकाव्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में प्रायः सभी साहित्य-शास्त्री एकमत हैं कि वह महान् होना चाहिए। दण्डी ने कहा कि महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुर्वर्ग की प्राप्ति होनी चाहिए। रुद्रट के अनुसार चतुर्धर्म से युक्त काव्य महान् होता है, और विश्वनाथ ने चारों में से कम-से-कम एक की स्थिति अनिवार्य मानी है। केशव ने विश्वनाथ की मान्यता का अनुसरण कर 'रामचन्द्रिका' की रचना धार्मिक उद्देश्य से की। राम उनके आराध्य थे तथा बाल्यकाल से ही सौभाग्यवश उन्हें राम भक्ति का रुचिर वातावरण भी उपलब्ध हो गया था।

केशव की राम भावना—मधुकरशाह की रानी गणेश कुँवरि ने ओड़छा में एक मन्दिर बनवाया था जो राम राजा का मन्दिर कहलाता है। इसके अतिरिक्त ओड़छा में हनुमान धारा, जानकी कुण्ड, अनुरूपा जी (महर्षि अत्रि और उनकी पत्नी का स्थान), राम सैय्या, भरतकूप, आदि राम कथा से संबंधित अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थान हैं। गुप्तकालीन देवगढ़ के विष्णु मन्दिर में राम की कथा के अनेक चित्र खुदे हुए हैं। बुंदेलखण्ड में दसवीं शताब्दी के पूर्व बने हुए लक्ष्मण मंदिर, भरत और हनुमान के मंदिर हैं। कालिंजर के किले में सीता राम के अयोध्यागमन की कथा चित्रित है। वहाँ पर एक स्थान का नाम सीतासेज भी है। इन सब भवनों तथा मंदिरों से पता चलता है कि बुंदेलखण्ड में केशव के उदय के बहुत पूर्व से ही राम कथा का पर्याप्त प्रचार था। इस प्रकार केशव को राम की भक्ति अपने वंशाधिकार स्वरूप तथा लोकवाणी दोनों से ही मिली थी। उस समय तक राम से संबंधित अनेक रामायणें भी लिखी जा चुकी थीं जैसा कि तुलसीदास की एक चौपाई से स्पष्ट है—

रामकथा क मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥[1]

स्वयं तुलसीदास की रामायण केशव की 'रामचन्द्रिका' से पूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। केशव के समय तक राम-कथा इतनी प्रचलित हो चुकी थी कि उसकी प्रत्येक घटना और प्रत्येक अंतर्कथा को कहने की आवश्यकता नहीं थी। राम कथा मूल रूप

१. मानस, बालकांड, पृ० ६५, छंद ३२ ख

में बहुत विस्तृत न होते हुए भी उसमें चारों ओर से आकर इतनी घटनाएँ मिल गई थीं कि एक साथ प्रत्येक घटना का वर्णन करना असंभव था। इसीलिए इतनी रामायणें होते हुए भी कोई रामायण अपने पूर्ववर्ती काव्यों का पिष्टपेषण नहीं है तथा प्रत्येक में नवीन उद्भावनाएँ हैं। 'रामचन्द्रिका' के पात्र भी पिछली कथाओं के पूरक हैं, पुनरुक्ति नहीं। इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य में रख कर केशवदास ने पुनरुक्ति का भय त्याग कर राम नाम की रटना की है। तुलसी राम की उस भक्ति के याचक हैं जिससे महिमा मिलती है, केशव राम के उन गुणों के उपासक हैं जिनसे गरिमा मिलती है।

केशव ने राम के जिस रूप की उपासना की है वह अक्षरों में वर्णनातीत है। वे संसार को सुख देने में मूल कारण हैं और सम्पूर्ण संसार द्वारा वंदनीय हैं। महादेव उन्हें सदा हृदय में धारण कर उपासना करते हैं। ब्रह्मा उनके गुणों को देखते ही रह जाते हैं। सरस्वती उन्हें लेखबद्ध करने की चेष्टा करती हैं और शेषनाग अपने सहस्र-मुख से उनका गायन करने का प्रयास करते हैं परन्तु तब भी कोई उनके गुणों का पार नहीं पा सकता।[1] भगवान् राम अपने भक्तों को देवलोक पहुँचाने वाले हैं और बिना उनका गुणगान किए कोई भवसागर के पार नहीं पहुँच सकता। जिसे वे एक बार शरण में ले लेते हैं वह जन्म-मरण के सभी कष्टों से मुक्त हो जाता है। उनका मन कभी लोभ,मोह, मद और काम के वशीभूत नहीं होता है। वे साक्षात् परब्रह्म हैं और अब तक के सब अवतारों में सर्वश्रेष्ठ हैं।[2]

---

१. बानी जगरानी की उदारता, बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न केहूँ लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहू ना बखानी काहू पै गई।
वर्णै पति चार मुख पूत वर्णै पांच मुख,
नाति वर्णै षटमुख तदपि नई नई॥ —रा० च०, १।२

२. भलो बुरो न तू गुनै।
बृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइ है।
न देवलोक पाइ है। —रा० च०, १।१६

बोलि न बोल्यो, बोल दयो फिर ताहि न दीन्हों।
मारि न मारयो शत्रु क्रोध मन बृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी।
दान सत्य सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।
मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशव दास मणि।
सोई परब्रह्म श्री राम हैं अवतारी अवतारमणि।

—रा० च०, १।१७

राम नरकारि हैं और उनके दर्शन से पापी भी पवित्र होकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। संसार में उनका रूप राजकुमार का है, और केवल उनका बालरूप ही सुर-पालक इंद्र के समान आनन्ददायक है। वपुधारी होते हुए भी वे साक्षात् ज्योति के सदृश हैं जिसको देखने के लिए सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं, योगियों को जिसका दर्शन दुर्लभ है और जो महादेव के मन रूपी सागर में सदैव बसती है। उस का न रूप है, न रंग है, न कोई विशेष चिह्न है और वेद उसको अनादि तथा अनंत कहते हैं। ब्रह्मा भी उसका ठीक से वर्णन नहीं कर सकते।[1] राम समस्त भुवनों के पालन-पोषण-कर्त्ता और ब्रह्मा, रुद्रादि तथा चर-अचर जीवों में बसने वाले हैं।[2] जब परशुराम राम को नारायण न मानकर उनसे विवाद बढ़ाते हैं तो राम क्रोध करके स्पष्ट कहते हैं कि मैं वह व्यक्ति हूँ जो ब्रह्मा की सृष्टि को नष्ट कर दूँ, महादेव को योगासन से डिगा दूँ, चौदहों लोकों का संहार कर दूँ, शेषनाग के सहित पृथ्वी को गिरा दूँ, सातों सागर मेरी आज्ञा से मिलकर प्रलय मचादें और मेरे संकेत मात्र पर सारा संसार अंधकारमय हो जाए।[3] महादेव उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि वे अमल अनंत अनादि देव हैं। सबको ईर्ष्या, द्वेष और पक्षपातहीन दृष्टि से समान भाव से देखते हैं और भक्तों के कारण संसार में अवतार लेते हैं।[4] वह अधर्म के संहारक और धर्म के प्रचारक हैं। धर्म की मर्यादा को बनाए रखने के लिए इस संसार में स्वेच्छा से अवतरित होते हैं।[5] संसार में ऐसा कोई नहीं है जो इनकी

---

१. सिद्धि समाधि सजै अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त समुद्र बसै तित ब्रह्महु पै बरनी नहि जाई।
रूप न रंग न रेख विसेष अनादि अनंत बेदन गाई।
केशव गाधि के नन्द हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई। ६।१८

२. गुण गण मणिमाला चित्त चातुर्दशाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता॥
अखिल भुवन भर्त्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्त्ता।
थिर चिर अभिरामी कीय जामातु नामी॥ ६।२७

३. भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं॥
सकल लोक संहरहूँ सेस सिरते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिली जा ही होई सबही तम भारो॥
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर॥ ७।४२

४. तुम अमल अनंत अनादि देव वेद बखानत सकल भव।
सबकौ समान नहिं बैर नेह, सब भक्तन कारन धरत देह। ९।४६

५. निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्म संहारक धर्मचारी॥
चले दशग्रीवहि मारिबे को। तपीव्रती केवल पारिबे को॥ १०।४१

माया से विमोहित न होता हो। यद्यपि वे स्वयं सर्वज्ञ हैं और सब प्रकार से समर्थ हैं परन्तु फिर भी देहधारियों के समान लीलाएँ करते हैं जिसको देखकर संसार के अज्ञ व्यक्ति मोहित हो जाते हैं।[1] इसीलिए राक्षसों के संहारक और जगत् के कर्त्ता, पालक, संहारक सब कुछ होते हुए भी साधारण सांसारिक पुरुषों के समान पर्णशाला के लिए उपयुक्त स्थान पूछने अगस्त्य ऋषि के पास जाते हैं। रावण भी कालवश उनकी माया से मोहित होकर उनसे युद्ध ठानता है। मारीच से समझाता है कि राम को मनुष्य मत समझो, उनको समस्त चौदहों भुवनों में व्याप्त समझो क्योंकि वे जल थल में सर्वत्र व्याप्त हैं।[2] परन्तु जब मारीच देखता है कि रावण इस समय किसी की बात नहीं सुनेगा तो वह यह सोचकर कि रावण के हाथों नरकवासी होगा और भगवान् राम तो बैकुण्ठ भेजकर मुक्ति देने वाले हैं, इसलिए उनके हाथों मृत्यु पाकर मुक्त होना ही अच्छा समझता है।

राम सर्वशक्तिमान हैं। गरुड़, कुबेर, यम, राक्षस, देवता, दैत्य और जितने राजा इस संसार में हैं और अरबों इन्द्र, खरबों शिव तथा करोड़ों सूर्य और इन्द्र सब श्रीराम के दास हैं और संसार में कोई भी उन्हें कष्ट नहीं पहुँचा सकता।[3] वे स्वयं ब्रह्मा और रुद्र आदि देवों के कष्टों का हरण करने वाले हैं। राम गुणातीत हैं परन्तु फिर भी मानव-लीला दिखाने के लिए उसके समान सुख-दुःख से प्रभावित होते हैं। जिस प्रकार तुलसी ने स्थान-स्थान पर राम के निर्गुणत्व तथा परब्रह्मत्व का स्मरण करा कर जनता को सजग कर दिया है कि राम की नर-लीलाओं को देखकर भ्रम में न पड़ो, उसी प्रकार केशव ने भी अनेक स्थलों पर राम का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष गुणगान किया है। 'रामचन्द्रिका' में ऐसे अनेक स्थल हैं,[4] जहाँ कवि ने राम को मनुष्य न समझ संसार का स्वामी होने का स्मरण कराया है।

---

१. यद्यपि श्रीरघुनाथजू, मम सर्वग सर्वज्ञ।
नर कैसी लीला करत, जेहि मोहत सब अज्ञ। १२।२६

२. रामहिं मानुष कै जनि जानौ। पूरन चौदह लोक बखानौ।।
जाहु जहाँ सिय लै सुन देखौ। हौं हरि को जलहू थल लेखौं।। १२।१

३. पच्छिराज जच्छराज प्रेतराज जातुधान
देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।।
पर्वतारि अर्ब खर्ब सर्व सर्वथा बखानि।।
कोटि-कोटि सूर चन्द्र रामचन्द्र दास मानि।। १२।१७

४. यद्यपि है अति निर्गुण ताई। मानुष देह धरे रघुराई।।
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो।।१७।४३
वानर न जानु सुर जानु सुभगाथ हैं। मानुष न जानु रघुनाथ जगन्नाथ हैं।।
जानकिहि देहु करि नेहु कुल देह सों। आजु रण साजि पुनि गाजि हंसि मेंह सों।।
१८।११

राम को केशव ने परब्रह्म माना है अतः वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी। व्यक्ति अपनी-अपनी भावनाओं के अनुकूल उन्हें निर्गुण अथवा सगुण मान लेता है। निर्गुण रूप में उनका कोई परिमाण नहीं है, न आदि है, न अन्त है और न कोई रूप है। परन्तु भक्तों को संशय होता, है कि यदि राम का कोई रूप नहीं है तो वे चलते-फिरते कैसे हैं इसलिए तुलसी ने कहा है कि उनकी कृपा से तो अंधा देखने लगता है और लंगड़ा चलने लगता है फिर स्वयं राम को क्या कष्ट। केशव ने भी स्तुति करते हुए ब्रह्मा के मुँह से कहलाया है कि राम निर्गुण के साथ ही गुणरूप भी हैं। उनके रजोगुणमय रूप ने ब्रह्म नाम से सृष्टि की रचना की है। सतोगुण धारण करके विष्णु रूप से विश्व की रक्षा की है और तमोगुण रूप से शंकर बनके संसार का संहार किया है। राम स्वयं सारा संसार हैं और सारा संसार राम में ही स्थित है। उन्होंने सब जीवों की मर्यादा बाँध दी है और उनका उल्लंघन होने पर अवतार लेकर उसे पुनः स्थापित करते हैं। इसी प्रकार दस बार संसार में मर्यादा भंग होने पर वे विभिन्न रूपों में अवतार ले चुके हैं।[1] ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों उनकी स्तुतियाँ करते रहते हैं, इन्द्र उनका दास है। वे केवल लोकाचार के लिए दशरथ के पुत्र और लक्ष्मण के भाई हैं अन्यथा तो साक्षात् परमात्मा ही हैं।

केशवदास की राम-भावना पर गुरु रामानन्द का भी प्रभाव पड़ा था। रामानन्द ने राम-भक्ति का द्वार प्रत्येक वर्ण के लिए खोल दिया था, उसी प्रकार केशव ने भी प्रत्येक वर्ण को राम नाम का अधिकारी माना है। स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और जो कोई भी राम का चरित्र सुनता है उसे पुत्र-कलत्र तथा सम्पत्ति का सुख मिलता है और अनेक यज्ञ, दान तथा तीर्थाटन का फल प्राप्त होता है।[2] केशव ने राम नाम का महत्त्व बताकर अंग-उपांगों सहित भक्ति की जटिलता को बहुत कम कर दिया। उस समय प्रचलित भक्ति में 'कर्मकाण्ड' का इतना अधिक प्रभुत्व था कि साधारण गृहस्थ को वह बहुत जटिल प्रतीत होती थी। उसकी शंका केशवदास गुरु वशिष्ठ के द्वारा ब्रह्मा जी से करवाते हैं। वशिष्ठ जी पूछते हैं कि जो

---

१. राम सदा तुम अंतरयामी। लोक चतुर्दश के अभिरामी।
निर्गुण एक तुम्हें जग जानै। एक सदा गुणवंत बखानै॥ २०।१५
राम। सुत। धर्मयुत सीय मन मानिये। बन्धुजन मातुगन प्रान सम जानिये।
ईश, सुर-ईश जगदीश सम देखिए। राम कहं लक्ष्मण! विशेष प्रभु लेखिए।
२०।२५

२. रामचन्द्र चरित्र को जु सुनै सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्री रघुराय॥
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारि का नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय। ३९।३८

व्यक्ति योग-यज्ञ न कर सके, स्नान-दान तथा विधान के मर्म को न समझ सके और सब भांति अशक्त हो उसका उद्धार कैसे हो सकता है ?[१] ब्रह्मा जी उन्हें समझाते हैं कि राम-नाम का जाप अत्यन्त सरल और फलदायक है। जो केवल आधा अर्थात् 'रा' का जाप करता है उसकी अधोगति नष्ट हो जाती है और जो पूरा नाम लेता है, उसे सीधे बैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। इस संसार में जो राम का नाम सुनता है और सुनाता है वह साधु कहलाता है, जो कहता और कहलाता है उसके समस्त पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं, और जो जपता-जपाता है उसकी सम्पूर्ण वासनाओं का अन्त हो जाता है।[२]

केशव की राम-भक्ति की एक दीर्घ साहित्यिक परम्परा है। वेदों में जिस राम का केवल एक-दो स्थानों पर किसी राजा के रूप में उल्लेख हुआ है, वही वाल्मीकि रामायण में एक नरश्रेष्ठ राजा बन गये जो अपने अनेक गुणों में विष्णु तथा इन्द्र की समता करते थे। महाभारत में राम विष्णु के अवतार हैं, परन्तु विष्णु ब्रह्मा के आदेश के अनुसार जन्म लेकर रावण का वध करते हैं।[३] बौद्ध साहित्य में राम बुद्ध के अनेक पूर्व जन्मों में से एक जन्म लेकर पृथ्वी पर अवतरित होते हैं और जैन साहित्य में उनकी गणना जैनियों के त्रिषष्ठि महापुरुषों में होने लगती है। राम-कथा की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्त्व भी बढ़ता गया है और पुराणों में महाभारत का अनुगमन करते हुए विष्णु के अवतारों में रामावतार को भी स्वीकार कर लिया गया है। संस्कृत ललित-साहित्य में भी राम विष्णु के अवतार बने रहे परन्तु अध्यात्म रामायण तक आते-आते वे साक्षात् परब्रह्म के अवतार हो जाते हैं और उसीसे प्रभावित होकर तुलसी और केशव ने भी राम को, परब्रह्म मानकर विष्णु को उनका केवल एक अंश मात्र बना दिया है। अध्यात्म रामायण में उसके कवि ने राम-भक्ति का प्रतिपादन वेदान्त-दर्शन के आधार पर किया था, तुलसी ने भी विनयपत्रिका में उसका शास्त्रीय प्रतिपादन किया परन्तु केशवदास ने उसका सरलीकरण कर केवल राम नाम को ही यथेष्ट बताया।

---

१. चित्त मांझ जब आनि अरुझी।
बात तात पहँ मैं यह बूझी ॥
योग याग करि जाहि न आवै।
स्नान दान विधि मर्म न पावै ॥
है अशक्त सब भांति बिचारो।
कौन भांति प्रभु ताहि उधारो ॥ २६।४

२. कहै नाम आधो सो आधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुण्ठ पावै ॥
सुधारै दुहूँ लोक को वर्ण दोऊ। हिये छद्म छाँड़े कहै वर्ण कोऊ ॥
सुनावै सुनै साधु संगी कहावै। कहावै कहै पाप पुंजै नसावै ॥
जपावै जपै वासना जारि डारै। तजै छद्म को देवलोकै सिधारै ॥ २६।३-७

३. महाभारत, अरण्य पर्व। ३।२६०

इस प्रकार केशव के समय में राम पूर्ण ब्रह्म स्वीकार कर लिए गये थे परन्तु उनके इस रूप का तब तक इतना अधिक निरूपण हो चुका था कि अब तुलसी और केशव दोनों पर ही कृष्ण-काव्य तथा 'हनुमन्नाटक', 'प्रसन्नराघव' आदि संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव पड़ने लगा और उनका ध्यान राम को ब्रह्म मानकर भी उनके ब्रह्म रूप का वर्णन करने की अपेक्षा नर रूप की ओर अधिक जाने लगा था। इसीलिए साक्षात् परमात्मा होते हुए भी हमें तुलसी की 'गीतावली' तथा केशव की 'रामचन्द्रिका' में उनके राज-रूप के दर्शन अधिक होते हैं।

केशव ने राम के राजा रूप का वर्णन अवश्य किया परन्तु उनके वर्णन में कहीं भी भक्ति की मर्यादा का अतिक्रमण नहीं हुआ है। तत्कालीन जनता की अभि-रुचि को देखते हुए केशव उसके दुःख का निवारण राम का मानवीय-रूप चित्रित कर के करना चाहते थे अतः वह 'रामचन्द्रिका' के आरम्भ में कहते हैं कि उन्होंने वाल्मीकि से पूछा 'दुःख क्यों टरि है।' वाल्मीकि के राम-नाम का गुणगान करने का परामर्श देने पर उन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना की। केशव का यह दुःख इतना निजी नहीं है जितना जन-जीवन से सम्बन्धित है। तुलसी के समान केशव की साधना भी व्यक्तिगत न होकर लोक-मंगल के लिए है। यह लोक-मंगल तीन प्रकार का है राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक। तत्कालीन राजाओं की प्रवृत्तियाँ तथा उनके राज्य में दुर्व्यवस्था का वर्णन केशव ने रामकृत राज्यश्री निंदा के प्रसंग में किया तथा उसका समाधान किया राम-राज्य में शांति और सुख दिखाकर। धार्मिक मत-मतांतरों तथा सामाजिक अव्यवस्था का निराकरण केशव ने वशिष्ठ द्वारा राम की शंकाओं का समाधान करवा कर किया है। 'रामचन्द्रिका' में इतना विस्तार कवि ने अन्य किसी प्रसंग को नहीं दिया है।

केशव का सम्बन्ध इन्द्रजीत के दरबार से था अतः उन्हें जन-साधारण के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ परन्तु समाज के जिस वर्ग से उनका सम्बन्ध था उसका सुधार और कल्याण वह अवश्य चाहते थे। राजा और उसके कर्मचारियों के व्यवहार का प्रभाव सम्पूर्ण प्रजा पर पड़ता है अतः वह इनमें कर्म-निष्ठता का भाव जगाना चाहते थे। समाज के धार्मिक नेता ब्राह्मण वर्ग अनेक प्रकार के तर्क-कुतर्कों में पड़कर लोक-समाज को भ्रम में डाले हुए थे अतः वह साधना का ऐसा मार्ग चाहते थे जिसमें अशिक्षित जनता को उन ब्राह्मणों की कृपा पर निर्भर न रहना पड़े। राम अगस्त्य ऋषि से कहते हैं—

सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र।
इनही लगे राज के काज। इनही ते सब होत अकाज।[1]

× × ×

मुख रोगी ज्यों मौने रहै। बात बनाय एक द्वै कहै।
बन्धु वर्ग पहिचानै नहीं। मानो सन्निपात की गही।[2]

---

१. रामचन्द्रिका २३.१४
२. वही २३.३४

अनेक प्रकार के साँसारिक दुःखों का वर्णन कर राम पूछते हैं—

जो कुछ जीव उधारन को मत। जानत हौ तो कहौ मन है रत।[१]

उस समय वर्तमान विभिन्न उपासना-पद्धतियों को देखकर पूछते हैं—

जग तुमते नहिं सर्वज्ञ आन। सब कहौ देव पूजा विधान।[२]

राम की यह शंका केशव की शंका है, तत्कालीन प्रजा की शंका है और इसी का समाधान करना 'रामचन्द्रिका' का उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति लक्ष्य है। केशव की यह रचना किसी भौतिक सुख, ऐश्वर्य अथवा अर्थ की कामना से नहीं हुई है बल्कि समाज हित के लिए हुई है। केशव का लक्ष्य समाज का बुद्धि-जीवी वर्ग है इसलिए उन्होंने उपदेश का आश्रय न लेकर बुद्धि ही के सहारे उसे सुधारने का प्रयत्न किया है। बुद्धि को उपदेश की नहीं तर्क की अपेक्षा होती है। तुलसी और केशव दोनों में उद्देश्य की समानता होते हुए भी इसीलिए हम उन्हें दो पृथक् मार्गों का अनुसरण करते हुए देखते हैं। तुलसी में उपदेश प्रधान है और केशव में तर्क, परन्तु उद्देश्य दोनों का लोक सुधार है।

'रामचन्द्रिका' में केशव का अभिव्यंजना कौशल

'रामचन्द्रिका' की भाषा—केशव का जन्म विद्वानों के जिस परिवार में हुआ, वहाँ संस्कृत मातृभाषा थी और भाषा का अध्ययन सप्रयास करना होता था। उनके परिवार के दास भी संस्कृतभाषी ही थे।[3] अतः केशव की भाषा का अध्ययन करने के पूर्व स्मरणीय है कि वह संस्कृत के विद्वान् थे भाषा के नहीं। केशव का भाषा का अध्ययन उनके हिन्दी के प्रति असीम प्रेम का ही परिचायक है।

केशव के पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनेक कवि केशव के पूर्व ही ब्रजभाषा और अवधी में विपुल साहित्य की रचना कर चुके थे। सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों के हाथों ब्रजभाषा यथेष्ट विकसित हो चुकी थी। जायसी और तुलसी अवधी में दो श्रेष्ठ महाकाव्यों की रचना कर चुके थे। तुलसी ने अवधी के साथ ही ब्रज में भी अनेक काव्यों का प्रणयन किया परन्तु केशव ने रामचन्द्रिका के रूप में ब्रज भाषा में महाकाव्य लिखने का लगभग प्रथम प्रयास किया।

केशव का जीवन बुन्देलखण्ड की मनोरम भूमि पर व्यतीत हुआ था। बुन्देलखण्डी उनकी अपनी प्रान्तीय भाषा है परन्तु बुन्देलखण्डी लगभग ब्रजभाषा है और उसकी गणना पश्चिमी हिन्दी में ही होती है। बुन्देलखण्डी तथा ब्रजभाषा दोनों

---

१. रामचन्द्रिका, २४.२८
२. वही २५.२३
३. भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास।—कविप्रिया, २।१७

का मूलाधार शौरसेनी है और दोनों के व्याकरण में पर्याप्त सादृश्य है। अतः केशव ने जिस ब्रजभाषा का प्रयोग किया है वह बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा है, शुद्ध ब्रज-भाषा नहीं। बुन्देलखण्डी और ब्रजभाषा से भी अधिक केशव संस्कृत के विद्वान् थे अतः उनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों और व्याकरण का भी प्राचुर्य है। केशव की भाषा को इस प्रकार हम संस्कृत, बुन्देलखण्डी तथा ब्रजभाषा के समन्वय से निर्मित ब्रजभाषा कह सकते हैं।

जन्मगत प्रभाव के अतिरिक्त तीनों भाषाओं का समन्वय करने में केशव का सांस्कृतिक उद्देश्य भी था। केशव के समय तक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, ब्रज आदि अनेक भाषाओं में पृथक्-पृथक् प्रचुर साहित्य की रचना हो चुकी थी। परन्तु प्रत्येक भाषा की अपनी सीमाएँ होती हैं। केशव का युग निर्माण का युग था, वह एक ऐसी साहित्यिक भाषा का निर्माण करना चाहते थे जो स्वयं में पूर्ण हो। इसके लिए उन्होंने विभिन्न भाषाओं से तथा आवश्यकता पड़ने पर विदेशी भाषा से भी ऋण लेने में संकोच नहीं किया है। इस सम्बन्ध में केशव का एक प्रयास अवश्य रहा है कि जब उन्होंने अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द लिए हैं तो उनको यथासम्भव उसी रूप में ग्रहण किया है जिस रूप में वह वहाँ प्रचलित हैं परन्तु जब उन्होंने विदेशी शब्दों को स्वीकार किया है तो उनका तद्भव रूप रखा है। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करते समय भी उन्होंने यथासम्भव उनका तत्सम रूप ही रखा है।

बुन्देलखण्ड में णकार और शकार अधिकांश अपने शुद्ध रूप में ही लिखा जाता है अतः केशव ने भी संस्कृत के उन तत्सम शब्दों को जिनमें णकार और शकार आते हैं प्रायः शुद्ध रूप में ही लिखा है। उनके रूप में केशव ने परिवर्तन केवल तभी किया है जब इस परिवर्तन से या तो पदलालित्य में वृद्धि होती हो अथवा अनुप्रास की आवश्यकता उन्हें ऐसा करने को विवश करती हो। गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा और अवधी के नियमों का पूर्ण पालन किया है परन्तु जब अन्य प्रान्त का शब्द लिया तो उसको उसी रूप में लिखा है। रामायण के अरण्यकांड में रावण के सम्बन्ध में तुलसीदास ने लिखा है 'इत उत चितै चला भणिआई।' भणिया शब्द बुन्देलखण्डी है जिसका अर्थ है चोर। भणिआई का अर्थ है चोरी। तुलसी यदि चाहते तो अवधी के नियमानुसार 'भनिआई' बना सकते थे परन्तु इससे अर्थ-बोध में बाधा पड़ती। केशव ने भी अधिकांश इसी नियम का पालन किया है इसीलिए उनकी भाषा में शब्दों के प्रायः तत्सम रूप ही अधिक मिलते हैं।

केशव की रचनाओं से एक बात स्पष्ट है, उनकी कोई भी रचना उस पाठक के हेतु नहीं रची गई है जो संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ हो तथा जिसमें काव्य के शास्त्रीय अध्ययन की रुचि न हो। उनके काव्य का आनन्द वही पाठक उठा सकता है जिसने संस्कृत-साहित्य का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया हो और जो शास्त्रीय काव्य का प्रशिक्षण लेना चाहता हो। उनकी 'कविप्रिया' कविकर्म सीखने वाले शिष्यों के

लिए तथा 'रसिकप्रिया' रस का अध्ययन करने वाले शिष्यों के लिए है। 'रामचन्द्रिका' को यद्यपि हम छंद जिज्ञासुओं के हेतु रची गई रचना तो नहीं कह सकते क्योंकि उसमें छंदों के लक्षण कहीं नहीं दिए गए हैं परन्तु फिर भी यह छंद-प्रेमियों के रस भोग की वस्तु तो है ही। केशव स्वयं संस्कृत-साहित्य के मान्य पंडित हैं और उन्होंने हिन्दी-काव्य जिज्ञासुओं को संस्कृत की परम्पराओं से ही परिचित कराने का प्रयास भी किया है। 'रामचन्द्रिका' में इसीलिए उनका संस्कृत के प्रति असीम मोह सरलता से समझ में आ जाता है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा संस्कृत-शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। उन्होंने अधिकांश संस्कृत-शब्दों का तत्सम रूप ही रखा है, कहीं-कहीं संस्कृत विभक्तियों को भी हिन्दी में ज्यों-का-त्यों अपना लिया है और कहीं संस्कृत के श्लोकों को ही उद्धृत कर दिया है। कुछ छंदों में संस्कृत-शब्दों का बाहुल्य इतना अधिक है कि वह हिन्दी के स्थान पर संस्कृत के ही छंद प्रतीत होते हैं। संस्कृत के तत्सम रूपों के कुछ उदाहरण निम्न छंदों में देखे जा सकते हैं—

वहं शब्द वंचक जानि। अलि **पश्यतोहर** मानि।
नर छाहंई अपवित्र। शर खंग निर्दय मित्र।[1]

यहाँ 'पश्य' शब्द संस्कृत में दृश् धातु का रूप है, हिन्दी व्याकरण में यह रूप प्रयुक्त नहीं होता। इसी प्रकार—

होहिंगे सुत द्वै सुधी पगु धारिये **मम** ओक।
रामचन्द्र छितीश के सुत जानिहै तिहुं लोक।[2]

इस छंद में मम शुद्ध संस्कृत का शब्द है तथा छितीश संस्कृत क्षितीश का तद्भव रूप। केशव यदि तत्सम शब्दों को युक्त विकर्ष के साथ लिखते हैं तब भी उसमें बहुत कम परिवर्तन करते हैं जैसे—

(क) इनहीं के तप तेज बढि है तन **तूरण**।
इनहीं के तप तेज होहिंगे मंगल **पूरण**।
(ख) रामचन्द्र सीता सहित **शोभत** हैं तेहि ठौर।
(ग) मनो शचि विधि रचि विविध विधि **वर्णत** पंडित।

ब्रजभाषा के अनुसार उपरोक्त मोटे शब्दों का रूप तूरन, पूरन, सोभत और बरनत होना चाहिए था परन्तु केशव ने संस्कृत के अनुराग के कारण इनका रूप तूरण, पूरण, शोभत और वर्णत ही रहने दिया है।

कुछ स्थलों पर केशव ने संस्कृत शब्दों का तद्भव रूप भी रखा है जैसे—

तरु **ऊमरि** को आसन अनूप। बहु रचित हेममय विश्व रूप।[3]

---

१. रामचन्द्रिका, २८।१७
२. वही, ३३।५५
३. वही, २६।२०

यहाँ ऊमरि शब्द संस्कृत उदुम्बर का तद्भव रूप है।

संस्कृत शब्दों के साथ ही केशव ने संस्कृत सामासिक रूपों का भी 'रामचन्द्रिका' में यथेष्ट प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

तिनही तिनही लखि लोभ डसै। पटतंतुन उंदुर ज्यों तरसै।[1]

पटतंतु शब्द संस्कृत में षष्ठी विभक्ति का लोप करके 'पटस्य तंतु इति पटतंतु' बनता है।

केशव ने संस्कृत प्रत्ययों को हिन्दी में लाने का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर किया है—

(क) शीतलता शुभ्रता सबै सुन्दरता के साथ।[2]

(ख) धर्मबीरता विनयता, सत्य शील आचार।[3]

(ग) भागीरथी हुतियै अति पावन बावन ते अति पावनताई।[4]

(घ) विचारमान ब्रह्मदेव अर्चमान मानिए।
अदीयमान दुख सुख दीयमान जानिए।
अदंडमान दीन, गर्व दंडमान भेदवै।[5]

उपरोक्त छंदों में शुभ्रता, विनयता, पावनता में संस्कृत का 'ता' प्रत्यय और (घ) छंद में मोटे शब्दों में 'मनुप्' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत के वर्ण का प्रयोग भी केशव ने दो-एक स्थानों पर किया है यद्यपि हिंदी में यह बिल्कुल प्रचलित नहीं है, जैसे—

कीरति लै जग को जनु वारत। चंद्रक चंदन चंद सदाऽरत।।[6]

यहाँ सदा + आरत = सदारत के स्थान पर केशव ने संस्कृत के अनुसार सदा रत ही चलने दिया है।

संस्कृत व्याकरण के अनुकरण पर केशव ने कतिपय स्थानों पर कर्त्ता कारक के स्थान पर कर्म कारक में भी वाक्यों की रचना की है—

हौं मनते विधि पुत्र उपायो। जीव उधारन मंत्र बतायो।।[7]

इस वाक्य का अर्थ होता है—ब्रह्मा के द्वारा पुत्रवत् जब मैं उत्पन्न किया गया।

---

१. रा० च० २४।१६
२. वही, २६।२४
३. वही, २३।२२
४. वही, ६।२६
५. वही, ३।३
६. वही, २६।२५
७. वही, २५।१६

(१) हम वन पठये हैं नृपति तात ।
(२) धनदपुरी हौं रावन लीन्हो ।
(३) पुत्र हौं विधवा करी ।

आदि में भी इसी प्रकार की वाक्य-रचना की गई है ।

'रामचंद्रिका' में यत्र-तत्र संस्कृत विभक्तियों के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं—

(क) **निजेच्छया** भूतल देहधारी ।
(ख) **उरसि** अंगद लाज कछु गहौ ।
(ग) **लीलयैव** हर को धनु सांध्यौ ।

निजेच्छया में तृतीया विभक्ति, उरसि में सप्तमी और लीलया में तृतीया विभक्ति है । यह शुद्ध रूप से संस्कृत की विभक्तियाँ हैं और हिंदी में इनका प्रयोग नहीं होता । केशव ने इन विभक्तियों के योग से भाषा को कुछ नए शब्द देना चाहा परन्तु, हिंदी में इस प्रकार के शब्द अधिक प्रचलित नहीं हो सके ।

स्फुट संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त केशव ने अनेक छंदों में संस्कृत गर्भित भाषा रखी है जिससे कभी-कभी उनके संस्कृत छंद होने का भ्रम हो जाता है । जैसे निम्न कुछ छंदों में—

(क) रामचंद्र पद पद्म, वृंदारक वृन्दाभिवंदनीयम् ।
केशवमति भूतनया, लोचन चंचरीकायते ।[1]

(ख) सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना ।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जना शोभना ।
राजा राज पुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा ।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा ।[2]

(ग) नचति मंच-पंचालिका कर संकलित अपार ।
नाचति है जनु नृपन की चित्त-वृत्ति सुकुमार ।[3]

(घ) अनंता सबै सर्वदा शस्य-युक्ता । समुद्रावधिः सप्तईतिर्विमुक्ता ।
सदावृक्षफूलेफले तत्र सोहैं । जिन्हें अल्पधी कल्पसाखी विमोहैं ।[4]

संस्कृतनिष्ठ भाषा के अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' के कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ केशव ने अनुवाद के फेर में न पड़ कर संस्कृत के श्लोकों को ही उद्धृत कर दिया है ।

---

१. रा० चं०, १।१६
२. वही, ३।१३
३. वही ३।१६
४. वही, २८।१

मठपति के पापों की पुष्टि करते हुए केशव ने 'वाल्मीकि रामायण', 'स्कंध पुराण', 'पद्म पुराण' और 'देवी पुराण' से कुछ श्लोक उदाहरण स्वरूप दिए हैं ।[1]

अश्वमेध यज्ञ के लिए राम जिस अश्व को छोड़ते हैं उसके भालपट्ट पर जो श्लोक लिखा है वह केशव ने संस्कृत में ही दिया है—

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ।[2]

संस्कृत के पश्चात् 'रामचंद्रिका' में जिस भाषा के शब्दों का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है वह है बुंदेलखण्डी । केशव का जन्म और उनकी काव्य-शक्तियों का विकास बुंदेलखण्ड में रहकर ही हुआ था अतः उनकी काव्य-कृतियों में बुन्देलखण्डी शब्दों का आना स्वाभाविक था । 'रामचन्द्रिका' में भी इस प्रकार के शब्द-प्रयोग स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं—

'देवन **स्यौं** जनु देवसभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई ।[3]
'कहूँ भांड **भांड्यो** करैं मान पावैं ।'[4]
'दुहिता **समदौ** सुख पाय अबै ।'[5]
'कहूँ **बोक** बांके कहूँ मेष सूरे ।'[6]
'अंग को कि अंगराग गेडुवा कि **गल**सुई।'[7]
'धनु है यह **गौरमदाइन** नाहीं ।'[8]
'सिव सिर ससि श्री को राहु कैसे सु **छीवै** ।'[9]
'राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूलि सी **ओड़ि** लई है ।'[10]
'सोदर मंत्रिन के जू चरित्र । इनके **हमपै** सुनि मखमित्र ।'[11]
'फूलन के विविध हार, **घोरिलन** ओरमत उदार ।'[12]
'ज्ञानकपोट **कुची** जनु खोलत ।'[13]

---

१. केशव कौमुदी, दूसरा भाग, पृ० २२४
२. रा० चं०, ३५।१३
३. वही, ३।१५
४. वही, ६।१३
५. वही, ६।१
६. वही, ६।१४
७. वही, १२।६२
८. वही, १३।१६
९. वही, १३।६२
१०. वही, १७।४०
११. वही, २३।१४
१२. वही, २६।२३
१३. वही, ३२।३

इसी प्रकार के और भी बहुत से बुंदेलखण्डी शब्द हैं जिनका केशव ने प्रयोग किया है। इनमें घोरिलन, ओड़ना आदि कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो ब्रजभाषा में भी बहुत अधिक प्रचलित नहीं हैं।

ब्रजभाषा के अतिरिक्त केशव ने अवधी शब्दों के भी कुछ प्रयोग किए हैं। अवधी के इहाँ, उहाँ, दिखाउ, रिझाउ, दीन, कीन आदि अनेक शब्द 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त हुए हैं—

'रिझाउ रामपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ के'
'हंसि बंधु त्यों दृग दीन। श्रुति नासिका बिनु कीन।'
'कीधौं वह लक्ष्मण होइ नाहीं।'

केशव के समय तक मुगल सत्ता भारत में पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी। ओड़छा दरबार और मुगल दरबार में परस्पर कभी शत्रुता और कभी मैत्री रहा करती थी। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय के फलस्वरूप परस्पर भाषाओं का प्रभाव भी पड़ रहा था। तुलसी, सूर आदि सभी कवियों ने आवश्यकतानुसार विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। 'रामचंद्रिका' में भी हमें इसी प्रकार के कुछ शब्द मिलते हैं यद्यपि इनका व्यवहार अत्यन्त सीमित है। केशव ने इनका उपयोग आवश्यकता पड़ने पर ही किया है परन्तु भाषा के विकास और भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने इनका निःसंकोच उपयोग किया है, संस्कृतभाषी होने के कारण विदेशी शब्दों को हेय समझकर उनका तिरस्कार नहीं किया है। परन्तु इन शब्दों को अपनाते समय केशव ने एक बात का ध्यान रखा है कि जहाँ तक सम्भव हुआ है उन्होंने शब्दों का तद्भव रूप ही ग्रहण किया है, अरबी फारसी की विभक्तियों को नहीं अपनाया है—

'गणपति सुखदायक, पशुपति लायक सूर सहायक कौन गने।'[१]
'देखि तिन्हें तब दूरि ते गुदरानो प्रतिहार।'[२]
'पुनि तुम दीन्हो कन्यका त्रिभुवन की सिरताज।'[३]
'पटतंतुन उंदुर ज्यों तरसै।'[४]
'जामवन्त हनुमन्त नल नील मरातिव साथ।'[५]
'एक काल अति रूप निधान। खेलन को निकरे चौगान।'[६]
'जब जब जीतै ह्याल हरि, तब तब बजत निशान।'[७]

---

१. रा० चं०, १।४२
२. वही, २।७
३. वही, ६।२३
४. वही, २४।१६
५. वही, २६।२७
६. वही, २९।१
७. वही, २९।११

कुंकुम मेदोजबादि, मृगमद करपूर आदि ।'[1]
'कूकर एक फिरादहिं आयो ।'[2]

ब्रजभाषा को एक पूर्ण तथा विकसनशील भाषा बनाने के लिए केशव ने अनेक नवीन शब्दों का निर्माण किया है। संस्कृत स्वयं में पूर्ण तथा विश्व की सर्वोन्नत भाषाओं में से एक थी। केशव स्वयं भी उसके प्रकाण्ड विद्वान थे अतः उन्होंने हिन्दी शब्दों की तोड़ मरोड़ बहुत कुछ संस्कृत के आधार पर की है, जैसे—

अति कोमल केशव बालकता ।
बहु दुस्कर राकसघालकता ।[3]

इस छंद में केशव ने बालक और घालक शब्दों में 'ता' प्रत्यय का योग करके बालकता तथा घालकता शब्दों का निर्माण किया है। राम के शैशव तथा उनकी कोमलता और दुष्कर राक्षसों का वध करने में कठिनाई को व्यंजित करने के लिए बालकता तथा घालकता बड़े सुन्दर शब्द हैं, हिन्दी में इसके उपयुक्त पर्यायवाची शब्दों का अभाव भी है। संभवतः यही देखकर केशव ने इन शब्दों का निर्माण किया परन्तु संकीर्ण हृदय वाले भाषा-शास्त्रियों को कवि का यह प्रयोग उचित नहीं जान पड़ा। इसी से उन्होंने इसे भाषा सम्बन्धी दोष कहकर भावी कवियों को प्रोत्साहन देने के स्थान पर हतोत्साह ही किया। केशव ने इस प्रकार के प्रयोग अनेक स्थानों पर किए हैं—

विचारमान ब्रह्म देव अर्चमान मानिये।
अदीयमान दुःख सुख दीयमान जानिये।
अंदडमान दीन, गर्व दंडमान भेदवै।
अपठ्यमान पापग्रंथ' पठ्मान वेदवै।[4]

यहाँ विचारमान, अर्चमान, अदीयमान, दीयमान, अंदडमान, दंडमान, अपठ्यमान, पठ्यमान जैसे शब्दों में केशव ने संस्कृत को ही मूलाधार माना है, इनमें अर्च्, दा, पठ् आदि शब्द संस्कृत क्रियाओं की मूल धातुएँ हैं और उनमें 'अनीय' प्रत्यय लगा कर अर्चमान्य, दीयमान्य, पठ्मान्य, आदि शब्द बनाए गए हैं। जिस प्रकार इसी प्रत्यय के योग से बना मान्य शब्द हिंदी में प्रचलित है उसी प्रकार केशव के यह प्रयोग भी हैं। यह प्रश्न यहाँ आवश्यक है कि ऐसे प्रयोग सफल क्यों नहीं हो सके।

केशव ने कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो सामान्य रूप से अधिक प्रचलित नहीं थे, जैसे जल के लिए विष तथा जीवन, शत्रुघ्न के लिए रघुनन्दन, मारने योग्य के लिए मारणीय, एवं पिता को मारने वाले के लिए बपमारे इत्यादि।

---

१. रामचन्द्रिका, २९।२३
२. वही, ३४।२
३. वही, २।१७
४. वही, ३।३

'विषमय यह गोदावरी अमृतन के फल देति ।
केशव जीवन हार के दु:ख अशेष हरि लेति ।'
'लीन्हो लवणासुर शूल जहाँ
मार्यो रघुनंदन वाण वहाँ ।'
'अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपमारे ।'
ब्रह्म दोष युत मारने कहा तात कहा मात। '

जल के लिए विष तथा जीवन शब्द हिंदी साहित्य में अधिक प्रचलित नहीं हैं परन्तु संस्कृत कवि इनका प्रयोग पहले कर चुके थे । श्री हर्ष ने नैषधचरित में जल के अर्थ में जीवन शब्द का प्रयोग किया है ।[1] बपमारे तथा मारणीय केशव के मौलिक शब्द हैं तथा शत्रुघ्न को रघुनंदन कहकर संबोधित करने में भी उनकी मौलिक कल्पना है । मात्रा पूर्ति के लिए केशव ने मिलेब—मिलै-अब, भयेब—भये-अब आदि कुछ संयुक्त शब्दों की रचना भी की और अन्त्यानुप्रास के लिए शब्दों का रूपान्तर भी कर दिया है, जैसे साधु के स्थान पर साध और लाजक के स्थान पर लायक—

'अशेष शास्त्र विचारिकै, जिन जान्यो मत साध ।'
'वरषा फल फूलन लाजक की'

भाषा को बोधगम्य तथा हृदयग्राही बनाने एवं उसमें प्रवाह लाने के लिए केशव ने अन्य कवियों के समान मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है । 'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार के मुहावरे और लोकोक्तियाँ स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं । कुछ उदाहरण—

'दशमुख **मुखजोवै** गजमुख मुख को ।'[2]
'राजसभा तिनुका **करि लेखा** ।'
'**बीस बिसे** व्रत भंग भयो ।'
'रामायण जयसिद्धि को कपि **सिर टीका देहु** ।'[3]
'मुख रोगी ज्यों मौने रहै । बात बनाय एक द्वै कहै ।'[4]
'**जारति चित्त** चिता दुचिताई ।'[5]
'ऐसे में **कोढ़ को खाज** ज्यों केशव भारत कामहु बाण निनारे ।'[6]
'**त्यक्तश्राम लोचन** कहत सब केशोदास ।'[7]

---

१. नैषध चरित, ५।८६
२. रामचन्द्रिका, १।१
३. वही, २१।५०
४. वही, २३।३४
५. वही, २४।५
६. वही, २४।८
७. वही, २९।४

'बंचक कठोर ठेलि कीजै बारावाट आठ
झूठे पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये।'[1]
'दूरि कर तन दया दर्शत देह दंशत दंश।'[2]
'बाली सबको कहं नाच नचायो।'[3]
'रामचन्द्र कटि सो पटु बाँध्यो।'[4]
'होनहार ह्वै रही मिटै मेटी न मिटाई।'
'होय तिनूका वज्र वज्र तिनूका ह्वै टूटे।'

इनमें कटि सों पटु बाँधना, बारहबाट करना, काठ मारना, दूरि कर तन आदि कुछ बुंदेलखण्डी मुहावरे भी हैं।

भाषा की सौन्दर्यवृद्धि में शब्दालंकारों का भी बहुत बड़ा महत्त्व है। सहज स्वाभाविक अनुप्रास तथा यमक की योजना से भाषा सहस्रगुनी अधिक सुन्दर हो उठती है। केशव तो आलंकारिक कवि ही हैं, अलंकार उनका विशेष क्षेत्र है, इसमें उनकी समता कौन कर सकता है? शब्दालंकारों की अनूठी योजना उनकी भाषा में चार चाँद लगा देती है।

यमक—

'पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण,
बतावै न बतावै और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न नेति नेति,
कहैं वेद छाँडि आन युक्ति को।'[5]
'कहूं किन्नरी किन्नरी लै बजावै।
सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावै।'[6]

अनुप्रास केशव की भाषा का जीवन है। अनुप्रास के इतने अधिक और सुन्दर उदाहरण अन्य किसी कवि की रचना में कठिनाई से ही मिलेंगे। 'रामचन्द्रिका' के प्रायः सभी छंदों में हमें अनुप्रासों का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है—

जिन हाथनि हठि हरषि हनत हरनी रिपुनन्दन।
तिन न करत संहार कहा मदमत्तगयंदन।
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृप कुंवर वर कुंवरमुनि।
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि।

---

१. रामचन्द्रिका, २७।७
२. वही, २७।१८
३. वही, ३७।१४
४. वही, ५।४१
५. वही, १।३
६. वही, १३।५०

नृपनाथ नाव दशरत्थ यह अकथ कथा नहिं मानिये।
मृगराज-राज-कुल-कमल कहँ बालक वृद्ध न जानिये।[१]

उपरोक्त छंद में 'लक्ष लक्ष' में अनुप्रास के साथ यमक का सौन्दर्य भी सम्मिलित है। शब्दालंकार के साथ ही केशव की भाषा में ध्वन्यात्मकता भी है। निम्न छंद में इकार का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि शब्द योजना से युद्ध की ध्वनि का आभास होने लगता है और युद्ध की भयंकरता साकार रूप धारण कर सामने आ जाती है—

भैर से भट भूरि भिरै बल खेत खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रण-भूधर भूप न टारे टरै इभ कोट अरे कै।
रोष सों खग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खायें मरे नग नाग परे कै।[२]

व्याकरण के अतिरिक्त भावाभिव्यंजन का एक दूसरा पक्ष है भाव पक्ष। इसका सम्बन्ध हृदय से है अतः कवि की सफलता इस बात में निहित है कि उसकी भाषा भावाभिव्यक्ति करने में कितनी समर्थ है। भाषा को मधुर एवं सशक्त बना कर अन्तर को स्पर्श करने की क्षमता प्रदान करने के लिए भाषा-कोविदों ने एक ओर अभिधा, लक्षणा और व्यंजना नामक तीन शब्द शक्तियों की उद्भावना की तथा दूसरी ओर विविध अलंकारों की। भावों की सरल प्रणयन प्रणाली की संज्ञा है अभिधा, व्यंजना तथा लक्षणा की आवश्यकता काव्य में चमत्कार लाने के लिए पड़ती है। जब कवि सहज भाव से भावों को व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाता है तब वह लक्षणा और व्यंजना का आधार लेता है। केशव ने अधिकांश भाषा की अभिधा शक्ति से ही काम लिया है, लक्षणा और व्यंजना का बहुत कम सहारा लिया है।

सामान्यतया केशव ने अपने भावों को अभिधा शक्ति द्वारा ही व्यक्त किया है। उनकी भाषा भावों को स्पष्ट करने में स्वतः समर्थ है अतः लक्षणा और व्यंजना की आवश्यकता उन्हें बहुत कम स्थलों पर पड़ी है। पूरी 'रामचन्द्रिका' उनके अभिधा के उदाहरणों से भरी पड़ी है अतः उसके दो-एक छंद यहाँ यथेष्ट होंगे—

जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेइ विश्वामित्र ये।[३]

यहाँ कवि ने सीधे सरल भाव से ही विश्वामित्र का परिचय दे दिया है, लाक्षणिकता अथवा व्यंग्य की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। इसी प्रकार—

आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन को प्रभु पारौ।
थावर जंगम जीव जु कोउ। संमुख होत कृतारथ सोऊ।[४]

में भावों की सहज अभिव्यक्ति ही हुई है।

---

१. रामचन्द्रिका, २।१८
२. वही, ३८।१६
३. वही, ५।२०
४. वही, १२।५८

रूढि से प्रचलित लक्षणा के अतिरिक्त केशव ने लाक्षणिक प्रयोग बहुत कम स्थानों पर किये हैं। उन्होंने अधिकांश भाषा की अभिधा शक्ति से ही काम लिया है। 'रामचन्द्रिका' में कवि ने लाक्षणिक प्रयोग केवल दो-चार स्थलों पर ही किये हैं, जैसे राम गुरु वशिष्ठ को सुग्रीव का परिचय देते हुए कहते हैं—

सुनिये वशिष्ठ कुल इष्ट देव। इन कपिनायक के सकल भेव।
हम बूड़त हे विपदा समुद्र। इन राखि लियो संग्राम रुद्र।[1]

इस छंद में कवि ने उपादान लक्षणा से काम लिया है। यथार्थ में रावण दल से भयंकर युद्ध तो सुग्रीव की सेना ने किया था परन्तु उसका श्रेय सुग्रीव को मिला। इसी प्रकार—

निजु भाइ भरत ज्यों दुःखहर्ण। अति समर अमर हत्यो कुंभकर्ण।[2]

में यद्यपि कुम्भकर्ण का वध राम ने स्वयं किया परन्तु उपादान लक्षणा से प्रशंसा सुग्रीव की है। सुमित्रा राम से लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहती है—

प्राणनाथ रघुनाथ, जिय की जीवन मूरि हौ।
लक्ष्मण हे तुम साथ। छमियो चूक परी जु कछ।[3]

प्रत्यक्ष देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सुमित्रा लक्ष्मण के दोषों की ओर लक्ष्य कर रही है परन्तु लक्षणा द्वारा वास्तव में लक्ष्मण की प्रशंसा ही है।

संदेह अलंकार द्वारा राम लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहते हैं—

पौरिया कहौं कि प्रतिहार कहौं किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र किधौं मंत्री सुखदानिये।
सुभट कहौं कि शिष्य दास कहौं किधौं दूत,
केशोदास हाथ को हथ्यार उर आनिये।
नैन कहौं किधौं तन मन किधौं तनत्राण,
बुद्धि कहौं किधौं बल विक्रम बखानिये।
देखिबे को एक हैं अनेक भाँति कीन्हीं सेवा,
लखन के मातु कौन-कौन गुण मानिये।[4]

परन्तु साध्यवसाना लक्षणा द्वारा यहाँ भी लक्ष्मण की प्रशंसा ही है। ऐसे स्थलों पर केशव ने लक्षणा के साथ व्यंग्य का भी समन्वय कर दिया है। प्रथम छंद में सुमित्रा का वात्सल्य और द्वितीय छंद में राम का कृतज्ञता प्रकाशन व्यंग्य से व्यंजित है।

---

१. रामचन्द्रिका, २१।३३
२. वही, २१।३७
३. वही, २२।२०
४. वही, २२।२१

व्यंजना रसोद्रेक का मूलाधार है। यह लक्षणा का भी आश्रय ले सकती है और अभिधा का भी। 'रामचन्द्रिका' में लक्षणामूलक व्यंजना उपरोक्त दो-एक स्थलों पर ही दृष्टिगोचर होती है परन्तु संवादों में कवि ने अभिधामूलक व्यंजना का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। ऐसे छंदों में व्यंग्य के सौन्दर्य से काव्य अत्यन्त सरस और हृदयग्राही हो उठा है। रावण हनुमान से पूछता है—

सागर कैसे तर्‌यो ? हनुमान उत्तर देते हैं जैसे गोपद। रावण पुनः प्रश्न करता है—काज कहा ? हनुमान कहते हैं—सिय चोरहि देखो। रावण फिर पूछता है—कैसे बंधायो ? हनुमान प्रत्युत्तर में कहते हैं—जु सुन्दरी तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।

सागर कैसे तर्‌यो ? जैसे गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरी तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।[1]

हनुमान का आशय है कि राम सेवक पर-स्त्री का स्पर्श करना पाप समझते हैं। पर यदि दैववश नेत्र से भी स्पर्श हो जाए तो उन्हें उसका दंड बंदी बन कर भोगना पड़ता है। फिर जो पुरुष बलात् पर-स्त्री हरण करता है उसका दंड कितना गम्भीर होगा। 'दृग से छूना' कवि का बड़ा सुन्दर प्रयोग है और उसमें तीव्र व्यंग्य की व्यंजना है।

रावण अंगद से पूछता है—

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये ?
कांख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह ? बीर अंगद देव लोक बताइयो।
क्यों गये ? रघुनाथ वान विमान बैठि सिधाइयो।[2]

बालि के समान वीर, जिसने रावण को काँख में दबाकर सात समुद्रों में स्नान किया वह जब राम के सम्मुख आकर इतना दुर्बल हो गया कि राम के वाण रूपी विमान से कवि रावण की अवश्यंभावी मृत्यु की ओर संकेत कर रहा है।

इस प्रकार का गूढ़ोत्तर 'रामचन्द्रिका' के प्रायः सभी संवादों में मिलता है परन्तु संवादों से अतिरिक्त ऐसे स्थल 'रामचन्द्रिका' में बहुत कम हैं। यह गूढ़ोत्तर और व्यंग्य ही केशव के संवादों का जीवन है जिससे वह अपने इस क्षेत्र में तो कम-से-कम अनुपमेय हैं ही। वनवास के पश्चात् राम के अवधपुरी में प्रवेश करने पर कवि का कथन है—

---

१. रामचन्द्रिका, १४।१
२. वही, १६।६

भूतल ही दिवि भोर बिराजैं। दीहं दुहूं दिसि दुंदुभि बाजैं।
भाट भले बिरदावलि गावैं। मोद मनो प्रतिबिम्ब बढ़ावैं।[1]

यहाँ अयोध्यावासियों का सौन्दर्य और वैभव व्यंग्य से व्यंजित है—

पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भये।
हमहीं मिले अगार, आये प्रथम हमारे ही।[2]

यहाँ राम का सर्वव्यापक ईश्वरत्व व्यंग्य है। इसी प्रकार—

पूरब की पुरा पुरी पापर पुरी से तन,
बापुरी व्है दूरिहो तें पायन परत हैं।
दक्षिन को पच्छिनी सी गच्छैं अंतरिक्ष मग,
पच्छिम की पक्षहीन पक्षी ज्यों उरत हैं।
उत्तर की देती है उतारि शरणागतनि,
बातन उतायली उतार उतरत हैं।
गोलन को मूरतिन दीजै जू अभयदान,
रामबैर कहाँ जायँ विनती करत हैं।[3]

में गोलों की विनती को माध्यम बनाकर खेल बन्द कराने का व्यंग्य है।

व्यंग्य के साथ ही केशव ने कतिपय स्थलों पर उसमें वक्रता का समावेश कर व्यंग्य को और भी समुज्ज्वल बना दिया है। 'रामचन्द्रिका' में अनेक स्थानों पर हमें कवि की इस प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उनकी वक्रोक्तियाँ सीधे जाकर मर्मस्थल को भेद देती हैं। इन उक्तियों में अल्प शब्दों में इतना तीव्र व्यंग्य निहित रहता है कि श्रोता तिलमिला उठता है। लव-कुश-युद्ध में वक्रोक्तियों का यह सौंदर्य सबसे अधिक दर्शनीय है। लव सुग्रीव से कहते हैं—

सुग्रीव कहा तुमसों रणु माड़ौ।
तोको अति कायर जानि कै छाड़ौ।
बालो सबको कहँ नाच नचायो।
तौ ह्यां रणमंडन मोसन आयो।[4]

यहाँ सुग्रीव का भ्रातृ-द्रोह तथा कादर्य सभी कुछ एक साथ व्यंजित हो उठता है। इसी प्रकार—

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी पत्नी मातु समान॥[5]

---

१. रामचन्द्रिका, २२।३
२. वही, २२।१५
३. वही, २६।१३
४. वही, ३७।१४
५. वही, ३७।१८

में कवि ने अत्यन्त कौशल से कुलद्रोही तथा देशद्रोही विभीषण का चरित्र स्पष्ट कर दिया है। भरत राम से कहते हैं—

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोष विहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै।[१]

निरपराध सीता को बिना सोचे-समझे त्यागने में राम के प्रति भाई भरत के आक्रोश की इससे अधिक तीव्र अभिव्यक्ति और क्या संभव थी। ये उक्तियाँ नितान्त सत्य हैं परन्तु इनकी कटुता तथा वक्रता इन्हें हृदय के पार पहुँचा देती है। केशव इसके कुशल प्रणेता हैं और बिहारी के दोहों के समान ही हम इन वक्रोक्तियों के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं—'देखन में छोटे लगें भाव करें गम्भीर।'

शब्द शक्तियों के अतिरिक्त भाषा की एक और भी शक्ति है जिसे हम मूक-भावाभिव्यंजना शक्ति कह सकते हैं। भाव जब इतना गम्भीर हो जाता है कि कवि अभिभूत-सा रह जाता है और उसकी लेखनी अभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाती है तो वह भाषा की मूक शक्ति का अवलंबन लेता है। पाठक को भाव की चरम सीमा पर ले जाकर वह मूक भाव से स्वयं हट जाता है और अपनी असमर्थता स्वीकार कर लेता है। समस्त संसार के उपमान जब व्यर्थ हो जाते हैं तब भाषा की यह मूकता ही उसका साथ देती है। तुलसी ने अपनी यह असमर्थता अनेक स्थलों पर स्वीकार की है। केशव ने भी कहीं-कहीं इसका उपयोग किया है।

दशरथ राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के कर-कमलों में सौंप रहे हैं। अपने प्रिय पुत्रों को देते समय उनका हृदय दुःख से विदीर्ण हुआ जा रहा है। वह विश्वामित्र को निराश करने में भी असमर्थ हैं और दुःखावेग से हतचेतन भी हो गये हैं। दुःख के इस अवसर का वर्णन केशव ने दशरथ के मौन को दिखाकर किया है। इसी से यह अत्यन्त हृदयग्राही है—

राम चलत नृप के युग लोचन। बारि भरित भये बारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मानहिं। केशव उठि गये भीतर भौनहिं ॥[२]

राजकीय मर्यादा को बनाए रखकर और विश्वामित्र के समक्ष अपनी दुर्बलता प्रकट करना उचित न समझ दशरथ सभाभवन से ही उठ जाते हैं। इसी प्रकार—

सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति, सीता जू के बैन।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भर आयो नैन ॥[३]

राम का अन्याय और सीता की कातरता देख लक्ष्मण जैसा व्यक्ति भी विचलित हो जाता है। ऐसे अवसर पर केशव ने लक्ष्मण के मुख से कुछ न कहलाकर उनकी

---

१. रामचन्द्रिका, ३६।३२
२. वहीं, २।२७
३. वही, ३३।५१

हृदयस्थ वेदना की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना की है। कवि के इस भाषा संयम से ही भाव अगम्य हो उठा है। 'रामचन्द्रिका' के ऐसे स्थल कवि की स्वाभाविक प्रतिभा के द्योतक हैं, यहाँ उसका उद्देश्य गम्भीर भावाभिव्यक्ति करना है किसी अलंकार का उदाहरण देना नहीं, अतः ऐसे स्थल सहज, सरल और मर्मस्पर्शी हैं, मूकता ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

भाषा की मूक भावाभिव्यंजना का ही एक दूसरा पक्ष है जहाँ कवि सर्वथा मौन तो नहीं रहता परन्तु कुछ सीमित शब्दों में भावों को प्रकट करता है। इसे हम भाषा की सांकेतिकता की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ कवि नपे-तुले शब्दों में अधिक-से-अधिक भाव भरने की चेष्टा करता है, वह केवल स्थिति का संकेत मात्र दे देता है, शेष पाठक की कल्पना पर छोड़ देता है। पर यह संकेत इतना स्पष्ट होता है कि पाठक के भ्रमित होने का कोई स्थान नहीं रह जाता, जैसे—

दशरथ राय यहै जिय मानो। यह वह एक भई रजधानी ॥[1]

में जनकपुरी में दशरथ को अयोध्यापुरी के समान सुखानुभूति होती है। कवि के केवल यह कह देने मात्र से कि दशरथ जनकपुरी में अपनी राजधानी अयोध्यापुरी के समान ही सुखी हैं, जनक का सम्पूर्ण वैभव, आदर-सत्कार सभी एक साथ व्यंजित हो उठता है। इसी प्रकार—

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूँदि बार बार सीस बीसधा धुनै ॥[2]

में सीता के क्रोधी रूप और लक्ष्मण के आशंकित मन का सम्पूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। सीता ने लक्ष्मण को क्या-क्या अपशब्द कहे होंगे, पाठक सरलतापूर्वक स्वतः अनुमान लगा लेता है। इस प्रकार कुछ संयमित शब्दों में एक विराट् चित्र का अंकन करना केशव की प्रतिभा का ही परिचायक है, परन्तु ऐसे स्थल 'रामचन्द्रिका' में बहुत कम हैं। अशोकवाटिका में विरहिणी सीता का चित्र भी इसी प्रकार का है।

अप्रस्तुत योजना—संस्कृत साहित्य का विकास दो सोपानों में हुआ था। प्रथम सोपान में यह साहित्य भाव-बहुल था परन्तु द्वितीय सोपान में यह कला-बहुल हो गया। इस परिवर्तन-काल में हृदय का स्थान बुद्धि ने लिया और कवि भावों की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता देने लगे। केशव ने दोनों प्रकार के साहित्य का अध्ययन किया था और संभवतः दोनों से ही वह भाषा-पाठक को परिचित कराना चाहते थे। इसीलिए 'रामचन्द्रिका' में हमें दोनों प्रकार की भावाभिव्यंजन प्रणाली दृष्टिगोचर होती है।

---

१. रामचन्द्रिका, ६।२२
२. वही, १२।१८

भावों को पूर्णरूप से स्पष्ट करने के लिए कवि अनेक उपमानों का आश्रय लेता है। अप्रस्तुतों की योजना कर कवि प्रस्तुत को अधिक आकर्षक और मनोहारी बना देता है। केशव ने भी अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अनेक अप्रस्तुतों की सहायता ली है, परन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं यह अप्रस्तुत दोनों प्रकार के हैं, कहीं भावों का सौन्दर्यवर्धन करते हैं और कहीं केवल बुद्धि का चमत्कार दिखाकर पाठक की बुद्धि को चकित कर जाते हैं। दोनों पर केशव का पूर्ण अधिकार है और पूर्ण आत्मविश्वास के साथ ही उन्होंने पाठक को दोनों से अवगत कराया है। पहले हम 'रामचन्द्रिका' के उन स्थलों को लेंगे जहाँ अप्रस्तुत प्रस्तुत को अधिक स्पष्ट कर सुन्दर से सुन्दरतर बना देते हैं और पाठक को भावों के निगूढ़तम कोनों तक खींच ले जाते हैं।

भरत मातामह के घर से लौटकर समस्त अयोध्यापुरी को सशोका पाते हैं। प्रासाद में जाकर वह माँ को एकाकी देखते हैं। उस समय माँ कैकेयी—

मन्दिर मातु विलोकि अकेली। ज्यों बिन वृक्ष विराजति बेली।[1]

वृक्ष के आश्रय से च्युत लता के सदृश निराश्रय-सी प्रतीत होती है। संस्कृत साहित्य में प्रायः सभी कवियों ने लता को वृक्ष की प्रेयसी माना है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतल में लता का आम्र वृक्ष से मिलन का संकेत दिया है। वृक्ष से हीन लता जिस प्रकार कान्तिहीन और निष्प्राण हो जाती है उसी प्रकार भारतीय आदर्शों के अनुकूल पति से हीन पत्नि श्रीहीन और निर्जीव हो जाती है। भरत को माँ कैकेयी की उस उदास आकृति को देखकर ही उसके वैधव्य का पूर्वाभास मिल जाता है। बिना वृक्ष की लता के समान कहकर कवि ने कैकेयी की विधवावस्था का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

वनवास काल में भरत बंधु-बाँधवों सहित अग्रज राम से मिलने जाते हैं। पुत्र के वियोग में दुखी माताएँ भी साथ हैं। राम लक्ष्मण को देखते ही वह इस प्रकार मिलने के लिए दौड़ती हैं जिस प्रकार—

मातु सबै मिलिबे कहं आईं। ज्यों सुत को सुरभी सु-लवाई।[2]

गाय अपने बछड़े से मिलने के लिए दौड़ती है। बछड़े से मिलने के लिए आतुर गाय का रंभाते हुए दौड़ना किसने नहीं देखा है, साथ ही यदि गाय सद्यप्रसूता हो तो उसकी आतुरताजन्य क्षिप्रता दर्शनीय हा है। इसी गाय की उपमा देकर केशव ने माताओं की आतुरता, क्षिप्रता, और आशा सभी कुछ अत्यंत कुशलतापूर्वक व्यंजित कर दी हैं।

रावण के कारावास में बंदिनी सीता पति से वियुक्त पोकर अत्यंत दुःखी है। लौकिक सुखों के प्रति उनका कोई आकर्षण नहीं है। वेणी बाँधने अथवा वस्त्र परि-

१. रामचन्द्रिका, १०।२
२. वही, १०।२८

वर्तन की ओर से वह सर्वथा उदासीन हैं। केशव उनकी इस वियोगिनी मूर्ति का चित्र अंकित करते हुए कहते हैं—

घरे एक बेणी मिली मैल सारी। मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी।[१]

मलिन वस्त्रों में उदास सीता ऐसी प्रतीत होती है मानो मृणाली को पंक से निकाल कर बाहर डाल दिया हो। पंक ही जिस पंकज का जीवनाधार है, उसी पंक से वियुक्त होकर वह अथवा उसका कोई अंग कैसे विकसित रह सकता है। अपने जीवन के आधार पति राम से वियुक्त होकर सीता भी उसी प्रकार मलिन हो जाती हैं। इस उपमान के द्वारा कवि ने सीता की सम्पूर्ण वेदना तथा मानसिक स्थिति की बड़ी सफल अभिव्यक्ति की है।

हनुमान सीता को राम की मुन्दरी देते हैं। जड़ मुद्रिका सीता के प्रश्न का क्या उत्तर देती परन्तु हनुमान अत्यंत चतुरतापूर्वक उत्तर देते हैं—

तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम विन यह कहँ राम।[२]

मुद्रिका के लिए कंकन का उपमान लाकर केशव ने राम के विरह की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है। सीता के विरह में राम इतने कृश हो जाते हैं कि मुद्रिका को कंकन के स्थान पर धारण करते हैं। पाठक सहज ही राम की विरहजन्य दुर्बलता का अनुमान लगा लेता है।

हनुमान से सीता की चूड़ामणि पाकर राम वैसे ही प्रसन्न होते हैं मानो—

फूलि उठ्यो मन ज्यौं निधि पाई। मानहु अंध सुडीठी सुहाई।[3]

किसी नेत्रहीन ने नेत्रों की ज्योति प्राप्त कर ली हो। ज्योति के साथ ही यदि उस नेत्रहीन व्यक्ति को सुन्दर नेत्र भी मिल जाएँ तो वह कितना प्रसन्न होगा। राम ने भी सीता की चूड़ामणि के रूप में नेत्रों की ज्योति ही नहीं बल्कि सुन्दर दृष्टि भी पा ली। राम के आनंदित मन का यह अत्यंत सुन्दर चित्र है।

दूत के मुख से सीता के चरित्र पर आक्षेप सुनकर राम को अतीव वेदना होती है। उनकी यह वेदना जितनी मूक है उतनी ही हृदय-द्रावक भी है। प्रातःकाल जब तीनों भाई प्रातः नमस्कार करने आते हैं तो वह भाई राम को—

रामचंद्र देखियो प्रभात चंद्र के समान।[४]

प्रभात चंद्र के समान निष्प्रभ देखते हैं। सूर्य की ज्योति से जो चंद्र प्रकाशित होता है, उसकी कृपा-कोर के हटते ही प्रातःकाल वह कितना निष्प्रभ हो जाता है। रात्रि भर अपनी रजत-रश्मियों का प्रकाश फैलाने वाला चंद्रमा उषा की प्रथम किरण के

१. रामचन्द्रिका, १३।५३
२. वही, १३।८७
३. वही, १४।२४
४. वही, ३३।२६

साथ ही मलिन पड़ जाता है परन्तु चन्द्रमा के सौन्दर्य से विमुग्ध कवियों ने कभी उसके इस दुर्भाग्य पर दृष्टि नहीं डाली। केशव की दृष्टि इस पर पड़ी है। इसीलिए राम के हतप्रभ मुख को उन्होंने अत्यंत सहृदयता से देखा है। प्रभात के निष्प्रभ चंद्रमा के साथ राम की तुलना कर केशव ने अपनी सहृदयता का परिचय तो दिया ही है, साथ ही राम की मानसिक स्थिति का भी बड़ा सुन्दर चित्र खींच दिया है।

वर्षा ऋतु का वर्णन है। घनघोर काले बादल छाये हुए हैं, उनके बीच से उड़ती हुई बक-पंक्तियाँ अत्यंत मनोहारी प्रतीत होती हैं। कवि कल्पना करता है कि घने श्याम मेघों के मध्य बकों का समुदाय ऐसा प्रतीत होता है मानो मेघों ने सागर से जलपान करते समय शंखावलियों का भी पान कर लिया हो और अब उन्हें ही वर्षा के साथ भूलोक को वापस कर रहे हों—

सोहैं घन स्यामत घोर घने। मोहैं तिनमें बक पांति भनें।
संखावलि पी बहुधा जल स्यों। मानों तिनको उगिलै बकस्यों॥[१]

सागर के तट पर विकीर्ण शंखावलियाँ सभी ने देखी हैं परन्तु जल के साथ मेघों द्वारा उनके पान की कल्पना केशव की मौलिक है। बक-पंक्तियों की कल्पना शंखावलियों के रूप में कर केशव ने इस दृश्य के आकर्षण की वृद्धि ही की है। इसी प्रकार सूर्योदय के वर्णन में—

चढ्यो गगन तरु धाय, दिनकर वानर अरुन मुख।
कीन्हों झुकी झहराय, सकल तारका कुसुम बिन।[२]

दिनकर के लिए अरुण मुख वानर की कल्पना अत्यंत सुन्दर है। सूर्योदय के साथ ही नक्षत्रों से सुशोभित आकाश सहसा निर्जन हो जाता है। तारे और चन्द्रमा दोनों लुप्त हो जाते है। कि यह कार्य प्रकृति बड़ी क्षिप्र गति से करती है। उसी को देखकर कवि कल्पना करता है कि जैसे कोई उत्पाती बानर वृक्ष को हिलाकर कुसुमविहीन कर दे उसी प्रकार सूर्य ने आकाश को नक्षत्रहीन कर दिया है।

केशव के द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार के अप्रस्तुत उपमानों से 'रामचन्द्रिका' की भाषा भावाभिव्यंजन में अत्यंत सशक्त हो उठी है और भाव अधिक स्पष्ट। ऐसे स्थानों पर उपमान स्वाभाविक रूप में आए हैं और उनसे भावों की अभिव्यक्ति में कवि को सहायता मिली है। इसके साथ ही केशव ने अप्रस्तुतों का प्रयोग ऐसे स्थानों पर भी किया है जहाँ भाषा भावों की अपेक्षा भाषा की ही प्रौढ़ता को व्यंजित करती है। इन स्थलों पर भाव गौण और भाषा प्रधान है। विविध कल्पनाओं से भाव सामंजस्य में बाधा पहुँचती है परन्तु इनसे केशव की प्रतिभा और सूझ का प्रमाण निःसंदेह मिलता है। केशव ने एक एक दृश्य को लेकर उत्प्रेक्षा, संदेह, रूपक आदि अनेक अलंकारों द्वारा अप्रस्तुतों का असीम संग्रह एकत्रित कर दिया है।

१. रामचन्द्रिका, १३।१३
२. वही, ५।१३

दंडक वन का वर्णन करते हुए केशव ने अनेक अप्रस्तुत प्रस्तुत किए हैं—

शोभत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी ।
सेव बड़े नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भयो जहं बसै ॥
बेर भयानक सी अति लगै । अर्क समूह जहाँ जगमगै ।
नैन को बहुरूपन ग्रसै । श्रीहरि की जनु मूरत लसै ॥
पांडव की प्रतिमा सम लेखो । अर्जुन भीम महामति देखो ।
है सुभगा सम दीपति पूरी । सिंदूर औ तिलकावलि रूरी ॥
राजति है यह ज्यौं कुलकन्या । धाइ बिराजति है संग धन्या ।
केलिथली जनु श्रीगिरिजा की । शोभ धरे सितकंठ प्रभा की ॥[1]

इन छंदों में श्लेष और उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने अनेक अप्रस्तुतों की कल्पना की है । प्रस्तुत उपमानों तथा उपमेय दंडक वन में शब्द साम्य के अतिरिक्त अन्य कोई साम्य नहीं है । संस्कृत साहित्य में, विशेष रूप से दंडी के साहित्य में, इस शब्द-साम्य के आधार पर उपमानों की कल्पना करना भी वर्णन की एक शैली थी । केशव ने इसी शैली से परिचित कराने के लिए हिंदी पाठक के समक्ष इस प्रकार के उदाहरण रखे हैं ।

वर्षा के वर्णन में केशव ने कालिका का रूपक बाँधकर श्लेष और संदेह की सहायता ली है—

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है ।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की,
नैन अमल कमलदल दलित निकाई है ।
केसोदास प्रबल करनुका गमनहर,
मुकुत सुहंसक-सुबद सुखदाई है ।
अंबर बलित गति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ।[2]

इसी प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा का अवसर है । बड़ी प्रतीक्षा तथा कष्ट के अनन्तर राम सीता का मिलन हुआ है परन्तु राम सीता को स्वीकार करने के पूर्व उनकी अग्नि परीक्षा लेना चाहते हैं । सीता के जीवन में अपमान का यह अत्यन्त कटु अवसर है परन्तु फिर भी अपने पातिव्रत्य को पवित्र प्रमाणित करने के लिए वह सहर्ष अग्नि में बैठ जाती हैं । इस अवसर पर केशव राम-सीता की भावनाओं की चिन्ता न कर अनेक उपमान लाकर प्रस्तुत कर देते हैं जिससे पाठक भाव की यथार्थ भूमि में भटककर कल्पना के आकाश में विचरने लगता है—

---

१. रामचन्द्रिका, ११।१९—२२
२. वही १३।१९

पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता।
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता ॥
महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी।
कि संग्राम भूमि में चंडिकासी।
मनो रत्न सिंहासनस्था सची है।
किधौं रागनी रागपूरे रची है॥
गिरापूर में है पयोदेवता सी किधौं।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी।
किधौं पद्म हो में सिफाकंद सोहै।
किधौं पद्म के कोष पद्मा विमोहै॥
कि सिंदूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या।
किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या।
सरोजासना है मनो चारु बानी।
जपा-पुष्प के बीच बैठी भवानी॥
किधौं औषधी-वृन्द में रोहिणी सी।
कि दिग्दाह में देखिये योगनी सी।
धरा-पुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकासै।
किधौं ज्योति सी तक्षकाभोग भासै॥

आसावरी माणिककुंभ सोभै, अशोक-लग्ना बनदेवता सी।
पलाशमाला कुसुमालि मध्ये, बसंत लक्ष्मी सुभ लक्षणा सी॥
आरक्तपत्रा सुभ चित्र पुत्री, मनो विराजै अति चारु वेषा।
संपूर्ण सिंदूर प्रभा बसै धौं, गणेशभालस्था चन्द्र रेखा॥
है मणि-दर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप-तेजन में मनु सिद्ध बिनीता।
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनंदकंद हुतासन मध्य सवासन सीता॥[1]

केशव की उर्वरा प्रतिभा का यह अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। अग्नि में बैठी सीता के लिए इतनी अधिक उपमाओं को धाराप्रवाहवत् करते जाना केशव की कल्पना शक्ति का ही काम है। इतने अधिक अप्रस्तुतों के विद्यमान रहते हुए भी सीता की मानसिक स्थिति का हमें कोई आभास नहीं मिलता परन्तु सीता के अन्तर का पर्यवेक्षण करना यहाँ केशव का अभीप्ट नहीं है। केशव को विश्वास है कि पतिव्रता सीता के निष्कलंक शरीर पर अग्नि का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता अतः उनकी दृष्टि आत्मविश्वास से युक्त सीता पर है, भयभीत सीता पर नहीं। सम्भवतः इसी

१. रामचन्द्रिका, २०।४-११

कारण वहाँ उपमाओं का इतना आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के उद्धरणों में केशव का भाषा पर अधिकार तथा उनकी प्रतिभा का विकास ही दीख पड़ता है, अंतर्प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण नहीं। दशरथ के प्रासाद पर ध्वजा वर्णन, वर्षा ऋतु वर्णन, भरत की सेना का वर्णन, चंद्रमा का वर्णन, लंका-दाह का वर्णन आदि अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ केशव उत्प्रेक्षा, संदेह, रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना कर ऐसे अप्रस्तुत उपस्थित कर देते हैं कि उनकी कल्पना-शक्ति को देख कर आश्चर्य होता है। वर्णन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ उनकी प्रतिभा उत्प्रेक्षा सामग्री को खोजकर अनेक अप्रस्तुत एकत्रित न कर देती हो।

कुछ स्थानों पर केशव ने ऐसा अप्रस्तुत विधान किया है जो अत्यन्त क्लिष्ट होने के कारण दुर्बोध हो गया है। पंपासर में कमल के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए केशव ने लिखा है—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।
तापर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचिरो है।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर उपर सोहै।[१]

श्रीयुत कृष्णशंकर शुक्ल ने लिखा है "ब्रह्मा के सिर पर बैठने की सरलता-पूर्वक कल्पना करना कुछ क्लिष्ट है। ब्रह्मा-विष्णु लोगों के देखे हुए नहीं हैं। अतः इस उत्प्रेक्षा में बोधगम्यता नहीं है और जब बोधगम्यता नहीं तो हमारे हृदय के रागों को उद्दीप्त करने में यह कैसे समर्थ हो सकती है?"[२] इस सम्बन्ध में हम केवल यही कह सकते हैं कि निःसंदेह यह सत्य है कि ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता मानव ने अपने लौकिक चक्षुओं से नहीं देखे हैं परन्तु अपनी कल्पना का आधार लेकर उसने उनकी मूर्ति की रूपरेखा तो बनाई ही है जिसके रूप, रंग, वेप भूषा, आकृति सभी का उसने अंकन किया है। समस्त संस्कृत साहित्य में ब्रह्मा का वर्ण पीत और विष्णु का श्याम माना गया है। केशव ने उपरोक्त कल्पना इसी वर्णन साम्य को लेकर की है। ब्रह्मा और विष्णु की उपस्थिति से यहाँ कमलों का कोई सौन्दर्य वर्णन नहीं होता। बीजकों की पीतता तथा भ्रमर की श्यामता व्यंजित करने के हेतु भी ब्रह्मा पर विष्णु की कल्पना की गई है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मध्य केवल वर्ण-साम्य है अन्य कोई साम्य नहीं। हिन्दी साहित्य में केवल वर्ण साम्य, शब्द साम्य, क्रिया साम्य आदि के उदाहरण अत्यन्त विरल दृष्टिगोचर होते हैं इसी से हिंदी पाठक के लिए ये कल्पनाएँ दुरूह और रुचिकर प्रतित होती हैं परन्तु जिन्होंने उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया है वे इनसे अपरिचित नहीं हैं। इसी प्रकार राजमहल के मंडप का वर्णन करते हुइ केशव ने कहा है—

१. रामचन्द्रिका, १२।४९
२. केशव की काव्य कला, पृ० ९८

मंडप सेत लसै अति भारी। सोहत है छतुरी अति कारी।
मानहु ईश्वर के सिर सोहै। मूरति राघव की मन मोहै।[1]

श्वेत मंडप पर श्याम छतरी के लिए शिव के मस्तक पर राम की कल्पना में केवल वर्ण साम्य ही है।

लंकादाह के अवसर पर अग्नि में दग्ध होते हुए निशाचरों के लिए कवि ने कल्पना की है—

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढे। मनो ईश रोषाग्नि में काम डाढे।[2]

राक्षसों के लिए केशव ने कामदेव की कल्पना की है। निःसंदेह कामदेव सौन्दर्य का प्रतीक है परन्तु इस सम्बंध में दो बातें स्मरणीय हैं। प्रथम केशव ने काम की कल्पना उस समय की है जब वह शंकर के प्रलयंकारी क्रोध के समक्ष भस्म हो रहा है। उस समय कामदेव के भय तथा अपराध भावना से विकृत मुख की कल्पना कर ही केशव ने भयभीत राक्षसों से उसकी तुलना की है। दूसरे वाणासुर तथा रावण आदि कतिपय राक्षसों के अतिरिक्त केशव तथा अन्य अनेक कवियों ने राक्षसों को कुरूप न मानकर एक जाति विशेष माना है अतः उनमें केवल कुरूपता की ही कल्पना करना सर्वथा न्यायोचित नहीं है।

सीता-रावण संवाद में केशव ने सीता के लिए बाज का अप्रस्तुत रखा है—

बिड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
सिव सिर ससि श्री को राहु कैसे सु छीवै।[3]

जिस प्रकार बाज पक्षी बिड़कन खाकर जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार सीता भी रावण का राज्य भोग कर जीवित नहीं रह सकती। सीता के लिए बाज की कल्पना यथार्थ में कोई सुन्दर कल्पना नहीं है परन्तु यहाँ केशव की दृष्टि क्रिया-साम्य पर है व्यक्तित्व साम्य पर नहीं। बाज के 'बिड़कन' को हेय समझने तथा सीता के रावण के वैभव को हेय समझने की क्रिया में जो सादृश्य है वही यहाँ व्यंजित है। सीता और बाज के गुणों तथा विशेषताओं की ओर दृष्टि डालना केशव का लक्ष्य नहीं है। इसी प्रकार—

बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत।[4]

तथा—

चतुर चोर से शोभित भये। धरणीधर धनशाला गये।[5]

---

१. रामचन्द्रिका २६।३२
२. वही, १४।८
३. वही, १३।६२
४. वही, १३।८८
५. वही, २६।३६

में भी कवि की दृष्टि क्रिया-साम्य की ओर ही है। 'चितवत' तथा 'भये' क्रियाओं द्वारा केशव ने अपना आशय स्पष्ट कर दिया है। उलूक के नेत्र जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में ज्योतिहीन होने के कारण कुछ नहीं देख पाते उसी प्रकार राम के नेत्र भी विरहावेग के कारण ज्योतिहीन-से होकर दिवा-श्री को देखने मे असमर्थ हो रहे हैं।

जिस प्रकार चतुर चोर धनशाला की ओर चापहीन पगों से बढ़ता है उसी प्रकार राम भी चापहीन चरणों से धनशाला की ओर बढ़े जिससे अकस्मात् पहुँचकर वह वहाँ का निरीक्षण कर सकें। उपरोक्त कल्पनाओं में राम उलूक अथवा चोर के समान नहीं हैं बल्कि उनका देखना तथा चलना उलूक की दृप्टि तथा चोर की मन्थर-गति के समान हैं। यह अप्रस्तुत क्रिया-साम्य के आधार पर खड़े किए गए हैं, अन्य कोई भी सादृश्य देखना यहाँ संगत नहीं है, हाँ अप्रत्यक्ष रूप से कवि ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक राम के विरहाधिक्य तथा सुचारु शासन-प्रबन्ध की अभिव्यक्ति अवश्य कर दी है।

केशव ने अंगद द्वारा पीड़ित मन्दोदरी के उरोजों का वर्णन करते समय अनेक उपमानों की कल्पना की है। कभी वह उन्हें वशीकरण चूर्ण से पूर्ण स्वर्ण कलश प्रतीत होता है—

किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे। बशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।[1]

और कभी चौगान के खेल में प्रयुक्त होने वाली कन्दुकें—

किधौं चित्त चौगान के मूल सोहैं। हिये हेम के हालगोला बिमोहैं।[2]

हम पहले ही कह चुके हैं कि केशव ने यह प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' से लिया है। कवि का उद्देश्य यहाँ सीता की तुलना में मन्दोदरी के सौन्दर्य की एक झलक दिखा देना मात्र है। मन्दोदरी का अप्रतिम सौन्दर्य किसी भी प्रकार सीता से हीन नहीं है, केवल राम के शत्रु की पत्नी होने के कारण ही किसी ने उसकी ओर दृष्टिपात नहीं किया है। केशव ने इस संदर्भ में 'अध्यात्म रामायण' की अश्लीलता भी बचा दी है तथा वशीकर्ण का चूर्ण एवं हालगोला के अप्रस्तुतों को लाकर मन्दोदरी के सौन्दर्य की व्यंजना भी कर दी है। दोनों ही उपमाम विशेष रूप से शत्रु पक्ष द्वारा कहला कर केशव ने अपनी अभिव्यक्ति को गम्भीर से गम्भीरतर बना दिया है।

चन्द्रमा का वर्णन करते समय केशव ने उसे फूलों की नवीन गेंद कहा है जिसे इन्द्राणी ने सूँघ कर फेंक दिया है।

फूलन की शुभ गेंद नई है। सूँघि शची जनु डारि दई है।[3]

---

१. रामचन्द्रिका, १६।३१
२. वही, १६।३२
३. वही, ३०।४१

शची का फूलों की गेंद सूँघना कुछ अप्रचलित सी कल्पना है परन्तु स्वयं केशव ने इसका स्पष्टीकरण सीता की दासियों के नासिका वर्णन प्रसंग में कर दिया है जब वह कहते हैं—

आनन्दलतिका मनहु सफूल। सूंघि तजत ससि सकल कुशूल।[१]

लोकापवाद है कि फूल सूँघ कर फेंक देने से नासिका के कुछ रोग दूर हो जाते हैं। उपरोक्त छंद में केशव ने संभवत: चन्द्रमा के लिए फूलों की गेंद की कल्पना की है क्योंकि वह फूलों के समान ही शान्तिप्रदायक है। इसी प्रसंग में आगे चलकर केशव ने चन्द्रमा के लिए सुग्रीव का उपमान भी प्रस्तुत किया है।

अंगद को पितु सो सुनिये जू। सोहत तारहिं संग लिए जू॥[२]

प्रस्तुत छंद में चन्द्रमा एवं सुग्रीव के मध्य कोई साम्य नहीं है। केवल शब्द साम्य के आधार पर केशव ने यह कल्पना की है। यहाँ तारा शब्द में श्लेष है अतः शब्द श्लेष के कारण चन्द्रमा सुग्रीव बन गया है। इस प्रकार के शब्द साम्य के उदाहरण श्री हर्ष के नैषधचरित में अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं। केशव ने भी उसी अनुकरण पर 'रामचन्द्रिका' में ऐसे कुछ प्रयोग किए हैं।

इस प्रकार केशव ने 'रामचन्द्रिका' में अनेक अप्रस्तुतों की योजना कर भाषा पर अपने पूर्णाधिकार का परिचय दिया है। उनकी भाषा कहीं भावाभिव्यंजन में सहायक होती है और कहीं भाषा की सशक्तता का प्रमाण देती है। आचार्य श्यामसुन्दरदास ने केशव की भाषा के सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है—'जो लोग हिन्दी भाषा को भाषा नहीं समझते और कहते हैं कि हिन्दी के शब्दों में मनोभाव प्रकट करने की शक्ति बहुत ही अल्प है उनसे हमारा निवेदन है कि वे केशव के ग्रंथ पढ़ें और देखें कि इस भाषा में क्या चमत्कार है। जिस भाषा वाले को अपनी भाषा की समृद्धि और पूर्णता का अहंकार हो वह भाषा का सर्वोत्तम छंद लेकर केशव के चुनिंदा छंदों से मिलान करे तो मालूम हो जाएगा कि उसकी भाषा हिंदी भाषा के सामने तुच्छातितुच्छ है। क्या किसी भाषा का कवि अपने किसी छंद के चार-चार और पाँच-पाँच तरह के शब्दार्थ लगा सकता है? केशव की कविता में ऐसे छंद बहुत हैं जिनका अर्थ तीन-तीन तरह से होता है। इतना ही नहीं कुछ छंद ऐसे भी हैं जिनका शब्दार्थ पाँच-पाँच तरह का होता है। इसी कठिनता के कारण लोग केशव को कविता कम पढ़ते हैं। हम दावे और अहंकार के साथ कह सकते हैं कि केशव ने हिंदी कविता को वह गौरव प्रदान किया है जो आज तक अन्य किसी भाषा को प्राप्त नहीं हो सका। जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर गम्भीरता के हेतु सराह-

१. रामचन्द्रिका, ३१।१३
२. वहीं, ३०।४२

नीय हैं, वैसे ही वरन् उससे भी बढ़कर केशव अपनी भाषा की परिपुष्टता के लिए प्रशंसनीय हैं।"[१]

रामचन्द्रिका की भाषा में गुण—काव्य-गुण यद्यपि रस-उत्कर्ष-वर्धक हैं तथापि उनका सम्बन्ध शब्द-चयन तथा वाक्य-रचना से ही है। भाषा के तीन मुख्य गुण हैं—माधुर्य, ओज एवं प्रसाद। इनकी अभिव्यक्ति जिन शब्द-रचनाओं द्वारा होती है उनकी संज्ञा क्रमशः मधुरा, परुषा और प्रौढा है। 'रामचन्द्रिका' में यद्यपि वीर-रस की प्रधानता होने के कारण ओज गुण का प्राधान्य है तथापि उसमें अन्य गुणों का भी अभाव नहीं है। माधुर्य की स्थिति विशेष रूप से शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों एवं कभी-कभी करुणा तथा शान्त-रस में भी होती है। 'रसिक-प्रिया' शृंगारिक छंदों का अनुपम कोष है अतः उसमें माधुर्य गुण की स्थिति सर्वाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। माधुर्य एवं ओज गुणों के विपरीत प्रसाद गुण का सम्बन्ध शब्दों के बाह्य रूप से न होकर उनके अर्थ से होता है। अतः प्रसाद गुण की स्थिति वहाँ मानी जाती है जहाँ काव्य का अर्थ बिना प्रयास के ही तत्काल हृदयंगम हो जाए। 'रामचन्द्रिका' में प्रसंगानुसार हमें तीनों ही गुणों की स्थिति मिलती है। वीर-रस प्रधान होने के कारण पहले हम 'रामचन्द्रिका' के कुछ ऐसे छंदों को लेंगे जहाँ ओज गुणयुक्त भाषा मिलती है।

ओज की स्थिति वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में विशेष रूप से पाई जाती है। द्वित्व वर्ण, संयुक्त वर्ण, रकार, टकार तथा दीर्घ सामासिक पद ओज गुण के व्यंजक हैं। वीर, रौद्र आदि रसों का वर्णन करते समय 'रामचन्द्रिका' की भाषा स्वाभाविक रूप से ओजमयी हो उठती है। स्वयंवर भवन में रावण वीरोचित उत्साह से कहता है—

> बज्र को अखर्ब गर्व गंज्यो, जेहि पर्बतारि जीत्यौ है,
> सुपर्व सब भाजे लै लै अगना।
> खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेश पाशु,
> चन्दन सी चन्द्रिका सों कीन्हीं चन्द बंदना।
> दंडक में कीन्हा कालदंड हू का मान खंड,
> माना कीन्ही काल हो की कालखंड खंडना।
> केशव कोदंड, विषदंड ऐसो खंडे अब,
> मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडंबना।[२]

राम के धनुष भंग करने पर धनुष से जो टंकार ध्वनि निकलती है वह समस्त विश्व को उसकी शान्ति भंग कर क्षण भर को दहला देती है—

> प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद चण्ड
> कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखंड को।

---

१. रामचंद्रिका, मनोरंजन पुस्तक माला, केशवदास का परिचय : श्यामसुन्दरदास, पृ० ४-५
२. रामचन्द्रिका, ४।६

चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल
पालि ऋषिराज के बचन प्रचण्ड को।
सोधु दे ईश को बोधु जगदीश को
क्रोध उपजाय भृगुनंद बारि-बण्ड को।
बाधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग धनु-
भंग को शब्द गयौ भेद ब्रह्मण्ड को।[1]

लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर राम निमिष मात्र को हत-बुद्धि हो जाते हैं, तदनन्तर वीरोचित दर्प से कहते हैं—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देऊं इन्द्र अब।
विद्याधरन अविध करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल।[2]

युद्धक्षेत्र की वीभत्सता का वर्णन करते हुए केशवदास कहते हैं—

पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभिजैं सुठि शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि श्रोणित पूर।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु धर्म विशाल।
चक्क सों रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल।[3]

समर में अनेक वीरों को भूमिसात् देख राम को अद्भुत रस की अनुभूति होती है। वह कहते हैं—

भैर से भट भूरि भिरे बल खेल खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रण-भूधर भूप न टारे टरै इम कोट अरे कै।
रोष सों खग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खायें मरे नग नाग परे कै।[4]

कुश और लक्ष्मण के भयानक युद्ध का वर्णन केशव ने इस प्रकार किया है कि युद्ध की भयानकता साकार हो उठती है—

अति रोष रसे कुश केशव श्री रघुनायक सों रण रीत रचैं।
तेहि बारन बार भई बहु बारन खर्ग हने, न गिनें परिचैं।

---

१. रामचन्द्रिका, ५।४३
२. वही, १७।४६
३. वही, ३७।२
४. वही, ३८।१६

तहं कुंभ फटें गजमोति कटें ते चले बहि श्रोणित रोचि रचें।
परिपूरन पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचें।[1]

बालक कुश वीर लक्ष्मण के समक्ष अपनी ओजमयी वाणी में कहते हैं—

न हौं मकराक्ष न हौं इंद्रजीत। विलोकि तुम्हैं रण होहुं न भीत।
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ।[2]

इसी प्रकार ओजमयी वाणी में परशुराम भी कहते हैं—

बोरों सबै रघुवंश कुठार की धार मैं बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भार में भूंजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥[3]

परशुराम के आतंक का वर्णन केशव ने द्वित्वाक्षरों की सहायता से किया हैं—

मत्त दंत्ति अमत्त ह्वै गये देखि-देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहि बज्जहीं॥
डारि-डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय भज्जहीं।
काटि कै तन त्रान एकहिं नारि भेषन सज्जहीं।[4]

'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार के अनेक स्थल हैं जहाँ कवि ने कभी द्वित्व तथा संयुक्त वर्णों द्वारा और कहीं रकार-टकार युक्त शब्द योजना कर वीर तथा रौद्र आदि रसों का प्रसंग उपस्थित किया है। इन स्थलों पर ओज का रूप नैसर्गिक है अतः भाषा ओज गुण से आप्लावित दिखाई पड़ती है।

केशव वीर रस से भी अधिक शृंगार रस के कवि हैं यद्यपि उनके अन्य काव्य ग्रंथों की अपेक्षा, 'रामचन्द्रिका' में शृंगार कम है। शृंगार अभिव्यंजक स्थानों पर केशव ने श्रुति-मधुर एवं कोमलकान्त पदावली की योजना की है। शृंगार रस के विशिष्ट कवि होने के कारण 'रामचन्द्रिका' में माधुर्य गुण अनेक स्थलों पर मिलता है यद्यपि इसका विशेष क्षेत्र 'रसिकप्रिया' के ही अन्तर्गत है।

अयोध्या के सुख वैभव से दूर वन में सीता राम का मनोरंजन करने की चेष्टा करती हैं। राम भी वन-जन्तुओं को पुष्प निर्मित आभूषण पहनाते हैं—

कबरी कुसुमाजि सिखीन दई। गज कुंभनि हारनि शोभ भई।
मुकुता सुक सारिक नाक रचे। कटि केहरि किंकिणि शोभ सचे॥[5]

---

१. रामचन्द्रिका, ३६।१५
२. वही, ३६।१७
३. वही, ७।१२
४. वही, ७।१
५. वही, ११।२८

दुलरी कल कोकिल कंठ बनी। मृग खंजन अंजन शोभ घनी।
नृपहँ सनि नूपुर शोभ भरी। कल हंसनि कंठनि कंठसिरी।[1]

अथवा बसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

बैठे विशुद्ध गृह अग्रज उग्र जाय।
देखी बसंत ऋतु सुन्दर मोददाय।
बौरे रसाल कुल कोमल केलि काल।
मानो अनंद-ध्वज राजत श्री विशाल।[2]

इन छंदों में कोमल वर्णों की योजना द्वारा माधुर्य गुण की उपस्थिति तो है ही, साथ ही दाम्पत्य जीवन का माधुर्य भी मूर्तिमान हो उठा है।

संयोग के अतिरिक्त शृंगार का दूसरा पक्ष है वियोग। वियोग में दाम्पत्य जीवन का माधुर्य और भी निखर जाता है इसलिए विप्रलंभ शृंगार अधिक प्रभावशाली भी होता है। केशव ने वियोग पक्ष का वर्णन करते हुए अत्यन्त सहृदयतापूर्वक मधुर शब्द योजना की है जिससे भाषा में माधुर्य गुण शतगुने वेग से चमक उठा है। जैसे—

धरे एक बेणी मिली मैल सारी। मृणाली मनौं पंक तें काढ़ि डारी।
सदा राम नामै ररै दीन बानी। चहुं ओर हैं राकसी दुःखदानी।[3]

अथवा सीता के वियोग में दुःखी राम की उन्मत्त दशा का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

अवलोकत है जबहीं जबहीं। दुख होते तुम्हैं तबहीं तबहीं।
वह वैर न चित्त कछु धरिये। सिय देहु बताय कृपा करिये।[4]

शृंगार के दोनों पक्षों के अतिरिक्त माधुर्य गुण की परिव्याप्ति करुण रस में भी हा सकती है। करुण रस 'रामचन्द्रिका' का प्रधान रस नहीं है तथापि ऐसे कुछ स्थल यहाँ आए हैं जहाँ करुण रस से युक्त छंदों में माधुर्य गुण मिलता है। उदाहरणार्थ निर्वासन के समय सीता लक्ष्मण को क्रन्दन करते देख मूर्च्छित हो जाती है मानों घने वन में बिजली गिर गई हो। उस समय लक्ष्मण ने एक हाथ से उनके मुख पर छाया की और दूसरे हाथ से वस्त्र से हवा। वह इतना रोये कि उनके आंसुओं से सीता का शरीर सिंचित हो गया—

विलोकि लक्ष्मणै भई विदेहजा विदेह सी।
गिरी अचेत ह्वै मनो घने बनै तड़ित सी।

---

१. रामचन्द्रिका, ११।२६
२. वही, ३०।३२
३. वही, १३।५३
४. वही, १२।३६

करी जु छाँह एक हाथ एक बात बास सों।
सिच्यो शरीर बीर नैन नीर ही प्रकास सों।[1]

माधुर्य गुण की स्थिति यदा कदा शांत रस में भी मिल जाती है। 'राम-चन्द्रिका' में शांत रस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें रामकृत राज्यश्री निन्दा प्रसंग में मिलता है। राम अगस्त्य ऋषि से कहते हैं कि संसार यों ही दुःख का जाल है और उसके जाल में पड़कर प्राणी अवश्य ही नरकवास करता है—

सुनि ज्ञान-मानस हंस। जप जोग जाग प्रशंस।
जग मांझ है दुख जाल। सुख है कहा यहि काल।
तहं राज है दुखमूल। सब पाप को अनुकूल।
अब ताहि लै ऋषिराय। कहि को न नरकहि जाय।[2]

श्रृंगार, करुण एवं शान्त तीनों रसों के अन्तर्गत माधुर्य गुण यद्यपि व्याप्त रहता है, परन्तु इसकी स्थिति मुख्य रूप से श्रृंगार रस के ही अन्तर्गत रहती है। 'रामचन्द्रिका' से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ इन तीनों रसों में माधुर्य गुण की स्थिति रहती है। इन स्थलों पर केशव ने एक बात की ओर विशेष दृष्टि रखी है कि 'टकार' जो श्रुतिकटु है उसका प्रयोग उन्होंने यथाशक्ति नहीं किया है। इन छंदों में सरल तथा श्रुतिमधुर शब्दयोजना है एवं द्वित्व तथा संयुक्त अक्षरों का अभाव है। इनमें मधुर वर्णों का सुन्दर और भावानुकूल प्रयोग हुआ है तथा माधुर्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा के प्रसाद गुण का सम्बंध उसके अर्थ-बोध से है। जिन रचनाओं का अर्थ बिना बौद्धिक परिश्रम के समझ में आ जाता है वहाँ प्रसाद गुण होता है। ओज तथा माधुर्य के समान इसकी स्थिति किसी रस विशेष में न होकर नव रसों में हो सकती है। केशव की 'रामचन्द्रिका' की भाषा अधिकांश प्रसाद गुण पूर्ण है। अलंकार बहुत होने पर भी 'रामचन्द्रिका' का कोई छंद ऐसा नहीं है जिसका अर्थ करने में कठिनाई होती हो। अन्य कवियों के विपरीत केशव की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि रूपक अथवा श्लेष आदि किसी भी अलंकार का प्रयोग करने पर भी उन्होंने सर्वत्र अपना आशय स्पष्ट कह दिया है। जिस प्रकार तुलसीकृत 'मानस' की चौपाइयों अथवा 'विनयपत्रिका' के पदों का अर्थ करने में आज भी टीकाकारों को कठिनाई होती है और वे निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि कौन-सा अर्थ कहाँ अधिक उपयुक्त है, सूर के अनेक दृष्टकूटों का अर्थ भी आज तक काव्य-रसिक नहीं लगा सके हैं, इस प्रकार की दुर्बोधता केशव के काव्य में नहीं है। उनका अर्थ स्पष्ट है और उसमें संदेह का कोई अवसर नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें जो 'कठिन काव्य का

१. रामचन्द्रिका, ३३।५२
२. वही, २३।१२-१३

प्रेत' कहा है वह उनकी संस्कृतनिष्ठ भाषा के कारण कहा है अन्यथा संस्कृत साहित्य से परिचित पाठक के लिए उसका अर्थ दुरूह नहीं है।

वर्षा वर्णन के प्रसंग में केशव ने वर्षा और कालिका का रूपक बाँधा है। छंद का अर्थ करने में कोई कठिनाई न हो इस कारण केशव ने स्वयं इसको स्पष्ट करते हुए कहा है—

कालिका कि वरषा हरषि हिय आई है।[१]

इसी प्रकार शरद् के वर्णन में सुजाति सुन्दरी का रूपक आरम्भ करने के पूर्व ही केशव ने इसे स्पष्ट कह दिया है—

बीते वरषा काल यों आई सरद सुजाति।
गये अंध्यारो होति ज्यों चारु चाँदनी राति।[२]

'रामचन्द्रिका' की प्रसाद गुणमयी भाषा के कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए जा सकते हैं—

(क) टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोस।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कोजत रोष।
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सबको छूटै।
होय तिनूका बज्र बज्र तिनूका ह्वै टूटै।[३]

(ख) शोभित मंचन की अवली गजदंतमय छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो बसुधा में सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जोन्हाई।
तामहं केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यौं जनु देव सभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई।[४]

उपरोक्त दोनों ही छंदों की भाषा सीधी, सरल तथा बोधगम्य है। शब्द-योजना कोमल है तथा अर्थ बुद्धि को तत्काल ग्राह्य। इसके अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' के पात्र जहां भावावेश में आ जाते हैं वहाँ भाषा और भी अधिक सरल एवं प्रसाद गुण से आप्लावित होती है। ऐसे स्थलों पर केशव का उद्देश्य किसी अलंकार अथवा छंद का परिचय देना भी नहीं होता इसलिए भाषा सुबोध, स्वाभाविक और प्रवाह-मयी होती है जैसे—

राम चलत नृप के युग लोचन।
बारि भरित भये बारिद रोचन।

---

१. रामचन्द्रिका १३।१६
२. वही, १३।२३
३. वही, ७।२०
४. वही, ३।१५

पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गये भीतर भौनहिं।[1]

अथवा—

चीन्हि देवर के विभूषण देखि कै हनुमंत।
पुत्र हों विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत।
बाप को रण मारियो अरु पितृ भ्रातृ संहारि।
आनियो हनुमंत बाँधि न आनियो मोहि गारि।
माता सब काकी करी विधवा एकहि बार।
मोसो और न पापिनि जाये बंश कुठार।[2]

में जिननी अधिक भावों की तीव्रता है उतनी ही भाषा में प्रसाद गुण की अधिकता है।

भाषा का यह प्रसाद गुण हमें उन अवतरणों में भी दृष्टिगोचर होता है जहाँ 'रामचन्द्रिका' के दो पात्रों के मध्य संवाद होता है। इन सभी उत्तर-प्रत्युत्तरों में भाषा सुगम और प्रसाद गुण से युक्त है। उदाहरण के लिए 'रामचन्द्रिका' के दो-एक संवादों में भाषा का यह रूप देखा जा सकता है। राम सीता के मुख का सादृश्य मुनि कुमारों में देख पूछते हैं—

सीता समान मुखचन्द्र बिलोकि राम।
बूझयो कहां वसत हौ तुम कौन ग्राम।
माता पिता कवन कौनेहि कर्म कीन।
विद्या विनोद शिष कौनेहि अस्त्र दीन ?[3]

कुश उत्तर देते हैं—

राजराज तुम्हें कहा मम बंश सो अब काम।
बूझि लीजौ ईश लोगन जीति कै संग्राम।

राम पुनः जिज्ञासु होकर कहते हैं—

हौं न युद्ध करौं कहे बिन विप्र वेष विलोकि।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि।[4]

कुश प्रत्युत्तर देते हैं—

कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोय।
बालमीक अशेष कर्म करे कृपा रस मोय।

---

१. रामचन्द्रिका २।२७
२. वही, ३६।१-२
३. वही, ३८।३
४. वही, ३८।८

अस्त्र शस्त्र सबै दये अरु वेद भेद पढ़ाय।
बाद को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराय।[1]

इसका दूसरा उदाहरण लव-अंगद युद्ध से लिया जा सकता है। अंगद को अपनी ओर आते देख लव कहते हैं—

अंगद जो तुम पै बल हो तो। तौ वह सूरज को सुत को तो।
देखत ही जननी जु तिहारी। वा संग सोवति ज्यों वर नारी।
जा दिन ते युवराज कहायो। विक्रम बुद्धि विवेक बहायो।
जीवत पै कि मरे पहं जैहै। कौन पिताहि तिलोदक दैहै।[2]

'रामचन्द्रिका' के समस्त संवादों की भाषा प्रसाद गुण से युक्त है। इसके अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' के कुछ छंद ऐसे हैं जहाँ श्लेष के कारण उनका अर्थ दो पक्षों में लगता है। इनमें एक प्रत्यक्ष अर्थ होता है और दूसरा श्लेषजन्य अप्रत्यक्ष अर्थ जहाँ शब्दों को खंडित करके उनका अर्थ करना पड़ता है। परन्तु संस्कृत विज्ञ पाठकों को उनका अर्थ हृदयंगम करने में कोई कोई कठिनाई नहीं होती अतः इस श्लेष कठिनाई के विद्यमान रहते हुए भी ऐसे छंदों में प्रसाद गुण का अभाव नहीं रहता। रावण अपनी कूटनीति से सीता को राम से विमुख कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। वह ऐसे द्व्यर्थी वचन कहता है जिनसे प्रत्यक्ष रूप से राम की निंदा की अभिव्यक्ति होती है परन्तु सीता के कोप की स्थिति में वह उन्हीं वचनों को राम प्रशंसा में परिवर्तित कर सकता है—

तुम्हें देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै।
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै।

अदवी नृदेविन कि होहु रानी। करैं सेव बानी मघौनी मृडानी।
लिये किन्नरी किन्नरा गीत गावैं। सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावैं॥[3]

इसका प्रथम अर्थ रामशत्रु रावण के पक्ष में लगता है और द्वितीय भक्त रावण के पक्ष में। रावण से हम एक महान् कूटनीतिज्ञ के रूप में पहले से ही परिचित हैं अतः उसके यह वचन प्रस्तुत प्रसंग में अनुचित भी नहीं प्रतीत होते। द्व्यर्थी होते हुए भी इस छंद के दोनों अर्थ बुद्धि के लिए सहज सुगम हैं अतएव इसमें प्रसाद गुण की स्थिति है।

---

१. रामचन्द्रिका, ३८।५
२. वही, ३८।१९-२०
३. वही, १३।५९-६०

'रामचन्द्रिका' के उपरोक्त उद्धरणों को देखकर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि केशव के सम्बन्ध में डा० बड़थ्वाल का प्रचलित मत "भाषा भी उनकी काव्योपयोगी नहीं है, माधुर्य और प्रसाद गुण से तो जैसे वे खार खाए बैठे हैं"[१] भ्रामक है। केशव को अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। ब्रज भाषा एवं संस्कृत उनकी अनुचरी-सी प्रतीत होती है तथा उनमें ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों ही गुणों की स्थिति यथास्थान विद्यमान है। ओज तो 'रामचन्द्रिका' के अधिकांश छंदों में मिल जाता है क्योंकि 'रामचन्द्रिका' का प्रायः प्रत्येक पात्र वीर रस से ओत-प्रोत है। केशव स्वयं सैनिक थे अतः उनके प्रत्येक पात्र में सैनिक का उत्साह व्यंजित होता है। ओज के साथ ही 'रामचन्द्रिका' में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का भी पूर्ण बिकास हुआ है।

केशव ने अपनी भाषा में कहीं भी गूढ़ता का समावेश नहीं किया है। वह जो कुछ कहना चाहते हैं स्पष्ट कहा है, तुलसी, सूर आदि कवियों के काव्य के समान जिज्ञासुओं को अर्थों का अनुमान लगाने के लिए भटकते हुए नहीं छोड़ा है। अत: उनकी भाषा में प्रसाद गुण सम्यक् मात्रा में विद्यमान है और नवरस में शृंगार को रसराज[२] मानने वाले कवि के काव्य में माधुर्य का अभाव तो हो ही कहाँ सकता है ?

संक्षेप में कहा जा सकता है कि केशव की भाषा भावाभिव्यंजन में पूर्णतया समर्थ तथा सशक्त है। उसमें तीनों गुणों का प्राचुर्य है। भाषा उनकी चेरी है और वह उसके संचालक।

'रामचन्द्रिका' में छंद योजना

महाकाव्य की परिभाषा देते हुए आचार्य दंडी ने कहा है कि प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद होना चाहिए एवं लोकरंजन के हेतु उसे केवल सर्गान्त में परिवर्तित कर देना चाहिए। हेमचन्द्र ने इस परिवर्तन को स्वीकार करके भी उसे काव्य की रूढ़ि नहीं माना क्योंकि उस समय कुछ महाकाव्य ऐसे थे जिनमें आद्योपान्त एक ही छंद का प्रयोग हुआ था जैसे रावण-विजय, सेतुबंध आदि। विश्वनाथ ने इन दोनों नियमों का समर्थन करते हुए यह भी कहा कि इन दोनों नियमों का पालन सर्वत्र न होकर कतिपय महाकाव्यों में एक ही सर्ग में अनेक छंदों का प्रयोग होता है—'नानावृत्तमय: क्वापि सर्ग: कश्चन दृश्यते।'[3]

उपरोक्त आचार्यों के विभिन्न मतों को देखने से पता चलता है कि महाकाव्यों की छंद सम्बन्धी मान्यताएँ सदैव परिवर्तनशील रही हैं। जैसे-जैसे महाकाव्यों की रचना होती रही वैसे ही उनकी परिभाषाएँ भी बदलती गई। छंद आदि महाकाव्य को रोचक बनाने के उपकरण थे अतः उन्हें संकीर्ण सीमाओं से आवद्ध नहीं किया

---

१. ना० प्र०, प० भाग १०, संवत् १९८६, पृ० ३६८

२. सबको केशवदास हरि, नायक है सिंगार। रसिकप्रिया, १।१६

३. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ

जा सकता था। एक सर्ग में छंद एक हो अथवा अनेक, उस पर महाकाव्य की श्रेष्ठता निर्भर नहीं थी, वास्तविक महत्त्व तो कवि की छंद-योजना सामर्थ्य का था। यदि कवि विविध छंदों में सफलतापूर्वक काव्य-रचना कर सकता था तो उसके काव्य का महत्त्व बढ़ता ही था परन्तु ऐसे कवि बहुत कम थे जिनका बहु छंदों पर पूर्ण अधिकार था अतः हमें बहुछंदी काव्य भी बहुत कम मिलते हैं। विश्वनाथ की परिभाषा इस बात का प्रमाण है कि उस समय कुछ ऐसे महाकाव्य अवश्य वर्तमान थे जिनके सर्गों में बहुछंदों का प्रयोग हुआ था यद्यपि उन्होंने उनके नाम नहीं दिए हैं। संस्कृत महाकाव्यों के अतिरिक्त छंद वैविध्य रासो ग्रन्थों की भी एक विशेषता थी। इस दृष्टि से 'संदेश रासक' में विविध छंदों की छटा दर्शनीय है। अपभ्रंश भाषा में नयनंदी कवि के 'सुदंसण चरिउ', देवसेनगणि के 'सुलोचना चरिउ', एवं पंडित लाखू के 'जिणदत्त चरिउ' में भी छंदों की विविधता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के काव्यों को एक प्रकार से 'रामचन्द्रिका' का पूर्व रूप कहा जा सकता है यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि केशव ने यह प्रेरणा किस भाषा के काव्यों से ली परन्तु अधिक संभव यही प्रतीत होता है कि उनको यह प्रेरणा संस्कृत काव्यों से ही प्राप्त हुई होगी जो आज विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गए हैं परन्तु केशव के समय में वर्तमान रहे होंगे। यह भी हो सकता है कि इस प्रकार के काव्यों का आचार्यों की परिभाषाओं में उल्लेख परन्तु अभाव देख और अन्य भाषाओं में उनकी उपस्थिति देख केशव ने हिन्दी भाषा में भी यह प्रयोग करने का निश्चय किया हो। जो भी हो केशव के पूर्व बहुछंदी रचनाओं की उपस्थिति थी और केशव को यह प्रेरणा पूर्ववर्ती साहित्य से ही प्राप्त हुई थी। इतना अवश्य है कि हिन्दी भाषा में इस प्रकार की रचना सर्वप्रथम केशव ने ही की तथा विविध छंदों पर पूर्णाधिकार होने के कारण वह इसमें पूर्णतया सफल भी हुए।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने कथारंभ में ही स्वीकार किया है 'रामचन्द्र की चंद्रिका वर्णत हौं बहु छंद।'[१] अपने पूर्ववर्ती बहुछंदी महाकाव्यों को देखकर ही केशव ने अपने इस ग्रन्थ में अनेक छंदों का प्रयोग किया है और इस दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' हिन्दी साहित्य में एक साहित्यिक प्रयोग है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का कठिन परन्तु सफल प्रयास न केशव के पूर्ववर्ती किसी कवि ने किया। केशव के पूर्व जायसी का 'पद्मावत' तथा तुलसी का 'रामचरितमानस' महाकाव्य के क्षेत्र में दो प्रशंसनीय प्रयास हो चुके थे परन्तु छंदों की दृष्टि से इनमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं थी। केशव हिन्दी साहित्य को संस्कृत की पूर्व परम्पराओं के अनुकरण पर एक बहुछंदी काव्य भेंट करना चाहते थे और 'रामचन्द्रिका' उनकी उसी प्रेरणा का परिणाम है।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'रामचन्द्रिका' में कवित्व का विश्लेषण करते हुए कहा है कि 'रामचन्द्रिका' "केसव की सबसे उत्कृष्ट रचना है पर वह भिन्न-भिन्न

१. रामचन्द्रिका, १।२१

लक्षणों के उदाहरणस्वरूप रचे गए पद्यों का तरतीबवार संग्रह ज्ञात होता है। दूषणों तक के उदाहरण हैं। छंद की दृष्टि से यह पिंगल का ग्रंथ दीखता है। एकाक्षरी से लेकर कई अक्षरों तक के छंदों का मिलना इसे पुष्ट करता है। 'रामालंकृत मंजरी' केशव का बनाया हुआ एक पिंगल ग्रन्थ है यह हम कह चुके है। 'रामचन्द्रिका' की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में कुछ छंदों के नीचे यथा 'रामालंकृतमंजर्या' लिखकर उन छंदों के लक्षण लिखे हैं। संभव है 'रामचन्द्रिका' 'रामालंकृत मंजरी' का परिवर्तित या परिवर्धित रूप हो या यह छंद 'रामालंकृतमंजरी' में हो।"[1]

केशव ने जिस प्रकार काव्य तथा रस का प्रशिक्षण देने के लिए 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' की रचना की है उसी प्रकार हो सकता है कि छंद की शिक्षा देने के लिए उन्होंने कोई पिंगल ग्रंथ लिखा हो जिसका नाम 'रामालंकृत मंजरी' भी होना संभव है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि केशव ने 'रामचन्द्रिका' के माध्यम से छंदों का शिक्षण कार्य नहीं किया है। यदि हम पाताम्बरदत्त बड़थ्वाल के कथनानुसार यह भी मान लें कि केशव ने 'रामचन्द्रिका' में कुछ छंद 'रामालंकृतमंजरी' से उद्धृत किए हैं तब भी 'रामचन्द्रिका' का पिंगल ग्रन्थ होना सिद्ध नहीं होता। 'रामचन्द्रिका' के कुछ छंद 'कविप्रिया' में पाए जाते हैं परन्तु इससे 'कविप्रिया' रामकाव्य नहीं बन जाती। जिस प्रकार केशव ने 'रामचन्द्रिका' के कतिपय छंद 'कविप्रिया' में सम्मिलित कर लिए हैं उसी प्रकार उन्होंने 'रामालंकृत मंजरी' के कुछ छंद प्रसंगोचित समझ कर 'रामचन्द्रिका' में सम्मिलित कर लिये होंगे। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि 'रामालंकृत मंजरी' नामक किसी पिंगल ग्रन्थ की रचना केशव ने 'रामचन्द्रिका' के पूर्व का था। छंदों की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' प्रयोग ग्रंथ है, शिक्षण ग्रंथ नहीं और विश्वनाथ का परिभाषा के अनुसार यह उसके महाकाव्यत्व की एक विशेषता है।

वैदिक काल से ही छंद काव्य का एक आवश्यक गुण रहा है। वेदों की रचना छंदोबद्ध ही हुई है। यजुर्वेदी के पास तीन पग चलता हुआ पुरोहित हाथ में अग्निपात्र लेकर कहता है—तू प्रतिद्वंद्वी नाशक विष्णु का चरण है, गायत्रा छंद पर आरूढ़ होकर पृथ्वी पर चल; तू शत्रुनाशक विष्णु का चरण है, त्रिष्टुप् छंद पर आरूढ़ होकर वायु में चल; तू द्वेषीनाशक विष्णु का चरण है, जगती छंद पर आरूढ़ होकर आकाश में चल; तू विरोधीनाशक विष्णु का चरण है, अनुष्टप् छंद पर आरूढ़ होकर विश्व के सम्पूर्ण भागों में चल।[2]

प्रस्तुत अवतरण से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उस समय देवताओं की स्तुतियाँ विभिन्न छंदों में की जाता होंगी तथा उनके रचयिता छंद शास्त्र से भली भाँति परिचित रहे होंगे। उपरोक्त छंदों का प्रयोग केवल वेदों में ही हुआ है अतः

---

१. ना० प्र० प०, भाग १०, संवत् १९८६, 'आचार्य कवि केशवदास' नामक लेख, पृ० ३५८

२. यजुर्वेद, १२.५

वे वैदिक छंद कहलाते हैं। वेदों के परवर्ती साहित्य में प्रयुक्त छंद लौकिक छंद कहलाते हैं जिनके दो भेद माने गए हैं, मात्रिक तथा वर्णिक। हिन्दी कवियों ने संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त दोनों प्रकार के लौकिक छंदों का प्रयोग किया है। केशव से पहले जिस कवि ने अपने काव्य में सबसे अधिक छंदों का प्रयोग किया है वे हैं महाकवि तुलसीदास परन्तु उनका छंद प्रयोग इतना सचेष्ट नहीं है कि उनके मानस को छंद-काव्य कहा जा सके। केशव के पूर्व डिंगल भाषा का एक राम काव्य 'रघुनाथ गीतांरो' अवश्य मिलता है जिसमें विविध छंदों में राम कथा कही गई है।[1]

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के लौकिक छंदों का प्रयोग किया है। स्वयं केशव के काव्य में भी उनके अन्य ग्रंथों की अपेक्षा 'राम-चन्द्रिका' में सबसे पहले अधिक छंदों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने कथारंभ करने के पूर्व ही प्रस्तावना में कह दिया है—

जगत जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छंद।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छंद।[2]

ग्रंथ रचना का कारण बताते हुए केशव ने एकाक्षरी से लेकर अष्टाक्षरी छंद तक के छंदों के उदाहरण एक ही स्थल पर दे दिए हैं—

एकाक्षरी छंद—सी, धी। री, धी
द्व्यक्षरी छंद—राम, नाम। सत्य धाम।
त्र्यक्षरी छंद—और नाम। को न काम।
चतुरक्षरी छंद—दुख क्यों टरि है। हरिजु हरि है।
चतुरक्षरी छंद—वरणियो। बरण सो। जगत को। शरण सो।
पंचाक्षरी छंद—सुख कंद है। रघुनंदन जू।
जय यों कहै। जग वंद जू।
षडक्षरी छंद—गुनी एक रूपी, सुनो वेद गावैं।
महादेव जाको, सदा चित्त लावैं।
सप्ताक्षरी छंद—विरंचि गुण देखै। गिरा गुणनि लेखै।
अनन्त मुख गावै। विशेषहि न पावै।
अष्टाक्षरी छंद—भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न रामदेव गाइहै। न देव लोक पाइहै।

परन्तु इसके बाद ही संभवतः यह सोचकर कि पाठक को 'रामचन्द्रिका' के सम्बन्ध में छंद ग्रंथ होने का भ्रम न हो जाए वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं कि छंद परिवर्तन उनकी सचेष्ट क्रिया है क्योंकि उनका लक्ष्य ही बहुछंदी काव्य प्रस्तुत करना है। इसी लिए वे जान बूझकर ही 'रामचन्द्रिका' का वर्णन बहुछंदों में कर रहे हैं।

---

१. केशवदास : रामरतन भटनागर, पृ० ४२
२. रामचन्द्रिका, १।२१

जिस प्रकार केशव ने भाव तथा शैली के लिए संस्कृत साहित्य का ऋण लिया है उसी प्रकार छंदों के क्षेत्रों में भी संस्कृत साहित्य के ऋणी हैं। संस्कृत काव्य ग्रंथों में प्रायः एक भाव डेढ़ अथवा आधे श्लोक में वर्णित दिखाई देता है। केशव के पूर्व हिन्दी में यह परिपाटी प्रचलित नहीं थी। हिंदी में एक भाव का वर्णन पूर्ण छंदों में मिलता है चाहे यह छंद एक हो अथवा एक से अधिक परन्तु अर्ध छंदों का प्रचलन हिंदी में नहीं था। केशव ने संस्कृत के अनुकरण पर संस्कृत छंदों की परिपाटी को हिंदी में लाने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहीं-कहीं पर 'रामचन्द्रिका' में डेढ़ अथवा अर्ध छंदों का प्रयोग किया है।

शिरोभूषण का वर्णन करते हुए शुक कहता है—

शीशफूल शुभ जर्यो जराय। मांगफूल सोहै सम भाय।
वेणीफूलन की वर माल। भाल भले बेंदा युग लाल।
तम नगरी पर तेज निधान। वैठे मनो बारह भान।[1]

यह डेढ़ छंद है परन्तु केशव ने उनको एकत्र ही रखकर एक छंद बना दिया है। इसी प्रकार भृकुटि वर्णन में डेढ़ छंद है—

भृकुटि कुटिल बहु भायन भरी। भाल लाल दुति दीसत खरी।
मृगमद तिलक रेख युग बनी। तिनकी सोभा सोभित घनी।
जनु जमुना खेलति शुभ गाथ। परसन पितहि पसारियो हाथ।[2]

केशों से टपकते हुए जलकणों का वर्णन भी डेढ़ ही छंद में किया है—

केशनि ओरनि कीकर रमैं। ऋक्षनि को तमयी जनु बमैं।
सज्जल अम्बर छोड़त बने। छूटर हैं जल के कण घने।
भोग भले तन सों मिलि करे। छोड़त जानि ते रोवत खरे।[3]

चन्द्रमा का वर्णन राम दो ही चरणों के अर्ध छंद में करते हैं—

अंगद को पितु सो सुनिये जू। सोहत तारहिं संग लिए जू।[4]

ताटंक वर्णन में भी दो ही चरणों के अर्ध छंद का प्रयोग किया गया है—

अति झुलमुलीन सह झलकलीन। फहरात पताका जनु नबीन।[5]

भरत राम के सीता वनवास के अनुचित कार्य से क्षुब्ध होकर कहते हैं—

हौं तेहि तीरथ जाय परौंगे। संगति दोष अशेष हरौंगे।[6]

---

१. रामचन्द्रिका, ३१।९
२. वही, ३१।१०-११
३. वही, ३२।४१
४. वही, ३०।४२
५. वही, ३१।१४
६. वही, ३६।३३

संस्कृत काव्यों में अधिकांश अतुकांत छंदों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत वृत्त भिन्न तुकांत के लिए उपयुक्त भी हैं परन्तु हिन्दी अथवा किसी अन्य आर्य भाषा में भिन्न तुकांत छंदों का प्रायः अभाव ही है। केशव से बहुत पूर्व वीरगाथाकाल में चंदबरदाई ने अवश्य अतुकांत छंदों का प्रयोग किया था। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार के बहुत छंद तो नहीं लिखे परन्तु हिन्दी भाषा में इस प्रकार का प्रयोग करने का प्रयास अवश्य किया है। विश्वामित्र राजा जनक की प्रशंसा में कहते हैं—

गुण गण मणिमाला चित्त चातुर्यशाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता॥
अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता।
थिर चर अभिरामी, कीय जामातु नामी॥[1]

उपरोक्त छंदों में यद्यपि माला-शाला, गीता-सीता, भर्ता-कर्ता अभिरामी-नामी शब्दों में अन्त्यानुप्रास है परन्तु छंद अतुकांत ही हैं।

'रामचन्द्रिका' में अतुकांत छंदों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

जग यशवन्त विशाल, राजा दशरथ की पुरी।
चंद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईश की॥[2]
लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा॥[3]
प्राणनाथ रघुनाथ, जियकी जीवन मूरि हौ।
लक्ष्मण हे तुम साथ, छमियो चूक परी जु कछु॥[4]
राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै
गहे भरथ को हाथ, आवत राम विलोकियो॥[5]

'रामचन्द्रिका' में छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े छंदों का प्रयोग हुआ है। एक ओर जहाँ केशव ने एक अक्षर के श्री छंद का प्रयोग किया है वहाँ उन्होंने छप्पय और रोला, कुंडलिया जैसे बड़े छंदों का भी प्रयोग किया है।

श्री छंद—सी, धी। री, धी।[6]

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरनीरिपुनंदन।
तिन न करत संहार कहा मदमत्तगयंदन?
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृप कुंवर कुंवरमनि।
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि।

१. रामचन्द्रिका, ६।२७
२. वही, १।४६
३. वही, ७।२४
४. वही, २२।२०
५. वही, ७।१३
६. वही, १।८

नृपनाथ-नाव दशरत्थ यह अकथ कथा नहिं मानिये।
मृगराज-राज-कुल कमल कहँ बालक वृद्ध न जानिये ॥[1]

रोला—शुभ सूरज कुल-कलस नृपति दशरथ भये भूपति।
तिनके सुत भये चारि चतुर चित चारु मति।
रामचन्द्र भुवचन्द्र भरत भारत भुव भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव दल दूषण ॥[2]

प्रचलित छंदों के अतिरिक्त केशव ने कतिपय मौलिक छंदों का भी प्रयोग किया है जैसे सुगीत, मदन मल्लिका तथा सिंह विलोकित आदि।

सनाढ्य जाति गुनाढ्य हैं, जगसिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडितराव।
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध।[3]

यह सुगीत छंद केशव का मौलिक छंद है। यह अठारह वर्णों का छंद है जिसमें केशव ने आदि में जगण, फिर भगण, रगण, सगण और अन्त में दो जगण रखे हैं।

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो।
कछु बुधि बल वचन न जाय कह्यो।
पशु-पक्षी नारि नर निरखि तबै।
दिन रामचन्द्र गुण गनत सबै।[4]

उपर क्त सिंहविलोकित छंद केशव का मौलिक वर्णिक छंद है।

देश-देश के नरेश। शोभिजै सबै सुबेश।
जानिये न आदि अंत। कौन दास कौन संत।[5]

यह अष्टवर्णी मदन मल्लिका छंद भी केशव का निजी छंद है जिसमें क्रम से गुरु लघु आते हैं।

निम्न मनहरन तथा कमल छंद भी केशव के मौलिक छंद हैं—

अति निकट गोदावरी पाप संहारिणी।
चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी ॥

---

१. रामचन्द्रिका, २।१८
२. वही, १।२२
३. वही, १।४
४. वही, १।४४
   वही. २।५

अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिणी।
बहु नयन देवेश-शोभा मनो धारिणी।[१]

कमल छंद—

तरूचन्दन उज्वलता तब धरे। लपटी नव नागलता मन हरे।
नृप देखि दिगम्बर बन्दन करे। जनु चन्द्रकलाधर रूपहि भरे।।[२]

चौबोला छंद मात्रिक छंद है परन्तु केशव ने इस छंद को चौबोला का प्रवाह रखते हुए भी वर्णिक वृत्त के अंतर्गत रख दिया है—

संग लिये ऋषि शिष्यन घने। पावक से तपतेजनि सने।
देखत बाग तड़ागन भले। देखन औधपुरी कहँ चले।[३]

यह केशव का विशेष छंद है। इसमें प्रवाह चौबोला का है परन्तु है यह वर्णिक वृत्त। इसी प्रकार गीतिका मात्रिक छंद है परन्तु केशव ने उसे वर्णिक छंद का रूप दे दिया है—

तहं सोभिजैं सखि सुन्दरी जनु दामिनी बपु मण्डिकै।
घनश्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघन छण्डि कै।।
यक अंग चर्चित चारू चंदन चन्द्रिका तजि चन्द को।
जनु राहु के भय सेवही रघुनाथ आनन्द कंद को।।[४]

कुसुमविचित्रा छंद का ग्यारहवाँ अक्षर दीर्घ होना चाहिए परन्तु केशव ने निम्न छंद में उसे लघु ही रखा है—

अति सुभ बीथी रज परिहरे। मलयज लीपी पुहपन धरे।
दुहु दिसि दीसैं सुबरन मये। कलस बिराजैं मनिमय नये।।[५]

हीरक छंद दो प्रकार का होता है, मात्रिक तथा वर्णिक। मात्रिक २३ मात्रा का होता है तथा वर्णिक १८ अक्षर का। केशव ने अधिकांश वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया है अतः उन्होंने मात्रिक हीरक के स्थान पर वर्णिक हीरक का ही प्रयोग किया है—

चंडचरन, छंडि धरनि, मंडि गगन छावही।
तत्क्षण हुइ दच्छिन दिसि लक्ष्यहि नहि पावही।
धीरधरन बीरबरन सिंधुतट सुभावहीं।
नाम परम, धाम धरम, राम करम गावहीं।।[६]

---

१. रामचन्द्रिका, ११।२३
२. वही, ३२।१७
३. वही, १।३६
४. वही, ६।६०
५. वही, ८।६
६. वही, १३।२३

केशव ने मनोरमा छंद में भी कुछ परिवर्तन किया है। उन्होंने इसमें ४ सगण तथा २ लघु का नियम रखा है परन्तु अन्य पिंगल ग्रन्थों में इसका लक्षण भिन्न है—

सुनिये कुल-भूषण देव विदूषण। बहु आजिविराजिन के तम पूषण।
भुव भूप जे चारि पदारथ साधत। तिनको कबहूँ नहिं बाधक बाधत॥[1]

इसी प्रकार केशव ने निम्न मनोरमा छंद में भी यही लक्षण रखा है—

हम हैं दशरत्थ महीपति के सुत। सुभ राम सु लच्छन नामक संजुत।
यह सासन दै पठये नृप कानन। मुनि पालहु घालहु राक्षस के गन॥[2]

जयकरी तथा चौबोला दोनों छंद १५ मात्राओं के होते हैं। जयकरी के अंत में गुरु, लघु और चौबोला के अन्त में लघु गुरु होते हैं। केशव ने अनेक छंदों में इन दोनों का मिश्रण कर दिया है। कहीं दो चरण चौबोला के हैं और दूसरे दो जयकरी के और कहीं इसके विपरीत हैं।

सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र।
इनही लगे राज के काज। इनही ते सब होत अकाज॥[3]

में प्रथम दो चरण चौबोला के हैं और दूसरे दो जयकरी के।

काल कूट ते मोहन रीति। मणिगण ते अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा ते मादकता लई। मन्दर उदर भई भ्रम मई॥[4]

में प्रथम दो चरण जयकरी के हैं और दूसरे दो चौबोला के।

वसन्ततिलका छंद को केशव ने तनिक परिवर्तन से एक नए छंद हरि-लीला में परिवर्तित कर दिया है। वसन्ततिलका में त+भ+ज+२ गुरु होते हैं परन्तु केशव ने अन्तिम गुरु को लघु बनाकर इस छंद को हरि-लीला का रूप दे दिया है—

बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाय।
देखी बसन्त ऋतु सुन्दर मोद दाय॥
बौरे रसाल कुल कोमल केलि काल।
मानो अनन्द ध्वज राजत श्री विशाल॥[5]

इसी प्रकार—

साँची कही भरत बात सबै सुजान।
सीता सदा परम शुद्ध क्रिया-विधान

---

१. रामचन्द्रिका, १८।७
२. वही, ११।३४
३. वही, २३।१४
४. वही, २३।२४
५. वही, ३०।३२

मेरी कछू अबहि इच्छ यहै सु हेरि।
मोको हतौ बहुरि बात कहौ जु फेरि ।।[१]

हरि-लीला छंद के अन्तिम वर्ण को यदि गुरु मान लें तो यही छंद वसन्ततिलका हो जायगा।

कुण्डलिया छंद एक दोहा और उसके बाद एक रोला छंद रखने से बनता है। इसमें कुछ कवि कुण्डलिया के दूसरे चरण का तीसरे के साथ और कुछ कवि दूसरे चरण का तीसरे के साथ और चौथे चरण का पाँचवें के साथ सिंहावलोकन करते हैं। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। यथा—

नारी तजै न आपनो सपने हु भरतार।
पंगु गुग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार।
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी ।[२]

तथा

ताते नृप सुग्रीव पे जैये सत्वर तात।
कहियो बचन बुझाय कै कुशल न चाहो गात।
कुशल न चाहो गात, चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीता सोध काम बश राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख-सम्पत्ति जाते।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते।[३]

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि केशव ने मात्रिक छंदों का अपेक्षा वर्णिक वृत्तों का प्रयोग अधिक किया है। जहाँ कहीं भी संभव हुआ है उन्होंने मात्रिक छंदों को भी वर्णिक छंद बनाने का प्रयत्न किया है। मात्रिक छंदों में केशव ने सबसे अधिक दोहा, चौपाई तथा सोरठा छंदों का प्रयोग किया है। दोहा, चौपाई अवधी के छंद हैं। केशव के पूर्व जायसी तथा तुलसी ने अपने महाकाव्यों के लिए दोहा तथा चौपाई छंदों को ही चुना था परन्तु केशव ने 'रामचन्द्रिका' की रचना ब्रज भाषा में करने पर भी अवधि के इन छंदों का अत्यंत सुन्दर प्रयोग किया है। 'पद्मा-वत' तथा मानस के समान 'रामचन्द्रिका' की रचना पूर्ण रूप से दोहा तथा चौपा छंदों में सीमित नहीं है परन्तु जहाँ कहीं भी इन छंदों का प्रयोग हुआ है वहाँ इनका सौंदर्य दर्शनीय है। अवधी के इन छंदों का सौंदर्य ब्रजभाषा में आकर और भी अधिक निखर उठा है।

---

१. रामचन्द्रिका, ३३।३६
२. वही, ६।२६
३. वही, १३।२

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में २४ मात्रिक छंदों तथा ५८ वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है।[1] सम्पूर्ण 'रामचन्द्रिका' ग्रंथ में पंगु अथवा यति भंग दोष बहुत कम मिलता है। केशव स्वयं छंद-शास्त्र के अनूठे पारखी थे अतः उनके काव्य में यह दोष केवल दो एक स्थलों पर ही दृष्टिगोचर होता है।

या द्वादशें प्रकाश खर दूषण त्रिशिरा नाश।
सीता-हरण विलाप सुग्रीव मिलन हरि त्रास।[2]

इस दोहे में सुग्रीव शब्द का टूट कर दो चरणों में चले जाने से यति भंग दोष आ जाता है।

आगम कनक कुरंग के कही बात सुख पाइ।
कोपानल जर जाय जनि शोक समुद्र न बुड़ाइ।[3]

चौथे के चरण में एक मात्रा अधिक होने के कारण इसमें पंगु दोष है।

छंद का रस से घनिष्ठ संबंध है। छंद के माध्यम से रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाता है। छप्पय में वीर, रौद्र, तथा भयानक; नाराच में वीर; सवैया और बरवै में शृंगार, शांत, करुण; तथा दोहा, चौपाई, सोरठा में सभी रस प्रभावशाली हो सकते हैं। केशव ने बहुत से स्थलों पर रसोपयुक्त छंदों का प्रयोग किया है तथा कहीं-कहीं छंदों में विरोधी रसों को व्यक्त करने का भी प्रयास किया है, जैसे सवैया छंद में शृंगार के स्थान पर अद्भुत रस का वर्णन किया है—

भैर से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रण-भूधर भूप न टारे टरै इभ कोट अरे कै॥
रोष सों खग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खाये मरे नग नाग परे कै।[4]

इसी प्रकार नाराच छंद में वीर के स्थान पर शृंगार का वर्णन किया है—

नितंब बिंब फूल से कटिप्रदेश छीन है।
बिभूति लूटि ली सबै सुलोकलाज लीन है।
अमोल ऊजरे उदार जंघ युग्म जानिये।
मनोज के प्रमोद सों विनोद यंत्र मानिये।[5]

साथ ही 'रामचन्द्रिका' में नाराच छंद में वीर रस के उदाहरणों का भी अभाव नहीं है—

---

१. तालिका के लिए देखिए केशवदास : ही० ला० दीक्षित, पृ० २०३
२. रामचन्द्रिका, १२ वाँ प्रकाश, दोहा
३. वही, १४।३१
४. वही, ३८।१६
५. वही, ३१।३३

भगे चये चमू चमूप छोंड़ि छोंड़ि लक्ष्मणै।
भगे रथी महारथी गयद वृंद को गणै।
कुशै लवै निरंकुशै बिलोकि बधु राम को।
उठ्यो रिसाय कै बलो बंध्यो जु लाज दाम को।[१]

वैसे ही सवैया में शृंगार रस के उदाहरण भी मिलते हैं—

बैठे जराय जरे पलिका पर राम सिया सब को मन मोहैं।
ज्योति समूह रहो मढ़िकै सुर भूलि रहे बपुरो नर को हैं।
केशव तीनहु लोकन को अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज मंडल माँझ मनो कमला कमलापति सोहैं।[२]

रौद्र रस का वर्णन केशव ने अनेक स्थलों पर छप्पय में किया है—

भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक सहरहु सेस सिरते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहि होइ सबहि तम भारो।
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंद संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर।[३]

दोहा, चौपाई तथा सोरठा छंद में तो केशव ने सभी रसों की अभिव्यक्ति की है। अवसरानुकूल इनमें से जो छंद उन्हें रुचा है उसी का उन्होंने प्रयोग किया है। सत्य तो यह है कि केशव को छंद पर इतना अधिक अधिकार है कि उन्होंने रस को देख कर छंद रचने का प्रयास नहीं किया है। छंद उनकी लेखनी से स्वतः ही निस्सृत हुए हैं, जो रस जिस छंद में आ गया, वही प्रभावशाली बन गया है।

रस के अतिरिक्त केशव ने भावों को दृष्टिगत रखते हुए भी छंदों का प्रयोग किया है। जहाँ जिस प्रकार का भाव है छंद भी उसी के अनुकूल है। चंचला छंद में १६ वर्ण होते हैं जिसमें क्रमशः आठ बार गुरु लघु रखे जाते हैं। वाटिका विहार के समय जब राम की सवारी के लिए घोड़ा आता है, उस अवसर पर केशव ने चंचला छंद का प्रयोग किया है। अश्वगति के समान ही छंद की गति है—

भोर होत ही गयो सु राज लोक मध्य बाग।
वाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
शुभ्र सुम्भ चारिहून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचला प्रकार।[४]

---

१. रामचन्द्रिका, ३६।१६
२. वही, ६।४५
३. वही, ७।४२
४. वही, ३१।१

इस प्रसंग में चंचला छंद का प्रयोग केशव के पांडित्य का प्रमाण है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर भारत में गालियाँ देने की परम्परा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। ये संगीतमय गालियाँ अपशब्द होते हुए भी श्रोताओं को खूब मुग्ध करती हैं। केशव ने इस अवसर के लिए संगीतपूर्ण हरिप्रिया छंद को चुना है। राम सीता विवाह में जेनवार के समय वधू पक्ष की स्त्रियाँ वर पक्ष के पुरुषों को अनेक व्यंग्यमय गालियाँ हरिप्रिया छंद में ही देती हैं—

अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह राम जू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुबाम जू।[1]

× × ×

यह लाज मरियत ताहिं तुमसो भयो नातो माथ जू।
अब और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथ जू।

इसी प्रकार महाराज राम को प्रातःकाल जब जगाया जाता है, चारण रिप्रिया छंद में ही राम की स्तुति करते हैं। संगीत के अवसर पर केशव का छंद भी संगीतमय है—

जागिये त्रिलोकदेव, देव देव राम देव।
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावैं॥
ब्रह्मा मन मन्त्र बर्ण, विष्नु हृदय चातक घन।
रुद्र हृदय-कमल-मित्र, जगतगीत गावैं॥
गगन उदित रवि अनन्त, शुक्रादिक जोतिवंत।
छन-छन छबि छीन होत, लीन पीन तारे।
मानहु परदेश देश, ब्रह्मदोष के प्रवेश,
ठौर-ठौर ते बिलात जात भूप भारे॥[2]

केशव का छंदों पर असीम अधिकार है। 'रामचन्द्रिका' में जहाँ कथा द्रुत गति से आगे बढ़ती है वहाँ केशव ने भी छोटे-छोटे छंदों का प्रयोग किया है और जहाँ कथा मन्थर गति से चलती है, केशव ने भी लम्बे-लम्बे छंदों का प्रयोग किया है। छंद उनके संकेत पर चलते से प्रतीत होते हैं। 'रामचन्द्रिका' के उपरोक्त उदाहरणों को देखकर असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि केशव ने छंद शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था। 'रामचन्द्रिका' में उनके छंद परिवर्तन से कथा-प्रवाह में कोई बाधा नहीं पड़ती है अपितु नित्य नवीन छंदों के कारण प्रबन्ध एक रस न रहकर उसमें नवीन उत्साह बना रहता है। केशव को जहाँ एक ही छंद में कोई विशेष भाव व्यक्त करने की आवश्यकता अनुभव हुई है उन स्थलों पर उन्होंने एक ही छंद का कई

---

१. रामचन्द्रिका ६।३०-३६
२. वही, ३०।१८

बार प्रयोग किया है। 'रामचन्द्रिका' का पिंगल ग्रन्थ की अपेक्षा काव्य ग्रन्थ होना इसी बात से प्रमाणित हो जाता है कि उन्होंने एक ही छंद का एक ही स्थान पर कई बार प्रयोग किया है तथा उसी छंद का प्रयोग अन्य अनेक स्थलों पर भी किया है। 'रामचन्द्रिका' बहुछंदी महाकाव्यों की शृंखला की एक कड़ी है परन्तु इस प्रकार का काव्य-रचना-कार्य इतना दुष्कर था कि केशव के पश्चात् इसे इतनी सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने का साहस अभी तक कोई भाषा कवि नहीं कर सका है। केशव के काव्य की मर्यादा अब भी उसकी महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में जाज्वल्यमान है, यद्यपि उनके अनुकरण पर अनेक परवर्ती कवियों ने बहुछंदी काव्य कृतियों की रचना की।

रामचन्द्रिका में केशव की शास्त्रीय मान्यताओं का प्रयोग

हिन्दी साहित्य में केशव रीति काव्य के प्रवर्तक तथा काव्य शास्त्र के प्रथमाचार्य माने जाते हैं। 'शिवसिंह सरोज' में पुण्ड नामक एक बन्दीजन का उल्लेख मिलता है जिसने संस्कृत अलंकारों का अनुवाद हिन्दी में किया था। इस बन्दीजन का उल्लेख सरोजकार ने कर्नल टाड के 'राजस्थान' के आधार पर किया है परन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है और अभी तक किसी के देखने में नहीं आया है। इसका समय शिवसिंह सेंगर के अनुसार सं० ७०० वि० है। यह ग्रंथ अलंकार ग्रंथ है।

काव्यशास्त्र सम्बंधी जिस ग्रंथ का पता निश्चित रूप से सर्वप्रथम लगता है वह है कृपाराम रचित 'हित तरंगिणी'। अतः मान्य प्रमाणों के अभाव में कृपाराम ही रीति काव्य के आदि संस्थापक ठहरते हैं। 'हित तरंगिणी' रस रीति पर लिखा गया सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। कृपाराम ने इसको दोहा छंद में कवियों के हित के लिए लिखा था। कृपाराम के एक उल्लेख से पता चलता है कि वह रीति शास्त्र के प्रथम लेखक नहीं थे बल्कि उनके पूर्ववर्ती कवि अनेक विस्तृत छंदों में शृंगार रस के वर्णन की आधार-शिला रख चुके थे तथा उनके समय तक रस रीति पर अन्य ग्रंथ भी लिखे जा चुके थे[1]—

वरनत कवि सिंगार रस छन्द बड़े विस्तारि।
मैं बरन्यो दोहानि बिच याते सुघर विचारि॥

कृपाराम के पश्चात् हमें सं० १६१५ वि० के लगभग गोप कवि के 'रामभूषण' और 'अलंकार चंद्रिका' नामक दो ग्रंथ मिलते हैं। 'रामभूषण' में सम्भवतः कवि ने राम की कथा के साथ अलंकारों का वर्णन करने का प्रयास किया है। 'अलंकार चंद्रिका' में अलंकारों का स्वतंत्र विवेचन है। सम्वत् १६१६ वि० में चरखारी के मोहन लाल मिश्र का 'शृंगार सागर' नामक एक ग्रंथ मिलता है। इसमें रस और नायिकाभेद का वर्णन है। नंददास कृत 'रसमंजरी' नायिका भेद का ग्रंथ है और भानुदत्त की रस मंजरी पर आधारित है। इसमें शास्त्रीय विवेचन का अभाव है।

---

१. हि० सा० का इति०, रा० चं० शुक्ल, पृ० २०१

इन रीतिशास्त्रियों के अतिरिक्त अन्य रीति प्रणेताओं के उल्लेख भी मिलते हैं परन्तु उनकी रचनाएँ अभी तक अनुपलब्ध हैं। पुष्य प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने वालों में ब्रज के क्षेम कवि और मुनिलाल का नाम भी उल्लेखनीय है। मुनिलाल तो ऐसे ग्रंथों के जन्मदाता ही माने जाते हैं। अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा लिखित एक 'नायिका भेद' का उल्लेख भी मिलता है तथा कर्णेश कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' एवं 'भूप-भूषण' नामक तीन अलंकार ग्रंथ लिखे थे।[1] केशव के ज्येष्ठ भ्राता बलभद्र मिश्र ने भी काव्य दोषों से सम्बन्धित एक ग्रंथ 'दूषण विचार' और एक ग्रंथ नखशिख पर लिखा था।

उपर्युक्त ग्रंथों में से अधिकांश ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं और जो कुछ उपलब्ध हुए भी हैं उनमें शास्त्रीय विवेचन का अभाव है। साहित्य की परिवर्तित होती हुई रुचि का संकेत तो इन ग्रंथों से अवश्य होता है परन्तु ये इतने शक्तिशाली नहीं थे कि साहित्य की धारा को अपने अनुकूल प्रवाहित कर सकते। इन प्रयत्नों में गम्भीर अध्ययन का अभाव था अतः परवर्ती साहित्य पर इनका प्रभाव स्थायी न हो सका। साहित्य शास्त्र को एक व्यवस्थित रूप देने का श्रेय केशवदास को ही है। उन्होंने काव्य-साहित्य और संस्कृत-साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था।

केशवदास अपनी काव्य मान्यताओं में अलंकारवादियों से अधिक प्रभावित थे इसीलिए उन्होंने तत्सम्बन्धी शास्त्रीय ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया था और भाषा कवियों के हितार्थ 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' जैसे ग्रंथों की रचना की थी। 'रामचंद्रिका' में भी अलंकारों तथा छंदों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। काव्य-शास्त्र के इस आचार्य ने काव्य के सभी अंगों का निरूपण इस काव्य में किया है। साहित्यकार की दृष्टि से केशव साहित्य के उस वर्ग में आते हैं जो काव्य में चमत्कार को प्रधान समझते हैं। उन पर भट्टि और वाण का गम्भीर प्रभाव लक्षित होता है।

केशवदास का उद्देश्य था संस्कृत-साहित्य तथा संस्कृत-साहित्य शास्त्र की सुन्दरताओं को भाषा साहित्य में प्रस्तुत करना, अतः इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर हमें उनके काव्य का पर्यालोचन करना होगा। केशव की शास्त्रीय मान्यताओं की प्रतिष्ठापक रचनाएँ मुख्य रूप से दो हैं—'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' परन्तु उनका सम्यक् प्रतिपादन हुआ है 'रामचंद्रिका' में। केशव को काव्य सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को व्यावहारिक रूप देने का अवसर 'रामचंद्रिका' में ही प्राप्त हुआ है। उनकी 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' लक्षण ग्रंथ हैं तथा 'रामचंद्रिका' लक्ष्य ग्रंथ।

केशव अलंकारवादी कवि हैं एवं अलंकारमय काव्य को ही श्रेष्ठ काव्य मानते हैं। जिस प्रकार सुन्दर कुल में उत्पन्न, शुभ लक्षणों से युक्त, शुभ्रवर्णा तथा सुभाषिणी स्त्री भी आभूषणों के बिना पूर्णतया सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार

---

१. आचार्य केशवदास : ही० ला० दी०, पृ० २३०

ध्वनि, सुस्पष्ट लक्षणों, रसानुकूल सुन्दर वर्णों तथा छंदों से युक्त कविता भी अलंकार-हीन रहकर शोभित नहीं होती—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुबृत्त।
भूषण बिनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त।[1]

तथा

कोमल शब्दनिवंत सुवृत्त। अलंकारमय मोहनमित्त।
काव्य सुपद्धति सोभा गहे। इनके बाहुपाश कवि कहे।[2]

इसीलिए 'रामचंद्रिका' ध्वनि, लक्षण, रस तथा छंद आदि अनेक गुणों से युक्त होने पर भी प्रधान रूप से अलंकार ग्रन्थ है। उसमें प्रत्येक पग पर अलंकारों की मनोहर छटा दिखाई देती है। कभी-कभी कवि की काव्य-वनिता इतने अधिक आभूषण धारण कर लेती है कि उसे पग उठाना भी दूभर प्रतीत होने लगता है परन्तु अधिकांश केशव की यह कामिनी विविध हलके आभूषणों से सज्जित हो पाठकों को बलात् अपनी ओर आर्कषित कर लेती है।

केशव ने दो प्रकार के अलंकार माने हैं साधारण तथा विशिष्ट। साधारण अलंकारों के उन्होंने चार भेद किए हैं—वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार, भूमिश्री वर्णन तथा राज्यश्री वर्णन। वर्णालंकार के अंतर्गत रंग ज्ञान, वर्ण्य के अंतर्गत आकार ज्ञान, भूमिश्री के अंतर्गत प्राकृतिक वस्तुओं का ज्ञान तथा राज्यश्री वर्णन के अंतर्गत राज्य संबंधी वस्तुओं का ज्ञान आता है। केशव ने कविता में श्वेत, पीत, श्याम, रक्त, धूम्र, नील तथा मिश्रित सात रंगों को प्रधान माना है। 'रामचन्द्रिका' में श्वेत वर्ण का एक उदाहरण देखिए—

जीति जीति कीरति लई शत्रुन की बहु भाँति।
पुर पर बांधी शोभिजै मानौ तिनकी पाँति।[3]

काव्य में कीर्ति का वर्ण श्वेत माना गया है अतः श्वेत पताकाओं का वर्णन करने के लिए केशव ने कीर्ति का उपमान चुना है।

केशव के अनुसार वर्ण्यालंकार वहाँ होता है जहाँ किसी की आकृति अथवा गुण लेकर कोई उक्ति कही जाए। इसके अंतर्गत केशव ने अठारह वस्तुओं की गणना की है—संपूरण, आवर्त्त, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त, तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठिन, निश्चल, चंचल, सुखद, दुःखद, मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप, क्रूर, स्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ, सत्य, झूठ, मंडल, अगति, सदागति, तथा दान।[4] इन भेदों के केशव ने उपभेद भी किए हैं। विस्तार के भय से हम यहाँ वर्ण्यालंकार के आकृति तथा गुण दोनों

१. कार्वप्रिया, ५।१
२. रामचन्द्रिका, ३१।२५
३. वही, १।४०
४. कविप्रिया, ६।१-३

का एक-एक उदाहरण 'रामचन्द्रिका' से लेंगे। आकृति के अंतर्गत संपूरण अलंकार हम निम्न छंद में देख सकते हैं—

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एकै कहैं चंद्र सम आनन्द को कंद री।
हाय जो कमल तो रजनि में न सकुचै री,
चंद जो तो बासर न होनी दुति मंद री।
बासर हौ कमल रजनि ही में, चंद्र,
मुख बाहर हू रजनि बिराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चन्द्र,
ताते मुख मुखै सखी कमलै न चन्द री।[1]

यहाँ कमल तथा चंद्रमा अनेक गुणों से युक्त होने पर भी सीता-मुख की समता नहीं कर पाते अतएव सीता-आनन वर्णन में संपूरण (आकृति) अलंकार है।

दान-वर्णन में गुण प्रधान रहने के कारण संपूरण गुण अलंकार है—

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहो धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न केहूँ लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहू न बखानी काहू पै गई।
वर्णै पति चार मुख पूत वर्णै पाँच मुख,
नाती वर्णै षट्मुख तदपि नई नई।[2]

भूमिश्री के अंतर्गत भूतल के दृश्यों का वर्णन आता है। केशव ने **'कविप्रिया'** में कहा है—

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि, के भूषण ऋतु सब काल।[3]

इन भेदों के अनन्तर केशव ने इनके उपभेद किए हैं, जैसे नगर वर्णन के अंतर्गत—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, बापी, कूप, तड़ाग।
बार नारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग।[4]

---

१. रामचन्द्रिका, ९-४२
२. वही, १।२
३. कविप्रिया, ७।१
४. वही, ७।४

आदि का वर्णन होना चाहिए । केशव ने 'रामचन्द्रिका' में भूमिश्री अलंकारों का वर्णन करते समय उनका वर्णन भेदोपभेदों सहित किया है । उन्होंने अवध-धाम का वर्णन करते समय किन वस्तुओं पर कवि को विशेष दृष्टि रखनी चाहिए इसका भी संकेत कर दिया है—

सुभ सर शोभैं । मुनि मन लोभैं ।
सरसिज फूले । अलि रस भूले ।
जल चर डोलैं । बहु खग बोलैं ।
बरणि न जाहीं । उर उरझाहीं ।[1]

अयोध्या नगर का वर्णन करते हुए केशव ने ध्वजा, भवन, सरिता तथा वाटिका आदि का वर्णन किया है । 'रामचन्द्रिका' में प्रकृति वर्णन प्रसंग में हम 'रामचन्द्रिका' के प्राकृतिक उपादानों पर विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं, अतएव यहाँ एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

ध्वजा वर्णन—

अति सुन्दर अति साधु । थिर न रहत पल आधु ।
परम तपोमय मानि । दंडधारिणी जानि ।[2]

राज्यश्री भूषण वर्णन के अंतर्गत केशव ने राजा, राजपत्नी, राजकुमार, पुरोहित, दलपति, दूत, मंत्री, मंत्र, पयान, हय, गज, संग्राम, आखेट, जलकेलि, विरह, मान, करुणा, प्रवास, पुर्वानुराग, स्वयंवर तथा सुरति वर्णन को आवश्यक माना है—

राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत ।
मंत्री, मंत्र, प्रयान, हय, गय, संग्राम अभूत ।
आखेटक जलकेलि पुनि, विरह स्वयंवर जानि ।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्री हि बखानि ।[3]

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में तीन राजाओं का वर्णन किया है—दशरथ, रावण तथा राम । तीनों के ही वर्णन में उन्होंने उनके प्रताप, आतंक, प्रसिद्धि, शत्रुनाश, शक्ति तथा बल आदि अनेक गुणों का वर्णन किया है । इनमें सबसे विस्तृत वर्णन राजा राम का है जो महान् राजा होने के साथ ही काव्य के नायक भी हैं अतः राज्यश्री वर्णन का पूर्ण अवसर राम के जीवन में कवि को सरलतापूर्वक मिल जाता है । इस संबंध में कवि ने राजा राम, रानी सीता, राजपुत्र, लवकुश, पुरोहित गुरु वशिष्ठ, अनेक दलपति, हनुमान तथा अंगद आदि दूत, मंत्री मंत्र, हाथी, घोड़े, संग्राम, शृंगार आदि सभी का वर्णन किया है । काव्य के उत्तरार्द्ध में कवि को आखेट, जलकेलि, संयोग आदि का वर्णन करने के अवसर भी प्राप्त हो गए हैं । संग्राम वर्णन में केशव ने जिन बातों को आवश्यक बताया है, वे इस प्रकार हैं—

---

१. रामचन्द्रिका, १।३३
२. वही, १।३८
३. कविप्रिया, ८।१-२

केशव बरणहु युद्ध महं, जोगिनी गण युत रुद्र ।
भूमि भयानक रुधिर मय, सखर, सरित समुद्र।[1]

"रामचन्द्रिका' में केशव ने युद्ध का वर्णन इसी प्रकार किया है—

श्रोणित सलिल, नर, वानर सलिल चर,
गिरि बालिसुत, विष विभीषण डार्यो है।
चँवर पताका बड़ी बाड़वा अनल सम,
रोगरिपु जामवंत 'केशव' विचार्यो है।
बाजि सुरवाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहार्यो है।
सोहत सहित शेष रामचंद्र, केशव से,
जीति कै समर सिंधु सांचहूं संवारे हैं।[2]

जलकेलि वर्णन में—

सर, सरोज, शुभ, शोभ भनि, हिय सो प्रिय हिय झेलि ।
गहिबो गत भूपनन को, जलचर ज्यों जल केलि।[3]

आदि का उल्लेख होना चाहिए। 'रामचन्द्रिका' का जलकेलि वर्णन भी केशव की इस धारणा को पुष्ट कर रहा है—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हंसि हंस वंस,
एक हंसिनि सी विसहार हिये रोहिये ।
भूषण गिरत एक लेत बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति लीन, हीन उपमान टोहिये,
एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात,
जल देवता सी दृग देवता विमोहिये ।
केशोदास आस पास भंवर भवत जल,
केलि में जलजमुखी जल सी सोहिये।[4]

स्वयम्वर वर्णन में केशव ने कहा है कि

शची स्वयम्बर रक्षिणी, मंडल मंच बनाव ।
रूप, पराक्रम, वंश, गुण बरणिय राजा राव।[5]

का वर्णन होना चाहिए। 'रामचन्द्रिका' में सीता स्वयम्वर प्रसंग में केशव ने स्वयम्वर भवन का वर्णन किया है। उन्होंने मंडप के मंच बनाव का वर्णन इस प्रकार किया है—

१. कविप्रिया, ८।३०
२. रा० चं०, ३६।६
३. कविप्रिया, ८।३६
४. रा० चं०, ३१।३७
५. कविप्रिया, ८।४४

शोभित मंचन की अवली गजदंतमय छवि उज्जवल छाई।
ईश मनो बसुधा में सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जोन्हाई।
तामहं केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यौं जनु देवसभा शुभ सीय स्वयम्बर देखन आई।[१]

तत्पश्चात् केशव ने विभिन्न राजाओं के रूप, गुण, वंश, पराक्रम आदि का परिचय सुमति तथा विमति के द्वारा दिया है। इसी प्रकार राज्यश्री के अन्तर्गत केशव ने (आखेट के स्थान पर) चौगान, विरह, प्रवास आदि अन्य वर्णन भी किए हैं।

विशिष्टालंकारों का वर्णन करते हुए केशव ने 'कविप्रिया' में ३७ मुख्य अलंकारों तथा उनके अनेक अवान्तर भेदों का वर्णन किया है। इन अलंकारों की सूची इस प्रकार है—

जानि, स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, अशिष लेष॥
प्रेमा, श्लेष, सभेद है नियम, विरोधा मान।
सूक्ष्म, लेष, निदर्शना, उर्जस्वा पुनि जान॥
रस अर्थान्तरन्यास है, भेद सहित व्यतिरेक।
फेरि अपन्हुति, उक्ति है, वक्रोक्ति सविवेक॥
अन्योकति, व्यधिकरण हैं, सुविशेषोकति भाषि।
फिरि सहोक्ति को कहत हैं, क्रम ही सों अभिलाषि॥
व्याजस्तुति निन्दा कहैं, पुनि निन्दा स्तुति वन्त।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनो सब सन्त॥
स समाहित जु सुसिद्ध पुनि औ प्रसिद्ध विपरीत।
रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत॥
अलंकार परवृत कहा उपमा जमक सुचित्र।
भाषा इतने भूषणनि भूषित कीजै मित्र॥[२]

उपर्युक्त अलंकारों में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों हा आ जाते हैं। 'रामचन्द्रिका' में शब्दालंकारों पर हम भाषा का विवेचन करते समय विचार कर चुके हैं। अतः यहाँ हम केवल केशव की अर्थालंकारों सम्बन्धी मान्यताओं को 'रामचन्द्रिका' में देखेगे।

केशव अलंकारी कवि हैं अवश्य परन्तु उन्हें अलंकारों का अनुचित आग्रह नहीं है। वह जहाँ कविता कामिनी के सौंदर्य वर्धन के लिए अलंकारों का होना

---

१. रामचन्द्रिका, ३।१५
२. कविप्रिया, ६।१.७

आवश्यक मानते हैं वहाँ सहज स्वाभाविक सौंदर्य के लिए इन्हें अनावश्यक भी समझते हैं—

गति को भारू महाउर आंगि अंग को भारु।
केशव नख सिख शोभिजै सोभाई सिगारु।[1]

केशव के पूर्व संस्कृत साहित्य अथवा हिन्दी साहित्य में जितने भी अलंकारों का प्रयोग हो चुका था केशव ने 'रामचन्द्रिका' के पाठक को प्रायः सभी से परिचित कराया है। केशव की इस रचना में हमें सबसे अधिक अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा वर्णित अलंकारों के अतिरिक्त कतिपय मौलिक अलंकारों जैसे प्रेम, सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा प्रहेलिका आदि का भी प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा कवि का विशेष प्रिय अलंकार प्रतीत होता है क्योंकि अनेक स्थलों पर केशव ने विविध कल्पनाओं द्वारा उत्प्रेक्षालंकार के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। राम लक्ष्मण से मिलने जाती हुई आतुर माताओं के लिए सद्यःप्रसूता सुरभि की उत्प्रेक्षा कर केशव ने इस स्थल को अत्यन्त मर्मस्पर्शी बना दिया है—

मातु सबै मिलिबै कहं आई। ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई।
लक्ष्मण स्यों उठि के रघुराई। पायन जाय परे दोउ भाई।[2]

परन्तु जहाँ इन उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कवि ने धाराप्रवाह के साथ किया है वहाँ भाव लुप्त हो गया है तथा केवल कल्पना सौंदर्य अवशेष रह गया है। ऐसे स्थलों पर भाव गौण एवं अलंकार प्रधान हो गया है, जैसे सीता की अग्नि परीक्षा के अवसर पर कवि राम तथा सीता के मानसिक उद्वेलन की अवहेलना कर अनेक उत्प्रेक्षाओं की लड़ी सी बाँध देता है। निस्संदेह ऐसे स्थलों पर कवि के भाषा पर पूर्णाधिकार तथा उसकी उर्वर कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है परन्तु इससे पाठक को काव्य की भाव-भूमि से अवश्य उतनी देर के लिए हटकर कल्पना-लोक में विचरण करना पड़ता है जिससे कथानक का सूत्र विशृंखल हो जाता है—

गिरापूर में है पयोदेवता सी किधौं। कंज की मंजु शोभा प्रकासी।
किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै। किधौं पद्म के कोष पद्मा विमोहै।[3]
है मणि-दर्पण में प्रतिबिम्ब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप-तेजन में मनु सिद्ध विनीता।
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनन्दकन्द हुतासन मध्य सबासन सीता।[4]

---

१. रामचन्द्रिका, ६।४४
२. वही, १०।२८
३. वही, २०।६
४. वही, २०।११

उपर्युक्त छंदों में केशव ने अग्नि के मध्य विराजमान सीता के लिए अनेक अप्रस्तुतों की कल्पना की है। ये कल्पनाएँ निश्चय ही सुन्दर तथा केशव की अपूर्व प्रतिभा की परिचायक हैं परन्तु इनसे कथा-क्रम में व्याघात अवश्य पड़ता है।

उत्प्रेक्षा के पश्चात् केशव का प्रिय अलंकार है श्लेष। संस्कृत साहित्य में श्लेषालंकार का बाहुल्य है, कतिपय ग्रंथ तो आद्योपांत ही श्लेषालंकार में लिखे गए हैं जैसे 'राघव पांडवीय' महाकाव्य। बाण तथा भट्टि ने भी इसका विपुल प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम केशव ने इसका प्रयोग इतनी बहुलता तथा सफलतापूर्वक किया है। उन्होंने एक साथ पाँच अर्थ तक श्लेषमय छंद लिखा है। केशव इस क्षेत्र में अनुपमेय हैं, उनकी समता आज पर्यन्त अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। केशव ने श्लेष के दो भेद किए हैं—अभिन्न पद तथा भिन्न पद। अभिन्न पद श्लेष वहाँ होता है जहाँ पद को अभिन्न रखकर ही उसका अर्थ किया जाता है। जैसे—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर औ तिलकावलि रूरी।[1]

अभिन्न पद श्लेष केशव ने वहाँ माना है जहाँ एक पद को काटकर अथवा उसके भिन्न-भिन्न अर्थ करके अर्थ किया जाए। इसे उपमा श्लेष भी कहते हैं क्योंकि ऐसे श्लेष प्रायः उपमा को पुष्ट करने के लिए लिखे जाते हैं—

पदही में पद काटिए ताहि भिन्न पद जानि।
भिन्न अर्थ पुनि पदन के, उपमा श्लेष बखानि।[2]

जैसे

ति न नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलज हार शोभित न जहं प्रगट पयोधर पीन।[3]

में हंसक को हंस तथा क दो पदों में बाँटकर श्लिष्ट अर्थ करने होते हैं।

केशव ने श्लेष का एक उपभेद नियम श्लेष भी किया है। इसमें शब्दों के प्रचलित अर्थ का नियमन करके एक विशेष अर्थ में बद्ध कर दिया जाता है, इसी से इसे नियम श्लेष कहते हैं। अर्वाचीन आचार्यों ने इसी को परिसंख्या अलंकार की संज्ञा दी है, उदाहरणार्थ—

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।

---

१. रामचन्द्रिका, ११।२१
२. कविप्रिया, ११।३६
३. रामचन्द्रिका, ५।१६

दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में।[1]

विरोधाभास अलंकार से भी कवि को विशेष ममता प्रतीत होती है। 'रामचन्द्रिका' में अनेक स्थलों पर विरोधाभास अलंकार का प्रयोग हुआ है, जैसे राम का नखशिख वर्णन करते हुए केशव कहते हैं—

जदपि भ्रकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन को निरखि शुद्ध गति होति।[2]

केशव ने रस वर्णन को रसवत् अलंकार माना है। उनके अनुसार—

रसमय होय सु जानिये, रसवत केशवदास।[3]

जहाँ जिस रस का वर्णन होता है वहाँ उसी का रसवत् अलंकार हो जाता है। इस प्रकार नव रसों में रसवत् अलंकार की स्थिति होती है।

वीर रसवत्—

जेहि शर मधु-मद मरदि महा मुर मर्दन कीनो।
मार्यो कर्कस नरक शंख हति शंख हुलीनो॥
निष्कंटक सुर कटक कर्यौ कैटभ वपु खंड्यो।
खरदूषण त्रिशिरा कबंध तरुखंड विहंड्यो॥
कुंभकरण जेहि संहर्यो, पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं।[4]

यह छंद उस समय का है जब संग्राम क्षेत्र में लक्ष्मण जैसे वीर शिरोमणि को भी हतोत्साह देख राम सेना को उत्साहित करना चाहते हैं। इससे राम का उत्साह व्यंजित होता है तथा उत्साह स्थायी भाव होने से यह वीर रस का उदाहरण है परन्तु केशव के अनुसार इसमें वीर रसवत् अलंकार है।

रौद्र रसवत्—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौ अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देऊं इन्द्र अब।
विद्याधरन अविध करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाए जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥[5]

---

१. रा० चं०, ११४८
२. वही, ६।४८
३. कविप्रिया ११।५३
४. राम चं०, १६।५१
५. वही, १७।४६

लक्ष्मण के ब्रह्मशक्ति से घायल होने पर राम को शोक होता है परन्तु जब उन्हें ज्ञात होता है कि सूर्योदय के पूर्व यदि लक्ष्मण को औषधि न मिल सकी तो लक्ष्मण सदैव के लिए उन्हें छोड़कर मृत्युलोक को प्रस्थान कर जायेंगे तो उन्हें देवताओं पर कोप हो आता है। इसी से कोप स्थायी भाव होने के कारण यहाँ रौद्र रस है परन्तु केशव ने इसे रौद्र रसवत् अलंकार के अंतर्गत रखा है।

भयानक रसवत्—

> रामहिं चोरन दीन्हीं तिया जेहि को दुख तो तप लीलि लियो है।
> रामहि मारन दीन्हों सहोदर रामहि आवन जान दियो है।
> देह धरी तुमही लगि, आजु लौं रामहिं के पिय ज्याये जियो हैं।
> दूरि करि द्विजता द्विजदेव हरे ई हरे आततार्इ कियो है।[1]

इसमें मन्दोदरी राम की शक्ति से भयभीत तथा रावण की विजय के प्रति शंकित है। भय स्थायी भाव है अतः भयानक रस है तथा भयानक रसवत् अलंकार है। इसी प्रकार अन्य रसों के वर्णन में उसी के रसवत् अलंकारों की स्थिति होगी।[2]

केशव ने 'कविप्रिया' में अलंकारों के जितने भेदोपभेद दिये हैं 'रामचन्द्रिका' में प्रायः सभी के उदाहरण मिल जाते हैं। अलंकार सम्बन्धी अपनी सभी मान्यताओं का केशव ने 'रामचन्द्रिका' में सफल तथा सम्यक् प्रतिपादन किया है। वे सामान्य अलंकारों के वर्गीकरण में प्रमुख रूप से 'अलंकार शेखर' तथा 'काव्य कल्पनावृत्ति' से प्रभावित हैं तथा विशिष्ट अलंकारों के विभाजन में 'काव्यादर्श' तथा 'अलंकारसूत्र' से। कतिपय अलंकारों के भेद तथा उनके लक्षण केशव के मौलिक भी हैं जैसे प्रेम, सुसिद्ध, प्रसिद्ध प्रहेलिका, गणना तथा आशिषादि अलंकार। इनका वर्णन संस्कृत के किसी लक्षण ग्रन्थ में नहीं मिलता। केशव ने यद्यपि इन अलंकारों का विवेचन अत्यंत सूक्ष्मता से करने का प्रयत्न किया है परन्तु कहीं-कहीं उनके लक्षण अस्पष्ट हो गए हैं तथा विभिन्न अलंकारों के लक्षण परस्पर मिल गये हैं, जैसे पर्यायोक्ति तथा समाहित के लक्षण एवं स्वभावोक्ति तथा उक्त अलंकार के लक्षण तथापि हिंदी के क्षेत्र में केशव का इतने विशाल स्तर पर अलंकारों का विवेचन करने का प्रथम प्रयास है तथा इसमें वे पूर्णतया सफल हुए हैं।

'रसिकप्रिया' में नवरसों का वर्णन करते हुए केशव ने शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, तथा शांत-रसों का उल्लेख किया है। शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दो भेद करके केशव ने उनके 'प्रच्छन्न' तथा 'प्रकाश' दो उपभेद भी किये हैं। केशव ने शृंगार-रस को सब रसों का नायक माना है, इसी से इसका वर्णन 'रसिकप्रिया' में सबसे अधिक विस्तारपूर्वक किया गया है—

---

१. रामचन्द्रिका, १८।१६

२. विशेष उदाहरणों के लिए देखिए रामचन्द्रिका का 'अंगीरस'

सबको केशवदास हरि, नायक है सिंगार।[1]

'रामचन्द्रिका' में यद्यपि हमें अंगीरस के रूप में शृंगार रस का निरूपण नहीं मिलता परंतु उसके अधिकांश पात्रों के जीवन में शृंगार रस के उदाहरण मिल जाते हैं। केशव ने 'रामचंद्रिका' में शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का विस्तृत वर्णन किया है जिसका विवेचन हम 'रामचंद्रिका के अंगीरस' के अंतर्गत कर चुके हैं, यहाँ हम उसके प्रकाश तथा प्रच्छन्न उपभेदों के उदाहरण देखेंगे।

प्रच्छन्न संयोग तथा वियोग का लक्षण केशव ने इस प्रकार दिया है—

सो प्रच्छन्न संयोग अरु कहें वियोग प्रमान।
जानैं पडि, प्रिया कि सखि होहिजु तिनहिं समान॥[2]

राम सीता से मिलने के लिए आतुर हैं यह या तो राम स्वयं जानते हैं अथवा उनके अंतरंग मित्र। प्रीति नामक सीता की सखी राम की इस इच्छा का अनुमान तुरंत लगा लेती है तथा उन्हें हाथ पकड़कर सीता के प्रासाद तक पहुँचा देती है—

कोटि भाँति संगीत सुनि केशव श्री रघुनाथ।
सीता जू के घर गये, गहे प्रीति को हाथ॥[3]

यहाँ राम-सीता के परस्पर प्रेम की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति न होने के कारण प्रच्छन्न संयोग शृंगार होगा।

सीता के विरह में राम अत्यंत शोकाकुल हैं। उनके इस शोक का किंचित् अनुमान राम के अतिरिक्त केवल उनके अंतरंग सखा लगा सकते हैं। हनुमान राम की विरह-वेदना से भली-भाँति परिचित हैं। वह सीता का पूर्ण समाचार जानने को उत्सुक राम के अधैर्य का अनुमान सहज ही लगा लेते हैं, अतः वह बिना राम के पूछे ही सीता की विरहावस्था का वर्णन करते हैं—

कछु सीय दशा कहि मोहिं न आवै। चर का जड़ बात सुने दुख पावै।
सर सो प्रति बासर बासर लागै। तन घाव नहीं मन प्रानन खांगै॥[4]

अप्रत्यक्ष रूप से राम-सीता की विरहावस्था का वर्णन होने के कारण यहाँ प्रच्छन्न वियोग शृंगार है।

प्रकाश संयोग तथा वियोग का लक्षण देते हुए केशव ने कहा है—

सो प्रकास-संजोग अरु, कहैं प्रकास-बियोग।
अपने अपने चित्त में, जाने सिगरे लोग॥[5]

प्रकाश संयोग तथा वियोग वह है जिसे अपने-अपने मन में सभी जानते हैं।

---

१. रसिकप्रिया, १-१६
२. वही, १-२४
३. राम० चं०, ३०-१०
४. वही, १४-२७
५. रसिकप्रिया, १-२१

प्रकाश संयोग शृंगार—

कहुं बाग तडाग तरंगिनि तीर तमाल की छांह विलोकि भली।
घटिका यह बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहां कुस कांस थली ॥[१]
मग को श्रम श्रीपति दूर करें सिय को शुभ बालक अंचल सों।
श्रम तेऊ हरें तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों।

प्रकाश वियोग शृंगार—

हिमांशु सूर सी लगै सो बात बज्र सी बहै।
दिशा जगैं कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै।
बिसेस कालराति सों कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये।[२]

'रसिकप्रिया' के द्वितीय प्रकाश में केशव ने काव्य-नायक के लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

अभिमानी त्यागी तरुन, कोक-कलानि प्रबीन।
भव्य छमी, सुन्दर धनी, सुचि-रुचि सदा कुलीन।[३]

राम 'रामचंद्रिका' के नायक हैं। उनमें ये सभी गुण पूर्णरूपेण पाये जाते हैं। वाल्मीकि ने भी राम के चरित्र में प्रायः इन सभी गुणों का विकास दिखाया है परन्तु मानस में तुलसी ने भक्त कवि की मर्यादा से आबद्ध होने के कारण उनके 'कोक-कलानि प्रवीन' गुण को छोड़ दिया है। केशव ने 'रामचंद्रिका' के राम में वाल्मीकि के राम के गुणों का विकास दिखाते हुए उनके इस रूप का भी स्पष्ट संकेत किया है—

यक दिन रघुनायक, सीय सहायक, रतिनायक अनुहारि।[४]

उनकी सुन्दर छवि देखते ही शूर्पणखा मोहित हो प्रणय का निवेदन करने लगती है। 'रामचंद्रिका' में चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत हम 'रामचंद्रिका' के नायक के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन कर चुके हैं अतः यहाँ उनके जीवन से दो-एक उदाहरण ही पर्याप्त होंगे।

नायक के चार विभागों—अनुकूल, दक्ष, शठ तथा धृष्ट में से राम अनुकूल नायक के अन्तर्गत आते हैं। उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त केशव ने अनुकूल नायक में एक पत्नीव्रत की ओर विशेष ध्यान दिया है। उनके अनुसार—

प्रीति करै निज नारि सों, पर-नारी-प्रतिकूल।
'केसव' मन-वच-कर्म करि, सो कहियै अनुकूल।[५]

---

१. रामचन्द्रिका, ६.४४
२. वही, १२-४२
३. रसिक प्रिया, २-१
४. रामचन्द्रिका, ११-३२
५. रसिकप्रिया, २-३

अनुकूल नायक मन, वचन, कर्म से अपनी ही पत्नी से प्रेम करता है। 'रामचंद्रिका' में केशव ने इस ओर विशेष दृष्टि रखी है। शूर्पणखा के अनेक प्रलोभन देने पर भी राम यही कहते हैं—

तव यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जान सबाम।[१]

कश्यप ऋषि के विश्वास के अनुसार धर्म, कर्म तभी सफल होते हैं जब वह अपनी स्त्री के साथ किये जाते हैं—

धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ॥[२]

तथापि वह राम के एक पत्नीव्रत को जानकर उन्हें द्वितीय विवाह का परामर्श नहीं देते बल्कि सीता की एक स्वर्ण प्रतिमा बनवाकर इस कार्य को सम्पन्न करवाते हैं।

केशवदास ने 'रसिकप्रिका' में भाव के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, तथा हावों का वर्णन किया है। केशव के अनुसार भाव के पाँच प्रकार हैं—स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी भाव। विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन। आलम्बन के स्थान में केशव ने युवा दम्पति, रूप, जाति, लक्षणयुक्त सखियाँ, कोयल, वसंत ऋतु, पुष्पित कुसुम, भ्रमर, उपवन, सरोवर, कमल, चातक, भ्रमर-गुंजार, विद्युत्, जलज, मेघ, आकाश, सुन्दर शैया, दीपक, सुगंधित कक्ष, ताम्बूल चर्वण, सुन्दर वेशभूषा, नृत्य, वीणादि वादन की गणना की है।[3]

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में प्रायः इन सबका वर्णन किया है। राम सीता के जीवन में जब वनवास के चौदह वर्षों तथा रावण की मृत्यु के अनन्तर वसंत ऋतु आती है उस समय प्रकृति भी वासन्ती परिधान धारण कर लेती है। मादक ऋतु को आया जान राम भी सीता सहित उसका आनन्द उपभोग करते हैं। राम रंगमहल में विराजमान हैं, अनेक षोड़शी कन्याएँ सुसज्जित होकर नृत्य-गानादि से उनका मनोरंजन करती तथा वीणा वादन कर अनेक रागों में मधुर गायन करती हैं—

आई बनि बाला, गुण-गण-माला, बुधिबल रूपन बाढ़ी।
शुभ जाति चित्रिनी चित्रगेह ते, निकसि भई जनु ठाढ़ी॥
मानो गुनसंगनि, स्यों प्रतिअंगनि, रूपक-रूप विराजैं।
बीणनि बजावैं, अद्भुत गावैं, गिरा रागिनी लाजैं॥[४]

---

१. रामचन्द्रिका, ११-३३
२. वही, ३५-३
३. रसिकप्रिया, ६-६
४. रामचन्द्रिका, ३०।२

बहुत काल तक विविध आलापों को सुनकर राम नृत्य देखने में तल्लीन होते हैं—

सुभ गान विविध आलाप कालि।
मुखचालि, चारु अरु शब्दचालि॥
बहु उड्डप, त्रियगपति, पति, अंडाल।
अरु लाग, धाउ, राउप रंगाल॥
उलथा टेकी, आलम, सर्दिड।
पदपलटि, हुरमयी, निशंक, चिंड॥
असु तियन भ्रमति लखि सुमति धीर।
भ्रमि सीखत है बहुधा समीर॥[१]

कोटि भाँति संगीत सुन तथा नृत्य देख राम सीता के प्रासाद में जाते हैं। यहाँ कवि ने सीता के रूप का वर्णन कर शुभ सेज का वर्णन किया है—

दरसत ही नैनन रुचि बनै। बसन बिछाये सब सुख सनै।
अति सुचि सोहैं कबहुँ न सुन्यो। जनु तनु लै कै ससि कर चुन्यो।[२]

प्रातःकाल होने पर केशव ने अनेक पशु पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन किया है। भ्रमर निर्मल कमलों को त्याग मदयुक्त हाथी के गण्डस्थल पर सुशोभित होने लगे तथा चकई मुदित मन होकर चक्रवाक के निकट चली गई—

अमल कमल तजि अमोल। मधुप लोल टोल टोल॥

× × ×

चक्रावक निकट गई। चकई मन मुदित भई॥[३]

सारी, शुक, केकी, कोकिल, मराल, पारावत आदि पक्षी काम का पाठ पढ़ाते से प्रतीत होते हैं। चकोर निर्निमेष दृष्टि से जैसे राम की ओर देख रहा है—

सारो शुक शुभ मराल, केकी, कोकिल रसाल,
बोलत कल पारावत, भूरि भेद गुनिये।
मनहु मदन पंडित ऋषि, शिष्य गुणन मंडित करि,
अपनी गुदरैनि देन, पठये प्रभु सुनिये॥
रामचन्द चन्द ओर, मानहु चितवत चकोर।
कुवलय, जल जलधि जोर, चोप चित्त बाढ़े।[४]

इसी प्रसंग में केशव ने बसंत ऋतु तथा उपवन एवं उसके फल-फूलों का वर्णन किया है। बसंत ऋतु में रसाल वृक्षों में नवीन बौर मानो काम के हेतु हों—

---

१. रा० चं०, ३०-४-५
२. वही, ३०-१३
३. वही, ३०-१९
४. वही, ३०-२१

बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाय ।
देखी बसंत ऋतु सुन्दर मोददाय ।
बौरे रसाल कुल कोमल केलि काल ।
मानो अनन्द-ध्वज राजत श्री विशाल ।[१]

बसंत ऋतु को देखकर उपवनों में लवंग तथा लवली लताएँ फूलने लगती हैं । भ्रमर उन पर आत्मविस्मृत हो घूमते हैं, हंस, शुक, कोयल, मोर मानो युद्ध का आवाहन कर रहे हों—

फूली लवंग लवली लतिका विलोल ।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल ।।
बोलैं सुहंस शुक कोकिल केकिराज ।
मानो बसन्त भट बोलत युद्ध काज ।।[२]

बीच में केशव ने युगल दम्पति के रूप का वर्णन भी किया है—

किधौं रति कीरति-बेलि निकुंज । बसै गुण पक्षिन को जहं पुंज ।
किधौं सरसीरुह ऊपर हंस । किधौं उदयाचल ऊपर हंस ।।[३]

तदनन्तर राम सीता ने श्लिष्ट पदों में चन्द्रमा का वर्णन किया है । यह वर्णन अपेक्षाकृत विस्तृत है तथा कवि की उत्प्रेक्षा शक्ति का परिचायक है । इस वर्णन पर अधिकांश श्री हर्ष के नैषधचरित की छाप है—

चारु चंद्रिका सिंधु में शीतल स्वच्छ सतेज ।
मनो शेष मय शोभिजै हरिणाधिष्ठित सेज ।।[४]

'रामचन्द्रिका' के इकत्तीसवें प्रकाश में केशव ने सुजाति तथा शुभ लक्षणों से युक्त सीता की दासियों का नखशिखवर्ण न किया है । 'रसिक प्रिया' के बारहवें प्रकाश में केशव ने सखी के अन्तर्गत धाई, जनी, नायन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, तमोलिन, चुड़िहारिन, सुनारिन, रामजनी, संन्यासिनी, पटुवे की स्त्री आदि की गणना की है ।[५] वे रूप सौन्दर्य में सदैव नायिका से न्यून होती हैं तथा उनका कार्य नायिका को शिक्षा देना, नायक से मिलाना, उसका श्रृंगार करना आदि होता है । केशव ने भक्त कवि की मर्यादा के कारण सीता का नखशिख वर्णन नहीं किया है परन्तु उनके सौन्दर्य को अधिक उत्कर्ष प्रदान करने के लिए आलम्बन रूप में उनकी दासियों का वर्णन किया है । केशव द्वारा वर्णित यह नखशिख सर्वत्र मर्यादित है तथा इससे उनकी

---

१. रा० च०, ३०-३२
२. वही, ३०-३३
३. वही, ३०-३६
४. वही, ३०-४५
५. रसिकप्रिया, १२-१-२

पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। अलक वर्णन करते हुए कवि की उत्प्रेक्षा है—

लटकै अलिक अलक चीकनी। सूक्षम अमल चिलकसों सनी।
नकमोती दीपक दुति जानि। पाटो रजनी ही उनमानि।।
ज्योति बढ़ावत दशा उनारि। मानहु स्यामल सींक पसारि।
जनु कबिहित रबि रथते छोरि। स्यामपाट की डारी डोरी।।[1]

सींक से दीपक वर्तिका को उकसाकर उसकी ज्योति बढ़ाने की उत्प्रेक्षा अत्यंत सुन्दर है परन्तु इस कल्पना की ओर बहुत कम कवियों की दृष्टि गई है।

बत्तीसवें प्रकाश में केशव ने उपवन तथा बहुविध जलकेलियों का वर्णन कया है। सीता के अनुरोध पर राम उन्हें बाग दिखाने ले जाते हैं—

रामसों रामप्रिया कह्यो यों हंसि। बाग दिखावहु लोकन केससि।।[2]

बाग वर्णन में केशव ने मोर, कोकिल, फल-फूल, वृक्ष, भ्रमर, शुक सारिका सभी आलंबनों का वर्णन किया है। इस प्रसंग में उन्होंने कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता तथा जलाशय का वर्णन भी किया है। तदनन्तर कवि ने राम की जल-केलि का वर्णन किया है। केशव ने राम की जलकेलि का केवल संकेत किया है उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है—

क्रीड़ा सरवर में नृपति, कीन्ही बहु विधि केलि।
निकसे तरुणि समेत जनु सूरज किरण सकेलि।।[3]

केशव के ये वर्णन अधिकांश परम्परा से अनुमोदित हैं अन्यथा राम कथा का साथ इनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। केशव की महाकाव्य तथा छंद सम्बन्धी मान्यताओं का 'रामचन्द्रिका' में निरूपण हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं।

'रामचन्द्रिका' के अवलोकन से ज्ञात होता है कि केशव ने काव्य के जिन विभिन्न अंगों का शास्त्रीय विवेचन 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' में किया है उसका यथासंभव व्यावहारिक रूप हमें 'रामचन्द्रिका' में मिल जाता है। 'रामचन्द्रिका' के प्रबन्धकाव्यत्व का विवेचन करते समय हम कह चुके हैं कि यह अलंकृत तथा पौराणिक शैली पर लिखा गया महाकाव्य है अतः केशव 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध तथा भक्ति के बंधनों से बँधे हुए हैं। अतः नायक, नायिकाओं, रस, अलंकार सम्बन्धी उनकी सम्पूर्ण मान्यताओं का प्रतिपादन 'रामचन्द्रिका' में नहीं हो पाया है। तथापि इन बंधनों में आवद्ध रहकर अपने विचारों का जितना प्रतिपादन वह इस काव्य के द्वारा कर सकते थे, किया है। केशव के पूर्व भी काव्य का शास्त्रीय अध्ययन भाषा ग्रंथों में हो चुका था परन्तु वह इतना वैज्ञानिक तथा स्पष्ट नहीं था। केशव ने सर्वप्रथम इसने

---

१. रा० च०, ३१।१८-१९
२. वही, ३२।२
३. वही, ३२।३८

प्रौढ़ ढंग से 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' में काव्यांगों के लक्षण तथा 'रामचन्द्रिका' में उनका विकास दिखाने का प्रयत्न किया। संस्कृत काव्यों के ढंग पर उन्होंने 'रामचन्द्रिका' में एक प्रशंसनीय प्रयास किया तथा जिस रीति शास्त्र की प्रणाली वह चलाना चाहते थे उसमें भी पूर्णतया सफल हुए परन्तु इससे परवर्ती कवियों पर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। केशव के अनुकरण पर परवर्ती कवि भावाभिव्यंजन की अनेक नवीन शैलियों की उद्भावना करते रहे तथा उनकी काव्य-धारा के रूढ़ि के बंधनों से बँध जाने के कारण उसका मुक्त विकास अवरुद्ध हो गया। कवि गण सरस काव्यों की अपेक्षा विविध अलंकारों तथा छंदों से युक्त काव्य रचना की ओर अग्रसर होने लगे। इस प्रकार केशव के पश्चात् भावपूर्ण काव्यों के स्थान पर कलापूर्ण काव्यों की रचना होने लगी परन्तु फिर भी संस्कृत काव्य शास्त्रों से अपरिचित तथा नवोदित कवियों के लिए 'रामचन्द्रिका' प्रकाश-स्तम्भ के समान सिद्ध हुई।

महाकाव्य के उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त उसकी बाह्य रूढ़ियों—काव्यारंभ में मंगलाचरण, कवि का दीनता प्रकाशन, कविवंश परिचय, ग्रंथ रचना-काल एवं उसका कारण, शैली में अलंकारों का आरोपण आदि का भी 'रामचन्द्रिका' में यथोचित पालन हुआ है।

इस प्रकार दण्डी, रुद्रट, विश्वनाथ आदि साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य के लिए आवश्यक जिन तत्त्वों का विधान किया था, 'रामचन्द्रिका' में उन सबका समाहार पाया जाता है। केशवदास यद्यपि दण्डी और विश्वनाथ के विचारों से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं परन्तु उन्होंने अन्य आचार्यों द्वारा बताई गई महाकाव्य सम्बन्धी विशेषताओं की भी उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने जिस शास्त्रीय पद्धति पर अपने महाकाव्य का निर्माण किया है वह हिन्दी क्षेत्र में एक मौलिक प्रयास है और उनका पूर्ण अनुकरण करने का साहस उनके पश्चात् सैकड़ों वर्षों तक किसी अन्य भाषा कवि को नहीं हो सका।

पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि विकास के अनुसार महाकाव्य का वर्गीकरण शास्त्रीय, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि वर्गों में किया जा सकता है। 'रामचन्द्रिका' महाकाव्यों के विकास का कौन-सा सोपान है और वह महाकाव्यों की किस कोटि के अन्तर्गत आता है अब हम इस पर विचार करेंगे।

जिस समय केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की उस समय भाषा की दृष्टि से अवधी और व्रजभाषा दोनों समृद्ध हो चुकी थीं। जायसी, सूर और तुलसी ने भाषा को विकास की चरमावस्था पर पहुँचा दिया था। केशव के सम्मुख संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की विशाल विचार राशि बिखरी पड़ी थी। इन तीनों भाषाओं के साहित्य में विभिन्न कल्पनाओं का अथाह सागर था, केशव को इनके लिए कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं थी। केशव स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे और उसी की भाव निधि को हिन्दी भाषी जनता के समक्ष वह लुटाना चाहते थे। इसलिए

उन्होंने 'रामचन्द्रिका' के रूप में एक ऐसे महाकाव्य का प्रयोग किया जिसमें महाकाव्य की विशेषताओं के साथ संस्कृत साहित्य का भी बहुमुखी रूप हिन्दी पाठक के समक्ष आ सके।

केशव इन्द्रजीत के दरबारी कवि थे अतः उनका सम्बन्ध केवल समाज के उच्च वर्ग से था। वह समृद्ध परिवार में लालित-पालित हुए थे अतः जीवन के संघर्ष से मुक्त थे। एक ओर वह तलवार के धनी थे तो दूसरी ओर बात के भी धनी थे। राजपरिवार तथा राजकीय अनेक मतभेदों को उन्हें अपने वाक्चातुर्य से सुलझाना पड़ता था। इन्हीं सब कारणों से वह संस्कृत के उस साहित्य से अधिक प्रभावित थे जिसका जन्म राजदरबारों के मध्य हुआ था। इस प्रकार की कृतियों में कथानक का महत्त्व गौण और वर्णनों का प्रधान हुआ करता था।

'रामचन्द्रिका' में शास्त्रीय महाकाव्यों के अनेक लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्रीय महाकाव्यों के अन्तर्गत भी उसमें रीतिबद्ध काव्यों की ओर अधिक झुकाव है। 'रामचन्द्रिका' राम की यशोगाथा है परन्तु उसमें कथानक की ओर कवि की दृष्टि बहुत कम है। अधिकांश स्थलों पर यदि पाठक 'वाल्मीकि रामायण' के कथानक से अपरिचित हो तो प्रसंग को पूर्णतया समझना भी कठिन हो जाता है। इसी प्रकार रघुवंश, भट्टिकाव्य आदि रामकाव्यों में कथानक नहीं के बराबर है। प्रत्येक छंद एक पृथक् हीरक खण्ड है जिसको एक सूत्र में पिरोकर पूरा हार बनता है। अन्यथा उनका सौन्दर्य स्वतन्त्र रूप से भी परखा जा सकता है। 'कादम्बरी' के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है "साधारणतः लोग घटना का वर्णन कर कहानी कहते हैं किन्तु वाण भट्ट ने एक के बाद एक चित्र सजाकर कहानी कही है। इसीलिए उनकी कहानी गतिशील नहीं है। वह वर्णच्छटा से अंकित है। एक-एक चित्र के चारों ओर प्रचुर कारुकार्य विशिष्ट बहु विस्तृत भाषा के स्वर्ण निर्मित फ्रेम है। फ्रेम समेत उन चित्रों के सौन्दर्य से जो वंचित है वह अभागा है।[1] कथानक की दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' संस्कृत के उन काव्यों के सदृश है जिनमें कथानक और वर्णन का क्रम समानान्तर रूप से चलता है उसमें कथानक का अस्तित्व लुप्तप्राय नहीं है।

'रामचन्द्रिका' के वर्णनों में केशव पर मुख्य रूप से वाण और श्रीहर्ष का प्रभाव पड़ा है। वाण की कादम्बरी में श्लेष कौशल और हर्ष के 'नैषध चरित' में उत्प्रेक्षा योजना दर्शनीय है। केशव ने इस दृष्टि से इन दोनों महाकवियों से प्रेरणा ली है, अतएव 'रामचन्द्रिका' में श्लेष तथा उत्प्रेक्षाओं का अद्भुत कौशल दिखाई पड़ता है। मूल कथानक से हटकर यह कवि ऐसे अवसरों पर लम्बे-लम्बे वर्णन करने लगते हैं। पम्पा सरोवर का वर्णन करते समय वाण ने उत्प्रेक्षाओं की लड़ियाँ सजा दी हैं।[2] हर्ष ने 'नैषध चरित' में चन्द्रोदय का वर्णन किया है परन्तु कल्पना-प्राचुर्य से

---

१. कादम्बरी चित्र : अनुवादक रूपनारायण पांडेय, पृ० ४०

२. कादम्बरी कथामुख, पृ० ६४-६५, चन्द्रकला विद्योतिनी सरिता

युक्त उत्प्रेक्षाओं की सूक्ति माला गूँथ दी है।[1] भट्टि ने आरम्भ में ही अयोध्या का विस्तृत वर्णन किया है। इसी प्रकार केशव ने भी पंचवटी का श्लिष्ट वर्णन किया है। आरम्भ में अयोध्या का विस्तृत वर्णन तथा चन्द्रोदय, ऋतु वर्णन, अग्नि अंक में सीता आदि के वर्णन अनेक कल्पनाओं से समन्वित उत्प्रेक्षाओं के सहारे किए हैं। उनमें भावों की अपेक्षा कवि का विशाल ज्ञान तथा कल्पना का अतिरेक ही अधिक व्यंजित है। केशव ने संस्कृत में जो अलंकार अथवा कल्पना जहाँ रुचिकर प्रतीत हुई तुरन्त उसे स्वीकार कर लिया। इसीलिए 'रामचन्द्रिका' में 'रघुवंश', 'वासवदत्ता', 'नैषध चरित', 'नल चम्पू' आदि की अनेक उक्तियाँ मिल जाती हैं, 'रामचन्द्रिका' में विभिन्न अलंकारों का भी सुन्दर समन्वय है।

अलंकृत महाकाव्यों के सम्बन्ध में हम कह चुके हैं कि उनमें पात्रों की शारीरिक शक्ति का स्थान बुद्धि बल को मिल जाता है। केशव को भी अपने पात्रों में बुद्धि बल अत्यन्त प्रिय है। 'रामचन्द्रिका' का प्रत्येक पात्र वाक्कुशल है इसीलिए उसके संवाद अत्यन्त सफल हैं। राम, परशुराम, रावण, अंगद और लवकुश जैसे वीर युद्धक्षेत्र में शारीरिक शक्ति प्रदर्शन की अपेक्षा बौद्धिक युद्ध करके ही विजय प्राप्त करते हैं।

अलंकृत काव्यों के पूर्व विकसनशील महाकाव्यों की रचना कवि व्यक्तिगत सुख के लिए किया करते थे परन्तु अलंकृत काव्यों में समाज और राष्ट्र का हित प्रधान हो गया। केशव को किसी व्यक्तिगत सुख की आकांक्षा नहीं थी। वह समाज की विकृतियों को दूर करना और राष्ट्र का हितैषी राजा चाहते थे जो निःस्वार्थ और निर्लिप्त रहकर प्रजा की सेवा कर सके। जिसके राज्य में निरंकुशता का साम्राज्य न होकर प्रजा को कुछ कहने का अधिकार हो। इसी राम राज्य स्थापना की ओर 'रामचन्द्रिका' की समस्त घटनाओं का प्रवाह है।

अलंकृत काव्यों में प्रेम का विविधरूपेण चित्रण होने के कारण कवियों ने पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य की ओर अधिकाधिक उन्मुख होना आरम्भ कर दिया था। केशव ने मर्यादा निर्वाह के कारण 'रामचन्द्रिका' में सीता का नखशिख तो नहीं परन्तु उसे उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए सीता की दासियों का नखशिख वर्णन किया। राम के सौन्दर्य का भी वर्णन केशव ने किया है परन्तु वह सर्वत्र मर्यादित है और उसमें कहीं भी अश्लीलता का आभास नहीं है। 'कादम्बरी' में जल क्रीड़ा वर्णन में कवि कहता है—

"किसी-किसी समय राजा रनिवास की प्रिय रमणियों के साथ जल-क्रीड़ा करने के लिए सरोवरों के मध्य में प्रवेश करता था। उस समय उसके जल में किसी रमणी के स्तनों का चन्दन धुल जाने से उनकी तरंगें श्वेतवर्ण हो जाती थीं। किसी रमणी के चंचल नूपुर के हिलने से झनझनाहट करते चरणों में लगा अलक्तक-रस,

१. नैषध चरित, २२वां सर्ग

अनुसरणाकारी हंस दम्पति पर छिड़क जाता था। किसी सुन्दरी के स्खलित केश-कलाप से कुसुम समूह के गिर जाने से दीर्घिका का जल विचित्र हो जाता था, किसी सुन्दरी के जल मध्य में आकण्ठ निमग्न होने से उसके कर्णाभरण नीलोत्पल के पत्र जल के ऊपर तैरने लगते थे, किसी रमणी के ऊँचे-ऊँचे नितम्बों के क्षोभ से तरंगें छिन्न-भिन्न हो जाती थीं, किसी तरुणी के द्वारा नाल से तोड़कर फेंके हुए कमलों की रज फैल जाती थी और किसी सुन्दरी द्वारा राजा के शरीर पर जलसेचन करने के समय में बार-बार पानी को हाथ से हिलाने से उड़ते हुए फेन विन्दु समूह उत्पन्न होकर जल के ऊपर चन्द्राकार बन जाते थे।"[१]

परन्तु केशव ने कहीं भी इस प्रकार के अश्लील वर्णन नहीं किए हैं। उन्होंने केवल इतना कहा है—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हँसि हँस वंश,
एक हंसिनी सी, बिसहार हिये रोहियो।
भूषण गिरत एकै लेती बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति हीन लीन उपमान टोहियो।
एकै मत कैकै कंठ लागि लागि बूड़ि जात,
जल देवता सी देवि देवता विमोहियो।
केशोदास आस पास भँवर भँवत जल,
केलि में जलजमुखी जलजसी सोहियो॥[२]

केशव ने ऐसे अवसरों पर रूढ़िगत परम्परा का पालन अवश्य किया है परन्तु वह उसके साथ बह नहीं गए हैं। अपने आदर्शों के अनुकूल उन्होंने उसका आदर्शवादी रूप ही रखा है।

विकसनशील महाकाव्यों में कवि प्रायः पात्रों के अतिरंजित तथा अविश्वसनीय रूप ही प्रस्तुत करते थे। उनमें अनेक अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता रहती थी और उसमें मानव की अमानवीय शक्तियों का प्रदर्शन होता था। साधारण जनता इनमें सरलता से विश्वास कर आश्वस्त हो जाती थी परन्तु जैसे-जैसे साहित्य उच्च तथा विद्वद्वर्ग की सम्पत्ति बनने लगा उसमें अलौकिक तथा अप्राकृत तत्त्वों का अभाव रहने लगा। पाठक वृन्द का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठने के साथ ही इस प्रकार के तत्त्वों से उसका विश्वास उठने लगा। 'रामचन्द्रिका' में पुराणों के अनुकरण पर दो-एक स्थानों पर केशव ने इस प्रकार के प्रयोग किए हैं परन्तु अधिकांश इसका बहिष्कार हो हुआ है। प्रथम राम परशुराम का मतभेद मिटाने वामदेव स्वयं आते हैं और दूसरे अवसर पर भरत के गंगातीर पर प्राण-त्याग का निश्चय करने पर गंगा आकर

१. कादम्बरी, पृ० १७६-८०, चन्द्रकला विद्योतिनी संहिता
२. रा० च०, ३२-३७

उन्हें प्रबोध कराती हैं। परन्तु काव्यशास्त्रियों के आदेशानुसार केशव ने इस अवसर पर दैवी अथवा प्रकृति की ही सहायता की है।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' को हम अलंकृत काव्यों के अन्तर्गत ले सकते हैं और उसमें रीतिबद्ध तथा रीति-मुक्त दोनों प्रकार के काव्यों के लक्षण मिल जाते हैं। उसमें शुद्ध रीतिबद्ध काव्यों की रूढ़िवादिता भी नहीं है और न ही उसमें कवि रीति से नितान्त मुक्त है। उसमें अलंकारों का आधिक्य है परन्तु इतना नहीं कि हर्ष के समान कवि का काव्य साधारण पाठक के लिए दुर्बोध हो जाए। उसमें अनेक वर्णनों का आधिक्य है परन्तु इतना नहीं कि पाठक मूल कथा को स्मरण न रख सके। उसमें लघु वर्णन और अलंकार मुक्त बोधगम्य प्रसंग हैं तथा भाषा में स्वाभाविक प्रवाह भी है। उसमें भावों का गांभीर्य भी है और अलंकारों का प्राचुर्य भी।

अलंकृत महाकाव्यों के अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' में पौराणिक महाकाव्यों के निम्न तत्त्व भी पाए जाते हैं—

कथान्तर और श्रोता वक्ता परम्परा—श्रोता और वक्ता के प्रश्नोत्तर रूप में कथा कहने की प्रणाली प्रायः सभी पौराणिक महाकाव्यों में मिलती है। वाल्मीकि रामायण में सर्वप्रथम वाल्मीकि के प्रश्न करने पर नारद उनको राम कथा सुनाते हैं। वाल्मीकि लवकुश को और लवकुश अयोध्यावासियों को सुनाते हैं। 'अध्यात्म रामायण' में भी चार वक्ता और चार श्रोता हैं। तुलसीदास ने अपने 'मानस' में भी इस पद्धति का अनुसरण किया है। 'रामचन्द्रिका' में केशव ने भी कुछ स्थानों पर प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रयोग किया है। आरम्भ में केशव वाल्मीकि से स्वप्न में प्रश्न करते हैं—

वाल्मीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हों दर्शन चारु।
केशव तिनसों यों कह्यो क्यों पाऊँ सुखसारु।[१]

और वाल्मीकि उनको उत्तर में रामनाम का महत्त्व बताते हैं। स्वयंवर भवन से आए हुए ब्राह्मण से विश्वामित्र स्वयंवर की कथा पूछते हैं और ब्राह्मण उन्हें रावण के स्वयंवर भवन से जाने तक की कथा सुनाता है। इक्कीसवें प्रकाश में राम भरद्वाज ऋषि से पूछते हैं—

कहा दान दीजै। सुकै भांति कीजै।
जहाँ होइ जैसो। कहो बिप्र तैसो।[२]

भरद्वाज उन्हें दान का विधान समझाते हैं। इसी प्रसंग में राम सनाढ्यों की उत्पत्ति के संबंध में पूछते हैं। भरद्वाज कहते हैं कि महादेव जी ने जो कथा नारायण से सुनी थी और जिस महादेव ने मुझ से कहा था वही मैं सुनाता हूँ।[३] यहाँ पर भरद्वाज ऋषि ने उतर के साथ आदि प्रश्नकर्त्ता का भी उल्लेख कर दिया है। इसी प्रकार राम अगस्त्य, विश्वामित्र और वशिष्ठादि ऋषियों से पूर्व दृष्टांत देकर राज्यश्री

१. रा० च०, १-७
२. वही, २१.१
३. वही, २१-१६

की निन्दा तथा अपनी विरक्ति का वर्णन कर कर्त्तव्य पूछते हैं और ऋषि उनका मार्ग प्रदर्शन करते हैं। राम और श्वान के प्रश्नोत्तर के प्रसंग में केशव ने विष्णु मंदिर के मठधारी तथा सत्यकेतु आख्यान का वर्णन किया है।

संवादों के द्वारा उपदेश—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है 'भगवद्गीता' के माहात्म्य को सभी जानते हैं। जब कुरुक्षेत्र जैसा घमासान युद्ध सिर पर हो तब शान्त होकर समस्त 'भगवद्गीता' सुनना भारतवर्ष को छोड़ संसार के किसी देश में संभव नहीं।......जब राक्षस सीता को हरण करके ले गया तब कथा भाग के ऊपर इन काण्डों की (किष्किंधा और सुन्दर) सृष्टि कर डालने की बात सहिष्णु भारतवर्ष ही सह सकता है, वही उसे क्षमा की दृष्टि से देख सकता है। वह उसे क्यों क्षमा करता है ? इसका कारण यही है कि उसे कथा का अन्त भाग सुनने की उत्सुकता नहीं है। सोचते-विचारते, पूछते-जांचते और इधर-उधर देखते-भालते भारतवर्ष सात प्रकाण्ड काण्ड और अठारह विशाल पर्वों को शान्तचित्त से धीरे-धीरे श्रवण करने को निरन्तर लालायित रहता है।[१]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इस उक्ति से पौराणिक महाकाव्यों में कवि की उपदेश वृत्ति का कुछ आभास मिलता है। 'रामचंद्रिका' में राजनीति एवं धर्म की प्रधानता होने के कारण स्थान-स्थान पर कवि ने उपदेशों का अवसर निकाल लिया है। सहोदर अपने सम्राट् रावण को राजनीति का उपदेश देता है,[२] राम अपने तथा भ्रातृ-पुत्रों को राजनीति का उपदेश देते हैं।[3] भरद्वाज सनाढ्य ब्राह्मणों को दान का उपदेश करते हैं। पच्चीसवें प्रकाश में वशिष्ठ ऋषि जीवोद्धार का उपाय और राम की पूजा की श्रेष्ठता बताते हैं।

इस प्रकार के उपदेशों के अतिरिक्त केशव ने अनेक स्थलों पर राम का ब्रह्मत्व तथा सनाढ्यों की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया है। वशिष्ठ जी कहते हैं—

है परिपूरण ज्योति तिहारी। जाय कही न सुनी न निहारी।[४]

ब्रह्मा जी सीता से कहते हैं—

देवन को सब कारज कीन्हो। रावण मारि बड़ा यश लीन्हो।
मैं बिनती बहु भाँतिन कीनी। लोकन की करुणारस भीनी।[५]

---

१. प्राचीन साहित्य, (हिन्दी अनुवाद), पृ० ७०
२. रा० चं०, १७,२०-२७
३. वही, २६.२६-३७
४. वही, २५-६
५. वही, ३३.१६-१७

राम स्वयं सीता से कहते हैं—

निगुण ते मैं सगुण भो, सुनु सुन्दरि तव हेत।
और कछू माँगौ समुखि, रुचै जु तुम्हरे चेत।[१]

'रामचंद्रिका' के विभिन्न पात्रों के द्वारा राम के ब्रह्मत्व प्रतिपादन के अतिरिक्त कवि ने स्वयं भी इसका गुणगान किया है जैसे राम वंदना में—

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण,
परिपूरण बतावै न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझैं,
न नेति नेति कहैं वेद छांड़ि आन उक्ति को।
जानि यह केशौदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को।[२]

माहात्म्य और स्तोत्र—पुराणों एवं 'अध्यात्म रामायण' में कथा का माहात्म्य तथा राम की स्तुति में अनेक स्तोत्रों का बहुत प्राचीन काल से ही प्राधान्य रहा है। इनमें काव्य तत्त्व गौण तथा उपदेश और माहात्म्य ही प्रधान रहता है। 'रामचन्द्रिका' में इस पद्धति का अनुकरण करते हुए केशव ने कथा के अन्त में 'रामचन्द्रिका' और राम चरित्र का महत्त्व तथा उनकी स्तुति करवाई है। 'रामचन्द्रिका' के माहात्म्य से स्पष्ट पता चलता है कि केशव 'रामचंद्रिका' को धार्मिक ग्रंथ बनाना चाहते थे परन्तु धार्मिकता के कारण उन्होंने 'रामचन्द्रिका' के काव्य तत्त्व की अवहेलना नहीं की है। केशव की भक्ति संसार से विरक्ति का आदेश नहीं देती बल्कि उसमें रहकर उसकी कलुषताओं से दूर रहने की प्रेरणा देती है, जैसे विदेहराज जनक भोगी होकर भी निर्लिप्त रहने के कारण सदेह स्वर्ग चले गए—

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय।
विदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय।
लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचन्द्र-चन्द्रिकाहि।[३]

रामचरित्र का माहात्म्य बताते हुए केशवदास कहते हैं—

रामचन्द्र चरित्र को जु सुनै सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्रीरघुराय।
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारिका नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय।[४]

---

१. रा० चं०, ३३.२२
२. वही, १.३
३. वही, ३१.३१
४. वही, ३१.३८

'रामचंद्रिका' के अनेक पात्र यथावसर राम की स्तुति कर उनके ब्रह्मत्व की स्थापना करते हैं। राजा जनक कहते हैं—

सिद्धि समाधि सजें अजहूं न कहूं जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त-समुद्र बसै तित ब्रह्महु पै बरनी नहिं जाई॥
रूप न रंग न रेख विसेष अनादि अनंत जु वेदन गाई।
केशव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई॥[1]

महादेव राम की स्तुति करते हैं—

तुम अमल अनंत अनादि देव। नहि वेद बखानत सकल मेव।
सबको समान नहि बैर नेह। सब भक्तन कारन धरत देह॥[2]

गंगा भरत से कहती है—

अनेक ब्रह्मादि अंत न पायो। अनेकधा वेदन गीत गायो।
तिन्हें न रामानुज बंधु जानो। सुनौ सुधि केवल ब्रह्म मानो॥

इसी प्रकार गरुड़, ब्रह्मा, आदि अनेक पात्र अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार स्तुतियाँ गाते हैं। 'रामचंद्रिका' के आरंभ में कवि ने अपनी ओर से भी, गणेश, सरस्वती, और राम की वंदना कर स्तुतिगान किया है।

अलौकिक तत्त्व तथा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन—राम को विष्णु अथवा ब्रह्म का अवतार मानने के कारण पुराणों में अधिकांश अप्राकृत तत्त्वों का संयोग तथा पात्रों की शक्ति का अतिरंजित चित्र मिलता है। बात बात में देवताओं का दुन्दुभि बजाना तथा पुष्प वर्षा करना पुराणों में एक साधारण-सा नियम है। 'रामचन्द्रिका' में भी केशव ने देवताओं को इस कार्य में सदैव तत्पर दिखाया है। सीता जैसे ही राम को जयमाला पहनाती हैं देवगण दुन्दुभि बजाकर पुष्प वर्षा करने लगते हैं—

सीय जहीं पहिराई। रामहिं माल सोहाई।
दुंदुभि देव बजाये। फूल तहीं बरसाये।[3]

युद्धक्षेत्र में जैसे ही राम कुम्भकर्ण का वध करते हैं, आकाश में—

तहीं स्वर्ग के दुंदुभी दीह बाजे। करी पुष्प की वृष्टि जै देव गाजे।
दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोकहारी। भयो लंक के मध्य आतंक भारी॥[4]

इसके अतिरिक्त शाप वरदानों की कथाएँ जैसे मेघनाथ के लिए—

सोई वाहि हतै कि नर बानर रीछ जो को होइ।
बारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्रा, जीते होइ।[5]

---

१. रा० चं०, ६.१८
२. वहीं, ७.४६
३. वहीं, ५.४७
४. वहीं, १८.२८
५. वहीं, १८-११

भी 'रामचन्द्रिका' में पुराणों के आधार पर ही आई हैं। राम का एक वाण में सप्त तालों को बेधना, कुम्भकर्ण के मस्तक को महादेव की ओर उड़ाना, हनुमान का औषधि को न पहचान सकने के कारण सम्पूर्ण पर्वत को ही उठा लाना, सीता का अपनी छाया को अग्नि में रखना आदि मानवीय शक्ति के अतिरंजित चित्र हैं। बला, अतिबला आदि सिद्धियों के प्राप्त करने पर निद्रा, तृष्णा, क्षुधा आदि का समाप्त हो जाना जैसी कल्पनाओं पर केवल पुराणों में ही विश्वास किया जा सकता है।

अवान्तर कथाएँ—पुराणों के कवियों की प्रवृत्ति कथा के अन्तर्गत कथा कहने की हुआ करती है। यह प्रासंगिक कथाएँ यद्यपि मुख्य कथा को पुष्ट करने के लिए हुआ करती हैं तथापि इनसे पाठक कुछ समय के लिए मुख्य कथा से विमुख अवश्य हो जाता है। 'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार की कथाएँ पाई जाती हैं परन्तु बहुत कम क्योंकि 'रामचन्द्रिका' मुख्य रूप से काव्य ग्रंथ है और पौराणिक तत्त्व उसमें अप्रधान रूप से ही आए हैं। 'रामचन्द्रिका' के पूर्वार्ध में इस प्रकार की कथाओं का नितान्त अभाव है और कवि की दृष्टि मुख्य कथा का ही वर्णन करने की ओर है परन्तु उत्तरार्ध में स्वान-संन्यासी अभियोग तथा सत्यकेतु का आख्यान ऐसे ही प्रसंग हैं।

'रामचन्द्रिका' में जहाँ कहीं इस प्रकार की अवान्तर कथाओं के प्रसंग आए हैं केशव ने उनका वर्णन न कर केवल संकेत मात्र दिया है। संभव है उन्होंने इन कथाओं को विस्तार देना इसलिए अनावश्यक समझा हो जिससे साहित्य का जिज्ञासु विद्यार्थी उन्हें मूल ग्रंथों में देखकर समझ ले, जैसे मेघनाद वरदान की कथा का मूलाधार 'विश्रामसागर' में मिल जाता है।

'रामचन्द्रिका' में उपर्युक्त पौराणिक तत्त्वों के विद्यमान रहते हुए भी उसे पुराण ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। काव्य ग्रंथ होने के साथ ही 'रामचन्द्रिका' का धार्मिक महत्त्व भी है इसलिए उसमें पौराणिक तत्त्वों की छाया दिखलाई पड़ती है। यह पौराणिक तत्त्व उसमें गौण रूप से आए हैं अतः वह शुद्ध पौराणिक महाकाव्य भी नहीं कहा जा सकता। 'रामचन्द्रिका' में उसका शास्त्रीय पक्ष ही प्रधान है और वह शास्त्रीय-पौराणिक काव्य है।

मूल्यांकन—इस प्रकार महाकाव्यों के विभिन्न रूपों के आधार पर 'रामचन्द्रिका' की परीक्षा करने पर 'रामचन्द्रिका' को निस्संदेह हिन्दी साहित्य का एक महाकाव्य कहा जा सकता है जो शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण सिद्ध होता है। 'रामचन्द्रिका' अलंकृत महाकाव्यों की उस कोटि में आता है जिसमें रीति से मुक्त एवं बद्ध दोनों प्रकार के वर्णनों का प्राचुर्य है और सहायक रूप से पौराणिक तत्त्वों का भी समावेश है। उसमें काव्य के विविध पक्षों तथा धर्म के नाना स्वरूपों का सुन्दर उद्घाटन हुआ है। वह काव्यप्रेमियों के लिए काव्य है और धर्मप्रेमियों के लिए पुराण। उसमें कवि ने राम के जीवन का युग-सापेक्ष वर्णन किया है जिससे उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

'रामचन्द्रिका' तुलसीकृत मानस तथा परवर्ती रीतिकालीन साहित्य के बीच की कड़ी है जहाँ कवि की दृष्टि शनैः-शनैः विचारों से भाषा की ओर उन्मुख हो रही है। 'रामचन्द्रिका' में दोनों युगों की प्रवृत्तियों का समन्वय है परन्तु केशव के पश्चात् हिन्दी साहित्य में कथा पक्ष तिरोहित होता गया और प्राचीन परम्परा सम्मत रूढ़िबद्ध नायक-नायिका का चित्रण होने लगा इसीलिए केशव के बाद आधुनिक युग के पूर्व तक किसी कवि ने काव्य तथा जीवन का इतना विशाल चित्रण करने का साहस नहीं किया।

राम कथा की लोकप्रियता तथा तुलसी के लोक-कवि होने के कारण उनके मानस का इतना अधिक प्रचार हुआ कि उसके समक्ष अन्य काव्यों का अस्तित्व लुप्त-सा हो गया। विदेशी शासनकाल में भारतीय जनता का अपनी भाषा से पूर्णतया परिचित न होने के कारण जनसाधारण में मानस का केवल धार्मिक पक्ष सुरक्षित रह गया और 'रामचन्द्रिका', 'पद्मावत' आदि काव्य समाज के संकुचित विद्वद्वर्ग के प्रेरणा-स्रोत बनकर रह गए परन्तु जन-साधारण तक उनकी पहुँच न होने के कारण ही उनका काव्य तत्त्व लुप्त नहीं हो जाता। 'रामचन्द्रिका' का महाकाव्यत्व आज भी उसी प्रकार सुरक्षित है जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के उन महाकाव्यों का जो भाषा सम्बन्धी अज्ञान के कारण जनसाधारण की उपभोग-वस्तु नहीं हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'रामचन्द्रिका' का स्थान उन अलंकृत महाकाव्यों में है जिनमें शास्त्रीय तथा पौराणिक तत्त्वों का मणि-कांचन संयोग होता है। वह शास्त्रीय पौराणिक महाकाव्य है और इस क्षेत्र में कवि का सफल प्रयोग है। इसी कारण रुहेलखण्ड और बुन्देलखण्ड में इसका अभी तक बहुत प्रचार है और वहाँ के निवासी इस पर धार्मिक श्रद्धा रखते हैं।

पंचम अध्याय

परवर्ती राम-साहित्य पर रामचन्द्रिका का प्रभाव

राम-साहित्य परम्परा केशव के पश्चात् अवरुद्ध नहीं हुई, उसकी धारा निरन्तर अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही। तुलसी के राम-साहित्य में प्रतिपादित भक्ति भावना तथा केशव कृत 'रामचन्द्रिका' की शास्त्रीय पद्धति ने परवर्ती कवियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उन्हें राम-काव्य सम्बन्धी साहित्य के प्रणयन में सदैव प्रेरणा मिलती रही। हिन्दी राम-काव्यों के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य तथा कृष्ण-साहित्य के प्रभाव के कारण शृंगार तथा माधुर्य भावना का भी समावेश हुआ। तुलसी ने जिस मर्यादावाद तथा दास्य भक्ति का प्रतिपादन किया था वह परवर्ती कवियों को सम्भवतः उतनी सरस तथा आकर्षक प्रतीत न हुई। अतः परवर्ती राम-काव्य में राम-सीता के विलासमय जीवन के बहुमुखी चित्र अंकित किए गए। रीतिकाल में अधिकांश मुक्तक शैली की रचनाएँ हुई जिनमें मुक्तक छन्दों में राम-सीता का नख-शिख तथा उनकी अष्टयाम सेवा का वर्णन हुआ। परन्तु राम का जीवन तथा व्यक्तित्व मुक्तक काव्यों की अपेक्षा प्रबन्ध अथवा महाकाव्य के अधिक अनुकूल था अतः शीघ्र ही मुक्तक रचनाओं का स्थान प्रबन्ध काव्यों ने ले लिया एवं रामचरित को आधार बना कर अनेक प्रबन्धकाव्य कृतियों की रचना हुई। रीतिकाल में भी कतिपय प्रबन्धकाव्य लिखे गए यद्यपि शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों का निरन्तर प्रणयन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही आरम्भ हुआ।

महाकाव्य की शास्त्रीय प्रणाली के आधार पर रचे गए साहित्य की हिन्दी में एक विशाल परम्परा है जिसका यहाँ पूर्ण विवरण देना कठिन है। केशव के पश्चात् आचार्य चिन्तामणि ने एक रामायण की रचना की थी। चिन्तामणि ने विविध काव्य-कृतियों में काल-लक्षण, पिंगल, छन्द, अलंकार, गुण, दोष, रस आदि का विवेचन किया है। इनकी रामायण आज उपलब्ध नहीं है परन्तु डा० भगीरथ मिश्र ने 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' नामक पुस्तक में इसका छंद उद्धृत किया है[1]—

हंसन के छौना स्वच्छ सोहत बिछौना बोच,
होत गति मोतिन की ज्योति जोन्ह जामिनी।
सत्य कैसी ताग पूरन सुहाग भरी,
चली जयमाल लै मराल मंदगामिनी॥

१. हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० ८७

जोई उरबसी सोई मूरति प्रत्यक्ष लसी,
चिंतामणि देखि हँसि संकर की स्वामिनी।
मानो सरच्चन्द चन्द मध्य अरविन्द,
अरविन्द मध्य विद्रुम विदारि कढ़ी छामिनी ॥

इसकी अलंकृत भाषा को देखकर अनुमान होता है कि यह रचना 'रामचंद्रिका' के समान अलंकार प्रधान होगी। इसी प्रकार रसिक गोविन्द कृत 'रामायण सूचनिका' तथा लछिराम कृत 'रामचन्द्र भूषण' आदि रचनाएँ भी इसी कोटि में आती हैं। सेनापति ने यद्यपि राम काव्य संबंधी कोई प्रबन्ध रचना नहीं की परन्तु उन्होंने संवत् १७०३ में कवित्त रत्नाकर की रचना की तथा उसकी चौथी तरंग के ७६ छंदों में राम कथा का वर्णन किया है। उन्होंने संपूर्ण राम-कथा का वर्णन न कर अपनी रुचि के अनुकूल कतिपय प्रसंगों का चयन कर लिया है।

उनके पूर्व राम-कथा का इतना अधिक विस्तार हो चुका था कि राम-कथा के सभी अंग-उपांगों का वर्णन करना न तो संभव ही था और न संगत ही। अतः सेनापति ने कथाक्रम को प्रणाम कर स्फुट प्रसंगों का चयन कर अपने कवित्तों की रचना की है—

सेनापति यातें कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कबित्त कछू कीने हैं ॥[१]

सेनापति ने रामायण-वर्णन के अंतर्गत सीता स्वयंवर, परशुराम मिलन, मारीच वध, लंका दहन, सेतुबंधन, अंगद-रावण संवाद, राम-रावण युद्ध, हनुमान शौर्य, कुम्भकर्ण वध, सीता का अग्नि-प्रवेश आदि प्रसंगों का वर्णन किया है परन्तु राम वनगमन, दशरथ निधन, भरत मिलाप, लक्ष्मण शक्ति, सीता त्याग आदि करुण प्रसंगों की कवि ने प्रायः उपेक्षा कर दी है। राम जन्म तथा उनकी बाल-लीला का वर्णन न कर सेनापति ने एक छंद में दशरथ के चारों कुमारों का उल्लेख कर दिया है परन्तु सीता के सौंदर्य का विशद वर्णन किया है यद्यपि यह वर्णन सर्वत्र मर्यादित है। 'रामायण-वर्णन' के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सेनापति ने अधिकांश उन स्थलों का चयन किया है जहाँ श्रृंगार अथवा वीर रस की अभिव्यक्ति सम्भव थी परन्तु करुण प्रसंगों की ओर से वह प्रायः उदासीन रहे हैं। कथानक के क्षेत्र में सेनापति केशवदास के ही समान वाल्मीकि रामायण के ऋणी हैं। उन्होंने अपनी रामायण का कथानक तुलसी के मानस से न लेकर 'वाल्मीकि रामायण' से ही लिया है। जैसे परशुराम की भेंट स्वयंवर भवन में न होकर माग में होती है तथा इसमें राम-सीता के संयोग श्रृंगार के चित्रों पर भी रामायण का ही प्रभाव अधिक है। 'रामचन्द्रिका' के समान सेनापति की रामायण में भी स्फुट वर्णनों का आधिक्य होने के कारण प्रबंधात्मकता का अभाव

---

१. कवित्त रत्नाकार, ४।६ (सम्पादक उमाशंकर शुक्ल)

है परन्तु उनके गुंफन को देखकर कवि की प्रबंध काव्य रचना सामर्थ्य में अविश्वास नहीं किया जा सकता।

अभिव्यंजना सम्बन्धी मान्यताओं में सेनापति पर केशव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। केशव के सदृश सेनापति काव्य में अलंकारों का स्थान प्रधान मानने वाले कवि हैं। अलंकारों के प्रति मुख्य रूप से श्लेषालंकार के प्रति कवि का विशेष आग्रह लक्षित होता है। उन्होंने कहीं-कहीं अलंकारों को वर्ण्य वस्तु के रूप में भी चित्रित किया है। उनके अधिकांश श्लिष्ट छंदों में अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। 'रामचन्द्रिका' के समान अलंकारों में कहीं उपमेय तथा उपमान में यथार्थ सादृश्य है तथा कहीं केवल शब्द-साम्य, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, प्रतीक, अतिशयोक्ति, दीपक, असंगति तथा व्यतिरेक आदि अनेक अलंकारों का भी सेनापति ने विपुल प्रयोग किया है। यह अलंकार 'रामचन्द्रिका' के समान अधिकांश या तो श्लेष को पुष्ट करते हैं अथवा स्वयं श्लेष द्वारा पुष्ट होते हैं। जैसे—

कीने हैं कवित्त कछु राम की कथा के तामैं
दीजियै न दूषन कहत सेनापति हैं।
आप हो बिचारौ तुम जहाँ खर दूषन हैं,
सो अखर दूषन सहित कहियत हैं।।[1]

यद्यपि अलंकारों के आधिक्य के कारण सेनापति की दृष्टि काव्य के रस पक्ष की ओर अधिक काल तक स्थित नहीं रहती तथापि उनके राम सम्बन्धी छंदों में विभिन्न रसों का सम्यक् परिपाक हुआ है। रामायण में उन्होंने वीर रस का चित्रण विशेष रूप से किया है। वीर रस के निरूपण में सेनापति ने युद्ध का विशद वर्णन करने के स्थान पर वीरोचित उत्साह का प्रदर्शन करने में अपना काव्य-कौशल दिखाया है। उन्होंने राम के साथ प्रतिनायक रावण के भी उत्कर्ष का समान वर्णन किया है अतएव उनका वर्णन 'रामचंद्रिका' के सदृश सजीव तथा स्वाभाविक है—

सेनापति सिंह-सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं।।[2]

वीर रस के सहायक रौद्र तथा भयानक रसों का चित्रण भी सेनापति ने अत्यंत सुन्दर किया है। रोषावेश के कारण परशुराम चरण-स्पर्श करते हुए दशरथ की ओर दृष्टिपात नहीं करते। वे तो गुरु-पिनाक भंजक को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म करने को आतुर हैं—

---

१. कवित्त रत्नाकर, ४:७४ (सम्पादक उमाशंकर शुक्ल)

२. वही, ४।५८

सेनापति कहत कहाँ हैं रघुवीर कहौ ?
छोह भर्‌यौ लोह, करिबे कौं निरधार है।
परत पगनि दसरथ कौं न गनि, आयो
अगनि-सरूप जमदगनि कुमार है।[१]

निम्न छंद में सेनापति ने भयानक रस का परिपाक द्वित्वाक्षरों की सहायता से किया है—

हहरि गयौ हरि हिए, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
ध्रुव नरिंद थरहर्‌यौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय॥
अक्खि पिक्खि नहि सकइ, सेस नक्खिन लग्गिय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल॥[२]

सेनापति ने रामायण वर्णन के अंतर्गत जिस शृंगार रस का चित्रण किया है उसमें तुलसी के मानस का कठोर मर्यादा कठोर न होकर 'रामचन्द्रिका' की संयत मर्यादा है। सेनापति ने राम के एक नारी-व्रत में दृढ़ आस्था रख अत्यंत उत्साह के साथ राम-सीता के दाम्पत्य प्रेम का शिष्ट वर्णन किया है, जैसे राम सीता की द्यूत क्रीड़ा का वर्णन—

सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम।
सेनापति देखि नैंन नैंकहु न मटके॥
रूप देखि देखि रानी, वारि फेरि पियैं पानी।
प्रीति सौं बलाइ लेत कैयौ कर चटके॥
पहुँची के ही रन मैं दम्पति की झाईं परी।
चंद विवि मानौं मध्य मुकुर निकट के॥
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के दृग प्रतिबिंबन सौं अटके॥[३]

राम सेनापति के इष्टदेव हैं अतः राम के प्रति उनकी असीम श्रद्धा है। जिन स्थलों पर सेनापति ने राम की महिमा का वर्णन अथवा राम भक्ति का प्रतिपादन किया है उन स्थलों पर शांत रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। राम के चरणों से निस्सृत होने के कारण गंगा उन चरणों के ही समान पवित्र हो गई है। गंगाजल का स्पर्श राम के चरणों का स्पर्श है—

राम-पद संगिनी, तरंगिनी है गंगा, तातैं
याहि पकरे तैं पाइ राम के पकरियै।[४]

---

१. कवित्त रत्नाकर, ४।२६
२. वही, ४।१६
३. वही, ४।२०
४. वही, ५।५५

राम सम्बन्धी छंदों में एक दो स्थलों पर करुण तथा हास्य रस का चित्रण भी हुआ है परन्तु वह कवि के अभीष्ट रस नहीं हैं अतः वह उनकी ओर से अधिकांश उदासीन ही है। निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि सेनापति राम सम्बन्धी छंदों में केशव की अलंकार तथा रस-सम्बंधी मान्यताओं से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। सेनापति का काव्य मुक्तक पदों में लिखा हुआ राम काव्य है जिसमें कथाक्रम का सूत्र अदृश्य है परन्तु अनुपस्थित नहीं। कवि की अलंकार एवं रस सम्बन्धी धारणाएँ केशव के ही सदृश हैं तथा उनका प्रयोग 'कवित्त रत्नाकर' में उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में केशव की मान्यताओं का।

सेनापति के पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुरु गोविन्दसिंह ने 'गोविन्दरामायण' की रचना की जिसमें राम कथा का सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन है। अठारहवीं शती के आरम्भ में मिथिला निवासी रामप्रिया शरण ने 'सीतायन' नामक काव्य में राम का संक्षिप्त चरित तथा सीता एवं उनकी सखियों का चरित वर्णन किया। तदनन्तर राम सम्बन्धी अनेक प्रबंध-काव्य कृतियों की रचना हुई, जैसे राम किशोर शरण का 'रामरसामृत सिंधु', सरजूराम पंडित का 'जैमिनि पुराण' जिसमें छत्तीस अध्यायों में राम चरित, सीता त्याग, लवकुश जन्म, रामाश्वमेध युद्ध तथा सीताराम मिलाप आदि के प्रसंग वर्णित हैं, भगवंत राय खीची की रामायण, मधुसूदनदास के रामाश्वमेध, खुमान के लक्ष्मण शतक, गोकुलनाथ का सीताराम गुणार्णव, मनियारसिंह के रामचरित सम्बन्धी काव्य, ललकदास के सत्योपाख्यान, नवलसिंह के रामचंद्र विलास, सीता स्वयम्वर आदि काव्य, बनादास की उभय प्रबोधक रामायण, अयोध्यावासी सीतारामशरण के रामसरंग विलास में संक्षिप्त रामकथा का वर्णन हुआ है। यह सभी काव्य काव्यत्व की दृष्टि से अत्यंत ललित तथा सरस शैली में लिखे गये हैं तथा इनमें राम सीता के उन विलासी रूपों का चित्र अंकित हुआ है जिनका मूलाधार हमें कृष्ण राधा के जीवन में मिलता है। यह रचनाएँ अधिकांश शृंगार रस प्रधान हैं एवं इनमें महाकाव्यों की शास्त्रीय शैली का अनुकरण नहीं किया गया है। 'रामचंद्रिका' का प्रभाव इन काव्यों में केवल वहीं देखा जा सकता है जहाँ उनमें राम के ऐश्वर्य तथा वैभव से युक्त नरेश रूप का चित्रण हुआ है परन्तु उसकी अभिव्यंजना सम्बन्धी मान्यताओं का प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही आरम्भ होता है। सर्वप्रथम जिस राम-काव्य पर 'रामचंद्रिका' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है वह है महाराज रघुराज सिंह विरचित 'राम स्वयम्वर।'

राम स्वयम्वर—महाराज रघुराजसिंह देव ने संवत् १९३४ की पूर्णिमा को 'राम स्वयम्वर' नामक विशाल महाकाव्य की रचना समाप्त की। इस काल की कथा पर 'रामचंद्रिका' का प्रभाव न होकर वाल्मीकि, तुलसी तथा सूर काव्य का प्रभाव है जैसा कि कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

बालकांड को बिसद चरित संक्षेप कथा षट्कांडा।
बरनहुँ रीति बालमीकि जेहि सुनि पुनीत ब्रह्माण्डा।

उक्ति जुक्ति तुलसीकृत केरी और कहाँ मैं पाऊँ।
बालमीकि अरु ब्यास गोसाई सूरहि को सिर नाऊँ ॥[1]

परन्तु उसकी अभिव्यंजना शैली पर 'रामचंद्रिका' का प्रभाव पड़ा है। राम स्वयम्वर में कवि ने 'रामचंद्रिका' के ही समान अनेक वर्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। एक सर्ग में एक ही छंद के बंधन को तोड़ कवि ने इस काव्य में विविध छंदों का प्रयोग किया है, जैसे दोहा, कवित्त, सोरठा, चौबोला, घनाक्षरी, सवैया, बरवै, त्रोटक, मोतियादाम, पद्धरी, चौपाई, झूलना, हरिगीतिका, गीतिका, भुजंगप्रयात, छप्पय, नाराच, कामरूप, त्रिभंगी, छंद, दंडक, तोमर, हाकल तथा पद्धटिका आदि। प्रायः इन सभी छंदों का प्रयोग एक ही सर्ग में हुआ है यद्यपि सर्वाधिक प्रयोग चौबोला, दोहा तथा सोरठा का ही है।

अपनी बहुछंदी काव्य-धारणा के सम्बन्ध में रघुराजसिंह ने कहा है—

गान करत महं अति सुलभ, ताते गानहिं छन्द।
औरो छन्द अनेक किय, जहं तहं मंजु अमंद।
चौबोला के छन्द रिजु, गान करत सुख होइ।
गायक जन कहं प्रीति पद, सब गावत मुद मोइ।
दोहा और घनाक्षरी, तथा सोरठा आदि।
चौबोला बिच बिच लसत, और छन्द अजादि ॥[2]

केशव के समान रघुराज सिंह ने छंदों को परस्पर संयुक्त करने का प्रयास भी किया है जैसे—

कोसलेस-लालजू के लाल लाल पदतल,
अंकुस कुलिस कंज चक्र धुज रेख हैं।
ठुमुकि ठुमुकि वागैं कौशिला के आंगन में,
झुमुकि झुमुकि बाजैं भूषन बिसेष हैं।
द्रवीभूत होती मनि उपटैं चरन् चारु,
चूमैं चन्द्रबदनी अनंदित असेष हैं।
रघुराज तेई पद पावन की लाख लाख,
करैं अभिलाख लेखा लोकन अलेख हैं ॥[3]

में कवित्त तथा घनाक्षरी छंदों का सम्मिश्रण है। काव्य के मध्य में कहीं-कहीं कवि ने अतुकांत छंदों का भी प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ:—

(क) तब आयो सो काल, जो दुर्लभ बहु कल्प महँ,
प्रगटे दसरथ लाल, कौशल्या की सेज पर ॥[4]

१. राम स्वयम्वर, पृ० २. छंद १०
२. वही,
३. वही, पृ० ४३, छंद संख्या २३६, तथा पृ० ११३ का छंद ६६६६
४. वही, पृ० २७ छंद १५०

(ख) को कहि सके उछाह राज जन्म में जस भयो,
लहै कोन बिधि थाह, मनुज महोदधि में प्रविसि ।।[1]

(ग) लषन राम अवलोकि, उठि तुरंत समाज सब,
सुमति नैन जल रोकि, कौशिक सों पूछित भये ।।[2]

रामचंद्रिकाकार के सदृश राम स्वयम्वरकार भी अपने पाठक से यह अपेक्षा रखता है कि उसे संस्कृत तथा संस्कृत के पूर्ववर्ती काव्यों का ज्ञान हो । क्रौंच वध से मर्माहत होकर जो संस्कृत अनुष्टुप छंद अकस्मात् वाल्मीकि की वाणी से मुखरित हो उठा था उसे रघुराजसिंह ने वैसा ही इस काव्य में रख दिया है—

मा निषाद प्रतिष्ठांन्त्वमगम: शाश्वतीसमा: ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।।[3]

छंद प्रयोग की दृष्टि से कवि ने दो-एक स्थलों पर ३६ छंदों को भाषा छंदों में डालने का प्रयास किया है । यह प्रयोग उन्होंने एक स्थान पर झूलना तथा दूसरे स्थान पर कवित छंद में किया है—

झूलना छन्द—

आफ़ताब सो एक माहताब सो, दूसरा चश्म के चोर खूबसूरत: खूब हैं ।
ख्वाब यों ख्वाब में देखने में नहीं, शान औ' शौक में सच्चाई सूब हैं ।
कहैं रघुराज मुनिराज हमसे कहौ कौन के फबे फरजंद दिलहूब हैं ।
बिहिश्त के नूर मशहूर दिलहूर हरजान में जहाँ के जान महबूब हैं ।।[4]

कवित्त—

आफ़ताब-औलाद मरजादवारे, संग चलते पील असवार प्यादे ।
रहनेवाले ये ऐश आराम के हैं, मघवान ते शान और शानज़ादे ।
रघुराज दोउ आले मरातिबा के इसी वक्त में पूर करि दिए वादे ।
समर बाँकुरे ठाकुर अवध के हैं, दशरत्थ बादशाह के शाहज़ादे ।।[5]

कहीं-कहीं सूर की गीति शैली पर भी पद रचना की है—

कोसलपुर बाजै बधैया ।
रानि कौशला ढोटा जायो रघुकुल-कुमुद-जोन्हैया ।।
फूले फिरत समात नाहिं सुख मगमग लोग लोगैया ।

---

१. राम स्वयम्वर संक्षिप्त पृ० ३० छंद संख्या १६८
२. वही, पृ० ७५ छंद संख्या ४३७
३. वही, पृ० २१, श्लोक १
४. वही, पृ० ७६, छंद ४२८
५. वही, पृ० ७६, छंद ४३०

सोहर सोर मनोहर नोहर माचि रह्यो चहुँ घैया।
छिरकत कुंकुम रंग उमंगित मृगमद अतर मिलैया ।।[१]

'रामचन्द्रिका' के समान 'रामस्वयंवर' वीर-रस प्रधान काव्य है तथा शेष रस उसके पोषक हैं। करुण तथा हास्य-रस कवि के अभिप्रेत रस नहीं हैं अतः उनका दो-एक स्थलों पर प्रसंगवश प्रतिपादन अवश्य हुआ है परन्तु कवि ने यथाशक्ति उनका बहिष्कार ही किया है। करुण-रस के प्रसंगों को तो कवि ने सचेष्ट प्रयास करके बचाया है क्योंकि इस क्षेत्र में वह अपनी असमर्थता से स्वयं परिचित है। रघुराजसिंह ने स्वयं इसे स्वीकार करते हुए कहा है—

मैं असमर्थ नाथ-दुखगाथा गावन में सब भांति।
विरह विपत्ति व्यथा बरनन में रसना रहि रहि जाति ।।[२]

तथा—

बहुरि स्वामिनीहरन महादुख बरनि जाइ कहु कैसे।
पुनि वियोग जगजननिनाथ को लागत कथन अनैसे।
ताते मम हरिगुरु निदेस दिय बालकांड भरि पाठा।
करहु तजहु दुख कथा जथा लै घृत बुध त्यागत माठा ।।[३]

जिस प्रकार बुद्धिमान् घृत लेकर छाछ त्याग देते हैं उसी प्रकार कवि ने रामकथा रूपी घृत से करुण प्रसंगों का छाछ त्याग दिया है। राम-रावण युद्ध तथा स्वयंवर प्रसंग का वर्णन कवि ने विस्तारपूर्वक किया है। राम-रावण युद्ध वर्णन में रघुराज सिंह ने 'रामचन्द्रिका' की युद्ध-प्रणाली अर्थात् वाक् तथा शस्त्र युद्ध की सम्मिलित प्रणाली का उपयोग किया है। युद्ध क्षेत्र में कुंभकर्ण सुग्रीव से कहता है—

सुग्रीव रहौ अब सावधान। हौं कुंभकर्ण नहिं बीर आन ।।[४]

और यह सुनते ही कीसपति सुग्रीव पर पत्थर का प्रहार करता है—

अस सुनत कीसपति लै पहार। दसकंठ अनुज पै किय प्रहार।
गिरि कुंभकर्ण तनु लगि तुरंत। छहराय पर्‌यो टूके अनन्त।
तब कुंभकर्ण यंमहि रोकि पाउँ। घाल्यो सुकंठ पै सूल घाउ ।।[५]

रौद्र, भयानक तथा वीभत्स आदि रस इस काव्य में वीर-रस के पोषक रस हैं जैसे—

भयानक रस—

कोरि-कोरि खलन के मुंडन को फोरि-फोरि,
दौरि-दौरि खोरि-खोरि खलल मचायो है।

---

१. संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ० २८, छंद १५३
२. राम स्वयंवर, पृ० ३५
३. संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ० २, छंद ८
४. वही, पृ० २४२ छंद ५१६
५. वही, पृ० २४२ छंद ५१६-१७

करि-करि कोप कूदि कूदि केसरी-किशोर,
कंचन कंगूरन में कालहीं सो भायो है ।।[१]

यहाँ शब्दों की आवत्ति द्वारा भयानक रस का परिपाक अत्यन्त सुन्दर हुआ है।

रौद्र रस—

चढ़ी बंक भ्रू सर्पिणी-सी करालैं।
फरक्कैं उभय नासिका बेध हालैं।
तजै श्वास कोपाधिकै बार बारै।
मनो ज्वाल के जाल ते विश्व जारै।
चढ़ो सर्व अंगानि में भस्म भूरी।
मनो शृंग कैलास को भास पूरी।।
लिहे चड कोदंड दोदंड भारो।
कसे कंध में तूण द्वै भीतिकारो।।[२]

'रामचन्द्रिका' के भरत के ही समान राम स्वयंवर के भरत भी परशुराम पर क्रोध कर अपना उग्र रूप दिखाते हैं—

भरत दरत रद कोप त्यों करत हद,
बोल्यो भृगुनाथ सों न ऐसो हो न पावैगो।
राम बंधु ठाढ़े तोन बाँकुरे समर गाढ़े,
युद्ध के उछाह बाढ़े जासों भल भावैगो।
तासों युद्ध कीजै निज बल दिखराय दीजै,
लीजै सीख मानि एकै युद्ध हेत आवैगो।
जियत हमारे तीनौ भाइन के रघुराज,
राम ही की सौंह कौन रामसौंह जावैगो।[३]

राम स्वयंवर में रघुराजसिंह ने 'रामचंद्रिका' की संवाद पद्धति का भी उपयोग किया है जैसे परशुराम शत्रुघ्न संवाद में—

बोल्यो भृगुनाथ कौन तू है ? शत्रुसाल अहौं;
काको पुत्र है रे ? अवधेश के कुमार हौं।
तू है राम ? छोटो बंधु हौं तो रामचन्द्र-दास,
क्या है तेरे मन में ? तो युद्ध को तयार हौं।
काहे काल आयो ? कहो काल को बुलायो कौन ?
मेरे कर काल मैं ही काल के अकार हौं।

---

१. संक्षिप्त रामस्वयंवर, पृ० २८५, छंद ४११
२. वही, पृ० १८६, छंद १७५-७६
३. वही, पृ० २००, छंद २४६

भाजै रे समाज छोड़ि, कैसे रघुराज भाजै ?
डरै नहिं मोहि ? कहा जाति को गंवार हौं ?[१]

'रामस्वयंवर' के कवि को अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह प्रतीत होता है। अनुप्रास, यमक, उपमा, संदेहादि अलंकारों की छटा काव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है—

तेरई भरोस भरो भव में न भीति भाऊँ,
भाषि भाषि भूरि भाव रसना न हारती।[२]

तथा—

सर्वपर सर्वहृत सर्वगत सर्वरत सर्वमत पूज्य आनन्दकारी।[३]

में अनुप्रास का सुन्दर चमत्कार है।

यमकालंकार—

रोशनी के वृक्ष रोशनो के बने ऋषि बहु,
रोशनी के गुच्छे, रोशनी के रक्ष अच्छे हैं।
रोशनी के बाजो बाजी रोशनी की गजराजी,
रोशनी के राजिव तड़ाग गन स्वच्छे हैं।[४]

उपमालंकार—

अवधपुरी सोभित भयो, जिमि कर-जुत उडुराज॥[५]

उत्प्रेक्षालंकार—

ऊँची अटा घटा इव राजहि छरति छटा छिति छोरैं।
मनहुँ स्वर्ग की लगीं सोपानैं रवि बिस्रामहिं ठोरैं॥[६]

संदेहालंकार—

रघुराज देखो यह जनकनगर सोभा,
देखत बनत नहि मुख कहि आवती।
कैधौं अलकावती है, कैधौं अमरावती है,
पद्मा की बनाई कैधौं पुरी पद्मावती।[७]

अभिव्यंना शैली के अतिरिक्त 'राम-स्वयंवर' पर कहीं-कहीं 'रामचंद्रिका' के कथानक का प्रभाव भी पड़ा है। रघुराजसिंह ने मिथिलापुरी का वर्णन 'रामचन्द्रिका' के अवधपुरी वर्णन के समान किया है। अवधपुरी की ध्वजाओं, हय, गय, नौबत, नट-

१. संक्षिप्त रामस्वयंवर, पृ० १६६, छंद २१४
२. वही, पृ० १, छंद ४
३. वही, पृ० २०३, छंद २६२
४. वही, पृ० ३१, छंद १७३
५. वही, पृ० ६, छंद ३१
६. वही, पृ० ३, छन्द १६
७. वही, पृ० ७७, छन्द ४३५

कला तथा वारतिय-नृत्य-गायन का वर्णन रघुराजसिंह ने मिथिलापुरी वर्णन के अंतर्गत किया है। जनक विश्वामित्र से राम-लक्ष्मण का परिचय पूछते हैं। इस परिचय में 'रामचन्द्रिका' के परिचय से पर्याप्त सादृश्य है—

सुन्दर श्यामल गौर सरीर विलोकत धीर रहे कस काके।
लोचन विश्व के चित्त के चोर किसोर कुमार छपे सुखमा के।
आपने आनन इंदु घटान ते हारक भे सबके मनसा के।
श्री रघुराज कहौ मुनिराज अनोखे ललान के नाम पिता के।।[१]

अशोक वाटिका में सीता की दशा भी दोनों काव्यों में समान रूप से चित्रित की गई है—

रामस्वयंवर— मैल ते सहित मानो कंचन की लता लोनो
अंक लपटानी ज्यों मृनाली दरसाई है।[२]

रामचंद्रिका— धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी।।[३]

केशव के समान रघुराजसिंह करुण रस के कवि नहीं हैं परन्तु 'रामचन्द्रिका' के समान 'रामस्वयंवर' में कुछ स्थलों पर दो-एक अर्धालियों अथवा छंदों में कवि की सहृदयता के दर्शन अवश्य हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—

विश्वामित्र के वचन सुन दशरथ का संयमित दुख—

उठ्यो दंड द्वै महँ नृपति लीन्ह्यो श्वास अघाय।
मंद मंद बोलत भयो, कौशिक पद सिर नाय।।[४]

राम के कठोर वचन सुनकर रावण के कारावास से मुक्ति प्राप्त सीता की करुणाजनक स्थिति—

पीतम वचन सुनत सुकुमारी। मृगी सरिस ढारति दृग बारी।।[५]

कैकेयी को अपमान से मुक्त करने के लिए राम की चेष्टा—

आइ गए जननी तिहि ठामा। कियो प्रथम कैकयी प्रनामा।।[६]

'रामस्वयंवर' के उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसके कवि ने अन्य काव्यों के साथ 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन अवश्य किया होगा। यद्यपि इस काव्य के कथानक के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे वाल्मीकि तथा तुलसी से अधिक प्रभावित हैं परन्तु उनकी अभिव्यंजना प्रणाली पर

---

१. संक्षिप्त रामस्वयंवर, पृ० ८४, छन्द ४७३
२. वही पृ० २२२ छन्द, ३१६
३. रामचन्द्रिका १३।५३
४. संक्षिप्त रामस्वयंवर पृ० ५७, छन्द ३०३
५. वही, पृ० २६०, छन्द, ५५१
६. वही, पृ० २६८, छन्द, ६३४

इन दोनों कवियों का विशेष प्रभाव लक्षित नहीं होता। काव्य सम्बन्धी उनकी अधिकांश मान्यताएँ कवि केशव के समान हैं। इसी से 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव उनके काव्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। केशव के समान महाराजा रघुराजसिंह का जीवन विपुल ऐश्वर्य के मध्य व्यतीत हुआ था। वह स्वयं एक राजा थे अतः राजपरिवार के जीवन का उन्हें सम्यक् ज्ञान व अनुभव था। तत्कालीन काशिराज के अनुरोध से इन्होंने 'रामस्वयंवर' की रचना की थी अतः इसकी रचना तुलसी के समान भक्ति-भाव से प्रेरित होकर नहीं हुई है। इसी से उनकी रचना में 'रामचन्द्रिका' के समान नगर, वाटिका, बारात आदि वर्णनात्मक स्थलों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

राम रसायन—'राम रसायन' की रचना कविवर रसिक बिहारी लाल ने संवत् १९५९ में की। यह आठ विधानों में विभाजित ग्यारह हज़ार छंदों का विशालकाय ग्रन्थ है। 'रामचन्द्रिका' के समान यह बहुछंदी काव्य है तथा कवि रचना आरम्भ करने के पूर्व ही इसे बहुछंदी काव्य बनाने के लिए प्रयत्नशील है। इसमें मात्रिक तथा वर्णिक दोनों ही प्रकार के अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है जिनकी सूची निम्न प्रकार है—

छंद	संख्या	छंद	संख्या
मालिनी	१	उपजाति	१३
शार्दूलविक्रीड़ित	७	श्रुति	९
इंद्रवज्रा	२	वसंततिलका	२
उपेन्द्रवज्रा	७	रथोद्धता	१
अनुष्टुप	३५७	कुमार दंडक	४
घनाक्षरी	४०३	दोहा	२४५१
चौपाई	१४४७	सोरठा	२६७
काव्य	८	हरिगीतिका	१२७
सवैया	१३१	पद्धरि	२८९
छप्पय	१	तोमर	२७९
त्रिभंगी	२१	भुजंगप्रयात	१८
दोवई	३८१	बरवै	८५
दंडक	७	तोटक	४८
पयंगम	२६	हीरक	१३
अर्धावली	१५	लाला	५
चारी	३५	नगस्वरूपिणी	४
चौपैया	१९	भीम	४१
चामर	१०	मोतियदाम	३१
चक्र	१७	अमृतध्वनि	१
भुजंगी	७	लतिका	२६

कवि सचेष्ट रूप से बहुछंदी काव्य रचना कर रहा है इसे स्वीकार करते हुए वह स्वयं कहता है—

रसिक विहारी नाम उचारो। कितहूँ है रसिकेश निहारो ॥
मम कृत छंद प्रबन्ध सुजेऊ। तिन महँ प्रगट नाम ये दोऊ ॥[1]

तथा—

औरहु विविध प्रसंग के नूतन छंद प्रबंद।
रुचिहौं प्रेरित भारती राम चरित निरद्वंद ॥[2]

रसिक बिहारी लाल जी का यह काव्य शास्त्रीय प्रणाली पर लिखा गया महाकाव्य है। कवि ने पूर्वरचित अनेक ग्रन्थों से भाव तथा अभिव्यंजना शैली को ग्रहण कर अपने काव्य का प्रणयन किया है। उन्होंने छंद, अलंकार तथा रस सम्बन्धी काव्यों का भी अध्ययन कर उन्हीं के अनुकूल अपने काव्य को ढालने का प्रयास किया है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने केशव साहित्य—'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' तथा 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन किया होगा। क्योंकि छंद तथा अलंकरण के क्षेत्र में 'रामरसायन' पर 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। शास्त्रीय पद्धति पर काव्य-रचना आरम्भ करते हुए कवि का कथन है—

यामें बहु ग्रंथन के अंगा। धरे यथोचित निरखि प्रसंगा ॥
छंद अनेक नायिका नायक। अलंकार रस जो जहँ लायक ॥
भाव विविध ध्वनि व्यंग्य घनेरी। कोष व्याकरण शब्द निबेरी ॥
निज लघु मति की गति अनुसारा। विरचों ग्रंथ समेत विचारा ॥[3]

इस प्रकार कवि ने विविध ग्रन्थों से यथोचित्त प्रसंग लेकर छंद, नायिका-नायक, अलंकार, रस, भाव ध्वनि, व्यंग, कोष-व्याकरण से प्रचलित अप्रचलित शब्द आदि का यथारुचि चयन कर काव्य-रचना की है। काव्य में अनेक छंदों के व्यवहार के अतिरिक्त कवि ने यत्र-तत्र अतुकांत छंदों का प्रयोग भी किया है, जैसे—

राम उपासक होय, गहैं अनन्य उपासना,
हरि गुरु कृपा सुजोय, राम चरित तब जानहों ॥[4]

'रामचन्द्रिका' के समान राम रसायन का कवि भी समझता है कि उसके पाठक को संस्कृत साहित्य तथा भाषा का ज्ञान अवश्य होगा। उन्होंने स्थान-स्थान पर कथानक को पुष्ट करने के लिए अनेक सहायक ग्रन्थों जैसे 'वाल्मीकि रामायण', 'निरुक्त संहिता' तथा 'महारामायण' आदि के उद्धरण संस्कृत में ही दिए हैं, उनका अनुवाद नहीं किया। इस प्रकार के अनेक संस्कृत श्लोक 'रामरसायन' में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं सूर के प्रभाव में कवि ने पदों का प्रयोग भी किया है—

१. राम रसायन, पृ० १
२. वही, १।६४
३. वही, १।५३-५४
४. वही, १।५

लाऊँ मैं मिठैया औ मलैया सो खवाऊँ तुमैं,
आऊँ लै चकैया झंझनैया सो सुनाऊँ मैं ।
नाऊँ मैं झपैया दरुपैया जो मँगाऊँ,
गैया द्वारे है ववैया जोडरैया सो भगाऊँ मैं ।
गाऊँ मैं सुहैया गीत रसिकविहारी सुनौ,
दैया जो पपैया रंगरैया सो बजाऊँ मैं ।
जाऊँ मैं बलैया कहै मैया जो रनैया,
तुम सोवो नेक मैया तो जुन्हैया को बुलाऊँ मैं ।[1]

रसिक बिहारीलाल वीर तथा श्रृंगार रस के सफल कवि हैं परन्तु उनके काव्य में करुण रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है । उन्होंने राम सीता वनवास का विस्तृत वर्णन किया है । लक्ष्मण को भी वन जाने को प्रस्तुत देख सुमित्रा की वेदना अत्यन्त हृदय-विदारक है परन्तु कवि के श्रृंगार तथा वीर रस के चित्रण पर 'रामचन्द्रिका' की छाया पड़ी है । 'रामचन्द्रिका' में राम सीता की श्रृंगार भावनाओं में यद्यपि ऐन्द्रिकता का समावेश नहीं हुआ है परन्तु उसमें भक्त की कठोर मर्यादा भी नहीं है। सीता का उत्तरीय देखकर 'रामचन्द्रिका' के राम को काम-क्रीड़ा का स्मरण हो आता है उसी प्रकार 'रामरसायन' में भी यह श्रृंगार भावना यद्यपि श्लीलताओं की सीमाओं के अन्तर्गत ही है परन्तु वह वासना की ओर उन्मुख अवश्य होने लगी है जैसा निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा—

संयोग श्रृंगार—

जनक किशोरी अरु अवध किशोर दोऊ,
होत पाणिग्रहण अनन्द रसभीने हैं ।
राम कर मध्य मंजु शोभित भयो है,
कर शोभा सो अपार में सुजान चित्त दीने हैं ।
अति छविवारी सिय आँगुरी अनूप हेरि,
बात निरधारी मतिधारी जे प्रवीन हैं ।
रसिक विहारी विश्व विजय विचारी,
आज यातें पंचबान पंचबान संग लीने हैं ।[2]

विप्रलम्भ श्रृंगार (सीता की दशा)—

इत उत जाय बार बार फिरि आय आय,
रसिक बिहारी ढिग मेरे हो अरत है ।
गोदावरी तीर धाय जौलों नीर लाऊँ वीर,
तौलों हेर हेर प्यारो प्यारी ही ररत है ।

---

१. राम रसायन, पृ०, ४३, छन्द, १०६
२. वही, पृ० १३५, छंद ६२

रैनहु में नैन खोलि खोलि अविलोकत ते,
मोहिं बिन देखे छिन धीर न धरत है।
भूलै है न सोई सुख हूलै है हिय में हाय,
मेरे प्राण प्यारे वह प्यार जो करत हैं।[1]

(राम की दशा)

सुवट तमाल ताल कदम रसाल साल,
देखो इहि काल मो विहाल मन ह्वै गयो।
प्यारी संग छूटो पुण्य खोटो भाग फूटो,
मोहिं विरह जु लूटो यो अपार दुख छै गयो।
रसिक विहारी पढ़ि डारि भुरकी धौं,
कोउ मोरी तिय भारी को भुराय छल कै गयो।
मौन क्यों रहौरे निठुराई नाग होरे कोऊ,
नेक तौ कहौ रे को प्रिया को हरि लै गयो।[2]

'रामचन्द्रिका' के समान रसिक विहारी ने राम के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् राम-सीता के विलास का वर्णन भी किया है। राम सीता तथा सखियों को लेकर विभिन्न वस्तुओं में विविध क्रीड़ाएँ करते हैं—

ग्रीषम ऋतु कबहूँ जल विहरैं सखन सहित रघुवीरा।
कबहूँ रहसि सरयूमधि सिय युत रमैं सखिन की भीरा।
कबहूँ सुमन कुंजमहं राजैं कहुँ उशीर गृहमाहीं।
दशरथ सुत अरु जनकनंदनी इमिसानंद विलसाहीं॥[3]

'रामरसायन' में वीर रस के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। कवि वीर रस तथा शृंगार रस दोनों के निरूपण में समान रूप से सफल हुआ है। राम-रावण युद्ध तथा लव-कुश युद्ध का वर्णन कवि ने अत्यन्त तन्मयता से किया है तथा स्थान-स्थान पर रौद्र रस की सहायता से इसका पोषण हुआ है—

वीर रस—

कोपि लव वीर तब बाण वर्षा करी।
प्रबल भट कटक लखिसमर कर्षा भरी।
शत्रुहन प्रखर शर सबल बहु तज्जहीं।
ते सकल वीर तोरन सपदि भज्जहीं॥[4]

---

१. राम रसायन
२. वही, पृ० २३८, छंद ३२
३. वही, पृ० ५१०, छंद ६
४. वही, पृ० ५८२, छंद ५६

रौद्र रस—सीता के पृथ्वी में समा जाने के कारण राम पृथ्वी पर कोप करते हैं—

श्री रघुवीर अघोर अति, कियो भूमि पै कोप।
लषण लाव धनु शर अबै, करौं धरणि को लोप ।।[1]

एक-दो स्थलों पर 'रामरसायन' में हास्य रस के उदाहरण भी मिल जाते हैं जैसे राम के ब्रह्मा का रूप धारण कर राजा दशरथ को अनेक कौतुक दिखाते समय।[2] इसमें प्रसंगानुकूल भाषा में ओज, माधुर्य तथा प्रसाद तीनों गुणों की व्याप्ति है। अलंकारों का कवि को विशेष आग्रह नहीं है बल्कि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का स्थानानुकूल प्रयोग ही हुआ है, कहीं-कहीं केवल अनुप्रास का प्रयोग कवि के सचेष्ट प्रयत्न का परिणाम है, जैसे—

विद्या विजय विभूति बड़ाई। सुयश सुबुद्धि सुकृत सुचिताई।

रावण-अंगद संवाद आदि कुछ संवादों पर भी 'रामचन्द्रिका' के संवादों की छाया पड़ी है। प्रश्नोत्तर में उसी प्रकार की कूटोक्तियों का प्रयोग किया गया है जैसे 'रामचन्द्रिका' में—

को है ? कपि, दूत काको ? राम को, सुराम कौन ?
सोई तब भगिनी की नासिका जु काटी है।
आयो कहाँ ? तेरे पास, काहे ? शिष देन,
काह होस कर क्यों तू दुरबुद्धि उदघाटी है।
कीनो का सिया को हरि होका नाश को,
करें जु चौदह सहस्र चमू छिद छिद छाटी है ।।[3]

रसिक बिहारीलाल ने कुछ स्थलों पर 'रामचन्द्रिका' की परिगणनात्मक शैली का उपयोग भी किया है जैसे—

ईमन हंस हमीर, परेवो मारू, गौड़ सहाना।
दरबारी काफी सिंदूरा सूहा तिलक अडाना ।।[4]

कहीं-कहीं व्याकरण विरोधी शब्द-प्रयोग भी मिलते हैं—

ता छिन प्रगट भये रवि आई। अरुण वर्तुलाकार सुहाई ।।[5]

'रामरसायन' पर 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव विशेष रूप से छंद तथा शृंगार रस सम्बन्धी मान्यताओं का ही पड़ा है।

राम निवास रामायण—इसकी रचना संवत् १९३३ में जानकी प्रसाद द्वारा हुई थी। यह सात चरित्रों में—बाल विलास (९७३ छंद), अवध विलास (७९८

---

१. राम रसायन, पृ० ५१२, छंद ५०
२. वही, पृ० ३७, छंद ५९
३. वही, पृ० ३३८, छंद ११
४. वही, पृ० ५२१, छंद १२
५. वही, पृ० २३, छंद २२

छंद) आरण्य विलास (२७६ छंद), किष्किंधा विलास (१६७ छंद), सुन्दर विलास (२३४ छंद), लंका विलास (४५५ छंद), उत्तर अवध विलास (६२५ छंद) लिखा गया बहुछंदी काव्य है। इसमें जिन छंदों का प्रयोग हुआ है उनके नाम इस प्रकार हैं—

चौबोला, दोवई, दोहा, चामर, नाराच, गीता, हरिगीति, चौपाई, अतिगीति, संयुता, हनुमतलैके, गीतिका, कुण्डलिया, तोमर, त्रिभंगी, बरवै, कवित्त, चतुष्पद, घनाक्षरी, अनयमपद्धरी, अनयमसंयुता, पद, छंद, अनयमतोमर, नागस्वरूपिणी, मोतियदाम, बन्धु प्रमाणिका, घनाक्षरी, रूपमाला, रूपमाला गीता, छप्पय, रूप घनाक्षरी, रोला, श्रीधर, वाला, लीला, अद्भुत, उपेन्द्रवज्रा, प्रियम्बदा, इन्द्रवज्रा, मत्तगयंद, भुजंग प्रयात, मौक्तिकदाम, षट्पद, आदि चंचला, उपजाति मदिरा, दोधक, मल्लिका, लक्ष्मीधर, चंचरी, आनंदलहरि तथा महादण्डक।

जानकी प्रसाद ने इस काव्य में 'रामचन्द्रिका' के ही समान छंद परिवर्तन बहुत शीघ्र किया है। उपर्युक्त छंदों में से घनाक्षरी तक छंदों का प्रयोग प्रथम चरित्र के ही अन्तर्गत हो गया है। कहीं-कहीं दो छंदों मिश्रण का प्रयोग भी हुआ है जैसे रूपमाला तथा गीता छंद[1] का मिश्रण। कुछ स्थलों पर कवि ने अतुकांत छंदों का भी प्रयोग किया है—

पढ़ै सुनै जे लोग रामचन्द्र यश छंद निधि।
ते न लहै भव शोग यश प्रताप प्रभु की कृपा॥[2]

इस रामायण में कवि की प्रवृत्ति अलंकारों की ओर अवश्य है परन्तु अर्थालंकारों की अपेक्षा उसमें शब्दालंकारों का सौन्दर्य अधिक है। अनुप्रास के प्रति कवि का विशेष आग्रह लक्षित होता है जैसे—

छमकि छबीली छबि छटा। छिटक छहरि रहि छाय॥[3]

इस काव्य में वीर तथा शृंगार रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है तथा राम के वैभवमय जीवन के आकर्षक चित्र अंकित हुए हैं। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में पंचवटी का वर्णन करते हुए उसे मुक्तिनटी[4] कहा है, जानकी प्रसाद ने सम्भवतः इसी वर्णन से प्रेरित होकर अयोध्या नगरी को मुक्तिनटी कहा है—

मुक्ति नटी चहुँ ओरनि दरसति।[5]

केशव को 'रामचरित' लिखने की प्रेरणा स्वप्न में वाल्मीकि ऋषि देते हैं, जानकी-प्रसाद को तुलसी—

---

१. राम निवास रामायण, पृ० १७३, छंद २।३५
२. वही, पृ० ४७७, छंद ४
३. वही, पृ० ४७६, छंद १३
४. रामचन्द्रिका, ११।१८
५. राम निवास रामायण, ७।४६

एक रात मोहिं सपने माही। दरशन दिये कहे मोहि पाही।
भक्ति मिलन को सहज उपाई। करिये कथन चरित रघुराई ॥[1]

रामचन्द्र विलास (हस्तलिखित)—नवलसिंह प्रधान कृत इस रचना का ठीक[2] काल अज्ञात है परन्तु लाला स्वरूपसिंह द्वारा संवत् १९९७ में की हुई इसकी एक प्रतिलिपि उपलब्ध है। इसकी रचना टीकमगढ़ में हुई थी तथा इसमें इक्कीस खंड हैं—आदिखंड, रघुवंश खंड, राम जन्म खंड, आखेट खंड, जानकी जन्म खंड, पूर्व श्रृंगार खंड, विश्वामित्र खंड, स्वयंवर खंड, विवाह खंड, विलास खंड, मिथिला खंड, कौसल खंड, अयोध्या खंड, विहार खंड, रास खंड, चित्रकूट खंड, नरनाटक खंड, अभिषेक खंड, अश्वमेध खंड, अद्भुत खंड तथा उत्तर खंड। आदि खंड में कवि ने वाल्मीकि, व्यास आदि कवियों का स्मरण करने के पश्चात् कहा है—

सूरदास, तुलसी अरु केसव। कहत चले आए कवि ते सब।
अपनो अपनो बुद्धि प्रमाना। कहत जात अद्यापि सुजाना।[3]

तदन्तर कवि ने यह भी कहा है कि उसने विविध ग्रंथों के मतों का मिश्रण कर अपने काव्य की रचना की है—

सब मत मिश्रित कर कलि मांही। भाषा बनत बहु जांही ॥[4]

इससे स्पष्ट पता चलता है कि नवलसिंह ने इस काव्य की रचना के पूर्व अनेक कवियों के साथ केशव साहित्य का अध्ययन किया था। उनके मत से वह अपने काव्य में प्रभावित भी हुए हैं।

'रामचन्द्र विलास' काव्य की रचना मुख्य रूप से दोहा, चौपाई तथा सोरठा छंदों में हुई है। बीच-बीच में कुछ अन्य छंदों का भी प्रयोग हुआ है तथा कहीं-कहीं कवि ने अतुकांत छंदों का प्रयोग भी किया है—

सुन सत्रुघ्न सुजन। मन प्रसन्न कीनी विनय।
करियत बाजिनकौ ध्यान। लीजै दरस प्रतक्ष अब ॥[5]

परन्तु छंद की दृष्टि से इस काव्य पर 'रामचन्द्रिका' का विशेष प्रभाव नहीं लक्षित होता। 'रामचन्द्रिका' का मुख्य प्रभाव इस काव्य की वर्णन प्रणाली पर पड़ा है। जिस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में प्रधान कथा का क्रम कहीं अधिक और कहीं कम रह जाता है तथा कवि दृष्टि विविध वर्णनों में अटक कर रह जाती है उसी प्रकार इस काव्य के कवि ने इस प्रणाली का आश्रय लेते हुए कहा है—

---

१. राम निवास रामायण, बाल विलास छंद ८

२. रामचन्द्र विलास—अनइस सै के संवतत सांही। किय प्रारम्भ जन्म तिथि मांही।
पृ० ४ छंद १।३६ परन्तु कवि की जन्म तिथि वहाँ नहीं दी गई है।

३. रामचन्द्र विलास—आदि खंड, पृ० ३ छंद २९

४. वही, पृ० ३, छंद १।३२

५. वही, पृ० ८३, छंद ५५

कविजन निज निज मति अनुसारा। बर्नन करत अनेक प्रकारा।
अधिक न्यून कहुँ कमन रहाई। सूत्र प्रसंगमात्र रह जाई ॥[1]

'रामचन्द्रिका' की इस प्रणाला का प्रभाव रामचन्द्र विलास काव्य पर आरम्भ से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। कवि ने आरम्भ में ही अवधपुरी का वर्णन करते हुए उसके ऐश्वर्य का विस्तृत वर्णन किया है। इसी प्रकार विलास-खण्ड में राम-सीता के हास-विलास का विस्तृत वर्णन है। 'रामचन्द्रिका' में राम-सीता चन्द्रोदय को देख उस पर विविध उत्प्रेक्षाएँ करते हैं। 'रामचन्द्र विलास' में भी चन्द्रोदय को देख दोनों विविध प्रकार उसका वर्णन करते हैं—

मृदुल सयन आसीन, करत विनोद अनेक विधि।
सिय प्रति राम प्रवीन, बोले चन्द्रहि अरुन लखि ॥[2]
राम सखिन को बृंद निहारी। ढिग तै तिनको चहत निवारी।
दंपति सुखकर चन्द्र उज्यारा। करन लगे बरनन तिहि बारा ॥[3]

नवलसिंह की राम भावना तथा केशव की राम भावना में पर्याप्त साम्य है। केशव के समान कवि ने एक ओर राम को परब्रह्म भगवान् का रूप माना है दूसरी ओर उनके लौकिक भोग-विलास का वर्णन सामान्य राजा के समान किया है। नवलसिंह के राम का रूप एक ओर है—

जे पद पद्म सुता संभाहैं। जिन पद की रज कौ श्रुति चाहैं।
जे पद संभु सदा उर ध्यावैं। जे पद नहि जोगी बिसरावैं ॥[4]

वहीं राम दूसरी ओर सामान्य नायक के समान—

रामसु निज देतन बिचधारो। प्रान प्रिया सौं विहस उचारी।
छल सौ चहै अधर रस पाना। लेहु सुमुख सौ बाल सुजाना ॥[5]

सीता से व्यवहार करते हैं।

'रामचन्द्र विलास' में मुख्य रूप से वीर तथा शृंगार रस का ही निरूपण हुआ है। शृंगार के विस्तत वर्णनों के साथ इस काल में वीर रस के सुन्दर तथा विस्तृत स्थल हैं।

वीर रस—

तोरौं स्यंदन सूतहन बानि करो बिन प्रान।
बातसूनु ने लात एक मारी वज्र समान ॥[6]

इस काव्य में रौद्र तथा वाभत्स रस वीर रस के पोषक रस हैं।

१. रामचन्द्र विलास, आदि—खंड, पृ० ६१, छंद १।७-८
२. वही, पृ० ७६, छंद १०।८४
३. वही, पृ० ७६, छंद १०।४६
४. वही, पृ० १६।२
५. वही, पृ० ८१, छंद १०।७०
६. वही, पृ० ६३, अश्वमेध खण्ड, छंद ८२

सुन नखसिख रिस भरिउ अडोला। दाव अधर दसनन सों बोला।
दूत नहि मारहि नयनागर। कहिये तमयभनित उजागर॥[१]

बीभत्स—

काक ग्रद्ध चींथत फिरैं भक्षै स्वान शृंगाल।
पीवैं भर भर खप्परन श्रोनित जोगिन जाल॥[२]

'रामचन्द्रिका' के समान इस काव्य में हास्य तथा करुण रस का प्रसंग दो-एक स्थल पर आया है परन्तु वह कवि का अभीष्ट विषय नहीं है जैसे—

हास्य रस—

हंस बोली तब वह वरनारी। जौहौ तुम रक्षावृत धारी।[३]

अथवा—

मृदु मुसकाय कहन तब लागी। धन्य हनुमंत हौ बड़भागी॥[४]

में कवि ने हंस बोल तथा 'मुसकाय' शब्दों का प्रयोग कर हास्य रस का पूर्ण चित्र अंकित करने के स्थान पर केवल शब्दों से काम चलाना चाहा है। इसी प्रकार सीता की—

नर लीला कर कहि वयदेही। तजी मोहि प्रिय राम सनेहीं॥[५]

नर लीला के कारण वैदेही की वाणी की समस्त करुणा तिरोहित हो जाती है। यद्यपि कुल स्थलों पर कवि की सहृदयता तथा शब्द शक्ति सामर्थ्य का परिचय भी मिलता है जैसे सीता त्याग का समाचार सुन लक्ष्मण की अवस्था का चित्र—

तज न सकैं न सकैं मुरकाई। बीती सांप छछूंदर रहाई॥[६]

साँप छछूंदर की गति कहकर कवि ने अपनी उत्कट प्रतिभा का परिचय दिया है।

उपर्युक्त उदाहरणों से केवल इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि कवि केशव के समान करुण स्थलों की व्यंजना करने में समर्थ अवश्य है परन्तु वह वीर तथा शृंगार-रस के समान उसका विस्तृत निरूपण नहीं करना चाहता।

रामचरित चिन्तामणि—पण्डित रामचरित उपाध्याय ने इस महाकाव्य को सन् १९२० में पच्चीस सर्गों में लिखा था। इस काव्य की प्रस्तावना में पं० राम दहिन मिश्र ने कहा "यह केवल नाम मात्र का ही महाकाव्य नहीं है बल्कि इसमें सर्गबन्धादि स्थूल लक्षण से लेकर वृत्तकीर्तनादि सूक्ष्म लक्षण तक महाकाव्य के प्रायः सारे लक्षण वर्तमान हैं······

१. रामचन्द्र विलास, पृ० ५८, छंद १९।२०
२. वही, पृ० ६३, छंद १९।७६
३. वही, अश्वमेध खण्ड, पृ० ८५, छंद ८०
४. वही, पृ० ८६, छंद ८५
५. वही, छंद, १९।२९
६. वही, छन्द १९।२५

"इस महाकाव्य में रचना का जैसा चारु चमत्कार है, वैसा ही अलंकारों का मधुर झंकार, वैसा ही रसों का सरस प्रवाह है। कल्पना का प्रभूत प्रादुर्भाव, अर्थों का अशेष सौन्दर्य, शब्दों का असीम माधुर्य, नूतनता का अनुपम आगार, भावों का भरपूर भंडार यमक तथा अनुप्रास की भरमार है। इसमें कवि का भाषा प्रभुत्व, भावप्राचुर्य्य, प्रगाढ़ पांडित्य, कल्पना कौशल, वर्णन पाटव तथा अलौकिक प्रतिभा है।"[1]

राम दहिन मिश्र के उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि इस काव्य की रचना महाकाव्य की शास्त्रीय पद्धति पर हुई है। वस्तुतः कवि ने महाकाव्य के लक्षणों को दृष्टि में रखकर ही इस काव्य की रचना की है। 'रामचन्द्रिका' के अनुकरण पर उपाध्याय जी ने भी छन्दों के बन्धन तोड़कर इसे बहुछन्दी काव्य बना दिया है। इसमें गीतिका, बंशस्थ, तोटक, द्रुतविलम्बित, रोला, भुजंगप्रयात, छप्पय, हरिगीतिका तथा रूपमाला आदि विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने कहीं-कहीं अतुकांत छन्दों का प्रयोग भी किया है उदाहरणार्थ :

(क) पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
इसका विधिवत जवाब दो, यम देगा तुमको परत्र में ॥[2]

(ख) पर से मिलके स्ववर्ग के, दुखदायी वह निर्दय हो सदा।
जग में गतलज्ज नीच जो, सुख माने रघुनाथ के बिना ॥[3]

'रामचन्द्रिका' के समान यह काव्य भी वीर तथा श्रृंगार-रस प्रधान काव्य है। इस काव्य के प्रत्येक पात्र में वीर तथा श्रृंगार की संयुक्त भावनाओं का समन्वय हुआ है। युद्ध के इसमें विस्तत वर्णन हैं एवं केशव के समान उपाध्याय जी ने भी अपने पात्रों से शस्त्र की अपेक्षा वाक्-युद्ध अधिक करवाया है। जनक के तीखे वचन सुन लक्ष्मण वीरोचित उत्साह से कहते हैं—

तीखे तीर तुल्य सुन बातें, बोले तत्क्षण लक्ष्मण।
मनमानी दृग मूँद न कहिये नृप। सुनिये मेरे प्रण।
यदि रोकें रघुनाथ न तो मैं अभिनव दृश्य दिखाऊँ।
क्या है चाप? सहित शंकर के मैं कैलास उठाऊँ ॥[4]

बाइसवें सर्ग में कवि ने राम-रावण युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है। युद्ध के साथ दोनों वीरों का उत्तर-प्रत्युत्तर चलता रहता है—

सुन रघुवर की बात असुर ने फिर ललकारा।
चोखे-चोखे वाण राम के उर में मारा ॥[5]

---

१. रामचरित चितामणि : प्रस्तावना, पृ० १-२
२. वही, : प्रस्तावना, ८।६३
३. वही, ,, ८।७२
४. वही, ,, ४।२४
५. वही, ,, २२।४४

वीर-रस के प्रसंग में रौद्र तथा भयानक रस उसके पोषक रसों के रूप में आए हैं। परशुराम क्रोधित होकर उग्र वाणी में कहते हैं—

इस अकार्य में योग दिया भी होगा जिसने।
या सगर्व यह पाप किया भी होगा जिसने।
या जिसने है देख लिया हर धनु का खंडन।
अभी करूँगा देख उसी के हनु का खंडन॥[१]

भयानक रस—

हाथ हुए बे हाथ, लचक पड़ गई कमर में।
लड़ करके लंकेश शिथिल यों हुआ समर में।
सिर से पग तक अंग असुर के थर्राते थे।
नेत्र नाचते रहे, गले भी घर्राते थे॥[२]

श्रृंगार-रस यद्यपि इस काव्य का अंगी रस नहीं है तथापि उसकी प्रभुता को कवि ने स्वीकार किया है। काम के प्रभाव से जब विधाता स्वयं नहीं बच पाता तब साधारण मनुष्य की क्या सामर्थ्य।

पर कौन जग में बच गया है काम के आखेट से।
वह भी अनंगासक्त है जो व्यग्र रहता पेट से।
हरि हर विधाता भी कभी क्या स्त्री बिना क्षण भी रहे।
गति देख रतिपति की अतुल मति थक रही है क्या कहे॥[३]

केशव के अनुकरण पर उपाध्याय जी ने प्रकृति का बहुमुखी प्रयोग किया है—कहीं आलंबन रूप में, कहीं उद्दीपन रूप में एवं कहीं उपदेशक के रूप में। कवि की दृष्टि कथानक की अपेक्षा वर्णना की ओर अधिक रहने के कारण उसने प्रकृति-वर्णन के लिए बारम्बार स्थान निकाल लिया है—

प्रकृति में अद्‌भुत रस की व्यंजना—

सिंह-वधू चुपचाप खड़ी है,
उसका थन बछड़ा पीता है।
पागुर करती धेनु खड़ी है,
उसको चाट रहा चीता है॥[४]

---

१. रामचरित चिंतामणि, : प्रस्तावना, ४।३१
२. वही, ,, २२।४६
३. वही, १।३१
४. वही, ८।१६

'रामचन्द्रिका' की छाया में भरद्वाज मुनि का आश्रम वर्णन—

सामगान तोते करते हैं,
कहीं व्याकरण बटु पढ़ते हैं।
कहीं कथा मुनिवर कहते हैं,
बैठे भूप उसे सुनते हैं।[1]

प्रकृति से उपदेश—

नारिकेल तरु यदपि ताल के ही भाई हैं,
निज छाया से नहीं किसी को सुखदायी हैं।
तो भी रस से भरे हुए ये फल देते हैं,
पहले निज काठिन्य हमें दिखला देते हैं।
दानी जन की निठुरता सह सकता संसार है,
केवल सूखे हृदय का जीवन भू का भार है॥[2]

प्रकृति का आलंबन रूप—

बारहमासी वृक्ष वहाँ पर फूल रहे थे।
रंग-बिरंगे सुभग पक्व फल भूल रहे थे।
नव रत्नों से वहाँ सरों के घाट बने थे।
मानस सर से अधिक मनोहर ठाठ बने थे॥

प्रकृति चित्रण द्वारा अन्योक्ति—

हँसो पर दो दृष्टि अनुज ये शुक्ल सही हैं,
हो पर इनके हृदय कालिमा रिक्त नहीं हैं।
पर को उन्नति देख मूढ़ ये जल जाते हैं,
नभ में घन को देख कहीं ये टल जाते हैं।[3]

इसमें वर्णन हंसों का है परन्तु अन्योक्ति है तत्कालीन विदेशी शासक अंग्रेजों पर।
प्रकृति का मानवीय भावनाओं से तादात्म्य—

शोभा सर जो नन्दन वन-सा खिला हुआ था कानन।
किया शोकमय उसे सिया ने रोकर आनन फानन।
केका रुकी केकिनी की भी व्यग्र हुए सब प्राणी।
करुणा भरी सीता की सुनकर रोदन वीणा वाणी॥

इस काव्य में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का विपुल प्रयोग हुआ है। अनुप्रास तथा यमक का सौन्दर्य स्थान-स्थान पर लक्षित होता है।

---

१. रामचरित चिंतामणि, ८।११
२. ,, ,, १२।४५
३. ,, ,, १२।१७

अनुप्रास—

सीता-सुषुमा-सुधा सिन्धु में अज्ञ भूप-सुत डूबे ।

यमक—

जगत में भट की भट मानिता अचल है, चल है अचलादि भी ।

उपमालंकार—

केकय सुता की बात उनके हृदय में कैसे लगी ।
जैसे कनक की छूटिका उर में लगे विष से पगी ।[१]

संदेहालंकार—

गन्धवी या विष्णु वल्लभा या किन्नर कन्या है ।[२]

उत्प्रेक्षालंकार—

दांतों को भी विकट रूप से पीस रहा था ।
प्रलय सूर्य सा मनो शशि भी काँप रहा था ।[३]

उदाहरण—

मुनि आज्ञा से राम गिरे चरणों पर आकर ।
मधु भूखा ज्यों मधुप गिरे पंकज ऊपर ।[४]

रूपक—

सीता सहित विधि वृक्ष से कुछ दिन लटकने दो मुझे ।

इसी प्रकार अन्य अलंकारों के उदाहरण भी इस काव्य में मिल जाते हैं । इसके कुछ संवादों में 'रामचन्द्रिका' के संवादों की छाया दिखाई देती है जैसे लवकुश-राम संवाद में—

क्या कर रहे हो भूप यह ? पुत्रों परीक्षा भाग को ।
हम तो निठुर के पुत्र हैं । बातें कहो मत लाग की ।
क्या आप ही रघुनाथ हैं ? हाँ मैं वही बेलाज हूँ ।
क्यों आप के दृग हैं भरे ? कृतकृत्य बेटा ! आज हूँ ।[५]

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में देवता को स्त्रीलिंग मानकर सीता की उपमा कामदेव से दी है । उपाध्याय जी ने भी देवता को स्त्रीलिंग मानकर एक स्थान पर कौशल्या तथा दूसरे स्थान पर सीता के लिए देवता की उपमा दी है—

---

१. रामचरित चिंतामणि, ८।३७
२. वही, ११।५२
३. वही, २१।४१
४. वही, १०।२८
५. वही, २५।६५

घम देवता-सो वह (कौशल्या) भू पर हा सुत ! कहकर लोट पड़ी ।[1]

शूर्पणखा रावण से सीता की प्रशंसा में कहती है—

देवयोग से स्वर्गदेवता मनो मही पर आई ।[2]

इस प्रकार केशव तथा उपाध्याय जी की छंद, अलंकरण तथा रस सम्बन्धी मान्यताओं में पर्याप्त सादृश्य है । उपाध्याय जी ने केशव के ही समान महाकाव्यों की परम्परागत विशिष्टताओं को दृष्टि में रखकर काव्य रचना का प्रयास किया है । इसमें छंदों का वैविध्य तथा अलंकारों का बाहुल्य दर्शनीय है ।

कौशल किशोर—अठारह सर्गों के इस महाकाव्य की रचना सम्वत् १९९० में पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र ने की थी । इसकी रचना महाकाव्य की शास्त्रीय पद्धति पर हुई है अतः इसमें महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण उपलब्ध हो जाते हैं । ग्रन्थ के सिंहावलोकन में कवि ने स्वयं कहा है "इसे लोग महाकाव्य केवल इसलिए कह सकते हैं कि इसमें महाकाव्य के प्रायः सब लक्षणों का निर्वाह किया है ।"[3] कवि ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया है तथा उसकी शैली को हिन्दी काव्य में लाने का प्रयास किया है । इसी सिंहावलोकन में कवि ने कहा है कि प्रथम सर्ग की स्तुति शैली में उसने माघकाव्य में नारद की शैली का, दशम सर्ग के प्रतिबोधन में यमक संस्कृत काव्यों के आधार पर तथा त्रयोदश सर्ग में भारतीय नरेशों का वर्णन रघुवंश की शैली पर किया है ।

रामचन्द्रिकाकार के समान मिश्र जी ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर उसकी विशिष्टताओं को हिन्दी भाषा में लाने का प्रयत्न किया है । इसके लिए उन्होंने संस्कृत शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया है तथा कहीं-कहीं संस्कृत शब्दनिष्ठ छंदों की रचना की है जैसे—

सकुन्त राशि उर्मियुक्त तीव्र वेगशालिनी ।
गंभीर धीर नादिनी नृमुण्ड फेन मालिनी ।
प्रचण्ड भीषणाकृति प्रवृद्ध-धूलि रंगिणी ।
बनो अनोकिनी घनी धनुर्त की तरंगिणी ।[4]

छंदों की दृष्टि से यह काव्य भी प्रयोग ग्रन्थ है । इसमें अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है कहीं संस्कृत शब्दनिष्ठ कठिन छंद हैं तो कहीं सरल और छोटे छंद । जैसे—

गई यद्यपि धाई धाई । न कुछ वहाँ ठहर पाई ।
राम के पास सौख्य दाई । जय श्री पुनः लौट आई ।[5]

---

१. रामचरित चिंतामणि, ६।३१
२. वही, ११।१९
३. कोशल किशोर : सिंहावलोकन, पृ० ६
४. वही, ६।२२
५. वही, ६।२७

कुछ स्थलों पर अतुकांत छंदों का प्रयोग भी हुआ है—

(क) दोनों दोनों ओर दृग खोले हो रह गए।
जाग उठा घनघोर पहिले का अनुराग सब।[1]

(ख) दोनों ने वर मूर्ति स्थापित की मन मध्य यों।
जिसकी मंजुल स्फूर्ति आजीवन जाग्रत रही।[2]

इस काव्य में कवि का साफल्य वीर तथा शृंगार रस की अभिव्यक्ति में निहित है। रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों का निरूपण वीर रस के अंग रूप में हुआ है। राम लक्ष्मण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने जाते हैं, इस अवसर पर कवि ने संग्राम का विस्तृत वर्णन किया है। इस काव्य में कथा का उत्तर भाग न होने के कारण कवि ने मौलिक रूप से युद्ध वर्णन का अवसर यहाँ निकाल लिया है। राक्षस आर्यों के लिए वीरोचित उत्साह से कहते हैं—

वीर रस—

करते स्वाहा वे पावक में, घी शक्कर मधु अन्न सभी,
और समझते हैं बस इसमें होंगे देव प्रसन्न सभी।
अरे देव हैं कौन ? भुजाएँ ही हम सबकी देव बनी।
उनके बल से खेद नरों को, मुक्त करेंगे यह अवनी।[3]

भयानक रस—

सुन यह हुआ सभामण्डप में सहसा सिंहनाद भारी।
गिरे गर्भ अर्भक बहुतेरे, हिलो धरा विह्वल सारी।

यहीं कवि ने भयानक के साथ वीर रस का समन्वय भी किया है—

हुआ प्रबल मारीच समुद्धत फिर कुछ कहने को ज्यों ही।
अतिशय ही उत्साहित होकर अस्थिर हुई सभा त्यों ही।[4]

अद्‌भुत रस—

प्रहार पा प्रहार दे धरास्थ हो गये कई।
बल प्रयोग पूर्व ही स्वजीव खो गये कई।[5]

वीभत्स रस—

मदिरा के प्याले पर प्याले, वहाँ उड़ेले जाते थे,
मांस खण्ड तोंदल पेटों में क्रमशः ढेले जाते थे।

---

१. कौशल किशोर, ११।६४
२. वही, ११।७०
३. वही, १।१५
४. वही, ५।२६
५. वही, ६।१८

अट्टहास के साथ डकारें, दिग्दिगन्त कम्पनकारी,
सब ओरों से सभी मुखों से रह रह कर उठती थीं भारी।[1]

एक स्थान पर कवि ने चारों रसों का वर्णन एक साथ का प्रयास किया है—

कहीं सरोष रौद्र भाव भीमता बता रहा।
कहीं प्रवीर भाव था स्वकीय तेज छा रहा।
कहीं भयावने विभाव भीति भाव ला रहे।
कहीं अनेक अद्भुत प्रभाव थे दिखा रहे।[2]

मिश्र जी ने कहीं-कहीं 'रामचन्द्रिका' की व्यंग्यपूर्ण कटूक्तियों का प्रयोग भी किया है जैसे लक्ष्मण परशुराम से व्यंग्य करते हुए कहते हैं—

यह सुन बोले लक्ष्मण सहास्य। 'यदि सुयश आपको है उपास्य।
तो भाट यहाँ हैं कई आज। वे पूर्ण करेंगे सकल काज।।'[3]

तथा—

यह सुन बोले लक्ष्मण कुमार। 'इस व्यर्थ कथा में कौन सार।
गुरु सुत या माँ पर कर प्रहार। क्या हुआ नहीं कुंठित कुठार।।'[4]

काव्य भाषा के सम्बन्ध में मिश्रजी ने कहीं-कहीं स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। उन्होंने केशव के समान संस्कृत के प्रत्ययों को हिन्दी भाषा में लाकर कतिपय नवीन शब्दों की रचना की है जैसे वर्तुलीकृत, सौख्य, आचरती आदि। कुल स्थलों पर 'उन्होंने' के स्थान पर मिश्रजी ने 'उनने' शब्द का प्रयोग किया है जैसे—

देखी पथ में उनने सुखकर, सरयू की शोभा मन भाई।[5]

इस सम्बन्ध में मिश्र जी ने स्वयं कहा है खड़ी बोली का कल्याण इसी में है कि वह अपनाये और पचाये हुए तद्भव और परकीय शब्दों को उगल कर अलग न कर देवे वरन् उन्हें अपना ही अंग मानकर स्वच्छंद रीति से उनका उचित व्यवहार करे।[6] व्याकरण की रीति से 'उनने' (उन्होंने के स्थान पर) अशुद्ध नहीं कहा जा सकता।[7]

इस प्रकार केशव के समान मिश्रजी ने भी विभिन्न रसों की सम्मिलित अभिव्यक्ति करने का प्रयोग इस काव्य में किया है। शृंगार के क्षेत्र में मिश्रजी ने

---

१. कौशल किशोर, ५।२
२. वही, ६।६
३. वही, १४।४२
४. वही, १४।५६
५. वही, ३।१७
६. वही, सिंहावलोकन, पृ० १७
७. वही, सिंहावलोकन, पृ० १८

इसके संयोग पक्ष का ही चित्रण किया है वियोग का नहीं, कारण कवि करुण रस को व्यंजना में अपनी शक्तियों के प्रति अधिक आश्वस्त नहीं है। शृंगार रस के वर्णन में भाषा सरल तथा माधुर्य गुण से युक्त है—

विलसे कल सात्विक भाव कई, क्षण भीतर ही उनके मन में।
इस स्नेह सुरंग मनोहर से, विकले वे अति नवयौवन में॥[१]

कृष्ण साहित्य से प्रभावित होकर कहीं-कहीं मिश्रजी ने शृंगार का वर्णन अत्यन्त हास्यास्पद बना दिया है। राम को नगर में आया देख मिथिलापुरी की वनिताओं की दशा देख उन पर करुणा जाग्रत होती है—

हुआ किसी के दृग का कज्जल, मस्तक माँग मध्य आसीन।
कोई धारण किये हुये थी, उलटा कर आभरण नवीन।[२]

'कौशल किशोर' में सीता की विदा का सम्पूर्ण दृश्य करुण रस के अन्तर्गत आता है परन्तु इसमें वास्तविक करुणा का अभाव है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल के प्रभाव में कवि ने शोकाकुल जनक का वर्णन किया है परन्तु उसमें हृदय-जन्य पीड़ा नहीं है—

थे विदेह पर इस अवसर पर भूल गई मति सारी।
हृदय विरह के दुःख भाव से भर आया वह भारी॥[३]

इस काव्य में अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में विशेष रूप से उपमा का सौंदर्य दर्शनीय है—

अनुप्रास—

(क) देख देख सुषमा संवारी सुखकारी छवि।[४]
(ख) चीता चपल चौकड़ी भरता।[५]

उपमा—

थिरकी तितली सी वह नौका,
दिये पाल के पंख पसार।
करने लगी हंसिनी ही सी,
श्री गंग जल मध्य बिहार।[६]

उदाहरण—

सिंह शिशु है भंग करता मत्त गज का मान,
नकुल शिशु क्या सर्पमय से हो सका है म्लान।

१. कौशल किशोर ११।६७
२. वही, ९।५७
३. वही, १७।३२
४. वही, २-५२
५. वही, ३-४९
६. वही, ९-८६

अग्निकण क्या मुँह छिपाता देख तृण का ढेर,
क्या रवि से हो सको है रवि उदय में देर।[१]

'कौशल किशोर' पर छंद तथा अलंकरण की अपेक्षा 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव रस निरूपण तथा भाषा का निर्माण करने की दृष्टि से अधिक है।

साकेत—संवत् १९८८ में उर्मिला के अन्तर्मन के कुशल चित्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने दस वर्ष की अनवरत तपस्या के उपरान्त इस महाकाव्य को हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। साकेत में मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है विशेष रूप से इसका नवम सर्ग छंद-वैविध्य की दृष्टि से द्रष्टव्य है। सम्पूर्ण नवम सर्ग विभिन्न छंदों में लिखे हुये मुक्तक पदों का संग्रह-सा प्रतीत होता है। छंदों का क्षण-क्षण पर परिवर्तन वस्तुतः उर्मिला की अस्थिर मानसिक स्थिति का प्रतीक है। गुप्तजी ने छंदों का चयन प्रसंग के अनुकूल ही किया है। साकेत में दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, कवित्त, मनहरण, सवैया, बरवै, आर्या, शिखरिणी, मालिनी, पीयूषवर्षण, हाकलि, सुमेरू, बीर, त्रैलोक, राधिका, रोला, पदापादाकुलक, वियोगिनी गीति, आर्यागीति, शार्दूलविक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित आदि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है। संस्कृत वृत्तों का प्रयोग खड़ी बोली के नियमों के विरुद्ध है परन्तु गुप्तजी ने शार्दूल विक्रीड़ित, शिखरिणी, मालिनी, वियोगिनी आदि संस्कृत वृत्तों का प्रयोग हिन्दी में किया है। सातवें सर्ग का छंद १७ मात्राओं का है जिसमें दो-दो पंक्तियाँ तुकान्त हैं। डा० नगेन्द्र ने इसे गुप्तजी का मौलिक छंद माना है। गुप्तजी ने आठ मात्राओं के सबसे छोटे हाकलि छंद का तथा ३१ मात्राओं के सबसे बड़े वियोगिनी छंद का भी प्रयोग किया है। उनके छंदों में सर्वत्र अनुक्रम है एवं कहीं-कहीं यति की विभिन्नता के कारण वैचित्र्य का समावेश भी हो गया है। केशव के समान कुछ स्थलों पर गुप्तजी ने अनेक मात्रिक-वर्णिक छंदों का समन्वय भी किया है जैसे—

छोड़ छोड़, फूल मत तोड़, आली देख मेरा,
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाए हैं?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दुःखिनी लता के लाल आँसुओं से छाए हैं।
किन्तु नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब
रूप, गुण, गंध से जो मेरे मन भाए हैं।
जाए नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए,
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाए हैं।

इसके प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर हैं तथा १६-१५ पर यति है। अन्त में गुरु है। इस प्रकार यह मनहरण कवित्त है।

---

१. कौशल किशोर, ४-४२

भ्रमरी इस मोहन मानस के, सुन, मादक हैं रस भाव सभी,
मधु पीकर और मदाधन ही, जड़ जा, बस है अब क्षेम तभी।
पड़ जाय न पंकज बंधन में, निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी,
दिन देख नहीं सकते सविशेष, किसी जन का सुख भोग कभी।

में दुर्मिल-सवैया मिश्रित छंद का प्रयोग हुआ है।

गुप्तजी छंद के कुशल नियंता हैं, विशेपरूप से उन्होंने नवम सर्ग में जो छंद-वैविध्य दिखाया है वह उनके छंदाधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। इस सर्ग में उन्होंने चमत्कार की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रयोग की दृष्टि से अनेक छंदों का प्रयोग किया है छंदों के क्षेत्र में साकेतकार ने रामचन्द्रिकाकार के समान महाकाव्यों की प्राचीन मान्यताओं को तोड़कर एक नवीन प्रयोग करने का प्रयत्न किया है।

गुप्त जी अपने समस्त कथा-ग्रन्थों की अपेक्षा साकेत में सबसे अधिक अलंकारों का प्रयोग किया है विशेषरूप से नवम सर्ग तो अलंकारों का अक्षय भंडार ही हैं। यह अलंकार कहीं शुद्ध अलंकार की दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं एवं कहीं स्वाभाविक रूप से।

उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से।
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के।
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के?[१]

में अलंकार का प्रयोग केवल अलंकार के लिए हुआ है। रूपक तथा श्लेषालंकारों से आवृत्त रहने के कारण छंद का अर्थ क्लिष्ट हो गया है। साकेत में उपमा, व्यतिरेक, श्लेष, रूपक, विरोधाभास, हेत्वापह्नुति, असंगति, संदेह, सहोक्ति, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति आदि अनेक अर्थालंकार तथा अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का गुप्तजी ने बहुलता से प्रयोग किया है।

साकेत के संवाद रामचन्द्रिकाकार के सदृश कवि के भाषाधिकार के परिचायक हैं। उत्तर-प्रत्युत्तर का सव्यंग्य प्रयोग करके जो कौशल केशव ने 'रामचन्द्रिका' में दिखाया है वही साकेत में भी मिलता है। ये संवाद अधिकांश बुद्धि तथा तर्क प्रधान हैं एवं इनकी, गति तथा प्रवाह में पाठक को मंत्र मुग्ध करने की अजेय शक्ति है—

उर्मिला बोली "अजी तुम जग गए?
स्वप्न निधि से नयन कब से लग गए।"
"मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"[२]

---

१. साकेत, पृ० २५२, नवम सर्ग
२. वही, पृ० १४, प्रथम सर्ग

'साकेत' की भाषा संस्कृत प्रधान है। रामचन्द्रिकाकार के समान गुप्त जी ने हिन्दी शब्दों में संस्कृत के प्रत्यय लगाकर अनेक नवीन शब्दों की सृष्टि की है जैसे अंबुजता, पात्रता, मनोज्ञता, प्रकटता, सारल्य, राहित्य, औदास्य, प्रकटा, निर्दया, प्रकुपित, लाक्षण्य आदि। कहीं-कहीं उन्होंने हिन्दी में साधारणतया अप्रयुक्त शब्द जैसे तती, तक्खी, मल्ली, लल्ली, त्वेष, अरन्तुद, अस्य, अपत्य, निगड़, कौणाप, वीक्ष्य, कीर्ण आदि का भी प्रयोग किया है। गुप्तजी ने उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है परन्तु बहुत कम।

यथार्थ में केशव के समान गुप्त जी का उद्देश्य भी भाषा का परिष्कार तथा संवर्धन करना है। केशव ब्रजभाषा को पूर्ण तथा समुन्नत साहित्यिक भाषा बनाना चाहते थे, गुप्त जी खड़ी बोली को। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर गुप्तजी ने संस्कृत के अनेक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर कर दिया है।

शृंगार रस के निरूपण में गुप्त जी ने रीतिकालीन प्रायः सभी मान्यताओं को प्रश्रय दिया है। नवम सर्ग का तो हेतु ही उर्मिला की विरह-व्यथा का चित्रण है। प्रथम सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण के हास-परहास से युक्त उनके संयोग जीवन की विस्तृत झाँकी मिलती है।

साकेत प्रबन्ध काव्य है परन्तु उसमें कथानक के बीच-बीच कवि ने विभिन्न वर्णनों के लिए पर्याप्त अवकाश निकाल लिया है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण नवम सर्ग में उपलब्ध होता है जहाँ कवि ने उर्मिला की मानसिक स्थिति का विशाल चित्र अंकित किया है। यह सर्ग काव्य की आधिकारिक कथा से नितांत असम्बद्ध है। एक-दो छंद में उर्मिला की वेदना चित्रित कर कवि कथानक को आगे बढ़ा सकता था परन्तु गुप्त जी ने अनेक छंदों, अलंकारों तथा भावों द्वारा इस सर्ग का कलेवर बढ़ा दिया है। निस्संदेह यह गुप्त जी की सहृदयता तथा हृदय-जन्य करुणा का साकार प्रतिरूप है परन्तु इससे कथानक के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। 'साकेत' उन काव्यों का प्रतीक है जिनमें मुक्तक शैली पर गीति-काव्य की रचना कर कवि उसे प्रबन्ध-रचना का रूप देता है। इसके पूर्व भक्तिकाल में 'रामचन्द्रिका' के रूप में हमें भी इसी की बात का संकेत मिलता है कि मुक्तक कवि किस प्रकार प्रबन्ध-काव्य की रचना कर सकता है।

श्री कौशलेन्द्र कौतुक—सन् १८३६ में पण्डित विहारीलाल विश्वकर्मा कौतुक ने 'श्री कौशलेन्द्र कौतुक' नामक राम-काव्य की रचना की। काव्य के आरम्भ में अपनी सम्मति देते हुए श्री रामावधि शास्त्री ने इसके सम्बन्ध में कहा है "छन्दतः कृत काव्ये हिमंश्छंदोऽन्तर परिष्कृतो।" स्वयं कवि ने भी एक स्थल पर कहा है—

डारे पढ़ि पिंगल अनेक अलंकार कोष,
बाचें वेद व्याकरन बात सब ढाई को।

सुने श्रौन सन्तन के सुखद प्रबन्ध छंद,
खुले न कपाट आँखि दाहिनी न बाई को ।[१]

इससे अनुमान होता है कि इस काव्य के लेखक ने काव्य रचना के पूर्व पिंगल तथा अलंकार-ग्रन्थों का अध्ययन किया था । काव्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार उन्होंने आरम्भ में अपनी काव्य-अनभिज्ञता का प्रकाशन किया है—

पढ़ेऊँ न वेद पुरान ग्यान-गीता नहिं सीख्यों,
कियो न कछु सतसंग, कोस पिंगल नहिं दीख्यों ।
अलंकार रस भेद, भाव एक न उर आन्यों,
भ्रमेऊँ न देस विदेस, भूरि भाषहु नहिं जान्यों ।[२]

यह कवि का नम्रता निवेदन है परन्तु इसके आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कवि काव्य रचना करते समय काव्यशास्त्र के नियमों से परिचित अवश्य था । 'कौशलेन्द्र कौतुक' बहुछंदी रचना है अतः सम्भव है कि उन्होंने वाल्मीकि रामायण तथा मानस के साथ 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन भी किया हो । इसमें कवि ने हरि-गीतिका, मनोहर, कवित्त, सोरठा, दोहा, छप्पय, चौबोला, झूलना, प्रज्वलिया, सवैया बरवै, सरषी, तोटक, लावन्य, कुण्डलिया, तोमर, छंद, पद, दंडक, दोवई आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है । एक सर्ग में एक छंद की परम्परा का पालन न कर कवि ने यथारुचि छंदों का प्रयोग किया है ।

इस काव्य में कवि को अलंकारों के प्रति भी विशेष आग्रह प्रतीत होता है । यद्यपि वह अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों की ओर अधिक प्रयत्नशील है। अनु-प्रास का चमत्कार तो काव्य में प्रायः सर्वत्र विराजमान है जैसे—

बलद बुधा के बरदानि बिबुधा के ।
बन्दनीय बसुधा के रूप सागर सुधा के हैं ।[३]

यमकालंकार—

वचन कृपान नैन बानन ते गोभि-गोभि,
कौतुक मृगेन्दहि जगाइबो चहत है ।[४]

कहीं-कहीं कवि ने 'रामचन्द्रिका' की परिगणानात्मक शैली का आश्रय भी लिया है । जनक-वाटिका का वर्णन करते हुए कवि ने पुष्पों की गणना इस प्रकार की है—

मौलसिरी मोतिया चमेली मुचकुन्द कुन्द,
गंधराज गहव सुगंधरा सुदेस के ।
'कौतुक' करंज कंज मालती मगरमस्त,
सिरिस असोक गुल सेवती सुमेस के ।

---

१. श्री कौशलेन्द्र कौतुक, ७-११० (प्रकाशक ० बिहारी लाल विश्वकर्मा, हंस तीर्थ, काशी)
२. वही १-३५
३. वही, १-११५
४. वही, १-१७४

मल्लिका यकोलिया जटान जाफरान जूही,
दौना गुल मेंहदी मदर गुन बेस के।
गुले बांस हसना हज़ारा गुलचन्द चम्पा,
विकसे अनुराग भरे बाग मिथिलेस के।[1]

कवि ने तुलसी के ऋण को काव्य में अनेक स्थलों पर स्वीकार किया है। कहीं-कहीं मानस के दोहों को ही उठाकर रख दिया है परन्तु अपनी अभिव्यंजना सम्बन्धी मान्यताओं में वह तुलसी की अपेक्षा केशव से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं।

वैदेही वनवास—'वैदेही वनवास' हरिऔध जी का करुण रस प्रधान महाकाव्य है। इसकी अभिव्यंजना शैली पर प्रायः 'रामचन्द्रिका' का कोई प्रभाव नहीं है केवल भाषा पर यत्किंचित प्रभाव देखा जा सकता है। 'वैदेही वनवास' में कवि की भाषा के संस्कृत-प्रेम के कारण अधिकांश शब्द संस्कृत प्रधान तथा समास बहुल हैं। संस्कृत का मोह उपाध्याय जी यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी नहीं त्याग पाये हैं जैसे—

मणिमय-मुकुट विमंडित कुण्डल-अलंकृत।
बहु विविध मंजुल-मुक्तावलि-माला लसित॥
परमोतम-परिधान-वान सौन्दर्य-घन।
लोकोत्तर-कमनीय-कलादिक-आकसित॥
ये द्वितीय नयनाभिराम विकसित वदन।
कनक कान्ति माधुर्य-मूर्ति-मन्मथ-मथन॥
विविध-वर-वसन, लसित किरोटी-कुण्डली।
कर्म्मपरायण परम तीव्र साहस सदन॥[2]

मृदुलता, मत्तता, पुंजता, हितकारिता आदि संस्कृत प्रत्यय युक्त कतिपय शब्द भी हरिऔधजी ने इस काव्य में प्रयुक्त किये हैं।

'रामचन्द्रिका' में केशव को राम का सीता त्याग उचित नहीं प्रतीत हुआ। भरत के माध्यम से कई बार केशव ने इसके अनौचित्य की ओर संकेत किया है। 'वैदेही वनवास' में उपाध्यायजी ने राम के इसी कार्य को कलंक मुक्त करने के लिए उन्हें वैदेही की सम्मति दिलाई है। सम्भव है हरिऔधजी ने यह प्रेरणा 'रामचन्द्रिका' से ही प्राप्त की हो। 'रामचन्द्रिका' के भरत के समान वैदेही वनवास के भरत भी राम के इस कार्य का विरोध करते हुए कहते हैं—

भरत सविनय बोले संसार।
विभामय होते, है तम-धाम।

---

१. श्री कौशलेन्द्र कौतुक, १-१७४
२. वैदेही वनवास, १२-३६-४०

वहिं है अधम जनों का वास।
जहाँ हैं मिलते लोक-ललाम ॥[1]

केशव के समान हरिऔध जी का भी विश्वास है कि—

है क्षमा-योग्य न अत्याचार,
उचित है दण्डनीय का दण्ड।[2]

साकेत संत—यह डा० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत चौदह सर्गों का बहुछंदी महाकाव्य है। इसमें शृंगार के संयोग पक्ष तथा वीर रस के सुन्दर उदाहरण हैं। देशकाल से प्रभावित होकर इस काव्य की मांडवी आधुनिक कृषक-पत्नी के समान भरत के लिए भोजन ले जाती है—

भरत की वह नारी,
कल थी वधू, आज माता सी, दिव्य देवियाँ हारी।
भोजन लेकर चली मांडवी जहाँ भरत व्रतधारी।
जीवन रक्षक कन्दमूल फल, बस सामग्री सारी।
आई उतर तपस्या भू पर नारी बन सुकुमारी।
पर सुकुमारी अग्नि शिखा थी जन जग पावनकारी।
तन पर दो खादी के टुकड़े, चार चूड़ियाँ प्यारी।[3]

केशव के समय में हिन्दी राम-काव्य के तीन रूप प्रचलित हुए—मानस के समान शुद्ध काव्य की दृष्टि से लिखे गये प्रबन्धकाव्य; गीतावली तथा कवितावली के समान मुक्तक काव्य; एवं 'रामचन्द्रिका' के समान शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से लिखे गये प्रबन्धकाव्य। काव्य के ये तीनों ही रूप आजपर्यन्त अनेक राम-काव्यकारों को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। तुलसी के समान केशव ने भी राम-काव्य की जो धारा प्रवाहित की उसमें मज्जन कर अनेक राम-कवियों ने काव्य-प्रणयन किया एवं 'रामचन्द्रिका' की अभिव्यंजना शैली के अनुकरण पर लिखे गये अनेक राम-काव्यों से हिन्दी साहित्य का कोष परिपूर्ण हुआ। अभिव्यंजना शैली के क्षेत्र में केशव का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। उनकी अलंकार, रस एवं विशेषरूप से छंद सम्बन्धी मान्यताओं ने दीर्घकाल तक कवि-समुदाय को प्रेरणा प्रदान की है। महाकाव्यों के परम्परागत लक्षणों के कठोर बन्धन को तोड़ स्वतन्त्र रूप से महाकाव्य का निर्माण कर केशव ने अनेक नवोदित कलाकारों को साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहन दिया परन्तु अति आधुनिक युग में प्राचीन काव्य मान्यताएँ जर्जर हो रही हैं। अधिकांश

---

१. वैदेही बनवास, ३·६
२. वही, ३-२७
३. साकेत सन्त सर्ग १४ (४) आ, पृ० १९१

कवि काव्य के शास्त्रीय पक्ष से विमुख होकर भावना पक्ष की ओर उन्मुख हो रहे हैं। इसी कारण आज शास्त्रीय काव्यों का सृजन उत्तरोत्तर अल्प तथा काव्य शास्त्र के बन्धनों से मुक्त गीति-काव्य का प्रचार अधिकाधिक होता जा रहा है। इसी कारण रीतिकाल तथा आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध में रचित राम-काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों पर हमें 'रामचन्द्रिका' का जितना प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उतना आधुनिक राम-साहित्य पर नहीं। काव्य के शास्त्रीय अध्ययन के साथ ही आधुनिक कवियों की शास्त्रीय काव्य रचना प्रवृत्ति भी निरन्तर क्षीण होती जा रही है।

सहायक-ग्रन्थों की तालिका

१. अकबर—राहुल सांकृत्यायन
२. अकबरी दरबार के हिन्दू कवि—सरयू प्रसाद अग्रवाल
३. अपभ्रंश साहित्य—हरिवंश कोछड़
४. अरस्तू का काव्यशास्त्र—अनुवादक—डा० नगेन्द्र
५. आइने अकबरी (अनुवादित)—रामलाल पाण्डेय
६. आचार्य-कवि-केशव—प्रो० किशन चन्द्र वर्मा, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
७. आचार्य केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित
८. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—श्रीकृष्ण लाल
९. आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५० से १९०० ई० तक)—डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१०. आर्यों का आदि देश—डा० सम्पूर्णानन्द
११. कबीर ग्रन्थावली—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
१२. कवित्तरत्नाकर—सेनापति
१३. कवितावली—तुलसीदास—गीता प्रेस, गोरखपुर
१४. कविप्रिया—केशवदास
१५. कादम्बरी—अनुवादक—नारायण पाण्डे
१६. केशवदास—डा० रामरतन भटनागर, किताब महल, इलाहाबाद
१७. केशवदास—रामरतन भटनागर
१८. केशव की काव्य कला—पं० कृष्ण शंकर शुक्ल
१९. केशव कौमुदी—पूर्वार्द्ध } —टीकाकार लाला भगवानदीन
२०. केशव कौमुदी—उत्तरार्द्ध }
२१. केशव रत्नावली—शंकरनाथ शुक्ल
२२. कोषोत्सव स्मारक संग्रह—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
२३. कौशल किशोर—पं० बल्देव प्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग
२४. जहाँगीरनामा—अनुवादक—बालमुकुन्द गुप्त
२५. जातक कथाएँ—सम्पादक—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
२६. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी

२७. जैन साहित्य—अगरचन्द नाहटा
२८. तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त
२६. तुलसीदास और राजनीति—राजापति दीक्षित
३०. तुलसी और उनके ग्रन्थ—भगीरथ प्रसाद दीक्षित
३१. तुलसीदास और उनकी कविता—रामनरेश त्रिपाठी
३२. तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन—प्रो० राजकुमार, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १६५६
३३. तुलसी ग्रन्थावली—प्रथम खण्ड } —काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सम्वत् २००४
३४. तुलसी ग्रन्थावली—द्वितीय खण्ड }
३५. तुलसी दर्शन—डा० बल्देव प्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
३६. तुलसी रसायन—भगीरथ मिश्र
३७. त्रिदेव निरूपण—डा० दामोदर सातवलेकर
३८. धरती गाती है—देवेन्द्र सत्यार्थी
३६. धीरे बहो गंगा—देवेन्द्र सत्यार्थी
४०. पालि साहित्य का इतिहास—भरतसिंह उपाध्याय
४१. प्रकृति और काव्य—डा० रघुवंश (प्रथम व द्वितीय भाग)
४२. प्राचीन पण्डित और कवि—महावीर प्रसाद द्विवेदी
४३. प्राचीन साहित्य—रवीन्द्र नाथ ठाकुर
४४. वाल्मीकि मुनि का जीवन चरित्र—परमानन्द एम० ए०
४५. बुन्देलखण्ड का इतिहास—प्रतिपाल सिंह
४६. बुन्देलखण्ड वैभव—गौरी शंकर द्विवेदी
४७. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी
४८. बेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी
४६. भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका—डा० नगेन्द्र
५०. भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय
५१. भारतीय दर्शन का इतिहास—बलदेव प्रसाद उपाध्याय
५२. भोजपुरी ग्रामगीत—कृष्णदेव उपाध्याय
५३. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—डा० ताराचन्द
५४. मध्यप्रदेश का इतिहास—डा० हीरालाल
५५. मराठी साहित्य का इतिहास—किशनलाल सरसोदे
५६. महावंश—सम्पादक—आनन्द कौशल्यायन
५७. महाकवि केशवदास—श्री चन्द्रबली पाण्डे
५८. मानस में कामकथा—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
५६. मानस (रूसी) भूमिका—श्री रा० पी० बारान्निकोव—अनुवादक—डा० केसरी नारायण शुक्ल

६०. मिश्रबंधु विनोद—मिश्र बंधु
६१. मैथिली लोकगीत—राम इकबाल सिंह 'राकेश' (संकलित)
६२. रस साहित्य और समीक्षा—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
६३. रसिकप्रिया—केशवदास
६४. रामकथा—डा० कामिल बुल्के
६५. रामचरित चिन्तामणि—पं० रामचन्द्र उपाध्याय—ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर
६६. रामचरित मानस में लोक वार्ता—चन्द्रभान एम० ए०, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
६७. रामचन्द्रिका—पुरुषोत्तम दास भार्गव—किताब महल, इलाहाबाद
६८. रामचन्द्रिका—सम्पादक—श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
६९. रामायणी कथा—दिनेश चन्द्र सेन
७०. राम-भक्ति साहित्य में मधुर उपासना—भुवनेश्वर नाथ मिश्र
७१. राम भक्ति शाखा—अनन्त मराल शास्त्री
७२. राम निवास रामायण—जानकी प्रसाद—मुन्शी नवल किशोर—लखनऊ प्रेस—सन् १८८९
७३. राम रसायन—रसिक बिहारी लाल—श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस
७४. राम स्वयम्वर (पूर्ण) }—रघुराज सिंह
७५. राम स्वयम्वर (संक्षिप्त) }—रघुराज सिंह
७६. रीतिकालीन कवि एवं शृंगार रस का विवेचन—(सन् १६०० से १८५० तक) सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
७७. वृहद् भारतीय चित्रकारी में रामायण—पं० के० एन० सीताराम
७८. विंध्य साहित्य संकलन—सूचना एवं प्रसार विभाग, विंध्य प्रदेश, मार्च १९५३
७९. वैदेही वनवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
८०. वैदिक साहित्य—रामगोविन्द त्रिवेदी
८१. संत काव्य—परशुराम चतुर्वेदी
८२. समीक्षायण—कन्हैयालाल सहल
८३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—चन्द्रशेखर शास्त्री
८४. श्री रामचन्द्रिका—टीकाकार—महात्मा जानकी प्रसाद, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
८५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कन्हैयालाल पोद्दार
८६. संक्षिप्त हिन्दी नवरत्न—मिश्रबंधु
८७. साकेत : एक अध्ययन—डा० नगेन्द्र
८८. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
८९. साकेत के नवम् सर्ग का काव्य वैभव्य—श्री कन्हैयालाल सहल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी

९०. साकेत दर्शन—प्रो० त्रिलोचन पाण्डे—सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
९१. साकेत सन्त—डा० बल्देव प्रसाद मिश्र—विद्यामन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली, सन् १९४६
९२. सुकवि सरोज—गौरीशंकर द्विवेदी
९३. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा
९४. संक्षिप्त रामचन्द्रिका—जगन्नाथ तिवारी (सम्पादित)
९५. सूर साहित्य—शिखरचन्द जैन
९६. सूर सौरभ—मिश्रलाल शर्मा
९७. सूर निर्णय—द्वारिकादास पारीख, प्रभुदयाल मित्तल
९८. सेनापति और उनकी कविता—दुर्गाशंकर मिश्र
९९. शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर
१००. सूर सागर—नागरी प्रचारिणी सभा
१०१. श्री रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास—टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्वत् २००९
१०२. हिन्दुत्व—रामदास गौड़
१०३. हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य—डा० ओम्प्रकाश
१०४. हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन
१०५. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र
१०६. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा० किरण कुमारी गुप्ता
१०७. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास—कामताप्रसाद जैन
१०८. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास—डा० शम्भूनाथ सिंह
१०९. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव—डा० सरनाम सिंह शर्मा
११०. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
१११. हिन्दी साहित्य का इतिहास—के० बी० जिण्डल
११२. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास—राम शुक्ल तथा भगीरथ मिश्र
११३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—(सम्वत् ७५० से १७५० तक) —रामकुमार वर्मा
११४. हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारीप्रसाद द्विवेदी

हस्तलिखित

१. रामायण—एस० एन० व्यास
२. राम गीता चन्द्रिका—(केशवदास)—लिपिकार—भवानी राम शर्मा, सं० १८८३
३. रामचन्द्र चन्द्रिका—(अपूर्ण)—केशवदास—भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
४. रामचन्द्र चन्द्रिका—केशवदास—(इन्द्रजित्)—सं० १८६०, भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

५. रामचन्द्र विलास—नवलसिंह प्रधान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (चारखण्ड)
६. रामाश्वमेध—मोहनदास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
७. संक्षिप्त रामायण—अवध उपाध्याय, पन्नाराज, बुन्देलखण्ड

संस्कृत

१. अध्यात्म रामायण—अनुवादक—मुन्नालाल, गीता प्रेस, गोरखपुर
२. उत्तर रामचरितम्—चन्द्रकला विद्योतिनी टीका—चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस
३. कादम्बरी—बाण भट्ट
४. नैषध चरित—श्री हर्ष
५. प्रतिभा नाटक—भास
तथा वाल्मीकि रामायण के विभिन्न संस्करण एवं अनुवाद।
६. प्रसन्नराघवम्—टीकाकार—पं० श्री रामचन्द्र मिश्र शर्मा, खिलाड़ी कार्यालय, बनारस
७. भट्टिकाव्यम्—३ भाग—टीकाकार—पं० शेषराज शर्मा—विद्या विलास प्रेस, बनारस—सं० २००७
८. रघुवंश—'मणिप्रभा' टीका—चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस
९. वाल्मीकि रामायण—वाल्मीकि—चन्द्रकला विद्योतिनी संहिता
१०. श्रीरामतापनीउपनिषद्—टीकाकार—रामनारायण, रणहर पुस्तकालय, डाकोर—सं० १९६४
११. हनुमन्नाटक—संकलनकर्त्ता—दामोदर मिश्र, मुम्बई वैभव प्रेस, मुम्बई

पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)

१. आजकल—नवम्बर, सितम्बर १९५१
२. आलोचना
३. कल्याण—श्रावण सम्वत् १९८७
४. कल्पना—नवम्बर १९५३
५. नई धारा—अप्रैल १९५३
६. नया साहित्य—अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर १९५१ तथा दिसम्बर १९५४
७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सम्वत् १९७७, १९७८, २००४
८. मनोरमा—सन् १९२६-२८
९. माधुरी—अप्रैल १९३१
१०. विन्ध्य भूमि—साहित्य अंक—जून १९५६, अक्तूबर १९५६

११. विश्व वाणी (इलाहाबाद)—सन् १९४१ से १९५१ तक, अकबर अंक नवम्बर १९४२, नवम्बर १९५०, जनवरी १९५०, सितम्बर १९५०, जुलाई १९५०, फरवरी १९५१
१२. सम्मेलन पत्रिका—सम्वत् २०१२, भाग ४२, संख्या १
१३. सत्य कथा (मराठी)—अगस्त १९५२
१४. सरस्वती—जनवरी १९२५, भाग २६
१५. सुधा—१९४१-४७
१६. हिन्दुस्तान—हिन्दुस्तानी (अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका)

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ

1. Aggarwal, H.K. — Short History of Sanskrit Literature
2. Baijnath, Rai Bahadur — Hinduism Ancient & Modern
3. Bannerji, G.N. — Age of Imperial Unity
4. Barnett, Lionel D. — Antiquities of India
5. Bhandarkar, R. G. — Vaishnavism, Shaivism and other minor Religious Systems;
6. Ceal, S. L. — Vaishnavism
7. Cowell, E. B. — Jataks (Edited)
8. Davids, Rhys — Buddhist India
9. Deshmukh, P. S. — The Origin and Development of Religion in Vedic Literature
10. Devadhar, C. R. & Suru, N. G. — Raghuvamsa
11. Dey, S. K. — History of Sanskrit Poetics
12. Dikshit, V. R. — Matsya Puran : A study
13. Dowson, Hohn — Akbar ; Badauni (Edited)
14. Elphinstone, Mountstuart — The History of India
15. Farkuhar, J. N. — An Outline of the Religious Literature
16. Gore, N. A. — Bibliography of Ramayan
17. Growse, F. S. — Ramayana of Tulsidasa
18. Gupta, S. N. — History of Indian Philosophy
19. Hastings, James — Encyclopedia of Religion and Ethics, X Volume
20. Henry, Whitehead — The Village Gods of South India.
21. Hopkins, E. — Epic Mythology
22. Jacobi, H. G. — Ramayan
23. Kane, P. V. — A History of Sanskrit Poetics
24. Keith, A. B. — Classical Sanskrit Literature
25. Krishnan, Radha **Dr.** — Indian Philosophy
26. Kunte, M. M. — Vicissitudes of Aryan Civilization in India.

27. Macdonell, A. A. — History of Sanskrit Literature
28. Majumdar, R. C. — Ancient Indian History and Civilization
29. Mankad, D. R. — Puranic Chronology
30. Max Muller, F. — Ancient Sanskrit Literature
31. Mohammed, Ghulam (Late) — History of India—Islamic Period.
32. Muir, J. — Original Sankrit Texts
33. Oldenburg, Hermann — Das Mahabharata
34. Oman, J. C. — The Great Indian Epics
35. Pandya, Manubhai C. — Intelligent Man's Guide to Indian Philosophy
36. Pargiter, F. E. — Ancient Indian Historical Tradition
37. Parsad, Beni — History of Jehangir
38. Rajagopalachari, C. — Ramayan
39. Rale, B. G. — Vedic Gods
40. Ray Choudhri, H. C. — Studies in Indian Antiquities
41. Sen, D.C. — Bengali Ramayans
42. Shastri, Shrinivasa — Lectures on the Ramayan
43. Smith, Vincent A. — The Oxford History of India
44. Sukthankar, V. S. — Critical Studies in the Mahabharata
45. Thadani, N. V. — Mystery of the Mahabharata
46. Tilak, B. G. — The Asetic Home in the Vedas
47. Thomas, Fredrick Williams — Indian Studies
48. Thomas, P. — Hindu Religion, Customs and Manners.
49. Vaidya, C. V. — The Riddle of the Ramayan
50. Vaidya, C. V. — Mahabharata—A Criticism
51. Weber, Albrecht — On the Ramayan
52. Wheeler, T. — History of India
53. Williams, Sir Monier — Indian Wisdom
54. Wilson, W. — Translation of Vishnu Puran
55. Winternitz, M. — History of Indian Literature

पत्र-पत्रिकाएँ (अंग्रेजी)

Annals of Bhandarkar Research Institute—May 1936 Volume XVII Indian Review—May 1926 Part 2

Indian Antiquary—1872, 1875, 1903, 1912, 1913

Indian Historical Quarterly—1931

Journal of Ganganath Jha Research Institute, Allahabad—February, August 1944, May, August, 1946 and November 1947.

Journal of the Royal Asiatic Society—1888, 1890, 1891, 1907, April 1914 and April 1915

Search for Hindi Manuscripts 1906 to 1911 and other Journals.